आज़ादी का अमृत महोत्सव

संचार माध्यम

भारतीय जन संचार संस्थान की अर्द्धवार्षिक शोध पत्रिका

खंड–34, अंक–1 आईएसएसएन : 2321–2608 जनवरी–जून 2022

भारतीय जन संचार संस्थान
नई दिल्ली

संचार माध्यम

भारतीय जन संचार संस्थान की अर्द्धवार्षिक शोध पत्रिका
खंड–34, अंक–1 जनवरी–जून 2022 आईएसएसएनः 2321–2608

संचार माध्यम के बारे में:

'संचार माध्यम' (ISSN 2321–2608) भारतीय जन संचार संस्थान (नई दिल्ली) की संचार, मीडिया, पत्रकारिता और उससे संबंधित मुद्दों पर केंद्रित हिंदी में प्रकाशित सामग्री चयन में उच्च मानदंडों का पालन करने वाली अग्रणी और यूजीसी–केयर सूचीबद्ध शोध पत्रिका है। इसका प्रकाशन 1980 में प्रारंभ हुआ और आज यह हिंदी भाषा में संचार, मीडिया और पत्रकारिता से संबंधित विषयों पर विभिन्न प्रकार के विचारों, टिप्पणियों, पुस्तक समीक्षा और मौलिक शोध–पत्रों के प्रकाशन का प्रतिष्ठित मंच है। इसमें मीडिया से संबंधित सभी प्रकार के विषयों पर मौलिक अकादमिक शोध और विश्लेषण प्रकाशित किए जाते हैं। अकादमिक शोध के उच्चतर मूल्यों का पालन करते हुए 'संचार माध्यम' में प्रकाशन से पूर्व सभी शोध पत्रों/आलेखों के लिए निष्पक्ष समीक्षा की एक कठोर प्रक्रिया का पालन किया जाता है। भारतीय जन संचार संस्थान के प्रकाशन विभाग द्वारा इसका प्रकाशन किया जाता है।

प्रधान संपादक
प्रो. संजय द्विवेदी
महानिदेशक,
भारतीय जन संचार संस्थान, नई दिल्ली

संपादक
प्रो. (डॉ.) प्रमोद कुमार
प्रोफेसर, अंग्रेजी पत्रकारिता
भारतीय जन संचार संस्थान, नई दिल्ली

संपादक मंडल

श्री अच्युतानन्द मिश्र
वरिष्ठ पत्रकार एवं पूर्व कुलपति, माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय, भोपाल

डॉ. सच्चिदानंद जोशी
पूर्व कुलपति, कुशाभाऊ ठाकरे पत्रकारिता एवं जन संचार विश्वविद्यालय, रायपुर एवं सदस्य सचिव, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र, नई दिल्ली

प्रो. ओम प्रकाश सिंह
प्रोफेसर एवं निदेशक, महामना मदनमोहन मालवीय हिन्दी पत्रकारिता संस्थान, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

प्रो. पवित्र श्रीवास्तव
डीन अकादमिक, माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय, भोपाल

प्रो. गोविंद सिंह
डीन अकादमिक, और पाठ्यक्रम निदेशक, रेडियो एवं टीवी पत्रकारिता, भारतीय जन संचार संस्थान, नई दिल्ली

प्रो. आनंद प्रधान
पाठ्यक्रम निदेशक, भारतीय भाषा विभाग, भारतीय जन संचार संस्थान, नई दिल्ली

प्रो. अनिल कुमार सौमित्र
प्रोफेसर एवं क्षेत्रीय निदेशक, भारतीय जन संचार संस्थान, अमरावती, महाराष्ट्र

प्रो. संगीता प्रणवेंद्र
प्रोफेसर, रेडियो और टेलीविजन, भारतीय जन संचार संस्थान, नई दिल्ली

प्रो. प्रमोद कुमार
प्रोफेसर, अंग्रेजी पत्रकारिता एवं संपादक, 'संचार माध्यम', भारतीय जन संचार संस्थान, नई दिल्ली

डॉ. शुचि यादव
सह–आचार्य, मीडिया अध्ययन केंद्र,
सामाजिक विज्ञान स्कूल,
जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

डॉ. शाहिद अली
विभागाध्यक्ष, जन संचार, कुशाभाऊ ठाकरे पत्रकारिता एवं जन संचार विश्वविद्यालय, रायपुर

डॉ. पवन कौंडल
सहायक संपादक, प्रकाशन विभाग,
भारतीय जन संचार संस्थान, नई दिल्ली

भारतीय जन संचार संस्थान की ओर से वीरेंद्र कुमार भारती द्वारा, मुद्रित एवं प्रकाशित

*सभी तरह के संपादकीय पत्राचार और लेख भेजने के लिए **संपादक, संचार माध्यम,** भारतीय जन संचार संस्थान, अरुणा आसफ अली मार्ग, नई दिल्ली-110 067 (भारत), को संबोधित किया जाना चाहिए (दूरभाष : 91-11-26742920, 26741357)*

***ई मेल :** sancharmadhyamiimc@gmail.com, drpk.iimc@gmail.com*
***जर्नल का वेब लिंक :** http://iimc.gov.in/content/426_1_AboutTheJournal.aspx*
***वेबसाईट :** www.iimc.gov.in*

'संचार माध्यम' में प्रकाशित विचार लेखकों की अपनी अभिव्यक्ति हैं। भारतीय जन संचार संस्थान का उनसे सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

प्रधान संपादक की कलम से

प्रो. संजय द्विवेदी
महानिदेशक
भारतीय जन संचार संस्थान

आज दुनिया के तमाम देश प्रगति और विकास की ओर तेजी से बढ़ते भारत को एक नई उम्मीद से देख रहे हैं। भारत की आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक यात्रा की एक नई शुरुआत हुई है। आज भारत की पहचान बदल रही है और वह एक समर्थ परंपरा का सांस्कृतिक उत्तराधिकारी ही नहीं है, बल्कि तेजी से विकास करता हुआ राष्ट्र है। इसलिए वह उम्मीदें भी जगा रहा है। अनादि काल से भारत में समाज की सामूहिक शक्ति पर भरोसा किया गया है। यह अरसे तक हमारी सामाजिक परंपरा का हिस्सा रहा है। जब समाज मिलकर कुछ करता है, तो इच्छित परिणाम अवश्य मिलते हैं। और हम सबने यह देखा है कि बीते कुछ वर्षों में जन-भागीदारी भारत का 'नेशनल कैरेक्टर' बनता जा रहा है। पिछले 6-7 वर्षों में जन-भागीदारी की ताकत से भारत में ऐसे-ऐसे कार्य हुए हैं, जिनकी कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था।

ऐसे समय में भारतीय मीडिया का आकार, प्रकार और शक्ति भी बढ़ी हैं। भारत में मीडिया का इस्तेमाल और उपयोग करने वाले लोग भी बढ़े हैं। तमाम संचार माध्यमों से विविध प्रकार की सूचनाएँ समाज के सामने उपस्थित हो रही हैं। इसमें सूचनाओं की विविधता भी है और विकृति भी। मेरा मानना है कि मीडिया इस देश की विविधता और बहुलता को व्यक्त करते हुए इसमें एकत्व के सूत्र निकाल सकता है। हमारे देश की ताकत यह है कि हम संकट के समय में जल्दी एकजुट हो जाते हैं, लेकिन संकट टलते ही वह भाव नहीं रहता। हमें इस बात को लोगों के मन में स्थापित करना है कि वे हर स्थिति में साथ हैं और अच्छे दिनों में साथ मिलकर चल सकते हैं। यही एकात्म भाव है। यही जुड़ाव है, जिसे जगाने की जरूरत है। बौद्धिकता सिर्फ बुद्धिजीवियों तक सीमित नहीं रहनी चाहिए, उसे जन सामान्य के विचार का हिस्सा बनना चाहिए। मीडिया देशवासियों का प्रबोधन करने में यह भूमिका निभा सकता है। मीडिया का काम सिर्फ सूचनाएँ देना नहीं है, अपने पाठकों को बौद्धिक रूप से उन्नत करना भी है। कोई भी लोकतंत्र ऐसे ही सहभाग से साकार होता है, सार्थक होता है। जनता से जुड़े मुद्दे और देश के सवालों की गंभीर समझ, पाठकों और दर्शकों में पैदा करना मीडिया की जिम्मेदारी है।

भारत जैसे देश में मीडिया का प्रभाव पिछले दो दशकों में बहुत बढ़ा है। वह तेजी से विकसित होती अर्थव्यवस्था के साथ कदमताल करता हुआ एक बड़े उद्योग में बदल गया है। लेकिन इसके बावजूद हमें यह मानना पड़ेगा कि मीडिया का व्यवसाय अन्य व्यवसायों या उद्योगों सरीखा नहीं है। इसके साथ सामाजिक दायित्वबोध गुँथे हुए हैं। सामाजिक उत्तरदायित्व के बिना मीडिया किसी काम का नहीं है। पत्रकारिता सीधे समाज से जुड़ा, उसके सवालों से रोज मुठभेड़ करने वाला, समाज की पीड़ा, उथल-पुथल और चिंताओं को अभिव्यक्त करने वाला व्यवसाय है, इसलिए उसके मूल्यबोध पर प्रश्नवाचक चिह्न पहले भी लगते रहे हैं। लेकिन जब भी ऐसा वक्त आया है, पत्रकारिता ने अपनी नैतिक ध्वजा को हमेशा ऊपर रखा है। यही वजह है कि व्यापक आलोचनाओं के बाद भी सच्चाई को जानने, तथ्यों को परखने, वैचारिक द्वंद्व में जनपक्ष को समझने, समाज और इतिहास बोध के साथ-साथ वास्तविकता और फेक न्यूज के बीच में भी सही खबर लोगों तक पहुँचाने का व्यापक माध्यम आज भी मीडिया ही है। हम सब जानते हैं कि पत्रकारिता जैसे पेशे के व्यवसाय का जन्म, समकालीन समाज में घट रही घटनाओं को जानने की जिज्ञासा, उन्हें लोगों तक पहुँचाने के आग्रह और उसके अनुसार समाज का मानस बनाने की इच्छा से हुआ है। जिज्ञासा मनुष्य का स्वभाव है, इसलिए वह अपने घर से लेकर, पास-पड़ोस, शहर, अंचल, प्रदेश, देश और दुनिया की हलचल के बारे में जानना चाहता है। जो हो रहा है, वह उसका सही-गलत के रूप में आकलन, विश्लेषण करता है। उसका औचित्य-अनौचित्य तय करता है। इसकी बुनियाद में अमूमन निजी से ज्यादा समाज हित और राष्ट्रहित ही होता है। मेरा मानना है कि मूल रूप में मीडिया का मूल्यबोध भी वही है, जो समाज का मूल्यबोध है। समाज को भी स्वस्थ, प्रामाणिक और पारदर्शी होने की दरकार है। ऐसा समाज ही मजबूत राष्ट्र का निर्माण कर सकता है। विश्व का नेतृत्व कर सकता है।

स्वाधीनता से पहले पत्रकारिता का उद्देश्य देश की स्वतंत्रता था, उसी तरह अब मीडिया का लक्ष्य देश का नवनिर्माण होना चाहिए। मीडिया के सामने सामाजिक मूल्यों को पुनर्जीवित करने का लक्ष्य होना चाहिए। निराशा से जूझते हुए मन को ताकत देने की पत्रकारिता होनी चाहिए। लोकतंत्र के बाकी के स्तंभ जहाँ भी भटकते दिखाई दें, वहाँ उन्हें चेताने का काम मीडिया को करना चाहिए। यह हम तभी कर पाएँगे, जब हमारे मन में स्पष्ट होगा कि पत्रकारिता का धर्म क्या है? एक बेहतरीन अंक के प्रकाशन हेतु 'संचार माध्यम' की पूरी संपादकीय टीम, संपादकीय बोर्ड और समीक्षकों का धन्यवाद। पाठकों की टिप्पणियों और सुझावों का स्वागत है।

संपादकीय

केवल समस्याओं की ही चर्चा क्यों...

गत कुछ वर्षों से भारतीय मीडिया में जन-समस्याओं को उठाते हुए भाग खड़े होने की प्रवृत्ति तेजी से उभरी है। इस प्रवृत्ति का मूल कारण सिर्फ नकारात्मक तत्त्व को समाचार मानने की मानसिकता है। यह नकारात्मक दृष्टि मीडिया विद्यार्थियों में क्लासरूम से ही विकसित हो जाती है। ऐसा इसलिए है क्योंकि अधिकांश पत्रकारों की मानसिकता नकारात्मक है और उनके संपर्क में जो छात्र आते हैं वे भी उसी मानसिकता में रच-बस जाते हैं, क्योंकि वे उन्हें ही आदर्श मानते हैं। इस आत्मघाती दृष्टि के कारण कई बार प्रशिक्षित पत्रकार भी समाज और देश का इतना अधिक नुकसान कर देते हैं कि उसकी भरपाई करना कठिन हो जाता है। यह बात कारगिल युद्ध, कंधार विमान अपहरण कांड और मुंबई के आतंकी हमले के दौरान स्पष्ट रूप से महसूस की गई। गत वर्ष कोविड महामारी के शुरुआती दौर में भी मीडिया ने इतना भय पैदा कर दिया था कि कुछ स्थानों पर अनेक लोगों ने भय के कारण आत्महत्या तक कर ली। अप्रैल 2020 को पंजाब के फगवाड़ा जिले में स्थित खुर्रमपुर गाँव में एक 65 वर्षीय महिला ने इसलिए आत्महत्या कर ली, क्योंकि वह टेलीविजन पर कोविड महामारी से संबंधित समाचारों को देखकर इतनी अधिक डर गई कि उसे लगा कि अब दुनिया समाप्त होने वाली है। मीडिया के सामने आज बड़ा सवाल यह है कि महामारी हो अथवा सामान्य माहौल, उसे समाज का संबल बनना चाहिए अथवा लोगों को भ्रमित करने का माध्यम?

भारतीय मीडिया में बढ़ती नकारात्मक प्रवृत्ति पर भारत में कोई बड़ा शोध हुआ हो ऐसी जानकारी संज्ञान में नहीं है, परंतु 'बीबीसी' और 'न्यूयॉर्क टाइम्स' द्वारा वर्ष 2016 में दो बड़े अध्ययनों की जानकारी मिलती है। 'बीबीसी ऑडियंस रिसर्च' में दावा किया गया कि यूनाइटेड किंगडम में 16-18 आयु वर्ग के 51 प्रतिशत और 19-24 आयु वर्ग के 47 प्रतिशत पाठक ऐसे समाचार पढ़ना चाहते हैं जो समस्या के साथ समाधान की जानकारी भी दें। अध्ययन में विकासशील देशों से जो आँकड़े आए वे और भी चौंकाने वाले हैं—सभी आयु समूहों के 75 प्रतिशत भारतीय, 78 प्रतिशत नाइजीरियाई और 82 प्रतिशत केन्यावासी ऐसे समाचार चाहते हैं जो समस्या के साथ समाधान भी उपलब्ध कराएँ। अध्ययन के दौरान समाधानमूलक समाचार की तरफ बीबीसी शोध टीम का ध्यान दरअसल अध्ययन में शामिल कुछ युवा प्रतिभागियों ने ही आकृष्ट किया। जब शोध टीम युवाओं की मीडिया संबंधी पसंद जानने के लिए उनसे बात कर रही थी तो उन्होंने कहा कि 'बीबीसी' के समाचारों में बहुत अधिक नकारात्मकता रहती है और "क्या दुनिया में कुछ अच्छा नहीं हो रहा है?" बीबीसी शोध टीम को प्रतिभागियों ने कहा कि 'क्या हुआ' और 'क्यों हुआ' से आगे बढ़कर वे यह भी जानना चाहते हैं कि दुनिया के अन्य हिस्सों में 'अब इसका क्या समाधान हो सकता है'? इस अध्ययन के बाद 'बीबीसी' ने समाधानमूलक पत्रकारिता पर ध्यान केंद्रित किया। हॉलैंड के 'स्कूल ऑफ जर्नलिज्म' ने रचनात्मक पत्रकारिता की दिशा में विशेष प्रयास किए हैं। दानिश ब्रॉडकास्टिंग कॉरपोरेशन ने कई साल से रचनात्मक पत्रकारिता को पूरी तरह अंगीकार कर लिया है और उनके द्वारा प्रसारित समाचार समस्या के साथ समाधान की भी चर्चा करते हैं। 'बीबीसी' में संपादकीय सहभागिता विभाग की प्रमुख एमिली केसरील ने दो दिन तक दानिश ब्रॉडकास्टिंग कॉरपोरेशन में रहकर इस प्रयोग का अध्ययन किया। बाद में 'बीबीसी' ने दानिश ब्रॉडकास्टिंग कॉरपोरेशन के कार्यकारी समाचार निदेशक उलरिक हागरूप को अपने कार्यालय में आमंत्रित कर उनके अनुभव को अपने स्टाफ के साथ साझा किया। उसके बाद 'बीबीसी' ने अपने न्यूजरूम में समाधान-केंद्रित पत्रकारिता प्रकल्प आरंभ किया। वर्ष 2018 में 'बीबीसी' ने नॉर्वे द्वारा प्लास्टिक कचरे के निस्तारण संबंधी एक विडियो स्टोरी की, जिसे फेसबुक पर 70 मिलियन व्यूज और 50,000 कमेंट्स प्राप्त हुए और दो लाख उनतालीस हजार लोगों ने उसे शेयर किया। वह विडियो स्टोरी 'बीबीसी' की वर्ष 2018 की सबसे प्रभावशाली स्टोरी साबित हुई।

समाधानमूलक पत्रकारिता पर वर्ष 2019 में जोडी जैक्सन द्वारा लिखित एक पुस्तक भी आई, जिसका नाम है 'यू आर व्हाट यू रीड : व्हाई चेंजिंग योर मीडिया डाइट कैन चेंज द वर्ल्ड'। अनबाउंड प्रकाशक द्वारा प्रकाशित इस पुस्तक में लेखिका ने विस्तार से बताया है कि नकारात्मक दृष्टिकोण से प्रस्तुत की जा रही खबरों के कारण पाठक तेजी से मीडिया से दूर हो रहे हैं, क्योंकि ऐसी खबरों से उनमें नकारात्मक और निराशा का भाव पैदा होता है। पुस्तक में बताया गया है कि यदि पाठकों को समाधानमूलक समाचार प्रदान किए जाएँ तो उनके सोचने का नजरिया बदल जाता है। सोलुशंस जर्नलिज्म नेटवर्क ने भी 2017 में एक अध्ययन किया, जिसमें दावा किया गया कि समाधानमूलक खबरें कवर करने से संवाददाताओं की सोच में भी सकारात्मक बदलाव आया। अध्ययन में शामिल पत्रकारों ने कहा कि ऐसी खबरों को कवर करते हुए उनके अंदर अपने पेशे के प्रति पहले से अधिक सार्थकता का भाव और पहले से अधिक टीम भावना विकसित हुई। अध्ययन में शामिल 100 प्रतिशत पत्रकारों ने कहा कि यदि उन्हें नवोदित पत्रकारों को प्रशिक्षित करने का अवसर मिले तो वे समाधानमूलक पत्रकारिता ही पढ़ाना पसंद करेंगे। इसके अलावा 87 प्रतिशत पत्रकारों ने कहा कि आज खबरों के प्रति अधिकतर पाठकों में जो नकारात्मक भाव पनप

रहा है उसे समाधानमूलक पत्रकारिता से दूर किया जा सकता है। ऐसे प्रयासों और अध्ययनों से प्रेरित होकर यूनाइटेड किंगडम के 'न्यूजवायर्ड.कॉम' ने पत्रकारों के लिए नियमित कार्यशालाएँ, सम्मलेन और संगोष्ठियाँ आयोजित करना प्रारंभ किया है। 'द गार्डियन' ने भी 'द अपसाइड' नाम से एक श्रृंखला आरंभ की है जिसमें खासतौर से जलवायु, स्वास्थ्य, लिंग, विज्ञान और तकनीक तथा सामुदायिक नेतृत्व के संबंध में सामग्री प्रकाशित की जाती है।

अब बड़ा सवाल यह है कि संपूर्ण विश्व को समाधान की राह दिखाने वाले भारत के पत्रकारों में इस दृष्टि का अभाव क्यों है? भारत में इस दृष्टि को पोषित करता हुआ साहित्य का अपुल भंडार है। भारत की पूरी ज्ञान परंपरा मानव के सम्मुख आने वाली समस्याओं के समाधान प्रस्तुत करती है। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के तमाम पुरोधाओं ने भी समाधानमूलक संचार की बात की है। विवेकानंद, अरविंद, रमण, गांधी, तिलक, अंबेडकर, लाला लाजपत राय, नेताजी सहित स्वतंत्रता आंदोलन के पत्रकार नेतृत्व ने समाधानमूलक संचार की ही वकालत की। स्वतंत्रता के बाद लोहिया और दीनदयाल सहित तमाम चिंतकों ने इस परंपरा को आगे बढ़ाया। हाल के एक-दो दशकों की बात करें तो समाधानमूलक पत्रकारिता के सबसे बड़े पुरोधाओं में भारत के पूर्व राष्ट्रपति और सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक डॉ. एपीजे अब्दुल कलाम का नाम आता है। 16 नवंबर, 2007 को नई दिल्ली में 'रामनाथ गोयनका अवार्ड्स फॉर एक्सीलेंस इन जर्नलिज्म' प्रदान करते हुए डॉ. कलाम ने इजरायल का अपना एक अनुभव साझा किया। उन्होंने कहा, "1999 में मैं तेल अवीव गया। जब मैं वहाँ पहुँचा तो टीवी पर खबर आ रही थी कि लेबनान बॉर्डर पर हमास के हमले में काफी नुकसान हुआ है और उसमें काफी सैनिक भी शहीद हो गए। अगले दिन जब मैंने वहाँ के समाचार पत्र खोले तो मुझे उस हमले से संबंधित एक भी समाचार किसी भी समाचार पत्र के मुखपृष्ठ पर दिखाई नहीं दिया। मुखपृष्ठ पर जो खबर थी वह एक ऐसे किसान के बारे में थी जो रूस से आकर तीन साल से मरुस्थलीय इलाके में खेती कर रहा था और उसने मरुस्थल में भी बेहतरीन सब्जियाँ और फल उगाए थे। यानी वहाँ के समाचार पत्रों ने एक किसान की कामयाबी का भी जश्न मनाया। संभवत: ऐसी ही खबरों को लोग पढ़ना चाहते हैं और यही पत्रकारिता में वास्तविक उत्कृष्टता है।" डॉ. कलाम चाहते थे कि भारतीय मीडिया ऐसी खबरों से संबंधित शोध पर पैसा खर्च करे।

डॉ. कलाम भारत में जहाँ भी जाते वहीं पत्रकारों से समाधानमूलक खबरों को प्रमुखता देने का आग्रह करते थे। 2 अप्रैल, 2013 को बैंगलोर राजभवन में पत्रकारों के एक समूह से बात करते हुए उन्होंने पूछा— "आप अपने अखबार के मुखपृष्ठ पर समाधानमूलक खबरों को स्थान क्यों नहीं देते? मैं देखता हूँ कि आज सभी समाचार पत्रों के मुखपृष्ठ भ्रष्ट्राचार, अपराध और मौतों से संबंधित खबरों से पटे पड़े रहते हैं। इससे तो अच्छा है कि आप मुखपृष्ठ पर कोई-न-कोई रचनात्मक खबर प्रकाशित कीजिए, ताकि लोग अपने दिन की शुरुआत एक बेहतर उम्मीद के साथ करें। प्रेरक खबरे ढूँढ़िए और अपने पाठकों को प्रेरक काम के लिए प्रोत्साहित कीजिए।" केरल के कोट्टयम में उन्होंने 9 नवंबर, 2008 को कहा कि 'विकसित भारत' हमारे देश में 'मीडिया मूवमेंट' बनना चाहिए। बैंगलोर प्रेस क्लब में 17 अक्टूबर, 2011 को पत्रकारों से बात करते हुए डॉ. कलाम ने कहा कि वास्तविक पत्रकारिता देश के जीवन मूल्यों को बढ़ावा देती है और इसमें सनसनी के लिए कोई स्थान नहीं है। भले ही इससे क्षणिक लाभ मिल जाए, लेकिन यह नुकसानदेह है। मीडिया देश के गुमनाम समाज-शिल्पियों के काम को सामने लाकर भारत की सफलता का जश्न मनाए और इस सफलता में जिसका भी योगदान है उससे पूरे देश को परिचित कराए, फिर वह चाहे एक किसान हो, शिक्षक, ड्राइवर, रसोइया अथवा बढ़ई, क्योंकि ये सभी 'टीम इंडिया' का अंग हैं। इस सोच को लेकर डॉ. कलाम इतने गंभीर थे कि वे जहाँ भी अवसर मिलता, पत्रकारों को समाधानमूलक पत्रकारिता की शपथ दिलवाते थे।

हालाँकि भारत में 'अमर उजाला', 'दैनिक जागरण' और 'दैनिक भास्कर' जैसे कुछ हिंदी समाचार पत्रों ने समाधानमूलक पत्रकारिता को लेकर कुछ वर्षों से प्रयास किए हैं और 'द बैटर इंडिया' और 'एनईडब्ल्यूजे' जैसे कुछ वेबपोर्टल भी शुरू हुए हैं, परंतु कुल मिलाकर भारतीय मीडिया में समाधानमूलक पत्रकारिता के संबंध में अभी प्रयास काफी कम हैं। मीडिया को यह स्वीकार करना पड़ेगा कि घोर नकारात्मकता के कारण भारत में भी पाठकों का एक बहुत बड़ा वर्ग उससे दूर हो रहा है। बदलते दौर में यदि मीडिया को अपने पाठकों को जोड़े रखना है तो यह जन सरोकार की पत्रकारिता से ही संभव है। इस अंक में समाधानमूलक पत्रकारिता पर एक शोध पत्र शामिल किया गया है। आशा है आने वाले दिनों में समाधानमूलक पत्रकारिता बीट प्रत्येक मीडिया संस्थान में होगी और पत्रकारिता प्रशिक्षण संस्थानों में भी नवोदित मीडिया विद्यार्थियों को इस संबंध में क्लासरूम में ही जागरूक किया जाएगा। इस संबंध में भारतीय जन संचार संस्थान ने पहल कर दी है और समाधानमूलक पत्रकारिता 2021-22 के अकादमिक सत्र से पाठ्यक्रम का हिस्सा है। इस अंक में शामिल सामग्री पर आपकी प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा रहेगी।

प्रो. (डॉ.) प्रमोद कुमार

संपादक

प्रकाशन विभाग
भारतीय जन संचार संस्थान
अरुणा आसफ अली मार्ग, न्यू जेएनयू कैंपस, नई दिल्ली-110067

संचार माध्यम

भारतीय जन संचार संस्थान की शोध पत्रिका

खंड 34 (1) | आईएसएसएन: 2321-2608 | जनवरी-जून 2022

विषय सूची

1. डिजिटल माध्यमों से मिल रही हैं प्रिंट मीडिया को गंभीर चुनौतियाँ 1
   प्रो. संजय द्विवेदी

2. स्वतंत्रता संग्रामकालीन पत्रकारिता में महिलाओं की भूमिका 5
   डॉ. अमृता शिल्पी

3. स्वतंत्रता संग्राम के दौरान राष्ट्रीय चेतना के जागरण में भारतीय सिनेमा की भूमिका का अध्ययन 13
   प्रो. (डॉ.) प्रमोद कुमार

4. हिंदी सिनेमा गीतों में साहित्य, लोकतत्त्व और संप्रेषण 20
   डॉ. राजीव श्रीवास्तव

5. स्वतंत्रता संग्राम में पंजाबी पत्रकारिता के योगदान का अध्ययन 31
   डॉ. मलकीत सिंह

6. स्वतंत्रता संग्राम और भारतीय भाषाई पत्रकारिता 36
   विकाश कुमार और डॉ. अंजनी कुमार झा

7. हिंदी नवजागरण और भारतेंदु युग की स्त्री विषयक चिंता : कवि वचन सुधा, बालाबोधिनी, हरिश्चंद्र चंद्रिका, हिंदी प्रदीप और ब्राह्मण पत्र-पत्रिकाओं के विशेष संदर्भ में 42
   सत्यप्रकाश सिंह

8. सामाजिक सुधार पर आधारित पत्रकारिता : अंबेडकरवादी और गांधीवादी दृष्टिकोण 48
   डॉ. सुनीता मंगला और संजय कुमार भारती

9. हरियाणवी लोकगीतों में सामाजिक रिश्तों का चित्रण 53
   डॉ. शिखा सैनी

10. इक्कीसवीं सदी के मीडिया में नैतिकता एवं निष्पक्षता का प्रश्न एवं सामाजिक उत्तरदायित्व का मूल्यांकन 58
    डॉ. संजय वर्मा

11. समाधानमूलक पत्रकारिता: हिमाचल प्रदेश के संदर्भ में एक अध्ययन 64
    मुनीश

12. भारत के मुक्त एवं दूरस्थ विश्वविद्यालयों के मीडिया पाठ्यक्रमों की मीमांसा 70
    डॉ. सुबोध कुमार

13. संचार पारिस्थितिकी के अनुकूलन की आतंकी रणनीति : जम्मू-कश्मीर में पत्रकारों की हत्याओं के विशेष संदर्भ में एक अध्ययन 74
    डॉ. जयप्रकाश सिंह

14. जम्मू-कश्मीर के सामाजिक यथार्थ और मीडिया कवरेज के द्वंद्व का अध्ययन 79
    सूर्यप्रकाश और डॉ. जयप्रकाश सिंह

15. टेलीविजन पत्रकारों की कार्यप्रणाली एवं मानसिक स्वास्थ्य पर कोविड लॉकडाउन का असर : नोएडा में कार्यरत पत्रकारों पर एक अध्ययन 86
रविंद्र कुमार

16. कोविड महामारी के दौरान मीडिया विद्यार्थियों में उत्पन्न अवसाद, चिंता और तनाव का अध्ययन 95
विनीत कुमार झा 'उत्पल' और मुक्ता मर्तोलिया

17. वधू-तस्करी में सोशल मीडिया की भूमिका : हरियाणा के संदर्भ में एक अध्ययन 99
गितेश

18. सोशल मीडिया के संदर्भ में साइबर अपराध का विश्लेषणात्मक अध्ययन 105
डॉ. लोकनाथ

पुस्तक समीक्षा
मीडियाकर्म : योग्यता और यथार्थ — *मीडिया में आ रही विसंगतियों पर एक सार्थक बहस* 112
डॉ. रवीन्द्र अग्रवाल

बीट रिपोर्टिंग एंड एडिटिंग- जर्नलिज्म इन द डिजिटल एज— *बदलते दौर की पत्रकारिता के लिए मार्गदर्शक पुस्तक* 115
रीता कपूर

संचार माध्यम | खंड 34(1) : 1-4, जनवरी-जून 2022
आईएसएसएन: 2321-2608

डिजिटल माध्यमों से मिल रही हैं प्रिंट मीडिया को गंभीर चुनौतियाँ

प्रो. संजय द्विवेदी[1]

सारांश

दुनिया के तमाम प्रगतिशील देशों से सूचनाएँ मिल रही हैं कि प्रिंट मीडिया पर संकट के बादल हैं। यहाँ तक कहा जा रहा है कि बहुत जल्द अखबार लुप्त हो जाएँगे। वर्ष 2008 में आई जे. गोमेज की किताब 'प्रिंट इज डेड' इसी अवधारणा पर बल देती है। इस किताब के बारे में 'लाइब्रेरी रिव्यू' में एंटोनी चिथम ने लिखा—"यह किताब उन सब लोगों के लिए 'वेकअप काल' की तरह है, जो प्रिंट मीडिया में हैं, किंतु उन्हें यह पता ही नहीं कि इंटरनेट द्वारा डिजिटल दुनिया किस तरह की बन रही है।" बावजूद इसके क्या खतरा इतना बड़ा है? क्या भारतीय बाजार में वही घटनाएँ दोहराई जाएँगी, जो अमेरिका और पश्चिमी देशों में घटित हो चुकी हैं? इन्हीं दिनों में भारत में कई अखबारों के बंद होने की सूचनाएँ मिली हैं तो दूसरी ओर कई अखबारों का प्रकाशन भी प्रारंभ हुआ है। ऐसी मिली-जुली तस्वीरों के बीच में आवश्यक है कि इस विषय पर समग्रता से विचार करें।

संकेत शब्द : प्रिंट मीडिया, डिजिटल मीडिया, समाचार पत्र, न्यू मीडिया, सोशल मीडिया, इंटरनेट

प्रस्तावना

भारत के बाजार आज भी प्रिंट मीडिया की प्रगति की सूचनाओं से आह्लादित हैं। हर साल अखबारों के प्रसार में वृद्धि देखी जा रही है। रोज अखबारों के नए-नए संस्करण निकाले जा रहे हैं। कई बंद हो चुके अखबार फिर उन्हीं शहरों में दस्तक दे रहे हैं, जहाँ से उन्होंने अपनी यात्रा बंद कर दी थी। भारतीय भाषाओं के अखबारों की तूती बोल रही है। रीडरशिप सर्वेक्षण हों या प्रसार के आँकड़े, सब बता रहे हैं कि भारत के बाजार में अभी अखबारों की बढ़त जारी है। भारत में समाचार प्राप्त करने का सबसे लोकप्रिय तरीका अभी तक समाचार पत्र ही हैं। साल 2011 की भारत की जनगणना के अनुसार, भारत के लगभग 68 प्रतिशत लोग गाँवों में रहते हैं, जहाँ प्रिंट माध्यम अभी तक सबसे ज्यादा पसंद किया जाने वाला मीडिया उत्पाद है। इसी के समानांतर स्मार्टफोन जो अब तक भारत में इंटरनेट एक्सेस का सबसे व्यापक तरीका बन चुके हैं, डिजिटल मीडिया, विशेष रूप से मोबाइल और सोशल मीडिया, तेजी से सबसे महत्त्वपूर्ण बनते जा रहे हैं (अनीज एवं अन्य, 2016)।

भारत में अखबारों के विकास की कहानी सन् 1780 से प्रारंभ होती है, जब जेम्स आगस्टस हिक्की ने पहला अखबार 'बंगाल गजट' निकाला। कलकत्ता से निकला यह अखबार हिक्की की जिद, जुनून और सच के साथ खड़े रहने की बुनियाद पर रखा गया। इसके बाद हिंदी में पहला पत्र या अखबार सन् 1826 में निकला, जिसका नाम था 'उदंत मार्तंड'। इसे कानपुर निवासी युगल किशोर शुक्ल ने कलकत्ता से ही निकाला। इस तरह कलकत्ता भारतीय पत्रकारिता का केंद्र बना। अँग्रेजी, बांग्ला और हिंदी के कई नामी प्रकाशन यहाँ से निकले और देशभर में पढ़े गए। तब से लेकर आज तक भारतीय पत्रकारिता ने सिर्फ विकास का दौर ही देखा है। आजादी के बाद वह और विकसित हुई। तकनीक, छाप-छपाई, अखबारी कागज, कंटेट हर तरह की गुणवत्ता का विकास हुआ।

भूमंडलीकरण के बाद रंगीन हुए अखबार

हिंदी और अँग्रेजी ही नहीं, अन्य भारतीय भाषाओं के अखबारों ने कमाल की प्रगति की। देश का आकार और आबादी इसमें सहायक बने। जैसे-जैसे साक्षरता बढ़ी और समाज की आर्थिक प्रगति हुई, अखबारों के प्रसार में भी बढ़त होती गई। केरल जैसे राज्य में 'मलयाला मनोरमा' और 'मातृभूमि' जैसे अखबारों की विस्मयकारी प्रसार उपलब्धियों को इसी संदर्भ में देखा जाना चाहिए। इसे ठीक से जानने के लिए राबिन जैफ्री के अध्ययन को देखा जाना चाहिए। इसी दौर में सभी भारतीय भाषाओं के अखबारों ने अभूतपूर्व विस्तार और विकास किया। अनेक जिला स्तरों पर संस्करण प्रारंभ हुए और सन् 1980 के बाद लगभग हर बड़े अखबार ने बहुसंस्करणीय होने पर जोर दिया। सन् 1991 के बाद भूमंडलीकरण, मुक्त बाजार की नीतियों को स्वीकारने के बाद यह विकास दर और तेज हुई। पूँजी, तकनीक, तीव्रता, पहुँच ने सब कुछ बदल दिया। सही मायने में तीन दशक मीडिया क्रांति के रहे। मीडिया के विभिन्न माध्यम प्रतिस्पर्धी होकर एक-दूसरे को शक्ति दे रहे थे। टीवी चैनलों की बाढ़ आ गई। वेब-माध्यमों का तेजी से विकास हुआ। अखबारों के मुद्रण के लिए विदेशी मशीनें भारतीय जमीन पर उतर रही थीं। विदेशी कागजों पर अखबार छापे जाने लगे थे (जैफ्री, 2008)।

यह वही दौर था जब काले-सफेद अखबार अचानक रंगीन हो उठे। नवें दशक में ही भारतीय अखबारों के उद्योगपति विदेशी कंपनियों से करार कर रहे थे। विदेशी पूँजी के आगमन से अखबार अचानक खुश-खुश से दिखने लगे। उदारीकरण, साक्षरता, आर्थिक प्रगति ने मिलकर भारतीय अखबारों को शक्ति दी। भारत में छपे हुए शब्दों का बहुत मान है। अखबार हमारे यहाँ 'स्टेट्स सिंबल' की तरह हैं। टूटती सामाजिकता, माँगकर पढ़ने में आती हिचक और एकल परिवारों से अखबारों का प्रसार भी बढ़ा। इस दौर में तमाम उपभोक्ता वस्तुएँ भारतीय बाजार में उतर चुकी थीं, जिन्हें मीडिया के कंधे पर लदकर ही हर घर में पहुँचना था। देश के अखबार इसके लिए सबसे उपयुक्त मीडिया थे, क्योंकि उन पर लोगों का भरोसा था, और है।

डिजिटल मीडिया की चुनौती

यह बात स्वीकार की जा चुकी है कि इंटरनेट ने मौजूदा मीडिया

[1]महानिदेशक, भारतीय जन संचार संस्थान, नई दिल्ली. ईमेल: 123dwivedi@gmail.com

उद्योग के लिए अपार संभावनाओं के द्वार खोले हैं। दुनियाभर में इंटरनेट यूजर की तेजी से बढ़ती संख्या के कारण इसने प्रिंट मीडिया उद्योग को बड़े पैमाने पर प्रभावित किया है। समाचार पत्रों को 1930 के दशक में अपने चरमोत्कर्ष तक पहुँचने में तकरीबन सौ साल से अधिक का समय लगा, इसके विपरीत, इंटरनेट को इस दर्जे को प्राप्त करने में 15 साल से भी कम समय लगा। पीउ रिसर्च प्रोजेक्ट के अनुसार, 2010 के आखिर में पहली बार पाया गया कि लोगों ने समाचार प्राप्त करने के लिए समाचार पत्रों से ज्यादा इंटरनेट का उपयोग किया (रोजेंस्टियल एवं मिशेल, 2011)। न्यूज मीडिया के परिदृश्य में होने वाले इस विशाल परिवर्तन ने समाचारों के साथ पाठकों की संलग्नता के साथ-साथ उन पर पड़ने वाले वेब के प्रभाव पर भी नए सिरे से सवाल खड़े किए। भारत में समाचार पत्र भी अपने तौर-तरीके बदल रहे हैं और डिजिटल बदलाव के दौर से गुजर रहे हैं। दुनिया भर में समाचार संगठन दर्शकों और विज्ञापनदाताओं को प्रिंट और टेलीविजन जैसे पारंपरिक प्लेटफॉर्म से डिजिटल, मोबाइल और सोशल मीडिया का रुख करते हुए देख रहे हैं। डिजिटल न्यूज और सोशल मीडिया का उपयोग बढ़ रहा है और मोबाइल उपकरण अमेरिका में समाचार प्राप्त करने का सबसे सामान्य तरीका बन गए हैं (न्यूमैन एवं अन्य, 2016)।

इसके उदाहरण अब भारत में भी दिखने लगे हैं। डिजिटल मीडिया के आगमन और सोशल मीडिया के प्रभाव ने प्रिंट माध्यमों को चुनौती दी है, यह महसूस किया जाने लगा है। अखबारों के बंद होने के दौर में जी-समूह के अँग्रेजी अखबार 'डेली न्यूज एंड एनॉलिसिस' (डीएनए) ने अपना मुद्रित संस्करण बंद कर दिया है। आगरा से छपने वाले 'डीएलए' अखबार ने अपना प्रकाशन बंद कर दिया तो वहीं मुंबई से छपने वाला शाम का टैब्लॉयड 'द आफ्टरनून डिस्पैच' भी बंद हो गया। 29 दिसंबर, 2018 को इस अखबार का आखिरी अंक निकला। जी समूह का अखबार 'डीएनए' अब सिर्फ ऑनलाइन संस्करण उपलब्ध है। उनके नोटिस के अनुसार, मुंबई और अहमदाबाद में इस अखबार का प्रिंट संस्करण 10 अक्टूबर, 2019 से बंद कर दिया गया। वर्ष 2005 में शुरू हुए 'डीएनए' अखबार ने 2019 के आरंभ में अपना दिल्ली संस्करण बंद कर दिया था, जबकि पुणे और बेंगलुरु संस्करण वर्ष 2014 में बंद कर दिए गए थे।

आगरा के अखबार 'डीएलए' का प्रकाशन 1 अक्टूबर, 2019 से स्थगित कर दिया गया। उल्लेखनीय है कि एक वक्त आगरा समेत उत्तर प्रदेश के कई शहरों से प्रकाशित होने वाले इस दैनिक अखबार का यों बंद होना वाकई प्रिंट मीडिया इंडस्ट्री के लिए चौंकाने वाली घटना है। मूल तौर पर 'अमर उजाला' अखबार के मालिकों में शामिल रहे अजय अग्रवाल ने 'डीएलए' की स्थापना 'अमर उजाला' के संस्थापक स्वर्गीय डोरीलाल अग्रवाल के नाम पर की थी। अखबार ने शुरूआती दौर में अच्छा प्रदर्शन भी किया, पर उत्तर प्रदेश के कई शहरों में अखबार के विस्तार के बाद यह गति थम गई। धीरे-धीरे अखबार एक बार फिर आगरा में ही सिमट कर रह गया। अखबार ने 'मिड डे' टैब्लॉयड शुरू किया और अपना प्रकाशन एक समय बाद ब्रॉडशीट में बदल दिया था। साथ ही इस मीडिया समूह ने अँग्रेजी अखबार भी लॉञ्च किया था। सब कवायदें अंतत: निष्फल ही साबित हो रही थीं। ऐसे में लगातार आर्थिक तौर पर हो रहे नुकसान के बीच प्रबंधन ने इसे बंद करने का निर्णय किया। इसी तरह तमिल मीडिया ग्रुप 'विहडन' ने अपनी चार पत्रिकाओं की प्रिंटिंग बंद कर दी । जिनमें 'छुट्टी विहडन', 'डाक्टर विहडन', 'विहडन थडम' और 'अवल मणमगल' शामिल हैं। अब इन्हें सिर्फ ऑनलाइन पढ़ा जा सकेगा। गौरतलब है कि 1926 में स्थापित यह मीडिया ग्रुप तमिलनाडु का जाना-माना पत्रिका समूह है। इस ग्रुप के तहत 15 पत्रिकाएँ निकाली जाती हैं। इस ग्रुप ने 1997 में ही अपने प्रिंट संस्करणों को ऑनलाइन रूप से पाठकों को उपलब्ध कराना शुरू कर दिया था। वर्ष 2005 में इसने ऑनलाइन सब्स्क्रिप्शन मॉडल को फॉलो करना शुरू कर दिया (समाचार4मीडिया ब्यूरो, 2019a)।

कारणों पर बात करना जरूरी

भारत में समाचार पत्र एक फलता-फूलता उद्योग है, इस कारण समाचार पत्र संगठन और पत्रकार तेजी से बदलते परिवेश में प्रासंगिक बने रहने के लिए नवीन प्रौद्योगिकी को अपना रहे हैं। डिजिटल तकनीक, इंटरनेट और उदारीकरण ने भारतीय समाचार पत्रों के प्रकाशन के परिदृश्य की कायापलट कर दी है (चट्टोपाध्याय, 2012)। अखबार के बंद होने के कारणों को देखते हुए जी समूह के अखबार 'डीएनए' को बंद करते समय जारी नोटिस में प्रयुक्त शब्दों और तर्कों पर ध्यान देना चाहिए। इसमें कहा गया—"हम नए और चैलेजिंग फेज में प्रवेश कर रहे हैं। 'डीएनए' अब डिजिटल हो रहा है। पिछले कुछ महीनों के दौरान डिजिटल स्पेस में 'डीएनए' काफी आगे बढ़ गया है। वर्तमान ट्रेंड को देखें तो पता चलता है कि हमारे रीडर्स, खासकर युवा वर्ग हमें प्रिंट के बजाय डिजिटल पर पढ़ना ज्यादा पसंद करते हैं। न्यूज पोर्टल के अलावा जल्द ही 'डीएनए' का मोबाइल एप भी लॉञ्च किया जाएगा, जिसमें वीडियो-बेस्ड ऑरिजिनल कंटेंट पर ज्यादा फोकस रहेगा। कृपया ध्यान दें, सिर्फ मीडियम बदल रहा है, हम नहीं, अब अखबार के रूप में आपके घर नहीं आएँगे, बल्कि मोबाइल के रूप में हर जगह आपके साथ रहेंगे" (समाचार4मीडिया ब्यूरो, 2019b)। यह अकेला वक्तव्य पूरे परिदृश्य को समझने में मदद करता है।

दूसरी ओर 'डीएलए' आगरा के मालिक, जिन्होंने 'अमर उजाला' जैसे अखबार को एक बड़े अखबार में बदलने में मदद की, ने अपने अखबार के आखिरी दिन लिखा—"परिर्वतन प्रकृति का नियम है और विकासक्रम की यात्रा का भी। सूचना विस्फोट के आज के डिजिटल युग में कागज पर मुद्रित (प्रिंटेड) शब्द ही काफी नहीं। अब समय की जरूरत है कि सूचना-समाचार पलक झपकते ही लोगों तक पहुँचे। इसी उद्देश्य से 'डीएलए' प्रिंट एडीशन का प्रकाशन 1 अक्टूबर, 2019 से स्थगित किया जा रहा है" (समाचार4मीडिया ब्यूरो, 2019c)।

लगभग 70 करोड़ इंटरनेट यूजर्स और 7-8 प्रतिशत की विकास दर के साथ भारत दुनियाभर की कंपनियों के लिए विशालतम बाजार संभावनाओं वाली डिजिटल अर्थव्यवस्था बन चुका है। दूरसंचार के क्षेत्र में प्रगति के साथ डिजिटल टेक्नॉलोजी के आगमन का दुनिया भर में समाचार उद्योग पर हानिकारक प्रभाव पड़ा है (गुहा, 2017)। 'वर्ल्ड प्रेस ट्रेंड्स सर्वे ऑफ 2016' रिपोर्ट में कहा गया है कि दुनिया भर के इंटरनेट यूजर में से कम-से-कम 40 प्रतिशत यूजर ऑनलाइन अखबार पढ़ते हैं और ज्यादातर विकसित देशों में डिजिटल प्लेटफार्म पर पाठकों की संख्या प्रिंट से अधिक हो चुकी है (वान-इनफ्रा, 2016)। इस रिपोर्ट में इस बात पर भी गौर किया गया है कि डिजिटल न्यूज के लिए टिकाऊ राजस्व मॉडल तलाशने की जद्दोजहद में जुटे लोगों के लिए संभवत: यह तथ्य मददगार हो कि 2015 में पेड डिजिटल सर्कुलेशन से अर्जित होने वाले राजस्व में 30 प्रतिशत वृद्धि

हुई (वान-इनफ्रा, 2016)।

रिपोर्ट में अमेरिका, ब्रिटेन, ऑस्ट्रेलिया और कनाडा जैसे देशों में 70 प्रतिशत से अधिक पाठकों के मोबाइल उपकरणों के माध्यम से समाचार पढ़ने का हवाला देते हुए मोबाइल पर वृद्धि की अपार संभावनाओं की ओर भी इंगित किया गया है। भारत में भी इसी तरह का चलन देखा जा रहा है, क्योंकि मोबाइल ग्रोथ इंटरनेट के उपयोग को तेजी से प्रभावित कर रही है। यह तथ्य इसी बात को दर्शाता है कि अनेक डिजिटल न्यूज साइट फर्स्ट-मोबाइल संबंधी रणनीति को अपनाती हैं (सेन एवं नीलसन, 2016)। 'हिंदुस्तान टाइम्स' ने 700 से अधिक पत्रकारों की मोबाइल पत्रकारिता टीम तैयार करने के लिए एक मोबाइल संपादक को नियुक्त किया था (गुहा, 2017)।

रॉयटर्स इंस्टीट्यूट फॉर जर्नलिज्म स्टडी द्वारा प्रकाशित सेन और नीलसन (2016) की रिपोर्ट 'डिजिटल जर्नलिज्म स्टार्ट-अप्स इन इंडिया' में भारत में डिजिटल-बोर्न न्यूज स्टार्ट-अप्स के बारे में प्रमुखता से पड़ताल की गई। इस अध्ययन में यह निष्कर्ष निकला कि भारत में उत्कृष्ट पत्रकारिता और ऑनलाइन न्यूज से जुड़े व्यापक प्रयोग हुए हैं। अध्ययन में यह भी पाया गया कि भारत में मोबाइल उपकरणों के जरिये इंटरनेट के बढ़ते उपयोग को देखते हुए समाचार प्रकाशक और अधिक 'मोबाइल-फर्स्ट' दृष्टिकोण अपना रहे हैं। हालांकि इस संदर्भ में वरिष्ठ पत्रकार और कई अखबारों के संपादक रहे आलोक मेहता का आशावाद भी देखा जाना चाहिए। हिंदी अखबार 'प्रभात खबर' की 35वीं वर्षगाँठ के उपलक्ष्य में राँची के रेडिशन ब्लू होटल में आयोजित मीडिया कॉनक्लेव में उन्होंने कहा—"बेहतर अखबार के लिए कंटेंट का मजबूत होना जरूरी है। ऐसा नहीं है कि टेक्नोलॉजी बदलने अथवा टीवी और सोशल मीडिया के आने से अखबारों का भविष्य खतरे में है। ऐसा होता तो जापान में अखबार नहीं छपते, क्योंकि वहाँ की तकनीक भी हमसे बहुत आगे है और मोबाइल भी वहाँ बहुत ज्यादा हैं। अखबारों को उस कंटेंट पर काम करना चाहिए, जो वेबसाइट या टीवी चैनल पर उपलब्ध नहीं हैं। प्रिंट मीडिया का भविष्य हमेशा रहा है और आगे भी रहेगा" (समाचार4मीडिया ब्यूरो, 2019d)।

भारत में ऑनलाइन मीडिया की रफ्तार की संभावनाओं को महसूस किया गया है और यहाँ तक कि क्षेत्रीय समाचार संगठनों ने भी अपने प्रिंट समाचार पत्रों के ऑनलाइन संस्करण शुरू कर दिए हैं। ऑनलाइन न्यूजपेपर के अलावा, सोशल मीडिया जैसे फेसबुक, ट्विटर, ब्लॉग और मोबाइल फोन के बढ़ते उपयोग ने भी पारंपरिक समाचार पत्र उद्योग को जबरदस्त चुनौती देनी शुरू कर दी है, लेकिन ऑनलाइन मीडिया की तुलना में प्रिंट मीडिया के कुछ आँकड़े विशिष्ट तथ्य भी दर्शाते हैं। भारतीय लोग ऑनलाइन न्यूज तक पहुँच होने के बावजूद अभी तक समाचार पत्रों की हार्ड कॉपी पढ़ने को महत्त्व देते हैं (पिचांडी एवं अन्य, 2014)।

निष्कर्ष

डिजिटल तकनीक के क्षेत्र में हुई प्रगति ने पारंपरिक पत्रकारिता को बड़े पैमाने पर प्रभावित किया है, जिसकी परिणति एक नई परिस्थिति के उभरने में हुई है, जहाँ लगभग सभी समाचार पत्रों और टीवी चैनलों और यहाँ तक कि रेडियो स्टेशनों को भी ऑनलाइन प्लेटफार्म पर अपनी उपस्थिति दर्ज कराने के लिए बाध्य होना पड़ा है। आने वाला समय प्रिंट माध्यमों के लिए और कठिन हो सकता है। ई-मीडिया, सोशल मीडिया और स्मार्ट मोबाइल पर आ रहे कंटेंट की बहुलता के बीच लोगों के पास पढ़ने का अवकाश कम होता जाएगा। खबरें और ज्ञान की भूख समाज में है और बनी रहेगी, किंतु माध्यम का बदलना कोई बड़ी बात नहीं है। संभव है कि मीडिया के इस्तेमाल की बदलती तकनीक के बीच प्रिंट माध्यमों के सामने यह खतरा और बढ़े। यहाँ यह भी संभव है कि जिस तरह मीडिया कनवर्जेंस का इस्तेमाल हो रहा है उससे हमारे समाचार माध्यम प्रिंट में भले ही उतार पर रहें, पर अपनी ब्रांड वैल्यू, प्रामाणिकता और विश्वसनीयता के कारण ई-माध्यमों, मोबाइल न्यूज एप, वेब मीडिया और सोशल मीडिया पर सरताज बने रहें। तेजी से बदलते इस समय में कोई सीधी टिप्पणी करना बहुत जल्दबाजी होगी, किंतु खतरे के संकेत मिलने शुरू हो गए हैं, इसमें दो राय नहीं है।

संदर्भ

अनीज, जैड., चट्टोपाध्याय, पार्थसारथी, वी. एवं नीलसन,आर.के. (2016). *इंडियन न्यूजपेपर्स डिजिटल ट्रांजिशन: दैनिक जागरण, हिंदुस्तान टाइम्स और मलयाला मनोरमा*. यूके : रॉयटर्स इंस्टीट्यूट फॉर द स्टडी ऑफ जर्नलिज्म, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी.

गोमेज, जे. (2008). *प्रिंट इज डेड : बुक्स इन अवर डिजिटल एज*. यूएस : पालग्रेव मैकमिलन.

गुहा, आर. (2017, अगस्त 29). डिजिटल इवोल्युशन इन इंडिया. *बिजनेसटुडे.इन* https://www.businesstoday.in/opinion/columns/digital-evolution-in-india/story/259227.html से पुन:प्राप्त.

चट्टोपाध्याय, एस. (2012). ऑनलाइन जर्नलिज्म एंड इलेक्शन रिपोर्टिंग इन इंडिया. *जर्नलिज्म प्रैक्टिस 6*(3): 337-348.

जैफ्री, आर. (2008). *भारत में समाचार पत्र क्रांति* (अनूदित संस्करण). नई दिल्ली : भारतीय जन संचार संस्थान.

न्यूमैन, एन., फ्लेचर आर., लेवी, डी.ए.एल., नीलसन आर.के. (2016). *रॉयटर्स डिजिटल न्यूज रिपोर्ट 2016*. यूके : रॉयटर्स इंस्टीट्यूट फॉर द स्टडी ऑफ जर्नलिज्म, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी.

पिचांडी, सी., कुमार, ए.वी., जयासीलन, आर. एवं पलानीअप्पन, वी. (2014). इंडियन सॉफ्टवेयर प्रोफेशनल्स प्रैफरेंस ऑफ प्रिंट एंड ऑनलाइन न्यूजपेपर्स इन इंडिया. *रिव्यू ऑफ जर्नलिज्म एंड मास कम्युनिकेशन, 2*(2).

रोजेंस्टियल, टी. एवं मिशेल, ए. (2011). द स्टेट ऑफ द न्यूज मीडिया. *ओवरव्यू*. http://stateofthemedia.org/2011/overview-2/ से पुन:प्राप्त.

वर्ल्ड प्रेस ट्रेंड्स सर्वे. (2016). *वान-इंफ्रा*. http://www.wan ifra.org/articles/2016/06/12/full-highlights-of-world-press-trends-2016-survey से पुन:प्राप्त.

सेन, ए. एवं नीलसन, आर.के. (2016). *डिजिटल जनर्लिज्म स्टार्टअप्स इन इंडिया*. यूके : रॉयटर्स इंस्टीट्यूट फॉर द स्टडी ऑफ जर्नलिज्म, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी.

समाचार4मीडिया ब्यूरो. (2019a, सितंबर 5). *इस महीने से बंद हो जाएगी इन 4 मैगजींस की प्रिंटिंग*. https://www.samachar4media.com/print-media-news/media-group-will-close-down-four-magazines-51687.html से पुन: प्राप्त.

समाचार4मीडिया ब्यूरो. (2019b, अक्टूबर 09). *बड़े मीडिया समूह ने बंद किया अखबार का प्रकाशन*. https://www.samachar4media.com/print-media-news/english-newspaper-took-big-decision-51966.html से पुन:प्राप्त.

समाचार4मीडिया ब्यूरो (2019c, सितंबर 30). *डीएलए के बारे में आई ये बुरी खबर*. https://www.samachar4media.com/print-media-news/big-news-about-dla-newspaper-51892.html से पुन:प्राप्त.

समाचार4मीडिया ब्यूरो. (2019d, अगस्त 13). *प्रिंट मीडिया के भविष्य पर आलोक मेहता ने कही बड़ी बात, जापान का दिया उदाहरण*. https://www.samachar4media.com/print-media-news/senior-journalist-alok-mehta-express-his-views-about-credibility-in-journalism-51469.html से पुन:प्राप्त.

संचार माध्यम | खंड 34(1) : 5-12, जनवरी-जून 2022
आईएसएसएन: 2321-2608

स्वतंत्रता संग्रामकालीन पत्रकारिता में महिलाओं की भूमिका

डॉ. अमृता शिल्पी[1]

सारांश

स्वतंत्रता आंदोलन में महिला पत्रकारों के योगदान ने महिलाओं से संबंधित विषयों और समस्याओं को समाज के हर क्षेत्र में पहुँचाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। उन्होंने अपने लेखन के माध्यम से सदियों से चली आ रही महिलाओं की अधीनस्थ स्थिति के लिए जिम्मेदार पितृसत्तात्मक मानदंडों के विरुद्ध जागरूकता फैलाई। महिलाओं के द्वारा संपादित एवं उनके लिए प्रकाशित पत्रिकाएँ न केवल सूचना की स्रोत बनीं, बल्कि भारतीय राष्ट्रवाद एवं अन्य साहित्यिक विधाओं के साथ उनकी एक अलग साहित्यिक शैली भी स्थापित हुई। प्रस्तुत शोध पत्र में यह जानने का प्रयास किया गया है कि क्या महिला पत्रकारिता ने सामान्य स्त्रियों के व्यक्तिगत जीवन में 'स्व' का विकास किया? साथ ही पत्रिकाओं में महिलाओं द्वारा लेखन और संपादन, क्या निजी और सार्वजानिक क्षेत्र (अंतःपुर एवं बाहर) के बीच की खाई को पाटने का प्रभावशाली माध्यम रहा?

संकेत शब्द : महिला पत्रिका, स्त्री दर्पण, आशा, अंतःपुर, परिचारिका, भारतभगिनी, कुमारी दर्पण, कन्या मनोरंजन

प्रस्तावना

ब्रिटिश शासन काल के दौरान पत्रकारिता के क्षेत्र में महिलाओं का योगदान बहुत ही सराहनीय और वांछनीय रहा है। 1857 में भारत के पहले स्वतंत्रता संग्राम के पश्चात् लेखन जगत् में महिलाओं की भूमिका और उनका गुणात्मक योगदान न सिर्फ पत्रकारिता के प्रति उनके झुकाव को दर्शाता है, बल्कि यह भी दिखाता है किस प्रकार ये पत्रिकाएँ महिलाओं को संदेश देने वाले मूक प्रेरक के रूप में कार्य करने और नवीन मानदंडों और मूल्यों को सशक्त करने का माध्यम बनीं (लाहिरी, 1998, पृ.665)। सार्वजनिक क्षेत्र में महिला लेखन की शुरुआत 1860 के दशक में हुई। राष्ट्रवादी विचारकों का मत था कि भारत की आत्मा परिवार में बसती है, जहाँ महिलाओं का वास है। वहाँ पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव नहीं पड़ा है (चटर्जी,1989)। महिला पत्रकारिता ने न सिर्फ परिवार और समाज में महिलाओं की स्थिति को उजागर किया, बल्कि उन्हें शिक्षा, सामाजिक उत्थान और देशसेवा के लिए भी प्रेरित किया। अखबार, जर्नल एवं नियतकालिक पत्रिकाओं ने उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में हिंदी एवं स्थानीय भाषा साहित्य में एक अलग स्थान बनाया, जहाँ गद्य और कविता के रूप में नई साहित्यिक विधाओं ने आकार लिया (डालमिया, 1997)। महिलाओं से संबंधित विषय और चुनौतियाँ अक्षरों और लेखों के माध्यम से महिला लेखिकाओं और पत्रकारों ने व्यक्त कीं। बहु-महिला लेखक एवं संपादित पत्रिकाओं में विविध साहित्यिक शैलियाँ और वाद विमर्श के नए रूप में सामने आए।

महिला पत्रकारिता के माध्यम से हिंदी सार्वजनिक क्षेत्र में नारीवादी-राष्ट्रवादी विचार का व्यापक रूप से प्रसार हुआ। इस समस्त प्रक्रिया ने नारीवाद और नारीवादी हस्तक्षेप की समझ विकसित की, जो बीसवीं सदी की शुरुआत में राष्ट्रवादी राजनीति में अपेक्षाकृत एक नया पहलू रहा। माता, पत्नी और गृहिणियों के रूप में महिलाओं की घरेलू जिम्मेदारियों के साथ सक्रिय महिला पत्रकारों ने महिलाओं की राजनीतिक लामबंदी और राष्ट्रवादी जिम्मेदारियों पर भी जोर दिया। महिला पत्रकारों के योगदान ने महिलाओं के मुद्दों और समस्याओं को समाज के हर क्षेत्र में पहुँचाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। उन्होंने अपने लेखन के माध्यम से सदियों से चली आ रही महिलाओं की अधीनस्थ स्थिति के लिए जिम्मेदार पितृसत्तात्मक मानदंडों के विरुद्ध जागरूकता फैलाई। इस कालखंड की एक उल्लेखनीय विशेषता यह रही कि पुरुष वर्ग उभरती हुई महिला पत्रकारों और लेखिकाओं के प्रतिकूल नहीं था। थारू और ललिता (1991) के अनुसार बीसवीं सदी के प्रारंभ में भारत में महिला पत्रकारिता अपने चरम पर रही। देश के लगभग हर क्षेत्र में महिलाओं ने पत्रिकाओं का संपादन किया और कई महिलाओं ने व्यक्तिगत लेखों द्वारा पत्रिकाओं में योगदान दिया। महिलाओं के द्वारा संपादित एवं उनके लिए प्रकाशित पत्रिकाएँ न केवल उनके लिए सूचना की स्रोत थीं, बल्कि भारतीय राष्ट्रवाद एवं अन्य साहित्यिक विधाओं के साथ उन्होंने एक अलग साहित्यिक शैली भी स्थापित की। इन पत्रिकाओं ने महिलाओं के अंदर न सिर्फ देशभक्ति की भावना को प्रबल किया बल्कि उन्हें सक्रिय रूप में घरेलू एवं सार्वजनिक क्षेत्र में भागीदारी के लिए प्रोत्साहित किया। साथ ही शिक्षा, सामाजिक आयोजन और लेखन जैसे क्षेत्रों के माध्यम से उन्हें अभिव्यक्ति का माध्यम भी प्रदान किया।

बीसवीं सदी की शुरुआत में विचारों की अभिव्यक्ति का उदारवादी स्वरूप भी देखने को मिलता है। महिला संपादकों ने ऐसी विविधता की अनुमति भी दी कि एक ही विषय से संबंधित कई दृष्टिकोण एक ही संपादकीय ढाँचे के भीतर व्यक्त किए जा सकें (निझावन, 2012a)। महिला पत्रकार और पत्रिकाएँ उस ऐतिहासिक मोड़ पर समय-समय पर और अधिक सक्रिय हुईं जब राष्ट्रवादी जन भावना महिला शिक्षा एवं सामाजिक सुधार की ओर उन्मुख हो रही थी। ऐसी पत्रिकाओं की हिंदी

[1]सहायक प्राध्यापक, राजनीति विज्ञान विभाग, लक्ष्मीबाई महाविद्यालय, दिल्ली विश्विद्यालय. दिल्ली. ईमेल : amritashilpi7@gmail.com

भाषा सहित अन्य क्षेत्रीय भाषाओं एवं साहित्यिक परंपराओं के प्रचार-प्रसार में भी केंद्रीय भूमिका रही। तदनुसार, ये पत्रिकाएँ नई विधाओं के प्रयोग और पुरानी शैलियों के संशोधन का जरिया बनीं। ऐसी पत्रिकाएँ महिलाओं के लिए नारीवाद और राष्ट्रवाद के नए परिप्रेक्ष्य में सोचने और संवाद करने का माध्यम बनीं। यह भौगोलिक एवं सांस्कृतिक-सामाजिक रूप से पृथक् महिला पाठकों के साथ जुड़ने का नवप्रवर्तनशील जरिया भी बनीं।

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य स्वतंत्रता आंदोलन में भारत के विभिन्न प्रांतों में महिला पत्रकारिता के द्वारा प्रवर्तित सामाजिक और राजनीतिक गतिशीलता का पता लगाना है। सांस्कृतिक विरासत और सामाजिक संगठन में जटिल अंतर, जो भारत के भिन्न भाषाई क्षेत्रों की विशेषता रही, वहाँ महिलाओं की स्थिति और उनके अधिकारों पर सार्वजनिक लेखन द्वारा उन्नत वाद विमर्श का अध्ययन इसका मूल उद्देश्य है। इस शोध में ऐतिहासिक अध्ययन विधि का प्रयोग किया गया है। शोध पत्र में विवेचना का विषय वे पत्रिकाएँ हैं जिन्होंने 1860 और 1947 के मध्य अपनी उपस्थिति दर्ज कराई। उनमें समाविष्ट विषयों का गुणात्मक आकलन किया गया है। महिला संपादक और योगदानकर्ताओं के बारे में जानकारी और ऐसी पत्रिकाओं द्वारा महिलाओं पर हुए उनके प्रभाव का विश्लेषण भी करने का प्रयास किया गया है। विषय बोध हेतु नेहरू स्मारक पुस्तकालय, दिल्ली विश्वविद्यालय एवं जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में उपलब्ध 1860-1947 के बीच प्रकाशित अखबार, जर्नल एवं नियतकालिक पत्रिकाओं और द्वितीयक साहित्य एवं पुस्तकों की समीक्षा की गई है। राष्ट्रीय डिजिटल पुस्तकालय और इंटरनेट पर उपलब्ध लेखों और पुस्तकों का संकलन एवं अन्य संसाधन भी कोरोना काल में पूर्ण हुए इस शोध में अति सहायक रहे।

शोध परिकल्पना

- महिला पत्रकारिता ने सामान्य स्त्रियों के व्यक्तिगत जीवन में 'स्व' का विकास किया।
- पत्रिकाओं में महिलाओं द्वारा लेखन और संपादन, निजी और सार्वजानिक क्षेत्र (अंतःपुर एवं बाहर) के बीच की खाई को पाटने का प्रभावशाली माध्यम रहा।

शोध प्रश्न

- क्या महिलाओं की पत्रिकाओं ने समाज में हो रहे बदलाव को समझने में अहम भूमिका निभाई?
- क्या महिलाओं की स्थिति और उनके प्रति सामाजिक दृष्टिकोण को बदलने में उनकी कोई भूमिका थी?
- क्या महिला पत्रिकाओं ने सामाजिक मूल्यों के पुनर्निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई?
- महिला के नजरिये से महिलाओं का इतिहास किस प्रकार देखा गया?
- क्या ये पत्रिकाएँ लिंग संबंधों, सामाजिक संरचना, राजनीतिक और सामाजिक अंतर्दृष्टि परिवर्तन और बदलते परिवेश में महिलाओं की विविध प्रतिक्रियाएँ उपलब्ध कराती हैं?

महिलाओं द्वारा संपादित पत्रिकाएँ

महिलाओं के लिए प्रकाशित पत्रिकाओं की शृंखला उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में शुरू हुई। 1874 में बनारस से भारतेंदु हरिश्चंद्र ने पहली बार महिलाओं के लिए 'बाला बोधिनी' नामक पत्रिका प्रकाशित की। 1854 में बंगाल में मासिक पत्रिका से लेकर 1898 में 'अंतःपुर' के साथ महिला पत्रकारिता ने अपनी उपस्थिति को प्रभावशाली ढंग से स्थापित किया। 1901 में बॉम्बे (आज का मुंबई) से 'स्त्री बोध' नामक पत्रिका प्रकाशित हुई, जो पूर्णतः महिलाओं के मुद्दों से संबंधित थी। मद्रास में भी इसी तरह की एक महिला पत्रिका की शुरुआत की गई। हिंदीभाषी क्षेत्र में रामेश्वरी नेहरू ने 'स्त्री दर्पण' नाम से महिलाओं के लिए एक विचारवान पत्रिका शुरू की। बीसवीं सदी के प्रारंभ में समस्त भारत में महिलाओं के लिए एवं महिलाओं द्वारा विविध पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ। उस दौर की तीन महत्त्वपूर्ण महिला पत्रिकाएँ 'गृहलक्ष्मी', 'स्त्री दर्पण' और 'चाँद' अत्यंत लोकप्रिय रहीं। 'चाँद' के माध्यम से ही प्रतिभाशाली युवा साहित्यकार महादेवी वर्मा ने साहित्य जगत् में पदार्पण किया (तलवार, 1989, पृ.210)।

19वीं सदी के उत्तरार्ध में स्त्री वैचारिकी की पृष्ठभूमि स्वयं स्त्रियाँ ही तैयार कर रही थीं। सन् 1880 से लेकर 1895 तक तीन महत्त्वपूर्ण स्त्री पत्रिकाओं का जन्म हुआ, जिनकी संपादक स्वयं महिलाएँ रहीं। 'सुगृहिणी' (1888) की संपादक हेमंतकुमारी देवी थीं, 'भारतभगिनी' (1889) की संपादक हरदेवी थी और 'वनिता हितैषी' (1893) की संपादक भाग्यवती। 'सुगृहिणी' पत्रिका सुखसंवाद प्रेस, लखनऊ में पंडित बिहारी लाल द्वारा मुद्रित हुई। इस पत्रिका में कुल बारह पृष्ठ होते थे। श्रीमती हरदेवी ने 'भाग्यवती', 'सास-पतोहू' 'वामाशिक्षक', 'लंदन यात्रा', 'हुकुमदेवी-हिंदू धर्म की उच्चता में एक सच्ची कहानी', 'सीमंतनी उपदेश', 'स्त्रियों पर सामाजिक अन्याय', 'पुनर्विवाह से रोकना', 'भारत-भगिनी', 'स्त्री-विलाप' इत्यादि अन्यान्य पुस्तकों और पत्रकों की रचना की।

बीसवीं शताब्दी की शुरुआत में महिला पत्रकारों ने लेखन को एक नया अर्थ दिया। छोटी लड़कियों और युवतियों के लिए भी पत्रिकाएँ प्रकाशित हुईं। उदाहरणस्वरूप 'कुमारी दर्पण' नामक पत्रिका ने तर्कसंगत और वैज्ञानिक सोच के विकास पर जोर दिया चेतना। 'कुमारी दर्पण' का प्रथम संस्करण जनवरी 1916 में इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ। महिला पत्रिका 'स्त्री दर्पण' के पूरक के रूप में 'कुमारी दर्पण' पत्रिका का वितरण किया गया। संपादक एक बार फिर रामेश्वरी नेहरू और रूप कुमारी नेहरू थीं। प्रत्येक अंक आठ से दस पृष्ठों का होता था। सूचनात्मक खंड में वैज्ञानिक लेख शामिल होते थे, जिनका उद्देश्य भूत, अन्य अलौकिक प्राणी और दानवों आदि के अस्तित्व जैसे अंधविश्वासों को मिटाना था। भूगोल, खगोल विज्ञान, वनस्पति विज्ञान, प्राणीशास्त्र और स्वास्थ्य के क्षेत्र में पाठकों को जानकारी प्रदान की जाती थी। 'कन्या मनोरंजन' पत्रिका सर्वप्रथम अक्टूबर 1913 में प्रकाशित हुई, जिसके संपादक पंडित ओंकारनाथ वाजपेयी थे। वे इलाहाबाद में ओंकार प्रेस के मालिक थे।

'कन्या मनोरंजन' 30 से 34 पृष्ठों का सचित्र मासिक था और प्रत्येक अंक में 17 से 18 लेख आदि प्रकाशित होते। कई स्व-विज्ञापनों में इस पत्रिका को लड़कियों और महिलाओं के लिए एक साथी के रूप में वर्णित किया गया। 'कन्या मनोरंजन' शिक्षाप्रद होने के साथ ही मनोरंजक भी मानी जाती थी।

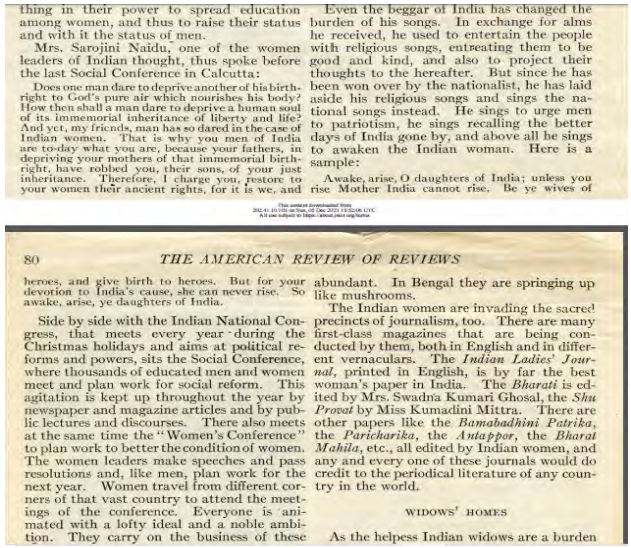

thing in their power to spread education among women, and thus to raise their status and with it the status of men.

Mrs. Sarojini Naidu, one of the women leaders of Indian thought, thus spoke before the last Social Conference in Calcutta:

Does one man dare to deprive another of his birth-right to God's pure air which nourishes his body? How then shall a man dare to deprive a human soul of its immemorial inheritance of liberty and life? And yet, my friends, man has so dared in the case of Indian women. That is why you men of India are to-day what you are, because your fathers, in depriving your mothers of that immemorial birth-right, have robbed you, their sons, of your just inheritance. Therefore, I charge you, restore to your women their ancient rights, for it is we, and

Even the beggar of India has changed the burden of his songs. In exchange for alms he received, he used to entertain the people with religious songs, entreating them to be good and kind, and also to project their thoughts to the hereafter. But since he has been won over by the nationalist, he has laid aside his religious songs and sings the national songs instead. He sings to urge men to patriotism, he sings recalling the better days of India gone by, and above all he sings to awaken the Indian woman. Here is a sample:

Awake, arise, O daughters of India; unless you rise Mother India cannot rise. Be ye wives of

This content downloaded from
202.41.10.154 on Wed, 26 Jan 2022 10:52:06 UTC
All use subject to https://about.jstor.org/terms

heroes, and give birth to heroes. But for your devotion to India's cause, she can never rise. So awake, arise, ye daughters of India.

Side by side with the Indian National Congress, that meets every year during the Christmas holidays and aims at political reforms and powers, sits the Social Conference, where thousands of educated men and women meet and plan work for social reform. This agitation is kept up throughout the year by newspaper and magazine articles and by public lectures and discourses. There also meets at the same time the "Women's Conference" to plan work to better the condition of women. The women leaders make speeches and pass resolutions and, like men, plan work for the next year. Women travel from different corners of that vast country to attend the meetings of the conference. Everyone is animated with a lofty ideal and a noble ambition. They carry on the business of these

abundant. In Bengal they are springing up like mushrooms.

The Indian women are invading the sacred precincts of journalism, too. There are many first-class magazines that are being conducted by them, both in English and in different vernaculars. The *Indian Ladies' Journal*, printed in English, is by far the best woman's paper in India. The *Bharati* is edited by Mrs. Swadna Kumari Ghosal, the *Shu Provat* by Miss Kumadini Mittra. There are other papers like the *Bamabadhini Patrika*, the *Paricharika*, the *Antappor*, the *Bharat Mahila*, etc., all edited by Indian women, and any and every one of these journals would do credit to the periodical literature of any country in the world.

WIDOWS' HOMES

As the helpless Indian widows are a burden

स्रोत: द अमेरिकन रिव्यू ऑफ रिव्यूज (रॉय, बसंता कुमार. वुमंस पार्ट इन इंडिआज सोशल एडवांस)

बंगाल से महिला संपादकों के नेतृत्व में कई पत्रिकाएँ प्रकाशित हुईं , जैसे 'बामबोधिनी पत्रिका', 'अंत:पुर', 'परिचारिका', 'सुप्रभात', 'भारती' इत्यादि जिनमें सामान्य महिलाओं के लेख प्रकाशित हुए।

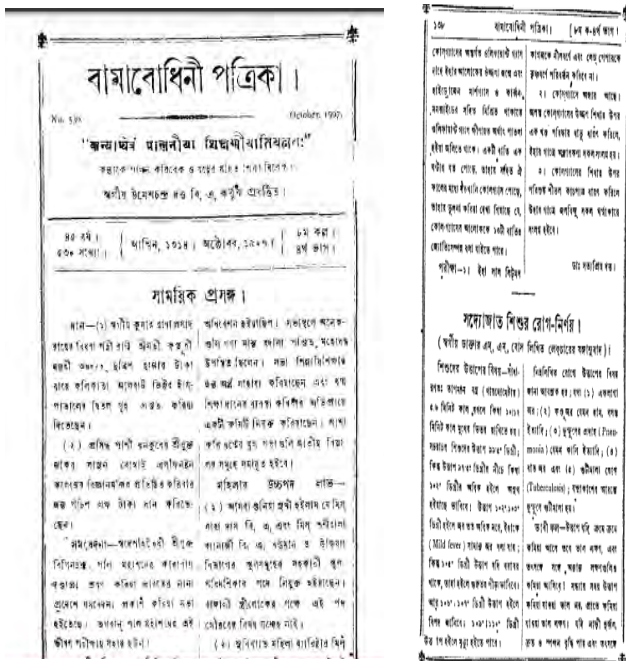

বামাবোধিনী পত্রিকা।

No. 139 (October, 1907)

"কন্যাপ্যেবং পালনীয়া শিক্ষণীয়াতিযত্নতঃ"

সামায়িক প্রসঙ্গ।

বামাবোধিনী পত্রিকা (1907)

स्रोत:http://www.ndl.gov.in/document/Mk4yMzdrWnJlYmxqYjJmYkh2dzVCR0tDb3dDOEhjcEo3eFQrbGdHOW9Zbz0

1892 में कटक से पहली बार मासिक महिला पत्रिका 'आशा' प्रकाशित हुई। इसकी संपादक रेवा रॉय थीं। बसंती मजूमदार एवं कुछ अन्य महिलाएँ इस पत्रिका में योगदानकर्ता रहीं। 'आशा' का प्रकाशन साफतौर पर यह जाहिर करता है कि उड़िया ब्रह्म समाज की महिलाएँ शिक्षा को अन्य महिलाओं के बीच प्रचलित करने की कोशिश में लगी हुई थीं। रेवा रॉय के प्रयासों को 'उत्कल दीपिका' और 'संबलपुर हितैषिणी' जैसे प्रमुख समाचार पत्रों ने बहुत सराहा। 'आशा' का मुख्य उद्देश्य महिलाओं के बीच शिक्षा को फैलाना था। एक महिला द्वारा संपादित इस पत्रिका ने अपने पाठकों में महिलाओं के विषयों के प्रति सहानुभूति जाग्रत की। 'स्त्री दर्पण' महिलाओं के लिए घरेलू कौशल और उचित आचरण की शिक्षा से भिन्न विषयों पर भी लेख प्रकाशित करता था। एक छोटी पुस्तिका के आकार में स्वरूपित इस हिंदी मासिक पत्रिका के लगभग 1,000-2,000 पाठक थे। इस पत्रिका में विभिन्न विषयों को उजागर किया गया, जैसे महिला और राजनीति से संबंधित विषयों पर व्यापक समाचार कवरेज के साथ लेख, पुस्तक समीक्षाएँ, पाठकों के पत्र, समाज सुधार और राष्ट्रवाद केंद्रित लेख, महिला प्रश्न पर निबंध, स्वस्थ जीवन, बच्चे के पालन-पोषण पर घरेलू सलाह और घरेलू प्रबंधन, वैज्ञानिक और नैतिक निबंध, शायरी, और लघु कथा, आत्मकथा और धारावाहिक उपन्यास के अनुभाग आदि। 'स्त्री दर्पण' की महिला संपादकीय बोर्ड ने पालन-पोषण के अलावा महिलाओं को दमनकारी सामाजिक और पितृसत्तात्मक संरचनाओं को पहचानने और भाईचारे की भावना विकसित करने की अपील की।

बीसवीं शताब्दी का दूसरा दशक आने तक उड़ीसा में महिलाओं द्वारा संपादित तीन और पत्रिकाओं की शुरुआत हुई—'प्रवक्ता' (1909), 'परिचारिका' (1915) और 'शिक्षा दर्पण' (1916)। सारी पत्रिकाएँ कटक से ही प्रकाशित हुईं। 'प्रवक्ता' एक बार फिर से रेवा रॉय द्वारा संपादित रही। 'परिचारिका' और 'शिक्षा दर्पण' को बसंती कुमारी देवी ने संपादित किया। इन सारी पत्रिकाओं ने न सिर्फ शहरों और गाँवों के पाठकों को प्रबुद्ध किया, बल्कि उनमें लिखने के प्रति जागरूकता और रुझान भी पैदा किया। सामान्य वर्ग की महिला लेखिकाओं को एक अवसर मिला, जिससे वे अपनी शैक्षणिक योग्यताओं को दर्शा सकें और समाज के ज्वलंत मुद्दों को दुनिया के सामने ला सकें। ऐसी महिलाओं ने एक बहुत पुराने अपमानजनक मिथक को भी तोड़ा कि महिलाओं को शिक्षित करना मतलब एक बंदर को शिक्षित करना है। उन्होंने साबित किया कि वे पुरुषों जितनी ही सक्षम थीं। 'परिचारिका' पत्रिका का एक महत्त्वपूर्ण पहलू यह रहा कि किसी भी लेखक ने राजनीति से संबंधित विषयों पर विचार व्यक्त नहीं किए, जबकि यह भी सत्य है कि बीसवीं सदी के तीसरे दशक के दौरान इनमें से कई योगदानकर्ताओं जैसे सरला देई, देबाहुति देई, सरोजिनी देई, कोकिला देई आदि ने स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय रूप से भाग लिया। 'परिचारिका' पत्रिका अपने सामाजिक, धार्मिक और उपदेशात्मक रूप में बहुत प्रचलित हुई। 1910 के दशक के उत्तरार्ध में 'स्त्री दर्पण' के लगभग हर अंक में महिलाओं द्वारा की गई विदेश यात्रा या अध्ययन की रिपोर्ट दी गई, महिलाओं के जीवन के बारे में लेख, दुनिया भर के देशों में सक्रिय महिला संगठनों की सामाजिक और राजनीतिक उपलब्धियाँ आदि प्रकाशित हुईं (निझावन 2012b, पृ. 1026)।

आंध्र प्रदेश में 1883 के बाद से महिलाओं के लिए विशेष रूप

से कई पत्रिकाएँ आईं। पहली दो महिला पत्रिकाएँ—'सतीहितबोधिनी' और 'तेलुगु जेनाना'—पुरुषों द्वारा शुरू और संपादित की गई थीं (बाशा, 2007, पृ.1003-04)। बीसवीं शताब्दी की शुरुआत से महिलाओं ने पत्रिकाओं को प्रकाशित और संपादित करना शुरू किया। इस प्रकार, महिलाओं द्वारा लगभग बीस पत्रिकाओं का संपादन किया गया। 'द हिंदू सुंदरी' महिला संपादक द्वारा संपादित की जाने वाली पहली पत्रिका थी। इसके अलावा 'सावित्री', 'विवेकवती', 'अनसूया', 'आंध्र लक्ष्मी', 'हिंदू युवती', 'गृहलक्ष्मी', 'आंध्र महिला' आदि कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण पत्रिकाएँ थीं, जो 1947 से पहले प्रकाशित हुईं। इन पत्रिकाओं ने सामाजिक सुधार और महिलाओं की स्थिति को बदलने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। 'गृहलक्ष्मी' और 'आंध्र महिला' जैसी पत्रिकाएँ काफी प्रगतिशील और क्रांतिकारी थीं (बाशा,2007, पृ.1004)।

संपादक और योगदानकर्ता के रूप में महिला पत्रकार

साहित्यिक, सामाजिक और राजनीतिक रूप से प्रभावशाली परिवार की महिलाओं ने सक्रिय पत्रकारिता के माध्यम से महिलाओं की स्थिति में सुधार का बीड़ा उठाया। महिला पत्रकारिता में भगिनी निवेदिता ने बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। 28 अक्टूबर, 1868 को आयरलैंड में जन्मीं मार्गरेट एलिजाबेथ नोबल यानी भगिनी निवेदिता के परिवार का आयरिश स्वतंत्रता आंदोलन से गहरा संबंध रहा। इनकी पत्रकारिता की मुहिम डेढ़ दशक से भी अधिक समय तक चली। अलग-अलग मुद्दों पर उनके प्रारंभिक लेख प्रांतीय ब्रिटिश पत्रिकाओं में छपे। उन्होंने नियमित रूप से 'न्यू इंडिया', 'डॉन', 'इंडियन रिव्यू', 'मॉडर्न रिव्यू', 'प्रबुद्ध भारत', 'हिंदू रिव्यू', 'मैसूर रिव्यू', 'बेहर हेराल्ड', 'द बंगाली', 'ईस्ट एंड वेस्ट', 'सिंध जर्नल', 'हिंदू', 'बालभारती', 'अमृत बाजार पत्रिका', 'स्टेट्समैन', 'एडवोकेट', 'ट्रिब्यून', 'मराठा', 'टाइम्स ऑफ इंडिया' और 'बॉम्बे क्रॉनिकल' जैसे कई अखबारों और पत्रिकाओं में योगदान दिया। 1909 की शुरुआत में रामेश्वरी नेहरू ने इलाहाबाद में महिलाओं की सामाजिक और राजनीतिक मुक्ति को बढ़ावा देने के उद्देश्य से एक स्थानीय महिला संगठन 'प्रयाग महिला समिति' की स्थापना की और हिंदी महिला पत्रिका 'स्त्री दर्पण' की शुरुआत की। 'आशा' और 'प्रवक्ता' की संपादक रेवा रॉय उड़ीसा में महिला शिक्षा की अग्रदूत रहीं। ब्रह्मो परिवार में पैदा हुई रेवा रॉय श्री जगन्नाथ राव की सुपुत्री और भक्त कवि श्री मधुसूदन राव की भतीजी थीं। उनकी शिक्षा-दीक्षा रेवेंशॉ कन्या विद्यालय से हुई और उन्होंने 1887-88 में माध्यमिक शिक्षा संपूर्ण की (बोहिदार, 2010-2011)। बसंता कुमारी देई भी अत्यंत ही प्रगतिशील माता-पिता लावण्या देई और श्री नंद किशोर दास की सुपुत्री थीं, जिन्होंने उड़ीसा में महिला शिक्षा के लिए बहुत काम किया। बहुत ही जानी-मानी स्वतंत्रता सेनानी और उड़ीसा की समाज सेविका रमा देवी श्रीमती बसंता कुमारी देई की सुपुत्री थीं।

बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में कई महिला लेखिकाओं की उपस्थिति और विभिन्न पत्रिकाओं में उनके योगदान को सराहा गया। इनमें प्रमुख थीं— सरला देई, रत्नमाला देई, उमा सुंदरी देई, हेमंत कुमारी देई, निहार नलिनी देई, सरोजिनी देई, लाबन्या देवी, शरत कुमारी देई, चंद्रमणि देई, कमला देई, प्रमिला सुंदरी देई और दुर्गा देई आदि (बोहिदार, 2010-2011)। हेमंत कुमारी बसंत कुमारी की बहन थीं और 'परिचारिका' पत्रिका में खानपान शास्त्र के ऊपर लिखा करती थीं। सरला देवी जैसी लेखिकाओं के लेख 'उत्कल साहित्य' और 'सहकार' जैसी पत्रिकाओं में भी प्रकाशित होते थे। लावण्यावती देवी ने 'निवेदन' नामक एक कविता के माध्यम से पाठकों से 'परिचारिका' को जीवित रखने की अपील की। वे उड़ीसा के प्रसिद्ध व्यंग्यकार गोपालचंद्र प्रहराज की पुत्री थीं। वे उड़ीसा के पहले महिला संघ 'महिला बंधु समिति' की संस्थापक भी रहीं। सरला देई, सरोजिनी देई और रतनमाला देई ने सामाजिक मुद्दों जैसे स्त्री शिक्षा, बाल विवाह, पर्दा प्रथा, विधवा पुनर्विवाह आदि को अपने लेखन का विषय बनाया (बोहिदार, 2010-2011)।

सरला देई अपने समय की महिला योगदानकर्ताओं में सबसे उल्लेखनीय रहीं। उनसे पूर्व सुलक्षणा देवी, दुर्गाबती पटनायक जैसी लेखिकाओं ने धार्मिक, उपदेशात्मक और दूरदर्शी विधाओं में लिखा। पर सरला देई ने अद्भुत साहित्यिक कृतियों की रचना की, जिनमें रूढ़िवादी और पुरुष प्रधान उड़िया समाज के विरुद्ध अपने विरोध को प्रभावी ढ़ग से दर्शाया। 1918 और 1921 के बीच उनके लेख, पौराणिक और ऐतिहासिक विषयों पर कहानियाँ और कविताएँ 'परिचारिका' में भी प्रकाशित हुए। सरला देवी का लेख 'नरितवर प्रतिष्ठा', 'उत्कल साहित्य' नंबर 8 मार्गशिरा 1329 भाग 25 में प्रकाशित हुआ। उनकी 'मो कथा' सहकार पार्ट 2 नंबर 2 में प्रकाशित हुई। इन लेखों के कारण उन्हें बीसवीं सदी की 'नई महिला' के प्रतीक के रूप में देखा गया (बोहिदार, 2010-2011)। एनी बेसेंट एक और ऐसा व्यक्तित्व रहीं, जिन्होंने पत्रकारिता और सार्वजनिक लेखन के द्वारा स्वतंत्रता आंदोलन को सशक्त किया। भारतीय राष्ट्रीय मुद्दों पर प्रकाशित एक साप्ताहिक पत्रिका 'द कॉमनवील' और दैनिक समाचार पत्र 'न्यू इंडिया' में उन्होंने होम रूल की वकालत की और भारतीय पत्रकारिता में क्रांति लाने वाली भारत की सशक्त राजनीतिक स्वर बनीं।

सार्वजनिक क्षेत्र में महिला पत्रकारों द्वारा उठाए गए मुद्दे

समाचार पत्रों और पत्रिकाओं के माध्यम से देशभर में समाज सुधार आंदोलन में महिलाओं के मुद्दों पर सार्वजनिक विचार-विमर्श का जो क्रम शुरू हुआ, उसने उन्नीसवीं सदी के भारत के हर क्षेत्र में हलचल मचा दी। 1870-92 की अवधि अत्यधिक आकर्षक रही, क्योंकि महिलाओं की स्थिति से संबंधित सभी महत्त्वपूर्ण परिवर्तन इसी कालखंड में हुए। औपनिवेशिक शासकों और उपनिवेशित भारतीय सामान्य जन, दोनों के दृष्टिकोणों में आमूल-चूल परिवर्तन दृष्टिगोचर हुआ। समाज में महिलाओं की स्थिति और स्त्री शिक्षा के प्रति विशेष रूप से जन जागरण फैलाने का प्रयास समाचारपत्रों एवं पत्रिकाओं द्वारा किया गया। महिलाओं ने अपने मुद्दों को उठाया और स्थानीय और राष्ट्रीय दोनों स्तरों पर संघ/संगठनों का गठन किया। वे चुनौतियों का जवाब देने में सक्षम थीं। महिला पत्रिकाओं ने आह्वान दिया कि महिलाएँ अपनी पारंपरिक भूमिकाओं का सामना करें और अपने जीवन को बदलें। स्वदेशी आंदोलन में महिलाओं की पत्रिकाओं ने सक्रिय रुचि दिखाई। स्वतंत्रता संग्राम में महिलाओं की सहभागिता बढ़ाने में सर्वप्रथम इस पारंपरिक धारणा को तोड़ना आवश्यक था कि महिलाओं का एकमात्र काम घर का काम था और उनका इकलौता संसार था घर। महिलाओं के एक विशेष समूह के रूप में महिला पत्रकारों

ने आत्मनिर्भरता का संदेश प्रसारित और आत्म-जागरूकता का संचार किया। 'बामबोधिनी पत्रिका' में प्रमिला बाला मित्र का एक लेख 'नारिरो कर्तब्य' प्रकाशित हुआ (लाहिरी,1998, पृ. 668)। उन्होंने लिखा—"यदि एक महिला दूसरी महिलाओं के बारे में नहीं सोचती, उनके लिए काम नहीं करती है, तो कौन करेगा? एक पति? एक बेटा? वे दिन चले गए! चलो एक-दूसरे की कलाइयों पर राखी बाँधकर कहते हैं कि हम बहनों में कोई मतभेद नहीं है। पुरुष नहीं, महिलाएँ समाज की निर्माता और संरक्षक हैं।" आत्मविश्वास का स्तर ऐसा था कि साधारण महिला लेखिका भी मुखर रूप से स्वतंत्रता संग्राम में शामिल होने लगीं। इन पत्रिकाओं के माध्यम से महिलाओं ने असमान सामाजिक संरचना के प्रति अपनी भावनाओं को व्यक्त किया। सतदलबसिसि देवी ने मई 1908 में 'भारत महिला' पत्रिका में लिखा कि महिलाएँ वैसे ही मनुष्य होती हैं जैसे पुरुष होते हैं।

महिलाओं की शिक्षा

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध से ही महिलाओं की शिक्षा का प्रश्न समस्त भारत में अत्यंत महत्त्वपूर्ण मुद्दा हो गया। सामाजिक-सांस्कृतिक परिदृश्य के बदलते संदर्भ के बीच शिक्षित पुरुष और कम शिक्षित या निरक्षर महिला के बीच बढ़ती व्यापक खाई परिवार के अंदर और बाहर कठिनाइयों का कारण बनते चले गए। प्राय: पढ़े-लिखे पुरुष अपनी अशिक्षित पत्नियों के साथ संतोषजनक संबंध नहीं बना पा रहे थे। जुलाई 1875 में 'बंगमहिला' में एक आकर्षक लेख प्रकाशित हुआ ('नारिजन्मो की ऑधर्मो' (क्या नारी रूप में जन्म लेना अधर्म है?) (चटर्जी, 2016, पृ. 532)। मायासुंदरी नाम की एक महिला ने प्रश्न उठाया कि क्या स्त्री के रूप में जन्म लेना गलत है? उनके अनुसार देश की हर महिला का समाज के समक्ष एक ही भावना और प्रश्न कि वे पैदा क्यों हुईं। वह लिखती हैं कि साल दर साल युवतियों पर क्या बीतती है उसका अंदाजा लगाना अविश्वसनीय था। अगर परिवार में एक लड़की का जन्म होता है तो कोई भी खुश नहीं दिखता, क्योंकि एक बालिका का मतलब परिवार पर बहुत अधिक बोझ। परिवारों की मानसिकता यह थी कि एक लड़का उनके परिवार और उनके लिए पैसा कमाकर उनकी देख-रेख कर सकेगा, लेकिन दूसरी तरफ एक बच्ची का मतलब था घर से सारा पैसा दहेज के रूप में छिन जाना। जब महिलाओं के पास शिक्षा का विकल्प हुआ तो सामाजिक रीति-रिवाजों से बँधी उनकी 10 साल से कम उम्र में शादी हो जाती, जिसका मतलब था शिक्षा का अंत, घर की चारदीवारी के अंदर, बच्चे के पालन-पोषण और घरेलू काम में व्यस्त। महिलाओं को प्रताड़ित करने, कष्ट देने, दुर्व्यवहार और बलात्कार किए जाने की खबरें हर जगह से आती रहतीं।

'परिचारिका' (बसंत कुमारी द्वारा संपादित पत्रिका, खंड. 4, नंबर 1, भद्रा 1326, पृ.28-30) में 'रूपांतर' नामक एक लघुकथा ने इस विषय को बहुत सुंदर ढंग से पाठकों के समक्ष रखा है। सरोजिनी देई जैसी महिला लेखिकाओं ने शिक्षा के उद्देश्य के संबंध में समकालीन पुरुष के मत को प्रतिध्वनित किया, यानी शिक्षा का आधारभूत उद्देश्य महिलाओं को अधिक कुशल गृहिणी और प्रबुद्ध माता बनाना था। अपने 'स्त्री शिक्षा' नामक एक निबंध में उन्होंने अँग्रेजी भाषा में स्त्रियों के शिक्षित होने के महत्त्व पर जोर दिया था, जो उस समय के बदलाव की मनोदशा को दर्शाता है। सरोजिनी देई का मानना था कि लड़कियों को 12 या 13 साल की उम्र के बाद जनाना शिक्षा यानी घर पर शिक्षा मुहैया करना आवश्यक था स्कूल में शिक्षा जारी रखना नहीं। उन्होंने बालिकाओं की प्राथमिक चिकित्सा, उपचर्या और लेखांकन आदि की न्यूनतम शिक्षा पर बल दिया। इसके अलावा उनका यह भी मत रहा कि लड़कियों को अँग्रेजी सीखनी चाहिए अन्यथा वे 'शिक्षित' नहीं कही जाएँगी। उन्हें पाक शास्त्र, उपचर्या, हस्तशिल्प, चित्रकारी आदि का ज्ञान भी होना चाहिए (बोहिदार, 2010-2011)।

बंगाल में प्रकाशित 'महिला', 'भारत महिला', 'बामाबोधिनी', 'सुप्रभा', 'अंत:पुर' जैसी प्रसिद्ध पत्रिकाओं ने बंगाली महिलाओं की दयनीय स्थिति को दूर करने के लिए महिला साक्षरता के प्रसार का स्वागत किया। इन पत्रिकाओं के लिए 'अंत:पुर' में सभी परेशानियों और बुराइयों का रामबाण इलाज शिक्षा था। 'अंत:पुर' की बुराइयों का उन्मूलन तभी संभव था जब नारी शिक्षा के साथ-साथ घर का रख-रखाव पारंपरिक स्त्री गुण जैसे शुद्धता, आज्ञाकारिता और विनम्रता को भी विकसित किया जाए (चटर्जी, 2016, पृ. 533-34)।

भारत महिला (1906) https://indianculture.gov.in/rarebooks/bharat-mahila-sachitra-masik-patrika

विधवा विवाह का समर्थन

रत्नमाला देई ने महसूस किया कि मानव संस्कृति में महिलाएँ किसी-न-किसी तरह से पुरुषों के अधीन हैं। उनकी लघु कहानी 'मो कथा' एक बाल विधवा के जीवन पर लिखी गई है (बसंत कुमारी द्वारा संपादित परिचारिका, वॉल्यूम, 4, नंबर 1 भद्रा 1326, पृ. 16-24)। यह कहानी विधवापन की समस्या और विधवा पुनर्विवाह की आवश्यकता को प्रकट करती है। कहानी एक युवा बाल विधवा की भावनाओं को एक 'महिला' के रूप में शानदार ढंग से चित्रित किया। कहानी की मुख्य पात्र 'सोशी' के माध्यम से उन्होंने महिलाओं की कामुकता के दमन की समस्या को सामने लाने का प्रयास किया है। यह उनकी समय से बहुत आगे की सोच को दर्शाता है, क्योंकि यह एक ऐसा विषयबिंदु है, जो आज के नारीवादी विद्वानों द्वारा उठाया जाता है। एक युवा विधवा की दुर्दशा, एक मनुष्य के रूप में उसकी भावनाएँ, अपने पिता पर उसकी आर्थिक निर्भरता और सबसे बढ़कर समाज का रवैया और उस पर लगाए गए प्रतिबंधों की पराकाष्ठा को सुंदरतापूर्वक इस कहानी में चित्रित किया गया है। कहानी का अंत बड़ा ही दुखद है। युवा विधवा के पिता पुत्री के कष्ट को नहीं सह पाते और आत्महत्या कर लेते हैं। कहानी में समाज के लिए एक संदेश था कि सामान्य मनुष्य के जैसे ही विधवाओं की भावनाएँ और इच्छाएँ हैं। उन्हें जीवन जीने और जीवन का आनंद लेने का समान अधिकार है (बोहिदार, 2010-2011)।

अनुबंधित अधीनस्थ महिला की स्थिति और दुर्दशा

औपनिवेशिक राजनीतिक अर्थव्यवस्था के शोषण का जो एक नया चरित्र उन्नीसवीं सदी में उजागर हुआ वह था फिजी, पश्चिम त्रिनिदाद, नेटाल और मॉरीशस के बागानों में भारतीय करारबद्ध मजदूरों का आयात। इनमें से अधिकांश श्रमिक उत्तर प्रदेश और बिहार के थे। अप्रवासी श्रमिकों की लिंग संरचना भी विषम थी। महिलाओं की तुलना में पुरुषों ने अधिक प्रवास किया, फिर भी 28 से 40 प्रतिशत श्रमिक प्रवासी महिलाएँ थीं, उनमें से 70 प्रतिशत अविवाहित (काले, 1998, पृ.141)। अधिकांशतः महिलाएँ समाज के तिरस्कृत वर्ग से थीं जैसे वेश्याएँ, विधवाएँ और दलित। बीसवीं सदी की शुरुआत से जब भारी संख्या में अनुबंधित श्रमिकों को ले जाया जाने लगा तो मध्यवर्गीय बुद्धिजीवियों और राष्ट्रवादियों ने इसे राष्ट्रीय आपदा के रूप में देखा और इसका विरोध किया। समाचारपत्रों और पत्रिकाओं ने गोखले, एंड्रयूज, गांधी और मालवीय द्वारा की गई अनुबंध श्रम की निंदा को व्यापक रूप से प्रकाशित किया (गुप्ता, 2014, पृ. 716)। बीसवीं शताब्दी की शुरुआत में ही महिला पत्रकारों ने बलात् उत्प्रवास के विरुद्ध अभियानस्वरूप सार्वजनिक क्षेत्र के प्रकाशनों में अनुबंधित अधीनस्थ महिला की स्थिति और दुर्दशा के बारे में खूब लिखा। क्रूर शोषण और औपनिवेशिक धोखे की शिकार के रूप में रिपोर्टों, पत्रों, कहानियों और कविताओं में ऐसी महिलाओं की स्थिति को सहानुभूतिपूर्ण तरीके से दर्शाया गया। 'स्त्री दर्पण' ने विशेष रूप से अपनी इन पतिता प्रवासी अधीनस्थ बहनों की ओर से आवाज उठाई और क्षेत्र, जाति और वर्ग के अंतर के बावजूद महिलाओं के बीच संबंध स्थापित करने का प्रयास किया। 'स्त्री दर्पण' ने बार-बार ऐसी प्रवासी महिलाओं के उपनिवेशों में अत्यधिक अनैतिक और दुर्दशा भरे जीवन की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित किया। 'स्त्री दर्पण' के एक संपादकीय (उपनिवेशों में हिंदुस्तानी; पृ 175) में कहा गया कि यह सुनिश्चित करना होगा कि एक भी महिला इन कॉलोनियों में अकेले न जाए, अन्यथा उसका भ्रष्ट होना तय है। पुरुषों को चाहिए इन कॉलोनियों से जब छुट्टी पर वापस आएँ, अपनी जाति में शादी करें और अपनी पत्नियों को अपने साथ ले जाएँ। जब तक विवाहित पुरुषों की सुरक्षा इन महिलाओं को नहीं प्राप्त होती तब तक उपनिवेशों में इनका न कोई भविष्य है न ही मोक्ष।

पुरुषों के लिए प्रेरणा

सरला देवी घोषाल, जो रामभुज दत्ता चौधरी से विवाह के पश्चात् सरला देवी चौधरानी के नाम से जानी गईं, एक शिक्षित महिला थीं। वे रुडयार्ड किपलिंग से काफी प्रभावित रहीं (मित्र, 2017-18, पृ.141)। किपलिंग की रचनाओं को पढ़कर उन्होंने अपने देशवासियों को मैदानी खेलों में सक्रिय भागीदारी से परिचित कराने का विचार किया। पहले अपने परिवार के लड़कों के लिए फिर अन्य परिवारों के लिए व्यायामशाला शुरू की। बाद में बंगाल में एथलेटिक आंदोलन की शुरुआत हुई, खेलकूद के केंद्र स्थापित किए गए और देखते-देखते बंगाल में युवाओं को क्रिकेट या फुटबॉल खेलते देखना काफी आम हो गया।

78 THE AMERICAN REVIEW OF REVIEWS

present national movement, married Mr. R. Dutt Chowdhury of the Punjab. This gave a great impetus to such marriages. Whenever there is a dispute about inter-provincial marriages, the young men quote their Sarala Devi.

In the higher castes of the Hindus a widow is not allowed to marry. Once a widow always a widow. But a widower can marry as many times as he wishes to, and there is no law to prevent him from marrying. This social custom is not only an injustice done to women, but a poor social economy as well. The great majority of Indian widows are Hindu widows. There were, in 1901, 19,487 widows below the age of five; 95,798 between five and ten; 275,862 between ten and fifteen; 522,867 between fifteen and twenty; 938,725 between twenty and twenty-five; 1,432,608 between twenty-five and thirty; 2,267,361 between thirty and thirty-five; 2,068,491 between thirty-five and forty; 3,770,495 between forty and forty-five; 2,264,038 between forty-five and fifty; 4,112,876 between fifty and fifty-five; 1,521,210 between fifty-five and sixty and 6,506,030 of sixty and over.

A HINDU WOMAN WHO EDITS A MAGAZINE FOR WOMEN

(Sarala Devi Chowdhury, B.A., late principal of the Maharani's College for Women at Mysore)

the result of organized propaganda for the expansion of the idea and practice of inter-

स्रोत : द अमेरिकन रिव्यू ऑफ रिव्यूज (रॉय, बसंता कुमार. वुमंस पार्ट इन इंडिआज सोशल एडवांस)

सरला देवी ने बिरष्टमी उत्सव (1902) और प्रतापादित्य उत्सव

(1903) की शुरुआत की, ताकि बंगाली पुरुष की छवि का नवनिर्माण हो सके (मित्र, 2017-18, पृ141)। इन सभी कार्यों का उद्देश्य औपनिवेशिक संलाप में बंगाली पुरुष की अतिसंवेदनशील छवि को छिन्न-भिन्न करना था। 'भारती पत्रिका' में सरला देवी के दो लेख, 'ब्यायामचर्चा' और 'बिलायती घुशी बोनाम देशी कील', बहुचर्चित हुए, जिनमें उन्होंने दुर्बल बंगाली पुरुष को शारीरिक व्यायाम द्वारा शक्तिमान होने के लिए प्रेरित किया। सरला के लिए नारी-शक्ति वास्तविक थी (रे, 2003, पृ.58)। कुमुदिनी मित्रा द्वारा संपादित 'सुप्रभात पत्रिका' में प्रकाशित 'रमणीरकार्य' (महिलाओं के कर्तव्य) नामक लेख में उन्होंने लिखा कि महिलाएँ समाज की प्रेरक शक्ति हैं और पुरुष केवल मशीन रूपी साधन।

ऐतिहासिक विषयों पर लिखी लघुकथाएँ

'परिचारिका' ने ऐतिहासिक विषयों पर लिखी लघुकथाओं को आगे बढ़ाया, जो महिला लेखकों के इतिहास के ज्ञान को दर्शाती हैं। निहार नलिनी देवी की 'रूपारा मूल' एक खूबसूरत गुर्जर रानी कमला देवी की कहानी है, जिन्होंने साहसपूर्वक अफगानों का सामना किया और अपने प्राणों की आहुति देने को तैयार हुई। इसे पढ़कर निश्चय ही यह प्रतीत होता है कि लेखिका को महमूद के सोमनाथ पर आक्रमण का संपूर्ण ज्ञान था और इसी घटना को पृष्ठभूमि में रखते हुए निहार नलिनी ने यह कहानी लिखी। प्रमिला सुंदरी देई की 'बिमुग्धा' एक उड़िया राजकुमारी की कहानी है, जिसे एक मराठा सेनापति से प्यार हो गया था। 'एलेक्जेंड्रा विक्टोरिया' पर सरला देई का लेख और सरोजिनी देई का प्रसिद्ध लेख 'बतीश सिंघासन' अत्यधिक शिक्षाप्रद और सूचनात्मक थे (बोहिदार, 2010-2011)। 'परिचारिका' ने महिलाओं की समस्याओं के समाधान को समस्याग्रस्त लिंग संबंध या एक पुरुष विरोधी दृष्टिकोण तक ही सीमित नहीं रखा, बल्कि इसका दृष्टिकोण सामाजिक प्रश्नों के रूप में ऐसी समस्याओं को देखना और समाज में सुधार की तलाश करना था। 'परिचारिका' के हर अंक में संपादकीय टिप्पणियाँ होती थीं।

स्वतंत्रता आंदोलन में सहभागिता

स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान महिलाओं ने पत्रकारिता के जरिये आत्म-जागरूकता के प्रचार से प्रगाढ़ प्रभाव डाला। स्वदेशी काल के दौरान विभाजन विरोधी आंदोलन ने महिलाओं की पत्रिकाओं पर अपना प्रभाव छोड़ा। स्वदेशी आंदोलन पर कई महिलाओं के लेखन ने इस बात पर जोर दिया कि महिलाओं की दुनिया केवल अंतःपुर की चारदीवारी के भीतर सीमित नहीं थी। समाज और राष्ट्र के लिए भी उनका उतना ही कर्तव्य था। मई 1905 में 'बामबोधिनी' पत्रिका में लोलिता रॉय ने 'देश सेबाई नारी जाति' ('देश की सेवा में नारी जाति') नामक प्रकाशित एक लेख में तर्क दिया—"वह समय आ गया है जब कार्यस्थल पर स्त्री और पुरुष दोनों को कंधे से कंधा मिलाकर खड़ा होना पड़ता है। मेरे देशवासी कह सकते हैं कि घर ही महिलाओं का असली कार्यस्थल है। अगर महिला अपने घर के बाहर कुछ करती है या राजनीति की ओर ध्यान देती है तो वह एक पत्नी और माँ के रूप में अपने कर्तव्य की उपेक्षा करेगी, परंतु यदि स्त्री घर में बैठे और पुरुष बाहर बैठे तो घर का विकास हो सकता है क्या? जब तक महिला पुरुष के अधीन रहेगी और वह उसका स्वामी बना रहेगा तब तक राष्ट्र जाग्रत नहीं हो पाएगा।" चंपकबाला देवी ने अक्टूबर 1908 में 'जान्हबी' पत्रिका के द्वारा ईश्वर से प्रार्थना की कि वह महिलाओं को आत्मनिर्भरता के साथ देशभक्ति से लैस करे। यह अपील पूरी तरह से स्वदेशी आंदोलन की भावना के अनुरूप थी (लाहिरी, 1998, पृ.671)। 'भारत महिला' पत्रिका ने तर्क दिया—"वर्तमान परिस्थितियों में यद्यपि सामाजिक परिवर्तन के क्रम में महिला के पास राजनीतिक अधिकार नहीं हैं, पर आने वाले समय में महिलाओं के लिए राजनीतिक अधिकार हासिल करना संभव होगा और यह सबके लिए हितकर साबित होगा।" सरला देवी द्वारा संपादित 'भारती' पत्रिका में गैर-औद्योगिकीकरण, बंगाली पुरुषों में साहस की कमी, स्वदेशी उद्यमों की अनुपस्थिति, हिंदू-मुसलमान एकता आदि पर असंख्य लेख प्रकाशित किए गए। हिंदुओं के प्रति मुस्लिम उदासीनता के कारणों के बारे में भी 'भारती' पत्रिका में लेख प्रकाशित हुए थे (लाहिरी, 1998, पृ.671)। 'बामबोधिनी' पत्रिका ने महिलाओं के बीच बढ़ती देशभक्ति और राजनीतिक जागरूकता को प्रतिबिंबित किया। अंबुजा सुंदरी दासगुप्ता ने आग्रह किया कि 'सभी बंगाली शपथ लें कि जब तक विभाजन निरस्त नहीं किया जाता है कोई भी व्यक्ति विदेशी सामान का उपयोग नहीं करेगा।' स्वदेशी आंदोलन के दौरान महिलाओं ने पुरुष प्रधान राजनीतिक क्षेत्र में अपनी जगह बनाई और इसका बहुत बड़ा श्रेय महिला पत्रकारिता को जाता है, जिसने अपने महिला पाठक समूह को अंतःपुर से निकल कर सामाजिक और राजनीतक मुद्दों पर सोचने के लिए विवश किया।

निष्कर्ष

स्वतंत्रता आंदोलन में भारत के विभिन्न प्रांतों में जिस प्रकार विविधतापूर्ण विषयों पर समय-समय पर सामान्य जनता ने सहभागिता दी, उसी प्रकार प्रतिगामी एवं उत्पीड़क क्षेत्रीय परंपराओं के विरुद्ध महिला पत्रकारिता ने सक्रिय भूमिका निभाई। गाँवों से शहरों तक की महिलाओं ने अपने लेखों द्वारा सामाजिक और राजनीतिक गतिशीलता को प्रवर्तित किया। महिला पत्रकारों ने सार्वजनिक लेखन द्वारा भारत के भिन्न भाषाई क्षेत्रों में सांस्कृतिक विरासत और सामाजिक संगठन में जटिल अंतर के बावजूद महिलाओं की शिक्षा, उनकी सामाजिक स्थिति पर परिचर्चा और तत्काल कार्यवाही की गुहार लगाई। 1860 से 1947 तक इन पत्रिकाओं में महिलाओं के विषय में निरंतरता और गुणात्मक परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं। महिला पत्रिकाओं की महिलाओं की स्थिति और उनके प्रति सामाजिक दृष्टिकोण को बदलने में, समाज में हो रहे बदलाव को समझने और समझाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। शिक्षा, विधवा विवाह, अनुबंधित श्रम के जाल में फँसी प्रवासी महिलाओं की दुर्दशा, राजनीतिक क्षेत्र में उनकी सक्रियता, ये कुछ ऐसे विषय रहे जिनमें महिला पत्रिकाओं ने सामाजिक मूल्यों के पुनर्निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। ये पत्रिकाएँ लिंग संबंधों, सामाजिक संरचना, राजनीतिक और सामाजिक अंतर्दृष्टि परिवर्तन और बदलते परिवेश में महिलाओं की विविध प्रतिक्रियाएँ निःसंदेह उपलब्ध कराती हैं। स्वंत्रता आंदोलन के दौरान साधारण अज्ञात महिलाओं द्वारा पत्रिकाओं में प्रकाशित लेख, कविताएँ, लघु कथाएँ इस ओर इंगित करते हैं कि निजी जीवन में विभिन्न प्रकार की बेड़ियों से जकड़ी महिलाएँ भी 'स्व' की खोज में लगी थीं। बाह्य रूप की परतंत्रता हो या आतंरिक, स्वतंत्रता तभी मिलती है जब उसकी अभिव्यक्ति सशक्त हो। स्वतंत्रता आंदोलन में सामान्य महिलाओं ने अपनी आवाज बुलंद

करने के लिए पत्रिकाओं जैसे जनसंचार माध्यमों का सहारा लिया। कहने का तात्पर्य यह है कि महिला पत्रकारिता ने सामान्य स्त्रियों के व्यक्तिगत जीवन में निश्चित रूप से 'स्व' का विकास किया। साथ ही ये पत्रिकाएँ महिलाओं द्वारा लेखन और संपादन के माध्यम से निजी और सार्वजानिक क्षेत्र (अंतःपुर एवं बाहर) के बीच की खाई को पाटने में निरंतर कार्यरत रहीं। महिला पत्रकारिता के द्वारा महिलाओं की सोच उनके समय से कहीं आगे होने की झलक देती है।

संदर्भ

काले, एम. (1998). *फ्रैगमेंट्स ऑफ एंपायर; कैपिटल, स्लेवरी, एंड इंडियन इंडचर्ड लेबर माइग्रेशन इन द ब्रिटिश कॅरीबीयन, फिलेडैल्फिया.* पृ.141.

गुप्ता, सी. (2014). सेविंग 'रॉड्गड बॉडीज : कास्ट, इंडेंचर्ड वीमेन एंड हिंदी प्रिंट-पब्लिक स्फीयर इन कोलोनियल इंडिया. *प्रोसीडिंग्स ऑफ द इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस, खंड. 75*, प्लैटिनम जुबली पृ. 716-722.

चटर्जी, पी. (1989). *द नेशनलिस्ट रिज़ॉल्यूशन ऑफ द विमेंस क्वेश्चन; रिकॉस्टिंग वीमेन : एस्सेज इन कोलोनियल हिस्ट्री. सांगरी,* कुमकुम एंड सुदेश वैद (सं.). नई दिल्ली : काली फॉर वीमेन. पृ. 233-253.

चटर्जी, एस. (2016). रोल ऑफ द प्रेस इन रिप्रजंटिंग द पोजीशन ऑफ वीमेन इन द बंगाली सोसाइटी विद अ स्पेशल रिफरेंस टू विडो रीमैरेज (1870-92). *प्रोसीडिंग्स ऑफ द इंडियन हिस्ट्री कॉंग्रेस, खंड. 77*, पृ. 532-538.

जॉर्ज, ए. जी. (1883). *रिपोर्ट ऑन कोलोनियल एमिग्रेशन फ्रॉम द बंगाल प्रेसीडेंसी, कलकत्ता.* http://ddsnext.crl.edu/s/32677#?c=4&m=0&s=0&cv=5&r=0&xywh=133%2C888%2C1881%2C1776

डालमिया, वी. (1997). *द नेशनलाइजेशन ऑफ हिंदू ट्रेडिशंस : भारतेंदु हरिश्चंद्र एंड नाइनटींथ सेंचुरी बनारस.* दिल्ली : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.

तलवार, वी. बी. (1989). फेमिनिस्ट कॉन्शियसनेस इन वीमेंस जर्नल्स इन हिंदी, 1910-20, कुम कुम संगारी और सुदेश वैद (सं.), *रीकास्टिंग वुमन-एस्सेज इन कॉलोनियल हिस्ट्री.* नई दिल्ली: काली फॉर विमेन.

थारू, एस. और ललिता. के. (1991). (सं). *वीमेन राइटिंग इन इंडिया 600 बी.सी. टू द प्रेसेंट खंड-1 : 600 बी.सी. टू द अर्ली ट्वेंटिएथ सेंचुरी.* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.

दत्ता, एस. (1906). *भारत महिला सचित्र पत्रिका.* https://indianculture.gov.in/rarebooks/bharat-mahila-sachitra-masik-patrika से पुन:प्राप्त.

देवी, बी. (1982). प्रबंधिका सरला देवी (उड़िया), उड़िया लेखिका संसद (सं), *आद्यापर्व.* भुवनेश्वर: पश्चिम प्रकाशन. पृ.92- 93.

निझावन, एस. (2004). हिंदी चिल्ड्रंस जर्नल्स एंड नेशनलिस्ट डिस्कोर्स (1910-1930). *इकॉनोमिक एंड पोलिटिकल वीकली, अगस्त, खंड. 39*, न. 33 पृ. 3723-3729.

निझावन, एस. (2012a). *वीमेन एंड गर्ल्स इन द हिंदी पब्लिक स्फीयर : पीरिऑडिकल लिटरेचर इन कोलोनियल नार्थ इंडिया.* दिल्ली : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.

निझावन, एस. (2012b). एट द मार्जिन्स ऑफ एंपायर : फेमिनिस्ट-नेशनलिस्ट कॉनफिगरेशंस ऑफ बर्मीज सोसाइटी इन द हिंदी पब्लिक (1917—1920). *द जर्नल ऑफ एशियन स्टडीज, नवंबर, खंड 71*, न. 4. पृ.1013-1033.

पालीवाल, ओ. (1986). *रामेश्वरी नेहरू : पेट्रियट एंड इंटरनेशनलिस्ट.* नई दिल्ली : नेशनल बुक ट्रस्ट.

पैक्सटन, एन. (1990). फेमिनिज्म अंडर द राज : कंप्लीसिटी एंड रेजिस्टेंस इन द राइटिंग्स ऑफ फ्लोरा एनी स्टील एंड एनी बेसेंट. *वीमेन्स स्टडीज इंटरनेशनल फोरम, 13*(4), 333-46.

बामाबोधिनी पत्रिका. (1907). http://www.ndl.gov.in/document/Mk4yMzdrWnJlYmxqYjJmYkh2dzVCR0tDb3dDOEhjcEo3eFQrbGdHOW9Zbz0 से पुन:प्राप्त.

बाशा, एस. एम. (2007). अगेंस्ट द टाइड्स ऑफ रिफार्म : कंसेर्वेटिव विमेंस जर्नल्स इन कोलोनियल आंध्र-द स्टोरी ऑफ 'सावित्री', 1904-1912. *प्रोसीडिंग्स ऑफ द इंडियन हिस्ट्री कॉंग्रेस, खंड. 68*, 1001-1020.

बोर्थविक, एम. (1984). द चेंजिंग रोल ऑफ वीमेन इन बंगाल 1849-1905. *प्रिंसटन युनिवर्सिटी प्रेस.* प्रिंसटन: एन.जे.

बोहिदार, एस. (2010-2011). एवोलूशन ऑफ कांशसनेस एंड आइडेंटिटी : अ स्टडी ऑफ वीमेन एडिटेड मैगज़ीन्स इन उड़ीसा (1892 - 1920). *प्रोसीडिंग्स ऑफ द इंडियन हिस्ट्री कॉंग्रेस, खंड 71*, 814-821.

मित्र, पी. (2017-18). रिंफोर्सिंग डिफ्रेंस : द हिस्ट्री ऑफ विमेंस इन्वॉल्वमेंट इन फिजिकल एक्टिविटी इन इंडिया. *इंडिया इंटरनेशनल सेंटर क्वार्टरली, खंड. 44, नं. 3/4*, साउथ एसिआज स्पोर्टिंग मोजेक (विंटर 2017-स्प्रिंग 2018), 140-148.

रंजन, पी. (2020). *श्रीमती हेमंत कुमारी देवी : उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध का स्त्री पक्ष.* https://www.jankipul.com/2020/10/hemant-kumari-devi-a-women-writer-of-19th-century.html#:~ से पुन:प्राप्त.

रॉय, बी.के. (1912). वुमंस पार्ट इन इंडिआस सोशल एडवांस. *क्लारेमोंट कॉलेजेस इंक.* https://www.jstor.org/stable/community.31048923 से पुन:प्राप्त.

रे, बी. (2003). *अर्ली फेमिनिस्ट्स ऑफ कोलोनियल इंडिया.* दिल्ली : ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.

लाहिरी, पी. (1998). विमेंस मैगजींस इन बंगाल, 1905-11. *प्रोसीडिंग्स ऑफ द इंडियन हिस्ट्री कॉंग्रेस, खंड. 59*, 665-675.

संचार माध्यम | खंड 34(1) : 13-19, जनवरी-जून 2022
आईएसएसएन: 2321-2608

स्वतंत्रता संग्राम के दौरान राष्ट्रीय चेतना के जागरण में भारतीय सिनेमा की भूमिका का अध्ययन

प्रो. (डॉ.) प्रमोद कुमार[1]

सारांश

जन संचार की दुनिया में सिनेमा का प्रवेश एक अजूबे से कम नहीं था। 7 जुलाई, 1896 को जब फ्रांस के लुमियर भाइयों (लुई और एंटोनी) द्वारा छह लघु वृत्तचित्रों का मुंबई के एक होटल में प्रदर्शन किया गया तो दर्शकों को यकीन नहीं हुआ कि तस्वीरें चल भी सकती हैं। हालाँकि वे वृत्तचित्र मूक थे, फिर भी उन्होंने जन संचार की दुनिया में तहलका मचा दिया। उसी अजूबी दुनिया में अपनी उपस्थिति दर्ज कराने के लिए दादासाहब फालके ने 1913 में जब पूर्ण लंबाई की प्रथम भारतीय फिल्म 'राजा हरिश्चंद्र' बनाई तो उनके मन में शुद्ध रूप से 'स्वत्व' और 'स्वदेशी' का भाव था। वे इस बात से व्यथित थे कि हम भारतवासी सिनेमा में विदेशियों की तस्वीरें देखने के बजाय अपनी भारतीय तस्वीरें क्यों नहीं देखें? हालाँकि अपने इस स्वप्न को साकार करने के प्रयासों में दादासाहब को अपने घर का सामान तक बेचना पड़ा, लेकिन बार-बार गिरकर भी वे हर बार नई ऊर्जा के साथ खड़े होते गए। स्वतंत्रता संग्राम में भारतीय सिनेमा की भूमिका इसी 'स्वत्व' और 'स्वदेशी' भाव से जोड़कर देखी जानी चाहिए। बाद के वर्षों में जब इसमें देशभक्ति का भाव जुड़ा तो सिनेमा ने राष्ट्रीय चेतना के निर्माण में अत्यंत प्रभावशाली भूमिका निभाई। स्वाभाविक है कि अँग्रेजों को यह रास नहीं आने वाला था, इसलिए उन्होंने इस संचार माध्यम का गला घोंटने के तमाम प्रयास किए, परंतु भारतीय फिल्म निर्माताओं ने हार नहीं मानी और भारी नुकसान सहकर भी उन्होंने स्वराज और देशभक्ति के भाव को कमजोर नहीं पड़ने दिया। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के दौरान सिनेमा दोहरी भूमिका में था। देशवासियों में देशभक्ति का जज्बा पैदा करने के साथ-साथ छुआछूत, विधवा विवाह, बाल विवाह, पश्चिमी अंधानुकरण जैसी सामाजिक समस्याओं को उजागर करने और इनके समाधान के संबंध में समाज का प्रबोधन करने में भी उसने अहम भूमिका निभाई। सभी भारतीय भाषाओं के सिनेमा में कमोबेश यही भाव था। आजादी का अमृत महोत्सव देश के समक्ष ऐसा अवसर है जब सिनेमा के उस स्वर्णिम अतीत पर वस्तुपरकता के साथ नजर डाली जाए, ताकि देश की युवा पीढ़ी भारतीय फिल्म निर्माताओं के उस त्याग और समर्पण से सबक ले सके। फिल्म से जुड़े हर आयाम यानी संवाद, कहानी, चित्र, पृष्ठभूमि, शीर्षक, कलाकार, गीत, संगीत, गायक, संगीतकार, कैमरामैन, तकनीक, पोस्टर, वितरण तंत्र, आदि का गहन अध्ययन करने की आवश्यकता है। मूक फिल्मों से वर्तमान वेब सीरीज तक की यात्रा अपने अंदर अनेक रोमांचक पहलुओं को समेटे हुए है, जिस पर शोध की आवश्यकता है। प्रस्तुत शोधपत्र में भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के दौरान राष्ट्रीय चेतना के जागरण में भारतीय सिनेमा की भूमिका को समझने का वस्तुपरक प्रयास किया गया है।

संकेत शब्द : राष्ट्रीय चेतना, स्वत्व, स्वराज, स्वदेशी सिनेमा, मूक सिनेमा, बोलती फिल्में, दादासाहब फालके, वेब सीरीज

प्रस्तावना

मनोरंजन समाज की अनिवार्य आवश्यकता है। अलग-अलग राज्यों और भाषा-भाषी क्षेत्रों में इसके लिए अलग-अलग माध्यम समय के साथ विकसित हुए, परंतु सिनेमा सभी लोक माध्यमों पर पहले दिन से ही भारी पड़ता नजर आया। भारत में 7 जुलाई, 1896 को जब फ्रांस के लुमियर भाइयों ने मुंबई के वाटसन होटल में पहली बार अपने छह लघु वृत्तचित्रों का प्रदर्शन किया (टाइम्स ऑफ इंडिया, बंबई, 7 जुलाई, 1896) तो उस समय इस संबंध में 'टाइम्स ऑफ इंडिया' में प्रकाशित एक विज्ञापन में इस घटना को 'सदी का चमत्कार' और 'दुनिया का अजूबा' बताया गया था। यह अजूबा था भी, क्योंकि लोगों ने पहली बार तस्वीरों को चलते हुए देखा। इसलिए प्रदर्शन में उम्मीद से अधिक भीड़ उमड़ी। वाटसन होटल में उस समय प्रदर्शित छह वृत्तचित्र थे—'एंट्री ऑफ सिनेमाटोग्राफ', 'अराइवल ऑफ ए ट्रेन', 'द सी बाथ', ए डिमोलिशन', 'लीविंग द फैक्ट्री' और 'लेडीज एंड सोल्जर्स ऑन व्हील्स'। पहले शो की अप्रत्याशित सफलता के बाद लुमियर भाइयों के वृत्तचित्रों का दूसरा शो 14 जुलाई, 1896 को बंबई के नॉवल्टी थियेटर में आयोजित किया गया। इन दोनों स्थानों पर यह शो क्रमानुसार 15 अगस्त, 1896 तक चला। इन वृत्तचित्रों का ऐसा जादूई असर हुआ कि नॉवल्टी थियेटर ने 14 जुलाई, 1896 के बाद प्रतिदिन सायंकाल आयोजित होने वाले जीवंत नाट्य मंचन को बंद करके शाम 6.00 बजे तक ऐसी ही फिल्मों का प्रदर्शन स्थायी रूप से आरंभ कर दिया। उन दिनों लोग एक रुपये का टिकट खरीदकर भी इन चलचित्रों को देखते थे (अंकुर, 1994)। वर्ष 1895 से 1905 तक लुमियर ब्रदर्स फिल्म जगत् के बेताज बादशाह रहे। उन्होंने 22 मार्च, 1895 को पेरिस में पहली बार फिल्म दिखाई थी। वे अपने आसपास के वीडियो बना लेते थे और फिर उन्हें लोगों को दिखाते थे। बाद में वे फिल्म बनाने की तकनीक विकसित करने, मशीनें बनाने और बेचने का काम करने लगे। इसी बीच कुछ भारतीयों ने भी फिल्म निर्माण में रुचि लेनी प्रारंभ की। कुछ ने तो फिल्म निर्माण को ही अपने जीवन का लक्ष्य बना लिया। 'सेव दादा' नाम से विख्यात हरिश्चंद्र सखाराम भाटवाडेकर द्वारा बंबई के हैंगिंग गार्डंस में आयोजित एक कुश्ती मैच का 1899 में 'द रेस्लर्स' नाम से बनाया गया वृत्तचित्र किसी भारतीय द्वारा निर्मित पहला वृत्तचित्र था। इसके बाद सेव दादा ने 1901 में एक और वृत्तचित्र बनाया, जिसमें कैंब्रिज युनिवर्सिटी

[1]पाठ्यक्रम निदेशक, उर्दू पत्रकारिता, भारतीय जन संचार संस्थान, नई दिल्ली. ईमेल : drpk.iimc@gmail.com

से गणित विषय में सर्वाधिक अंक प्राप्त करने वाले एक भारतीय विद्यार्थी परांजपे को बंबई बंदरगाह पर जहाज से उतरते हुए दिखाया गया था। इसके बाद 18 मई, 1912 को दादासाहब तोरणे द्वारा मराठी में निर्मित एक मूक फिल्म 'श्री पुंडलिक' का बंबई के कोरोनेशन सिनेमाटोग्राफ में प्रदर्शन किया गया, किंतु भारत की पूर्ण लंबाई की प्रथम फिल्म 'राजा हरिश्चंद्र' बनाने का श्रेय दादासाहब फालके को जाता है, जिन्होंने 1913 में इस मूक फिल्म को बनाया।

'राजा हरिश्चंद्र' बनाने के पीछे दादासाहब फालके के मन में उमड़ता 'स्वत्व' और 'स्वदेशी' का वह भाव था, जो उन्हें बार-बार इस बात के लिए प्रेरित कर रहा था कि विदेशियों को फिल्मों में देखने की बजाय हम अपने भारतीयों को ही फिल्मों में क्यों नहीं देख सकते। 15 अप्रैल, 1911 को उन्होंने बंबई में 'द लाइफ ऑफ क्राइस्ट' फिल्म देखी। उस फिल्म को देखते समय उनके मन में श्री कृष्ण, श्री राम और अनेक हिंदू देवताओं के चित्र घूम रहे थे। वे सोच रहे थे कि ईसा मसीह के बजाय हम अपने हिंदू प्रतीकों को आधार बनाकर ऐसी फिल्में क्यों नहीं बना सकते? अपने इस मनोभाव को दादासाहब फालके ने इस प्रकार व्यक्त किया—''मेरी आँखों के सामने जैसे-जैसे 'द लाइफ ऑफ क्राइस्ट' के चित्र चल रहे थे, वैसे-वैसे मेरे मस्तिष्क में हमारे हिंदू देवताओं, श्री कृष्ण, श्री रामचंद्र, गोकुल और अयोध्या के चित्र घूम रहे थे। मेरे अंदर से एक अजीब-सी आवाज आ रही थी। मैंने एक और टिकट खरीदी और उस फिल्म को दोबारा देखा। उस दौरान मुझे लगा कि मेरी कल्पना पर्दे पर एक आकार ले रही है। मैंने सोचा कि क्या यह वास्तविक रूप में हो सकता है? क्या हम भारत की संतानें पर्दे पर कभी इसी प्रकार के भारतीय चित्र देख पाएँगे'' (धारप, 1985)? वर्ष 1917-18 में 'नवयुग' में प्रकाशित कुछ लेखों में दादासाहब ने भारतीय जीवन मूल्यों पर आधारित फिल्म बनाने की इस कल्पना को लेकर अपने मन में उत्पन्न बेचैनी को इस प्रकार स्पष्ट किया—''आने वाले दो महीने मेरे लिए इतनी बेचैनी वाले थे कि मैं तब तक चुप नहीं बैठा जब तक मैंने बंबई के सभी सिनेमाघरों में उस समय प्रदर्शित फिल्में नहीं देख लीं। उन फिल्मों को देखकर मेरे मन में खयाल आया कि हमारी भारतीय फिल्में भी इसी प्रकार सिनेमाघरों में कैसे प्रदर्शित हो सकती हैं'' (चड्ढा, 1990)? वास्तव में वर्ष 1913 में निर्मित 'राजा हरिश्चंद्र' दादासाहब फालके के मन में उपजी उसी बेचैनी का प्रतिफल थी। उस फिल्म का प्रदर्शन बंबई के ओलंपिया थियेटर में 21 अप्रैल, 1913 को हुआ। इस फिल्म में सत्याग्रह की दृष्टि को प्रदर्शित किया गया था, जिसमें बुराई पर अच्छाई की विजय को दर्शाया गया था। भारत की वर्तमान युवा पीढ़ी को संभवतः यह मालूम नहीं होगा कि दादासाहब फालके को अपने इस स्वप्न को साकार करने के लिए अपने घर का कीमती सामान तक बेचना पड़ा और लगातर फिल्में देखने के कारण उनकी आँखों की रोशनी चली गई थी (चड्ढा, 1990)। 'राजा हरिश्चंद्र' के निर्माण में दादासाहब फालके को प्रचंड स्वदेशी समर्थक और सुप्रसिद्ध स्वतंत्रता सेनानी बाल गंगाधर तिलक का भी सहयोग प्राप्त हुआ। मराठी मीडिया में उस समय तिलक ने ही अपने अखबार 'केसरी' में इसकी समीक्षा प्रकाशित की थी। 'राजा हरिश्चंद्र' की सफलता के पश्चात् दादासाहब फालके को इंग्लैंड से फिल्म निर्माण के अनेक आकर्षक प्रस्ताव मिले, परंतु उन्होंने सभी को ठुकराकर अपने प्रयासों से भारत में ही शुद्ध स्वदेशी फिल्में निर्माण हेतु प्रयास जारी रखे। उन दिनों स्वदेशी आंदोलन अपने शिखर पर था और दादासाहब फालके भी उससे अछूते नहीं थे। 'केसरी' में प्रकाशित एक लेख में फालके लिखते हैं—''यदि मैं सिर्फ अपने स्तर पर ही विदेशी सामान का आयात रोक पाने में सफल रहा तो व्यक्तिगत स्तर पर स्वदेशी में मेरा यही कम योगदान नहीं होगा।'' इसके बाद उन्होंने 'श्रीकृष्ण जन्म' (1917) और 'कालिया मर्दन' (1919) जैसी कई फिल्मों का निर्माण किया, जिनमें स्वदेशी का भाव स्पष्ट नजर आता है (नेशनल फिल्म आर्काइव ऑफ इंडिया, 2012)।

राष्ट्रीय चेतना और सिनेमा

राष्ट्रीयता का मूल ध्येय मातृभूमि की स्वतंत्रता और उसकी संस्कृति की रक्षा है। यह भावना उन लोगों में उत्पन्न होती है जिनके देश, नस्ल, साहित्य, इतिहास, भाषा, धर्म, राजनीतिक आकांक्षाएँ तथा आर्थिक हित समान होते हैं। राष्ट्रीयता का भाव ही प्रत्येक देशवासी को अपनी मातृभूमि, और संस्कृति से जोड़े रखता है। अपनी मातृभूमि और संस्कृति की रक्षा के लिए ही संपूर्ण भारत आपसी भेद भुलाकर विदेशी शासकों को खदेड़कर स्वराज्य स्थापित करना चाहता था। यद्यपि, 19वीं शताब्दी का भारत भाषा, धर्म, प्रदेश आदि के आधार पर विभाजित था तथा ब्रिटिश शासकों ने यहाँ अपना आधिपत्य बनाए रखने के लिए इस फूट का भरपूर लाभ उठाया, तथापि भारत एक भौगोलिक इकाई मात्र नहीं था, बल्कि इस विविधता में सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक एकता भी अंतर्निहित थी जिसने राष्ट्रीय आंदोलन के आरंभ, विकास एवं सफलता की ओर अग्रसर होने में सहायता प्रदान की। विविधता के मूल में अंतर्निहित यह राष्ट्रीय चेतना ही थी, जिसने राष्ट्रीय भाव की प्रेरणा दी। यह चेतना विशिष्ट वर्ग की अपनी बौद्धिक सीमा को लाँघते हुए सुदूर क्षेत्रों तक फैली। इसके प्रसार में फिल्मों की बड़ी भूमिका रही। 'राजा हरिश्चंद्र' की सफलता ने आर. नटराज मुदालियार को 1916 में तमिल में 'कीचक वधम्' बनाने के लिए प्रेरित किया। दक्षिण भारत में बनी यह पहली फिल्म थी, जो महाभारत के विराट पर्व पर आधारित थी। इसके बाद अनेक फिल्म निर्माताओं ने भारतीय सामाजिक जीवन और संस्कृति को केंद्र में रखकर फिल्में बनानी आरंभ कीं।

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध पत्र के माध्यम से स्वतंत्रता संग्राम के दौरान राष्ट्रीय चेतना के जागरण में भारतीय सिनेमा की भूमिका का अध्ययन करने का प्रयास किया गया है। चूँकि यह ऐतिहासिक शोध है, इसलिए इस संबंध में द्वितीयक स्रोतों का प्रयोग किया गया है, जो विभिन्न पुस्तकों, समाचार पत्रों, पत्रिकाओं तथा नेशनल फिल्म आर्काइव ऑफ इंडिया से प्राप्त किया गया है।

सवाक् फिल्में और ब्रिटिश सेंसर बोर्ड का शिकंजा

'आलम आरा' भारत की प्रथम सवाक् फिल्म थी, जिसका निर्माण 1931 में खान बहादुर अर्देशिर ईरानी ने किया था। ईरानी ने ही 1931 में दक्षिण भारत की पहली सवाक् फिल्म 'कालीदास' और भारत की प्रथम स्वदेशी रंगीन फिल्म 'किसान कन्या' का निर्माण किया था (नारायण, 2008)। सवाक् फिल्मों के बाद सिनेमा समाज को शिक्षित करने और लोगों को अलग-अलग मुद्दों पर झकझोरने के लिए एक प्रभावी माध्यम के

रूप में उभरा। स्वाभाविक है स्वतंत्रता संग्राम हेतु भी इसका जमकर उपयोग होने लगा। ब्रिटिश सरकार को जैसे ही इसकी भनक लगी तो उसने भारतीय फिल्मों के प्रदर्शन पर शिकंजा कसना आरंभ कर दिया। 1930 में जब आर.एस.डी. चौधरी ने फिल्म 'रैथ' का निर्माण किया तो अँग्रेज सरकार ने उसे इस आधार पर प्रतिबंधित कर दिया कि उसमें स्वतंत्रता संग्राम से जुड़े कुछ लोगों के चरित्र को दर्शाया गया था। इसी प्रकार 1939 में जी. रामब्राहमम् द्वारा निर्मित तेलुगू फिल्म 'रिथु बिद्दा' पर इसलिए प्रतिबंध लगा दिया था क्योंकि उसमें किसानों द्वारा जमीदारों के विरुद्ध विद्रोह को दर्शाया गया था। जब बाबूराव पेंटर ने छत्रपति शिवाजी पर आधारित फिल्म 'शिवाजी' का निर्माण किया तो सेंसर बोर्ड ने बड़ी बेरहमी से उसके अधिकतर दृश्यों पर कैंची चला दी थी। अँग्रेज सरकार को लगता था कि फिल्म के दृश्य उनके साम्राज्य को चुनौती देने वाले थे। बाबूराव पेंटर द्वारा निर्मित मूक फिल्में 'बाजी प्रभु देशपांडे' (1919), 'कल्याण खजिना' (1924), 'शाहला शाह' (1925) और 'सावकारी पाश' (1925) भी देशभक्ति के जज्बे से परिपूर्ण थी, जिन्होंने देशवासियों को अँग्रेज शासन के विरुद्ध आवाज उठाने के लिए प्रेरित किया। वर्ष 1931 में शान्ताराम की फिल्म 'स्वराज्याचे तोरण' और उसके पोस्टर को सिर्फ इसलिए प्रतिबंधित कर दिया गया क्योंकि उसके शीर्षक में 'स्वराज्य' शब्द था और पोस्टर में छत्रपति शिवाजी को ध्वज फहराते हुए दिखाया गया था। बाद में जब उस फिल्म का शीर्षक बदलकर 'उदयकाल' किया गया और कुछ दृश्यों को फिल्म से हटाकर अंत में शिवाजी द्वारा ध्वज फहराने का दृश्य भी हटाया गया तभी जाकर उसे प्रदर्शन की अनुमति मिली। उन दिनों फिल्मों के शीर्षक में भी देशभक्ति का पुट स्पष्ट दिखाई देता था। ऐसी कुछ फिल्में थीं 'वीर भारत' (1934), 'आजादी' (1935), 'देश दासी' (1935), 'देश दीपक' (1935), 'हिंद केसरी' (1935), 'इंडस्ट्रीयल इंडिया' (1938), 'मदर इंडिया' (1938), 'आजाद' (1940), आदि। इन फिल्मों ने सीधे तौर पर ब्रिटिश सरकार के सेंसर बोर्ड का मखौल उड़ाया। शोहराब मोदी द्वारा निर्मित 'पुकार' (1939), 'सिकंदर' (1941) और 'पृथ्वी वल्लभ' (1943) में अँग्रेज सरकार की आलोचना करने वाले प्रभावी संवाद थे। इनमें से कुछ फिल्में तो 'भारत छोड़ो आंदोलन' से कुछ ही समय पूर्व प्रदर्शित हुई थीं (नेशनल फिल्म आर्काइव ऑफ इंडिया, 2012)। इससे स्पष्ट है कि स्वतंत्रता संग्राम के दौरान भारतीय फिल्मों ने अँग्रेजों के विरुद्ध जनमानस तैयार करने में बड़ी भूमिका निभाई।

उस दौरान 'फियरलैस नाडिया' नाम से मशहूर जेबीएच वाडिया की कुछ स्टंट फिल्में भी आईं, जिनमें कलाकारों के संवाद और पोशाक दर्शकों को रोमांचित कर देते थे। मनोरंजन के साथ उनमें देशभक्ति का भाव स्पष्ट नजर आता था। पोशाक से शोषक अँग्रेजों तथा शोषित भारतीयों का स्पष्ट चित्रण दिखाई देता था। संवादों में नागरिक अधिकारों का हनन, लोकतंत्र, सुशासन, न्याय और स्वतंत्रता साफ दिखाई देते थे। बालगंगाधर तिलक के निधन के बाद जब महात्मा गांधी राजनीतिक परिदृश्य में आए तो 1921 में द्वारकादास नारायणदास संपत ने 'भक्त विदुर' फिल्म बनाई, जो वास्तव में 1919 के रॉलेक्ट एक्ट के विरुद्ध चले आंदोलन की पृष्ठभूमि पर बनी थी। इस मूक फिल्म में महाभारत में कौरवों के पतन को भारत में अँग्रेजी शासन के पतन के रूप में फिल्मांकित किया गया था। स्वाभाविक था कि सरकार ने उस पर तत्काल प्रतिबंध लगा दिया। बाद में 1922 में यह फिल्म 'धर्म विजय' शीर्षक से प्रदर्शित हुई। इस फिल्म के प्रदर्शन के दौरान प्रत्येक शो में दर्शकों द्वारा स्वतंत्रता संग्राम के पक्ष में देशभक्ति युक्त गीत गाए जाते थे (नेशनल फिल्म आर्काइव ऑफ इंडिया, 2012)। वर्ष 1921 से 1947 के बीच करीब ऐसी दो दर्जन फिल्मों का निर्माण हुआ, जिनमें प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष तौर पर अँग्रेज सरकार को खलनायक के रूप में प्रदर्शित किया गया था। हालाँकि अँग्रेज सरकार ने उनका गला घोंटने के भरसक प्रयत्न किए, परंतु वे ऐसा नहीं कर पाए। ऐसी फिल्मों की काट के लिए अँग्रेजों ने 1938 में एक अँग्रेजी फिल्म 'द ड्रम' का निर्माण कराया, जिसमें भारतीयों को गैर-भरोसेमंद और अँग्रेजों के विरुद्ध षड्यंत्र रचने वाले लोगों के रूप में प्रदर्शित किया गया। इस फिल्म के प्रदर्शन पर रोक लगाने की माँग को लेकर पूरा बंबई उन दिनों सड़कों पर उतर आया था। सीमांत गांधी खान अब्दुल गफ्फार खान ने भी उस पर प्रतिबंध लगाने की पुरजोर माँग की थी।

राष्ट्रीय गौरव की पुनर्स्थापना

सिनेमा के माध्यम से राष्ट्रीय चेतना के निर्माण के साथ-साथ भारतीय सिनेमा ने सामाजिक कुरीतियों, अंधविश्वास तथा कालबाह्य परंपराओं के विरुद्ध भी आवाज बुलंद की। 'दुनिया न माने' (1936) फिल्म के माध्यम से बेमेल विवाह के विरुद्ध आवाज उठाई गई और विधवा पुनर्विवाह का समर्थन किया गया। इसी प्रकार 'इंदिरा एम.ए.' (1934) और 'रतन' (1944) के माध्यम से बालविवाह, अनब्याही माताओं की समस्याएँ, दहेज प्रथा आदि के विरुद्ध देशवासियों को झकझोरा गया। मास्टर विनायक द्वारा निर्मित हास्य-व्यंग्य से भरपूर फिल्म 'ब्रांडी की बोतल' (1939) के माध्यम से मदिरापान के नुकसान बताए गए और 'घर की रानी' (1940) के माध्यम से पश्चिमी जीवनशैली के अंधानुकरण के नुकसान बताए गए। फिल्म निर्माताओं के इन प्रयासों को उस समय स्वतंत्रता संग्राम से जुड़े बड़े नेताओं की ओर से जमकर शाबाशी प्राप्त हुई। फिल्म 'ब्रांडी की बोतल' तो बाकायदा सरदार पटेल द्वारा प्रस्तुत विशेष प्रस्तावना से आरंभ होती थी। इसी प्रकार चंदूलाल शाह द्वारा निर्मित 'अछूत' (1940) को महात्मा गांधी और सरदार पटेल दोनों का आशीर्वाद प्राप्त था। 'अछूत' के प्रदर्शन के दौरान सरदार पटेल का एक कथन प्रमुखता से दिखाया जाता था, जिसमें वे कहते थे कि यदि एक फिल्म छूआछूत के अभिशाप को दूर करने में इतनी सहायक हो सकती है तो भारत को स्वराज दिलाने में भी सहायक हो सकती है (शर्मा, 2005)। प्रभात की 'धर्मात्मा' (1935), 'अछूत कन्या' (1936), तेलुगू फिल्म 'माला पिल्ला' (1940) और 'महात्मा फुले' (1944) में प्रभावी ढंग से छुआछूत और जातिगत भेदभाव के विरुद्ध आवाज उठाई गई थी। स्वतंत्रता संग्राम में महात्मा गांधी जैसे बड़े नेता अस्पृश्यता निवारण और बाल विवाह निषेध, विधवा पुनर्विवाह तथा सार्वजनिक जीवन में महिलाओं की सक्रियता के संबंध में बराबर आवाज उठाते थे। सिनेमा ने इस संबंध में उनके संदेश को जन-जन तक पहुँचाया। भक्ति परंपरा ने जातिगत बंधनों को तोड़कर मानवता का संदेश दिया। भारतीय सिनेमा में दादासाहब फालके भक्ति आंदोलन के सबसे बड़े पुजारी कहे जा सकते हैं, क्योंकि उनके द्वारा निर्मित कुल 102 फिल्मों में से 97 फिल्में भारतीय इतिहास और संतों की आध्यामित्क दृष्टि पर ही आधारित थीं। इन फिल्मों ने भगवान के बजाय राष्ट्र को अध्यात्म का केंद्र बनाया।

फिल्मों के माध्यम से शक्ति का प्रतीक मातृशक्ति भी भारतीय राष्ट्र का केंद्र बनी। बंकिम चंद्र चट्टोपाध्याय ने 'वंदेमातरम्' की रचना कर एकजुट भारत की कल्पना को मजबूत किया। चूँकि फिल्में समूह में देखी जाती थी और फिल्मों की जो विषयवस्तु थी उससे परिवार के बुजुर्ग सहमत थे, इसलिए महिलाओं को घर से बाहर जाकर सिनेमा देखने की अनुमति आसानी से मिल जाती थी। इस संबंध में उन दिनों भगिनी निवेदिता और काँग्रेस नेता सरोजिनी नायडू रोल मॉडल के रूप में उभरीं। यह सर्वविदित है कि स्वाधीनता संग्राम में पुरुषों की भाँति महिलाओं ने भी बलिदान दिया। इसके अलावा कुछ ने अपने आभूषण दिए तो किसी ने अपना बेटा, पति या भाई और कुछ तो खुद ही लड़ाई में कूद पड़ीं। महिलाओं को प्रोत्साहित करने के लिए 'फिल्मिस्तान' की (1944) फिल्म 'चल चल रे नौजवान' में एक देशभक्ति गीत आया—'आया तूफान आया तूफान, जाग भारत की नारी'। फिल्मों ने उस समय भारतीय जीवन मूल्यों को बढ़ावा दिया और पश्चिमी जीवनशैली की कमियों को उजागर किया। धीरेन गांगुली की 'इंग्लैंड रिटर्ण्ड' (1921) में उन भारतीयों का जमकर मखौल उड़ाया गया, जो आँख मूँदकर पश्चिमी जीवनशैली को अपना चुके थे। इसी प्रकार वी. शांताराम की 'पड़ोसी' (1941), 'एकता' (1942), 'हम एक हैं' (1946) के माध्यम से राष्ट्रीय अखंडता को मजबूत किया गया। जमींदारों और शाहुकारों द्वारा किसानों के शोषण को बाबूराव पेंटर की 'सावकारी पाश' (1925) में बहुत ही प्रभावी ढंग से उठाया गया। बाद में बंगाली फिल्म 'देशेर माटी' (1938), तेलुगू फिल्म 'रिथु बिद्दा' (1940), हिंदी फिल्म 'औरत' (1940), 'डॉक्टर' (1941) व 'धरती के लाल' (1946) में भी किसानों की समस्याओं का चित्रण किया गया। शहरी बेरोजगारी, मजदूर यूनियनबाजी, अमीर-गरीब के बीच की खाई, सामाजिक-आर्थिक असमानता और गरीबी को 'मजदूर' (1934), 'प्रेजीडेंट' (1937), 'वंदेमातरम्' (1939), 'रोटी' (1942), नीचा नगर (1946), आदि फिल्मों के माध्यम से प्रभावी ढंग से उठाया गया (नेशनल फिल्म आर्काइव ऑफ इंडिया, 2012)।

सिनेमा पोस्टर

राष्ट्रीय चेतना के जागरण में फिल्मी पोस्टरों की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। 1944 में निर्मित 'चल चल रे नौजवान' का घोष वाक्य था 'ब्रिंगिंग लाइट टू अ वेक्सड नेशन'। इसी प्रकार प्रभात की 'हम एक हैं' (1946) की 'टैगलाइन' थी 'टर्न ईस्ट-एंड हियर इंडिया स्पीक्स! इज टुडेज टिप टू द वेस्ट'। 1947 में निर्मित 'एक कदम' के एक पोस्टर में तो नेताजी सुभाषचंद्र बोस का ही चित्र छाप दिया गया था (विट्टल, 2018)। चूँकि अँग्रेजों को हिंदी ठीक से समझ में नहीं आती थी, इसका फायदा उठाकर 'अपना घर' (1942), 'नया तराना' (1943), 'प्रेम संगीत' और 'अमर ज्योति' (1936) में ऐसे उत्तेजक गीत इस्तेमाल किए गए, जिन्हें अँग्रेज सरकार ने निश्चित रूप से प्रतिबंधित कर दिया होता यदि उन्हें हिंदी समझ में आती। फिल्म 'आज का हिंदुस्तान' (1940) में 'चरखा चलाओ बहनों', 'बंधन' (1940) में कवि प्रदीप के 'चल चल रे नौजवान' तथा 'किस्मत' (1940) के 'दूर हटो ए दुनियावालो हिंदुस्तान हमारा है' आदि गीतों ने देशवासियों को स्वतंत्रता संग्राम के प्रति गहरायी से झकझोर दिया। फिल्म 'किस्मत' के गीतों के कारण तो कवि प्रदीप और अनिल बिस्वास के विरुद्ध गिरफ्तारी के वारंट जारी हुए थे और उससे बचने के लिए उन्हें कुछ महीने भूमिगत रहना पड़ा था (विट्टल, 2018)। पुराने सिनेमा पोस्टर्स में से अभी कुछ ही पोस्टर्स उपलब्ध हैं। ऐसा ही एक पोस्टर है फिल्म 'कल्याण खजिना' (1924) का, जिसे फिल्म के निर्देशक बाबूराव पेंटर ने स्वयं डिजाइन और चित्रित किया था (डॉयर और पटेल, 2020)। उन दिनों फिल्मों के पोस्टर्स की पेंटिंग हाथ से होती थी और उसके बाद उनकी सस्ते कागज पर छपाई होती थी। चूँकि उन दिनों फिल्मों की प्रसिद्धि के लिए प्रिंट माध्यम ही थे, इसलिए फिल्मी गीतों और कहानी की छोटी पुस्तकें तथा हस्तनिर्मित पोस्टरों का खूब इस्तेमाल होता था (मजूमदार, 2020)।

ब्रिटिश सेंसर बोर्ड की आँख में धूल झोंकते देशभक्ति गीत

फिल्मों के शीर्षक, विषयवस्तु, संवाद और पोस्टर आदि के अलावा फिल्मों के गीतों ने राष्ट्रीय चेतना को पुष्ट किया। 80-85 साल पुराने उन गीतों को आज भी बहुत पसंद किया जाता है। वर्ष 1935 में संगीतकार नागरदास ने प्रफुल्ल राय द्वारा निर्देशित फिल्म 'बलिदान' में 'जागो जागो भारतवासी, एक दिन तुम थे जगद्गुरु, जग था उन्नत अभिलाषी' स्वरबद्ध कर देशवासियों को स्वाधीनता के लिए प्रेरित किया। इस गीत के बाद उसी वर्ष नागरदास की ही धुन पर पंडित सुदर्शन का लिखा हुआ एक और देशभक्ति भाव से ओतप्रोत गीत फिल्म 'कुँवारी या विधवा' में आया—"भारत की दीन दशा का तुम्हें भारत वालो, कुछ ध्यान नहीं"। उसी वर्ष चंदूलाल शाह द्वारा निर्देशित फिल्म 'देस दासी' में दो गीत थे—'सेवा खुशी से करो देश के रे जीवन हो जाए फूलबगिया' और 'यही है पूजा यही इबादत, यही है भगवत भजन हमारा, वतन की खिदमत'। वाडिया मूवीटोन की 1935 एक फिल्म आई 'देश दीपक' जिसका एक गीत 'हमको है जाँ से प्यारा, प्यारा वतन हमारा, हम बागबाँ हैं इसके' बहुत लोकप्रिय हुआ। 1936 में ही मूवीटोन की एक और फिल्म 'जय भारत' में एक देशभक्ति गीत था 'हम वतन के वतन हमारा, भारत माता जय जय जय'। बाल गायक मोहम्मद तथा सरिता देवी ने फिल्म 'लुटारू ललना' (1938) के लिए एक गीत गाया—'जुग जुग चमके हिंद का तारा, झंड़ा ऊँचा रहे हमारा'। मोहम्मद ने इससे पहले 'वीर भारत' (1934) और 'जय भारत' (1936) के लिए भी गीत लिखे थे। अशोक कुमार और देविका रानी द्वारा अभिनीत 'जन्मभूमि' (1936) में देविका रानी का गाया एक गीत था 'माता ने है जन्म दिया, जीने के लिए'। इसी फिल्म में एक और गीत था 'जय जय जननी जन्मभूमि', जिसे अशोक कुमार ने गाया था। 1939 में फिल्म 'कंगन' में कवि प्रदीप का एक गीत था—'राधा राधा प्यारी राधा, किसने हम आजाद परिंदों को बंधन में बाँधा'। कवि प्रदीप ने बड़ी चतुराई से इस गीत में देशभक्ति का भाव भरा। 1939 में सागर मूवीटोन की एक फिल्म आई 'कॉमरेड्स'। उस फिल्म में एक गीत था—'कर दे तू बलिदान बावरे कर दे तू बलिदान, हँसते हँसते तू दे दे अपने प्राण'। यह गीत अनिल बिस्वास ने गाया था। उस दौर में कुछ ऐसी फिल्में भी आईं, जो वैसे तो व्यावसायिक दृष्टि से असफल मानी गईं, लेकिन उनके देशभक्ति गीत बहुत पसंद किए गए। ऐसी ही एक फिल्म थी 1939 में निर्मित 'पंजाब मेल', जिसके दो गीत बहुत चर्चित हुए—'इस खादी में देश आजादी दो कौड़ी में बेड़ा पार, देश भक्त ने' और 'कैद में आए नंददुलारे, दुलारे भारत के रखवारे'। 1939 में ही एक ओर फिल्म आई 'इंपीरियल मेल', जिसमें सफदर मिर्जा के लिखे दो गीत थे—'सुनो सुनो हे भाई, भारत माता की दुहाई, गैरों की गुलामी करते' और 'करेंगे देश को आजाद, जरें जरें की है जबाँ पर भारत की फरियाद'। 'करेंगे देश

को आजाद...' गीत पर तो अँग्रेज सरकार ने प्रतिबंध भी लगा दिया था। 1939 में ही एक ओर फिल्म आई 'वतन के लिए'। उसमें भी दो देशभक्ति गीत थे—'ईतहाद करो, ईतहाद करो, तुम हिंद के रहने वालो' और 'भारत के रहने वालो, कुछ होश तो सँभालो, ये आशियाँ हमारा'। उसी साल 'न्यू थिएटर्स' के संगीतकार तिमिर बरन ने फिल्म 'राग दुर्गा' के लिए 'वंदेमातरम्' गीत कंपोज किया, जिसकी धुन नेताजी सुभाषचंद्र बोस के सुझाव के अनुसार तैयार की गई। नेताजी ऐसी धुन चाहते थे जो समूहगान के रूप में गाई जाए। आजाद हिंद फौज के निर्माण के बाद 'सिंगापुर रेडियो' से वंदेमातरम के इसी संस्करण को खासतौर से बजाया गया था।

वर्ष 1940 में 'आज का हिंदुस्तान' फिल्म का गीत 'चरखा चलाओ बहनो, कातो ये कच्चे धागे, धागे ये कह रहे हैं' बहुत चर्चित हुआ। उसी दौरान ई.पी. कंगा प्रोडक्शन की फिल्म 'आजादी ए वतन' का गीत 'सर करो वतन पे कुर्बान, मुल्क के सारे नौजवान, सर करो कुर्बान' काफी पसंद किया गया था। फिल्म 'जंग-ए-आजादी' में वाहिद कुरैशी का लिखा एक गीत था 'वीरो, वीरो, हो जाओ कुरबान, अपनी इज्जत गैरत का हम लें दुश्मन से बदला'। इसी प्रकार फिल्म 'हमारा देश' में मुंशी यादव का लिखा गीत था—'हम देश के हैं परवाने मस्ताने दीवाने, आजादी के अफसाने'। फिल्म 'हिंदी का लाल' में दो गीत थे, 'भारत की पत राखो भगवंत, भारत की पत राखो' और 'मुबारक हो, मुबारक हो, ये हिंद का लाल मुबारक हो'। फिल्म 'जय स्वदेश' के गीत 'जय स्वदेश, जय-जय स्वदेश, हम भारत के गुण गाएँगे' और 'भारत के काले बादल छाए रहेंगे कब तक' बहुत चर्चित हुए। 1940 में आई फिल्म 'हिंदुस्तान हमारा' का गीत 'हिंदोस्ताँ के हम हैं हिंदोस्ताँ हमारा है जमीं हमारी है आसमाँ हमारा' बहुत चर्चित था। इसी फिल्म में एक स्वदेशी भाव का गीत भी था—'चरखा चल के काम बनाए, चरखा आए गरीबी जाए, निकले चरखे से जब तार....'। 1940 में 'वसीयत' फिल्म का गीत 'हिंदमाता के तुम्हीं संतान हो, नौजवानों तुम वतन के शान हो' दिल को छूने वाला गीत था। 1940 में जब दिल्ली में 'बंधन' का प्रदर्शन हुआ तो कवि प्रदीप द्वारा लिखित गीत 'चल चल रे नौजवान, कहना मेरा मान' ने लोगों को इतना रोमांचित कर दिया कि सिनेमा हॉल में बार-बार इसे ही दिखाने की वे माँग करते थे। कई शो में तो फिल्म की समाप्ति पर इस गीत को फिर से बजाया जाता था। चूँकि यह गीत बच्चों के लिए प्रेरक था, इसलिए उन दिनों हिंदी की कुछ पाठ्यपुस्तकों में भी इसे शामिल किया गया था। बाल कलाकार सुरेश द्वारा गाया गया यह गीत बहुत पसंद किया गया। इस गीत का कितना असर था उसका अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि 1944 में जब एस. मुखर्जी, अशोक कुमार, कवि प्रदीप आदि ने बांबे टाकीज छोड़कर फिल्मिस्तान स्टुडियो की स्थापना की तो उनकी पहली फिल्म का शीर्षक ही था 'चल चल रे नौजवान'। इस फिल्म में भी अशोक कुमार द्वारा गाया गया एक प्रेरक गीत था 'जय भारत देश, तेरी जय, भारत के नौजवानों चलो एक राह पर, ऐ हिंदू मुसलमानो, चलो एक राह पर'। अशोक कुमार और देविका रानी द्वारा अभिनीत फिल्म 'अनजान' (1941) में गीत था 'खींचो कमान खींचो, ओ भारत माँ के नौजवान', जिसे अशोक कुमार ने ही गाया था। 1941 में बनी फिल्म 'तुलसी' का गीत 'स्वर्ग है भारत देश हमारा' बहुत चर्चित हुआ। 'तुलसी' के बाद 1942 में 'अपना घर' फिल्म आई, जिसमें एक गीत था 'अपना घर अपना घर अपना देश है अपना घर'। 1943 तक 'अँग्रेजों भारत छोड़ो' के नारे देश की गली-गली में गूँजने लगे थे। भारत छोड़ो आंदोलन ने भी फिल्मों में देशभक्ति के जुनून को बढ़ावा दिया। उसी समय आई फिल्म 'किस्मत' ने अब तक के सभी रिकॉर्ड तोड़ दिए। "कलकत्ता के 'चित्र प्लाजा' थिएटर में यह फिल्म लगातार साढ़े तीन साल चली और बॉक्स ऑफिस के सारे रिकॉर्ड तोड़ दिए, और 'किस्मत' के इस रिकॉर्ड को आगे चलकर 1970 के दशक में फिल्म 'शोले' ने तोड़ा" (प्रजापति, 2014)। 'किस्मत' के गीत 'आज हिमालय की चोटी से फिर हमने ललकारा है, दूर हटो ऐ दुनियावालो हिंदुस्तान हमारा है' ने स्वतंत्रता संग्राम की अग्नि को ऐसी हवा दी कि लपटें बहुत ऊपर तक उठीं और बहुत दूर तक उन लपटों ने राष्ट्रीयता की रोशनी बिखेरी। 1943 में नितिन बोस निर्देशित फिल्म 'काशीनाथ' में देशभक्ति गीत था 'हम चले वतन की ओर, खेंच रहा है कोई हमको'।

वर्ष 1944 में 'पगली दुनिया' के गीत 'सोए हुए भारत के मुकद्दर को जगा दे' ने जबर्दस्त धूम मचाई। गुलाम हैदर ने फिल्म 'भाई' (1944) के लिए एक गीत लिखा 'हिंदू मुस्लिम सिख ईसाई, आपस में हैं भाई भाई', जिसे श्याम सुंदर ने गया। इससे पहले उन्होंने 'पूँजी' (1943) के लिए भी एक गीत लिखा था 'हे माता, अब जाग उठे हैं हम' जिसे शमशाद बेगम ने गाया था। 1944 में मोहम्मद रफी ने फिल्म 'पहले आप' के लिए एक गीत गाया—'हिंदुस्तान के हम हैं हिंदुस्तान हमारा, हिंदू-मुस्लिम दोनों की आँखों का तारा'। नूरजहाँ ने भी 'हमजोली' (1946) के लिए एक देशभक्ति गीत गाया 'ये देश हमारा प्यारा, हिंदुस्तान जहाँ से प्यारा', जिसे हाफिज खान ने लिखा था। द्वितीय विश्व युद्ध की पृष्ठभूमि में बनी 'बड़ी माँ' (1945) में नूरजहाँ ने अभिनय भी किया था। उस फिल्म में दो देशभक्ति गीत थे, जिन्हें लता मंगेशकर ने गाया था—'माता, तेरे चरणों में गुजर जाए उमरिया' और 'जननी जन्मभूमि... तुम हो माँ, बड़ी माँ'। लता और आशा भोसले दोनों ने इस फिल्म में अभिनय किया था। फिल्म 'सोना चाँदी' (1946) में लता मंगेशकर ने एक गीत गाया—'प्यारे बापू के चरणों की ले लो कसम, प्यारे प्यारे तिरंगे की ले लो कसम'। देव आनंद की पहली फिल्म 'हम एक हैं' (1946) का गीत 'हम जाग उठे हैं सो कर' हुस्नलाल भगतराम ने लिखा था। भारत का राष्ट्रगान घोषित होने से पहले गुरुदेव रवींद्रनाथ टैगौर द्वारा रचित 'जन गण मन' 'हमराही' (1945) फिल्म में शामिल किया गया था। मूल गीत वर्तमान राष्ट्रगान से भी लंबा था। उसी फिल्म में एक और गीत था 'बढ़े बढ़े चलो, बढ़े चलो, बढ़े चलो जवानो', जिसे रायचंद बोराल ने लिखा था (मनकोटिया, 2020)।

गीतों की पुस्तिका

फिल्म 'बंधन' (1940), 'किस्मत' (1943) और 'जीवन यात्रा' (1946) में झकझोर देने वाले गीत थे—'चल चल रे नौजवान', 'दूर हटो ए दुनिया वालो हिंदुस्तान हमारा है', 'आओ आजादी के गीत गाते चलें'। इन गीतों की रचना राष्ट्रभक्त गीतकारों गुरुदेव रवींद्रनाथ टैगोर, कवि प्रदीप तथा सुब्रह्मण्यम भारती आदि ने की थी। उन दिनों कुछ फिल्मों के साथ गीतों की पुस्तक भी साथ दी जाती थी, जिसका मुखपृष्ठ अत्यंत आकर्षक हुआ करता था। गीतों की पुस्तकों ने देशवासियों को अँग्रेजों के विरुद्ध खड़ा करने में बड़ी भूमिका निभाई। 1943 में द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान रिलीज हुई फिल्म 'किस्मत' महज एक देशभक्ति फिल्म नहीं

थी। यह मनोरंजन के साथ रोमांचित कर देने वाली फिल्म थी, जिसका गीत 'दूर हटो ए दुनियावालो हिंदुस्तान हमारा है' लोगों को झूमने के लिए मजबूर कर देता था। हकीकत यह है कि यह गीत जर्मन और जापानियों को संबोधित करते हुए गाया था, जिनके साथ ब्रिटेन युद्ध लड़ रहा था। इस गीत की कुछ पंक्तियों—'शुरू हुआ है जंग तुम्हारा, जाग उठो हिंदुस्तानी, तुम न किसी के आगे झुकना, जर्मन हो या जापानी, आज सभी के लिए हमारा यही कौमी नारा है'—में किए गए कुछ शब्दों के खेल के कारण यह गीत ब्रिटिश सेंसर बोर्ड से पास हो पाया। ब्रिटिश सरकार कुछ भी समझे, परंतु आम देशवासी इस गीत के एक-एक शब्द का अर्थ समझता था। यही कारण था कि 'किस्मत' के प्रदर्शन के दौरान दर्शकों की माँग पर इस गीत को बार-बार सुनने के लिए फिल्म की रील को वापस घुमाना पड़ता था। सिनेमा हॉल में बैठे दर्शकों में भी वही जोश दिखाई देता था जो फिल्म में दर्शाए गए लोगों में था। उस समय सेंसर बोर्ड की आँखों में धूल झोंकने के लिए गीतों में ऐसे शब्द, रूपक, कटाक्ष, व्यंग्य, प्रतीक आदि इस्तेमाल होते थे, जिन्हें ब्रिटिश सरकार के अधिकारी समझ ही नहीं पाते थे, लेकिन देशवासी उन्हें ठीक से समझते थे (मनकोटिया, 2020)। वर्ष 1941 में बनी सोहराब मोदी की 'सिकंदर' में एक गीत था 'जीते देश हमारा, भारत है घर-बार हमारा, भारत है संसार हमारा'। भले ही फिल्म में यह गीत सिकंदर की सेना पर विजय की कामना हेतु था, परंतु इसने देश में देशभक्ति का ज्वार पैदा किया, क्योंकि लोगों को यह भाव स्पष्ट रूप से समझ में आता था कि विजय आखिर किस पर चाहिए। फिल्मी गीतों की पहुँच घर-घर तक ही नहीं हुई, बल्कि राजनीतिक रैलियों में भीड़ जुटाने के लिए भी उनका जमकर इस्तेमाल हुआ। कलम, गीत, उनके रचनाकार और गायक सभी की लोगों को स्वतंत्रता संग्राम से जोड़ने में भूमिका थी। 1945 के आसपास जब यह साफ दिखाई देने लगा था कि अब देश आजाद होने ही वाला है और ब्रिटिश सेंसर बोर्ड की पकड़ ढीली पड़ने लगी तो फिल्में और उनके गीत अँग्रेज शासन पर और अधिक सीधा और तीखा प्रहार करने लगे।

स्वतंत्रता संग्राम में नई ऊर्जा का संचार करने वाले गीतों की सूची बहुत लंबी है। 'भारत माता जय जय जय (जय भारत, 1936), 'हम वतन के वतन हमारा', हे धन्य तू भारत नारी, महिमा है तेरी न्यारी (भारत की बेटी, 1936), हमारा प्यारा हिंदुस्तान, प्यारा हिंदुस्तान (अमर प्रेम, 1936), 'जागो जागो भारतवासी, एक दिन तुम थे जगत् गुरु (समाज पतन, 1937) ने देशभक्ति का ज्वार पैदा किया। बहुत से गीत हैं, जिन्होंने पूरे देश में लोगों को झकझोरा—'भारत है सुख चैन हमारा, अपना वतन है सबको प्यारा' (हिज हाइनेस, 1937), 'सारे देशों से न्यारी, प्यारी भारत माता हमारी' (कर्मवीर, 1938), 'चलो सिपाही, करो सफाई, हाथ धरो झाड़ू' (ब्रह्मचारी, 1938), 'धरती माता बालक तेरे चरणों में शीष नवाएँ' (तूफान एक्सप्रेस, 1938), 'हिंद माता की तुम संतान हो, नौजवानों तुम वतन की शान हो (वसीयत, 1940), 'जागो जवानो, जागो जवानो, नवजुग आया रे' (अमृत, 1941), 'ए हिंद के सपूतो, जागो, हुआ सवेरा, हिंदू हों या मुसलमान, हम सब हैं भाई भाई' तथा 'हिंदुस्तान वालो, हिंदुस्तान वालो' (कोशिश, 1943) आदि। इनके अलावा हिंदी फिल्मों के और भी बहुत से गीत हैं, जिन्होंने स्वतंत्रता संग्राम के आखिरी पड़ाव पर राष्ट्रीय चेतना के जागरण में बड़ी भूमिका निभाई—'माता माता मेरी माता, भारत माता (तकदीर, 1942), 'भारत देश हमारा, हरा भरा हरियारा' (मुस्कराहट, 1943), 'वतन से चला है वतन का सिपाही' (चाँद, 1944), डूबते भारत को बचाओ, मेरे करतार' (परिंदे, 1945), 'हम पंछी हैं आजाद, हमें कोई पिंजरे में क्यूँ डाले' (नसीब, 1945), 'ए वतन मेरे वतन, तुम पे मेरी जान निसार' (गुलामी, 1945), 'चले मुसाफिर, खाक वतन की लेकर, देश पराये' (पन्नादाई, 1945), 'जय हिंद जय हिंद, हिंद की कहानियाँ, ये हिंद की कहानियाँ' (मानसरोवर, 1946), 'सदियों से है गुलाम, जन्मभूमि हमारी', 'आजाद हैं हम आज से, जेलों के ताले तोड़ दो, अँग्रेजों भारत छोड़ दो' (अंहिसा, 1947), 'नाच रही थी भारत माता, आजादी के आँगन में' (जंजीर, 1947)।

हिंदी फिल्मों के अलावा अन्य भारतीय फिल्मों ने भी देशवासियों में राष्ट्रीय चेतना के जागरण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। पी.वी. राव द्वारा 1933 में निर्मित मलयालम फिल्म 'मार्तंड वर्मा' भी एक देशभक्तिपूर्ण फिल्म थी। वर्ष 1935 में सुप्रसिद्ध स्वतंत्रता सेनानी ज्योतिप्रसाद अग्रवाल ने प्रथम असमिया फिल्म 'जॉयमती' बनाई। इसी प्रकार 1932 में बनी 'नरसिंह मेहता' पहली गुजराती फिल्म थी। उड़ीसा में पहली फिल्म 'सीता विवाह' थी, जो 1936 में मोहन सुंदर देब गोस्वामी ने बनाई। पहली सवाक् तेलुगू फिल्म 'भक्त प्रहलाद' एच.एम. रेड्डी ने बनाई। रेड्डी ने ही 1931 में द्विभाषी फिल्म 'कालीदास' बनाई थी। इसी प्रकार अन्य भाषाओं में भी फिल्में बनीं, जिन्होंने स्वतंत्रता संग्राम के दौरान देशवासियों में देशभक्ति का जज्बा पैदा किया। राष्ट्रीय चेतना का विकास करने वाली फिल्मों का निर्माण स्वतंत्रता के पश्चात् भी जारी रहा। इस दृष्टि से 1950 के दशक की सबसे कामयाब फिल्म महबूब खान की 'मदर इंडिया' (1957) मानी जाती है। इससे पहले 1952 में बंकिमचंद्र चटर्जी के उपन्यास पर बनी फिल्म 'आनंद मठ' आई, जिसका निर्देशन स्वतंत्रता सेनानी हेमेन गुप्ता ने किया था। स्वतंत्रता के बाद राष्ट्रीय चेतना और देशभक्ति के भाव को पुष्ट करने वाली फिल्मों में 'हकीकत' (1964), 'हमसाया' (1968), 'प्रेम पुजारी' (1970), 'ललकार' (1972), 'हिंदुस्तान की कसम' (1973), 'विजेता' (1982) 'आक्रमण' (1975), 'प्रहार' (1991), 'बॉर्डर' (1997), 'एलओसी करगिल' (2003), 'टैंगो चार्ली' (2005), 'शौर्य' (2007), 'गाजी अटैक' (2017) के नाम लिए जा सकते हैं। 1960-70 के दशक में अभिनेता हरिकिशन गिरि गोस्वामी उर्फ मनोज कुमार ने फिल्मों में देशभक्ति के भाव को जिंदा रखा। इसीलिए उन्हें 'भारत कुमार' उपनाम भी मिला। उन्होंने फिल्म 'शहीद' (1965) में 'क्रांतिकारी' भगत सिंह की भूमिका निभाई। उनकी 'उपकार' (1967) तथा 'पूरब और पश्चिम' (1970) आज भी हिट हैं।

निष्कर्ष

स्पष्ट है कि फिल्मों ने स्वतंत्रता संग्राम के दौरान देशवासियों में राष्ट्रीय चेतना के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। हालाँकि, उन दिनों फिल्मों की पहुँच शहरी क्षेत्रों तक ही सीमित थी। ग्रामीण क्षेत्रों में सिनेमाघर न होने के कारण वहाँ के लोग परंपरागत संचार माध्यमों पर अधिक निर्भर थे। फिर भी फिल्मों के बारे में जानकारी किसी-न-किसी माध्यम से सब लोगों तक पहुँच ही जाती थी। इस संबंध में विभिन्न भारतीय भाषाओं में निर्मित फिल्में अधिक प्रभावी साबित हुईं। फिल्मों के संवाद, चित्र, गीत आदि देशभक्ति का भाव पैदा करते थे। फिल्मों से संबंधित इसी प्रकार की

सामग्री को संरक्षित करने की दृष्टि से भारत सरकार ने 2019 में भारतीय सिनेमा के राष्ट्रीय संग्रहालय की स्थापना मुंबई में की है। यह स्थान दर्शकों को भारतीय सिनेमा की 100 वर्ष की यात्रा से परिचित कराता है। सौ वर्ष से अधिक की अपनी यात्रा में सिनेमा ने देशवासियों में राष्ट्रीय को मजबूत करने के साथ-साथ सामाजिक बुराइयों से लड़ने की हिम्मत भी पैदा की। भारत की आजादी का अमृत महोत्सव आज ऐसा अवसर है जब भारतीय सिनेमा से जुड़े विभिन्न आयामों यानी संवाद, कहानी, चित्र, पृष्ठभूमि, शीर्षक, कलाकार, गीत, संगीत, गायक, संगीतकार, कैमरामैन, तकनीक, पोस्टर, वितरण तंत्र, आदि का गहन अध्ययन करने की आवश्यकता है। मूक फिल्मों से वर्तमान वेब सीरीज तक की यात्रा अपने अंदर अनेक रोमांचक पहलुओं को समेटे हुए है, जिस पर शोध की आवश्यकता है। सिनेमा सिर्फ मनोरंजन का माध्यम मात्र नहीं है, यह लोगों का परिवर्तन हेतु मानस तैयार करता है। इसलिए बदलती तकनीक के साथ इस माध्यम का उपयोग देशवासियों में सकारात्माक बदलाव का मानस तैयार करने के लिए किया जाना चाहिए।

संदर्भ

अंकुर, सी. (1994). *हिंदी फिल्में : एक ऐतिहासिक अध्ययन*. नई दिल्ली : राहुल पब्लिशिंग हाउस.

कौल, जी. (1998). *सिनेमा एंड फ्रीडम स्ट्रगल*. नई दिल्ली : स्टर्लिंग पब्लिशर्स.

चड्ढा, एम. (1990). *हिंदी सिनेमा का इतिहास*. नई दिल्ली : सचिन प्रकाशन.

चेरियन, वी.के. (2016). *इंडियन फिल्म सोसायटी मूवमेंट : द जर्नी एंड इट्स इम्पेक्ट*. नई दिल्ली : सेज पब्लिकेशंस इंडिया प्रा. लि.

जॉन, के. (2019). द *पोस्टर वार ऑफ इंडियन फ्रीडम स्ट्रगल*. https://www.hindustantimes.com/cities/the-poster-war-of-indian-freedom-struggle/story-4wv8HSJ5GMuuY9dplqFe2O.html से पुनःप्राप्त.

डॉयर, आर. एंड पटेल, डी. (2002). द *विजुअल कल्चर ऑफ हिंदी फिल्म*. न्यू जर्सी : रटगर्स यूनिवर्सिटी प्रेस.

द टाइम्स ऑफ इंडिया. (7 जुलाई, 1896). 'द टाइम्स ऑफ इंडिया' के बंबई संस्करण में प्रकाशित विज्ञापन.

धारप, बी.वी. (1985). *इंडियन फिल्म्स*. नेशनल फिल्म आर्काइव ऑफ इंडिया, पृ. 35.

नारायण, ए. (2008). *आरंभकला तमिल सिनेमा* (1931-1941). चेन्नई : विजय पब्लिकेशंस.

नेशनल फिल्म आर्काइव ऑफ इंडिया. (2012). *स्वदेशी : करखानिस*. https://web.archive.org/web/20130921054328/https://indiancinema100.in/swadeshi/ से पुनःप्राप्त.

नेशनल म्यूजियम ऑफ इंडियन सिनेमा. (2021). https://filmsdivision.org/wp-content/uploads/2019/02/NMIC-broshure-14-jan-compressed.pdf से पुनःप्राप्त.

प्रजापति, एम. (सं). (2014). *हिंदी सिनेमा : बिंब-प्रतिबिंब*. दिल्ली : शिल्पायन पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स.

बनर्जी, एस. श्रीवास्तव, ए. (1988). *वन हंड्रेड इंडियन फीचर फिल्म्स : एन एनोटेटिड फिल्मोग्राफी*. नई दिल्ली : रॉटलेज टेलर एंड फ्रांसिस ग्रुप.

मनकोटिया, ए. (2020). *हाउ डिड इंडियन मूवीज एंड सोंग्स इंसपा_यर आवर फ्रीडम स्ट्रगल?* https://www.thequint.com/entertainment/indian-cinema/indian-independence-day-freedom-struggle-gandhi-netaji-hindi-patriotic-films-songs-british-rule से पुनःप्राप्त.

मजूमदार, आर. (2020). द *बांबे फिल्म पोस्ट*. https://www.india-seminar.com/2003/525/525%20ranjani%20mazumdar.htm से पुनःप्राप्त.

विट्टल, बी. (2018). *ऑन इंडियन सिनेमा एंड पैट्रोटिज्म*. https://www.thehindu.com/entertainment/movies/cinema-indian-independence-patriotic-cinema/article24744170.ece से पुनःप्राप्त.

रिपोर्ट्स ऑफ फिल्म इंक्वायरी कमेटीज, 1927-28 तथा 1949-50.

शर्मा, एम. (2005). *नेशनल मूवमेंट एंड करंट्स ऑफ सोशल रिफॉर्म इन हिंदी सिनेमा*, 1931-1947. इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस.

संचार माध्यम | खंड 34(1) : 20-30, जनवरी-जून 2022
आईएसएसएन: 2321-2608

हिंदी सिनेमा गीतों में साहित्य, लोकतत्त्व और संप्रेषण

डॉ. राजीव श्रीवास्तव[1]

सारांश

भारतीय हिंदी सिनेमा में गीत-संगीत वर्ष 1931 से प्रारंभ होकर 2020 तक के अपने नौ दशक में साहित्य, लोकतत्त्व एवं संप्रेषण का एक जीवंत स्वरूप लिए हुए है। 'साहित्य समाज का दर्पण है' उक्ति को चरितार्थ करते हुए हिंदी सिने गीत-संगीत ने साहित्य और सिनेमा के मध्य एक सूत्र का कार्य निष्पादित किया है, जो अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। हिंदी सिनेमा में प्रादेशिक-आंचलिक गीत-संगीत की भी एक वृहद् शृंखला है जो सिनेमाई गीतों में समय-समय पर परिलक्षित होती रही है। इन सब प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष तत्त्वों-कारकों पर विवरण प्रस्तुत करता यह शोध पत्र दशकवार सिने गीत-संगीत में आने वाले परिवर्तनों, नवीन कथ्यों-तथ्यों का समावेश तथा शैलीगत परिवर्तनों जैसे अन्य भिन्न-भिन्न सूक्ष्म एवं गूढ़ पक्षों पर दृष्टिपात करता है। सिने गीतों में भाषा और इसकी शब्दावलियों में शुद्ध हिंदी एवं संस्कृतनिष्ठ शब्दों का प्रयोग करने के साथ ही उर्दू, फारसी, अँग्रेजी के शब्दों का घाल-मेल प्रचुर मात्रा में किया गया है। इसके कारणस्वरूप यह तर्क दिया जाता रहा है कि संस्कृत-हिंदी के शुद्ध शब्द जन साधारण में सहज रूप से ग्राह्य नहीं हो पाते, जिसके परिणामस्वरूप अन्य भाषा के प्रचलित शब्दों को हिंदी सिने गीतों में जोड़ देना एक अनिवार्यता बन चुकी है, परंतु यह पूर्ण सत्य नहीं है। हिंदी सिने गीतों में हिंदी साहित्य के अनुरूप ढेरों ऐसे गीत हैं, जो विशुद्ध हिंदी साहित्यिक शब्दावलियों के संग जन-जन में लोकप्रिय होकर कालजयी श्रेणी में अपना स्थान बनाए हुए हैं। हिंदी पद्य साहित्य के अनुरूप ही अनेकानेक सिने गीतों में अलंकार, प्रतीक, उपमा, बिंब, रूपक का प्रयोग दर्शनीय है। इसी प्रकार विभिन्न प्रकार के भावों का निरूपण भी सिने गीतों में प्रमुखता से किया गया है। सिनेमाई गीतों का साहित्यिक विश्लेषण भी महत्त्वपूर्ण है। किसी फिल्म के कथानक और उसके संवाद की तुलना में गीतों में साहित्य और लोक तत्त्वों का प्रयोग अधिकता में सहज रूप से हुआ है। इसी प्रकार पाश्चात्य संगीत से परे भारतीय शास्त्रीय राग-रागिनियों के प्रयोग से हिंदी गीतों की लोकप्रियता एवं उनकी स्वीकार्यता से यह कथ्य स्वतः ही सिद्ध होता है कि भारतीय शास्त्रीय एवं लोक संगीत की पैठ काल और समय के प्रत्येक चक्र में समान रूप से जन साधारण के मध्य लोकप्रिय रही है। इसकी गहनता एवं सघनता का पुट वर्तमान समय में भी दृष्टिगोचर है। प्रस्तुत शोध पत्र हिंदी सिने गीतों में साहित्य के संस्कार, लोकतत्त्व के वैभव एवं संप्रेषण के प्रभावी कारकों तथा अन्य संबंधित सूत्रों का एक सुव्यवस्थित आलेख है।

संकेत शब्द : हिंदी सिने गीत-संगीत, साहित्यिक गीत, लोकतत्त्व, संप्रेषण, सामवेद, लोक संगीत

प्रस्तावना

हिंदी सिने गीत-संगीत अपने अस्तित्व से ही जन चेतना के जागरण और सामाजिक सरोकार के अपने दायित्व के प्रभावी निरूपण के प्रति समर्पित रहा है। भारत की प्रथम बोलती फिल्म 'आलम आरा' (1931) के साथ ही हिंदी सिनेमा ने गाना भी प्रारंभ कर दिया था। तब गीत-संगीत के नाम पर पौराणिक एवं ऐतिहासिक काव्य और ग्रंथ से गीत लेकर उसे प्रचलित लोक धुनों में गूँथकर परोस दिया जाता था। मूक फिल्मों के समय से चली आ रही संगीत मंडली द्वारा फिल्म के प्रदर्शन के समय ही जीवंत गीतों की प्रस्तुति की परिपाटी बाद के कुछ वर्षों तक चलती रही। फिल्म 'धूप छाँव' (1935), जो बांग्ला में 'भाग्य चक्र' के नाम से निर्मित हुई थी, से भारत में पार्श्वगायन विधा का सूत्रपात हुआ था। इस विधा के आने से सिने गीत-संगीत की प्रस्तुति में क्रांतिकारी परिवर्तन हुए। गीतों में विशेष रूप से इसके गायन पक्ष की गुणवत्ता में अभिवृद्धि होने के साथ ही समय-समय पर तकनीक में होने वाले अन्वेषण तथा नूतन यंत्रों के प्रयोग ने सिने गीत-संगीत को और भी आकर्षक एवं प्रभावी बनाया है। सिनेमा के प्रारंभिक वर्षों में नायक-नायिका स्वयं ही अपने गीत गाते थे, पर पार्श्वगायन विधा ने उन कलाकारों के लिए सरल मार्ग प्रशस्त कर दिया, जो अभिनय में तो निपुण थे, परंतु गीत-संगीत में सहज न होने के कारण प्रायः वांछित परिणाम देने में असमर्थ होते थे। इसी प्रकार जो गायक-गायिका गायन में तो कुशल थे, परंतु अभिनय की पाठशाला से उत्तीर्ण नहीं थे उन्हें भी इस विधा ने संतोष धन से विभूषित कर दिया (गुप्ता, 2000)।

अभिव्यक्ति की अपनी अलग-अलग शैली लिए कवि, शायर, गीतकार हिंदुस्तानी सिनेमा में गीत रचते चले आए हैं। प्रायः एक ही बात को जब दो अलग गीतकार कहते हैं, तब उनमें अंतर स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। किसी की कही बात लोगों को भा जाती है तो किसी की ओर ध्यान ही नहीं जाता। यही अंतर एक को असाधारण बना देता है तो दूसरा साधारण ही रह जाता है। हिंदी फिल्मों में हजारों की संख्या में गीत लिखने वाले रहे होंगे, पर इनमें से कुछ ही लोग ऐसे हैं, जिन्हें हम उनकी रचनाओं के कारण श्रेष्ठता की श्रेणी में रख पाए हैं। सिने गीतों के स्वर्णिम काल में कुछ गिने चुने कवि-गीतकार-शायर रहे हैं, जिन्होंने अप्रतिम रचनाएँ दी हैं। लाखों की संख्या में गीत रचे गए, पर उनके रचनाकारों की संख्या मात्र हजारों तक ही सिमट कर रह जाती है तथा जब असाधारण प्रतिभाओं की गिनती की जाती है तब यह संख्या दहाई के अंक तक ही बढ़ पाती है। सन् 2020 में हिंदी सिने गीत-संगीत ने अपनी नब्बे वर्ष की यात्रा पूरी कर ली है। अपनी यात्रा के इन नौ दशकों में फिल्मी गीत विभिन्न पड़ावों से होते हुए अपने विगत में संस्मरणों एवं अनुभवों की एक न समाप्त होने वाली शृंखला लिए हैं। उपलब्धियों एवं कीर्तिमानों की एक वृहद् धरोहर हमारे साथ है। इतिहास के पृष्ठों को पलटकर इन्हें फिर से देखना सुखद तो

[1]वरिष्ठ लेखक, अध्येता, व्याख्याता, सिने इतिहासवेत्ता, कवि-गीतकार एवं फिल्म निर्देशक. ईमेल : rajeevrsvpshrivastav@gmail.com

है ही, साथ ही यह आने वाली पीढ़ियों के लिए प्रेरणास्रोत भी है। सिने गीत-संगीत के स्वर्ण काल पर केंद्रित यह शोध पत्र हिंदी सिने गीतों में दशकवार साहित्य, लोक तत्त्व, संदेश, जन जागरण, संप्रेषण तथा अन्य संबंधित कारकों की विवेचना अपने आप में एक रुचिपूर्ण गतिविधि के साथ ही आनंदित करने वाला प्रयोजन है (श्रीवास्तव, 2020)।

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध पत्र केदार शर्मा, सुरैया, देव आनंद, मजरूह सुल्तानपुरी, हसरत जयपुरी, मन्ना डे, लता मंगेशकर, हसरत जयपुरी, नीरज, नौशाद, खय्याम, डॉ. पृथ्वी मधोक, राहुल देव बर्मन, इरा रोशन, राजेश रोशन, सरल मुकेश, शमशाद बेगम, सितारा देवी, पं. रविशंकर, तलत महमूद, आशा भोंसले, महेंद्र कपूर, अरविंद कुमार, कल्याणजी-आनंदजी, अमीन सायानी, रवि, लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल, इंदीवर, गुलशन बावरा, योगेश, जे. ओमप्रकाश, कमलेश्वर, जगजीत सिंह, कमल बारोट, उषा खन्ना, मनहर उधास, शैली शैलेंद्र, नितिन मुकेश, उदित नारायण, कुमार शानू, वीजू शाह, स्वानंद किरकिरे, साधना सरगम, आनंद-मिलिंद, प्रेम धवन, मनोज कुमार, अमिताभ बच्चन, रवींद्र जैन, वहीदा रहमान, आशा पारिख, श्याम बेनेगल, यश चोपड़ा, श्रेया घोषाल, मोनाली ठाकुर जैसे मूर्धन्य सिने व्यक्तित्वों से शोधकर्ता की समय-समय हुई प्रत्यक्ष बातचीत पर आधारित है। ये भेंटवार्ताएँ वर्ष 1991 से 2010 के मध्य हुई हैं। साथ ही कुछ पुस्तकों, फिल्म इंडिया, माधुरी और फिल्मफेयर जैसी फिल्म पत्रिकाओं, फिल्म प्रचार पुस्तिकाओं, राष्ट्रीय फिल्म संग्रहालय आदि से भी तथ्य जुटाए गए हैं।

हिंदी सिने गीतों में साहित्य, लोक तत्त्व एवं संप्रेषण

भारत वर्ष में गीत-संगीत मानव के जन्म से लेकर मृत्यु पर्यंत तक साथ चलने वाला एक ऐसा महत्त्वपूर्ण कारक है, जो जीवन के हर छोटे-बड़े उत्सव को लेकर दु:ख-दर्द, उल्लास, उमंग, हास-परिहास, मिलन-बिछोह, प्रेम, प्रणय, शृंगार जैसे ढेरों मनोभावों को अभिव्यक्त करने का एक सशक्त माध्यम है। हिंदुस्तान में गीतों की परंपरा का एक वृहद् इतिहास है। मानव सभ्यता के साथ ही कवि और कविता भी अस्तित्व में आ गए। 'वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगा गान'। वास्तव में इनसान का रुदन भी एक ऐसे काव्यात्मक स्वरूप को स्थापित करता है, जो सुर-ताल की परिधि में सूक्ष्म भावनाओं तक की अभिव्यक्ति के स्पंदन की अनुभूति कराता है। एक शिशु के रुदन एवं हास्य में आरोह-अवरोह की जिस शृंखला का प्रतिपादन होता है, वह मूलत: राग-रागनियों की परिधि से घिरा अत्यंत मर्मस्पर्शीय उद्गार ही है। भारत की विश्व प्रसिद्ध वैदिक संस्कृति एवं वेदवाणी के नियामक चारों वेद मूलत: शब्दों के गेय पक्ष को ही स्थापित करते हैं। जिस प्रकार ऋग्वेद के संवाद सूक्त को अभिनय की उत्पत्ति का सूत्र माना जाता है, उसी प्रकार संगीत का निर्गम 'सामवेद' है। सामवेद पूर्ण रूप से संगीत प्रधान काव्य है, जो एक ऐसा पवित्र सरोवर है, जिसमें शब्दों के मोतियों को पद्य के कलेवर में सजाकर जिस संपूर्णता को परिलक्षित किया गया है, वह सुर-सरिता की अद्भुत शास्त्रीय प्रकृति में सहज रूप से निरूपित हुआ है। संगीत के सात सुरों की उत्पत्ति का विधान सामवेद से ही उत्सर्जित है—षडज् (सा), ऋषभ (रे), गांधार (गा), मध्यम (म), पंचम (प), धैवत (ध), निषाद (नि)। ऋत्विकों द्वारा सातों स्वरों की विभिन्न विद्याओं के माध्यम से मंत्रमुग्ध गायन द्वारा ब्रह्म स्तुति एवं ब्रह्म-रस की प्राप्ति की जाती थी। 'सामवेद' के मंत्रों का गान करने वाला 'उद्गाता' कहलाता है, जिसे हमारे शास्त्रों में 'ऋषि-महर्षि' के समतुल्य माना गया है। 'उद्गाता' को हम वर्तमान समय में 'महागायक' कह सकते हैं। भारत के प्राचीनतम साहित्य में संस्कृत भाषा के अतिरिक्त अवधी, ब्रज तथा अन्य समस्त भारतीय प्रादेशिक भाषाओं सहित हिंदी पद्य साहित्य में जो कुछ भी रचा गया, वह काव्य का ही स्वरूप लिए हुए है (सामवेद, 2011)। वाल्मीकि रामायण, श्री रामचरित मानस, भगवद्गीता के संग समस्त पौराणिक, धार्मिक एवं ऐतिहासिक ग्रंथ काव्य को ही ध्वनित करते हैं। काव्य या पद्य के अनिवार्य तत्त्व के रूप में संगीत सदैव इसका एक ऐसा सखा रहा है, जिसने शब्दों को सदैव प्रभावी एवं मनभावन रूप से अनुप्राणित किया है। भारतीय लोक साहित्य का आधार भी पद्यात्मक ही रहा है और यह भी संगीत के सरल स्वरूप में स्वयं को इस प्रकार प्रस्तुत करता रहा है कि शीघ्र ही सामाजिक ताने-बाने में यह सहज रूप में घुलमिल गया। इस संदर्भ में संगीत का व्यापक प्रभाव इस बात से आँका जा सकता है कि 'आल्हा-ऊदल' का साहित्य अपने लेखन स्वरूप के सापेक्ष गायन विधा में अत्यधिक प्रचारित एवं प्रसारित हुआ है, जो आज भी विद्यमान है। प्राचीन नौटंकी, नाटक, रंगमंच के पश्चात् जब भारत में मूक फिल्मों का युग प्रारंभ हुआ, तब से ही गीत-संगीत सिनेमा का अभिन्न अंग बन गया। भारतीय सिनेमा और विश्व के अन्य देशों के सिनेमा में यदि प्रत्यक्ष रूप से किसी एक मूलभूत अंतर की बात कही जाए तो इसका सहज उत्तर होगा, 'गीत-संगीत'। हिंदुस्तानी फिल्म जगत् अर्थात् बॉलीवुड के सिनेमा में गीत-संगीत एक अनिवार्य तत्त्व है, जो फिल्मों को रोचक एवं प्रभावशाली बनाने में विशेष भूमिका का निर्वाह करता है। साथ ही किसी संदेश विशेष एवं कथानक के मूलभाव को गीतों द्वारा सरलता से अभिव्यक्त किया जाता है। इसके विपरीत पश्चिमी सिने संसार अर्थात् हॉलीवुड की फिल्मों में गीतों की कोई परिपाटी नहीं है। मूक फिल्मों को वाणी मिल जाने से अभिव्यक्ति सरल, सहज और सशक्त होकर जन-जन के मध्य अत्यंत प्रभावी रूप में मुखरित हुई है (श्रीवास्तव, 2020)।

भारतीय सिने गीतों की विकास यात्रा एवं संप्रेषणीयता

अखंड भारत में सिनेमा जगत् में आए क्रांतिकारी परिवर्तन का उद्घोष तब हुआ, जब पहली बार मूक फिल्मों ने बोलना प्रारंभ किया। गूँगे जगत् से निकलकर स्वर की पतवार थाम जब हिंदी सिनेमा ने विश्व पटल पर अपनी उपस्थिति अंकित कराई तब यह क्षण एक ऐसे ऐतिहासिक समय का परिचायक बना, जिसने आने वाले समय में उपलब्धियों एवं कीर्तिमानों की झड़ी लगा दी। भारत की प्रथम सवाक् फिल्म बनने का गौरव प्राप्त हुआ 'इंपीरियल मूवीटोन' मुंबई की प्रस्तुति 'आलम आरा' को। अर्देशिर एम. ईरानी निर्देशित यह फिल्म उस समय की बंबई अर्थात् आज की मुंबई के 'मैजिस्टिक' सिनेमा हॉल में 14 मार्च, 1931 को प्रदर्शित की गई थी (श्रीवास्तव, 2020)। हिंदी-उर्दू मिश्रित तब की आम बोलचाल की भाषा में बनाई गई इस फिल्म के पटकथा लेखक स्वयं फिल्म के निर्देशक अर्देशिर एम. ईरानी थे तथा संवाद लेखन किया था जोसेफ डेविड ने। इस फिल्म के गीत भी जोसेफ डेविड ने ही लिखे थे। 'आलम आरा'(1931) फिल्म में विभिन्न भूमिकाओं का निर्वाह करने वाले प्रमुख कलाकार थे—मास्टर विट्ठल, जुबेदा, पृथ्वीराज कपूर, वजीर मुहम्मद खान एवं जगदीश

सेठी। 'आलम आरा' से ही भारतीय सिनेमा ने न सिर्फ बोलना प्रारंभ किया, बल्कि गीत, संगीत एवं नृत्य का समावेश भी पहली बार इसी फिल्म में हुआ। हालाँकि मूक फिल्मों के दौर में भी गीत-संगीत का प्रयोग हुआ करता था, पर तब इसके लिए गायक एवं वादक फिल्म दिखाए जाने के समय मंच के एक किनारे बैठकर कहानी एवं दृश्य के अनुरूप बीच-बीच में गीत-संगीत प्रस्तुत किया करते थे। विज्ञान तथा तकनीक के विकास ने 'आलम आरा' के माध्यम से पहली बार हिंदुस्तानी सिनेमा को बोलना, गाना और नृत्य करना सिखाया। फिरोजशाह एम. मिस्त्री एवं बी. ईरानी संयुक्त रूप से इस फिल्म के संगीतकार थे। इस फिल्म के द्वारा प्रथम फिल्म गीत का स्थान पाने वाला गीत था—'दे दे खुदा के नाम पे प्यारे, ताकत हो गर देने की, कुछ चाहे अगर तो माँग ले मुझसे, हिम्मत हो गर लेने की...' (चौरसिया, रिकॉर्ड संग्रहकर्ता)। इस फिल्म के कलाकार वजीर मुहम्मद खान यानी डब्लू.एम. खान ने इसे गाकर फिल्मी जगत् के प्रथम गायक बनने का गौरव प्राप्त किया। यहीं से प्रारंभ हुई भारतीय सिने गीतों की महायात्रा, जो विभिन्न पड़ावों से होती हुई आज भी अनवरत प्रवहमान है।

स्वर्णकाल के पूर्व का सिने गीत-संगीत (1931-1950)

वर्ष 1931 में उपलब्ध सूचना के आधार पर सामाजिक पृष्ठभूमि पर आधारित सिर्फ तीन फिल्में ही प्रदर्शित हुई थीं। इंडियन आर्ट पो. बंबई की 'ट्रैप्ड' यानी 'फरेबी जाल', कृष्णा टोन बंबई की 'घर की लक्ष्मी' और मदान थियेटर्स कलकत्ता की 'समाज का शिकार' (एनएफएआई)। मदान थियेटर्स, कलकत्ता की सामाजिक फिल्म 'गरीब की दुनिया' (1934) में नागर दास संगीतकार थे। इस फिल्म के लिए किसने गीत लिखे थे, इसकी सूचना तो उपलब्ध नहीं है, पर इस फिल्म में सम्मिलित कुछ गीतों के मुखड़ों से यह प्रतीत होता है कि संभवत: ये समाज में प्रचलित लोकगीत रहे होंगे और उन्हें या तो उसके मूलरूप में अथवा उनमें तनिक परिवर्तन करके फिल्म में ले लिया गया होगा। 'रंग भीनी चुँदरिया भीगी जात मोरी छलके गगरिया', 'सेजरिया न सोहाय कटे नहीं रतियाँ, साँवरिया मोरे आओ' में पारंपरिक लोक छवि के दर्शन होते हैं। अजंता सिनेटोन, बंबई की सामाजिक फिल्म 'मिल' (1934) अर्थात् 'मजदूर' मुंशी प्रेमचंद की कहानी पर आधारित थी और स्वयं उन्होंने ही इस फिल्म की कथा एवं संवाद लिखे थे। इस फिल्म के संगीतकार थे बी.एस. हूगन, पर इसके गीतकार की सूचना उपलब्ध नहीं है। सूरदास रचित एक पदावली 'प्रभु मोरे अवगुन चित न धरो, समदर्शी है नाम तिहोरा', के अतिरिक्त 'आओ गले मिल जावो मैं वारी सइयाँ', 'हमारी फुलबगिया में आओ महाराजा, मोरी फुलबगिया में बेला चमेली', 'पत राखो न राखो तिहारी मरजी, बदनामी तो हो गई उमर भर की' जैसे गीत पूर्वी शैली के लोकगीत के रंग समान ही हैं (श्रीवास्तव, 2020)। ऐसी ही प्रकृति लिए सागर मूवीटोन, बंबई, की सामाजिक फिल्म 'नाचवाली' (1934) के गीत भी थे। इस फिल्म के गीतकार की भी सूचना उपलब्ध नहीं है, पर गीत पारंपरिक लोक शैली के ही थे। 'तिरछी नजरिया से मार गयो बालम, जब से गए मोरी सुधहु न लीनी', 'गगरी मोरी भरन लागी, ऐसो ढीठ लंगरवा काहे' के साथ ही इसमें अमीर खुसरो रचित पारंपरिक शैली का प्रसिद्ध गीत 'बाबुल मोरा नैहर छूटो जाए, चार कहार मिल डोलिया उठावें' भी था।

महालक्ष्मी सिनेटोन, बंबई, की सामाजिक फिल्म 'सेवा सदन' (1934) मुंशी प्रेमचंद की कहानी पर आधारित थी और इसके संवाद उन्होंने ही लिखे थे। प्राप्त सूचना के अनुसार इस फिल्म के गीत पं. संपतलाल श्रीवास्तव 'अनुज' ने लिखे थे (संथोलिया, रेकॉर्ड संग्रहकर्ता)। 'जमुना तट राम खेलें होरी, दौर दौर पिचकारी चलावत', 'नाही नाही जाना सौतन घर सैंया, मोरे सौंया लागू पैंया', 'नैनों की मारी कटारी गुइयाँ, हमसे न जाए सहारी गुइयाँ' जैसे गीत लोक साहित्य को दर्शाते हैं। सागर मूवीटोन, बंबई की सामाजिक फिल्म 'शहर का जादू' के. पी. घोष के निर्देशन में महान अभिनेता मोतीलाल की पहली फिल्म थी। उस दौर में मोतीलाल अपने स्वाभाविक अभिनय, आकर्षक संवाद संप्रेषण, सुंदर व्यक्तित्व एवं मनमोहक शैली के लिए जाने जाते थे। हिंदी सिनेमा में पहले प्रणयी नायक यानी रोमांटिक हीरो की छवि उन्हीं की थी और आगे चलकर 1950 के बाद के समय में चरित्र अभिनेता की एक अलग शैली उन्होंने ही विकसित की, जिसे बाद में बलराज साहनी, संजीव कुमार, अनुपम खेर, नसीरूद्दीन शाह जैसे कलाकारों ने आगे बढ़ाया। मोतीलाल के प्रशंसकों में जवाहरलाल नेहरू सहित तब के बड़े-बड़े राजनेता, अँग्रेज प्रशासक, राजकीय अधिकारी, लेखक, कलाकार तो थे ही, साथ ही जन सामान्य में भी उनकी गहरी पैठ थी। तब मोतीलाल ही एक मात्र ऐसे सिने कलाकार थे, जिनका सम्मान संभ्रांत परिवारों और राजघरानों में भी अत्यधिक था। अपनी पहली फिल्म में मोतीलाल ने अभिनय के साथ-साथ गीत भी गाया था। 'मुझसे सुंदर कोई नहीं है, कोई नहीं हो सजना' उन्होंने ही गाया था। इस फिल्म के संगीतकार थे के.सी. डे, परंतु इसके गीतकार की सूचना उपलब्ध नहीं है।

शक्ति मूवीटोन, बंबई, की सामाजिक फिल्म 'आजादी' (1935) के संगीतकार और गीतकार की जानकारी अनुपलब्ध है। इसमें कबीरदास का एक भजन 'घूँघट के पट खेल तोको पीव मिलेंगे' के साथ परंपरागत लोक शैली के गीत भी थे—'नारी चंद्र पुरुष चितवन चकोर, रस सुधा धार बरसत अपार', 'रंग केसरिया भर लो जयति जय हो सखियों, मद मर्दों के हर लो'। ईस्टर्न आर्ट्स, बंबई, की सामाजिक फिल्म 'भारत की बेटी' (1935) में अनिल विश्वास का संगीतबद्ध किया रतनबाई का गाया अत्यधिक प्रसिद्ध भजन 'तेरे पूजन को भगवान बना है मंदिर आलीशान' भी था। इसके गीतकार का नाम तो ज्ञात नहीं है, पर यह भजन अलग-अलग समय पर कई गायक-गायिकाओं द्वारा गाया गया है। पारंपरिक धुनों और गीतों की श्रेणी में इसे रखा जा सकता है, क्योंकि धुनों और शब्दों में तनिक-बेसी बदलाव करके इसे समय के लंबे चक्र में बार-बार दोहराया गया है। न्यू थियेटर्स, कलकत्ता की सामाजिक फिल्म 'देवदास' (1935) के गीतकार थे केदार शर्मा और संगीतकार तिमिर बरन थे। लोक साहित्य, परंपरा और उत्कृष्ट गीतों के संदर्भ में इस फिल्म के सभी गीत सिने काव्य के नगीने हैं। के.सी. डे का गाया 'न आया मन का मीत उमरिया बीत गई सारी', 'न पी की नगरिया आए हैं, न चैन करेजवा पाए हैं' के अतिरिक्त तब के सुप्रसिद्ध नायक-गायक के.एल. सहगल के गाए दो गीतों के काव्यात्मक स्वरूप को निहारना नि:संदेह आनंददायक है—'दुख के अब दिन बीतत नाही, सुख के दिन थे एक स्वपन'। इस गीत के काव्य सौंदर्य को के.एल. सहगल ने अपनी गायकी से जिस प्रकार मूर्त रूप दिया है, वह अविस्मरणीय है। हिंदी सिनेमा में पार्श्वगायन की परंपरा की नींव रखने का ऐतिहासिक कार्य जिस फिल्म के गीत द्वारा हुआ था, वह न्यू थियेटर्स, कलकत्ता, की सामाजिक फिल्म

'धूप छाँव' (1935) थी। रायचंद बोराल और पंकज मलिक ने मिलकर इस फिल्म का संगीत रचा था और गीत थे पं. सुदर्शन के। पार्श्वगायन अर्थात् किसी अन्य के गाए गीत पर किसी दूसरे कलाकार द्वारा उसे अपने द्वारा गाए जाने का अभिनय करना (गुप्ता, 2000)। भारतीय सिनेमा में प्रारंभ से नायक-नायिका द्वारा अपने गीत स्वयं गाए जाने की परंपरा रही है। जो कलाकार गायकी में सिद्धहस्त थे, उन्हें तो गीत गाने में कोई असुविधा नहीं होती थी, पर जिन्हें गायन से कोई सरोकार नहीं था या फिर जिनका स्वर सधा नहीं हुआ करता था, उन ढेरों कलाकारों के लिए सिनेमा में पार्श्वगायन की पद्धति वरदान बनकर सामने आई। 'धूप-छाँव' फिल्म के जिस गीत से पार्श्वगायन की नींव रखी गई, उसके बोल हैं—'मैं खुश होना चाहूँ, खुश हो न सकूँ'। इसे स्वर प्रदान किया था पारुल घोष, सुप्रोवा सरकार और हरिमति ने। पार्श्वगायन की मूल कल्पना पंकज मलिक के मस्तिष्क की उपज थी, पर चूँकि इस गीत का संगीत रायचंद बोराल ने निर्मित किया था, फलस्वरूप इस विधा के जनक के रूप में उनका नाम आता है। सही अर्थों में इसमें पंकज मलिक एवं रायचंद बोराल का नाम संयुक्त रूप में लिया जा सकता है, पर प्रथम नाम तो पंकज मलिक का ही लिया जाएगा। आर.सी. बोराल की अद्भुत संगीत प्रतिभा को लखनऊ संगीत सम्मेलन में देखकर तब संगीत मनीषियों ने उन्हें 'सारस्वत महामंडल' की उपाधि से विभूषित किया था। पं. सुदर्शन का एक अन्य गीत था, जिसे के.सी. डे यानी कृष्ण चंद डे ने फिल्म के लिए गाया था और अलग से इसे के.एल. सहगल ने भी रिकार्ड किया था। यह गीत अपने काव्य रूप में कितना प्यारा है इसे इसके शब्द स्वयं उजागर करते हैं—'जीवन का सुख आज प्रभु मोहे, जीवन का सुख आहा'। गाने की इस प्रक्रिया को 'वर्जन' रिकार्ड या गीत कहा जाता है, यानी किसी मूल गीत को जब कोई अन्य गायक-गायिका पुन: गाता है या रिकार्ड करता है उसे 'वर्जन सॉङ्ग' कहा जाता है। आज भी 'वर्जन सॉङ्ग' की परंपरा चल रही है। सहगल के गाए इस वर्जन गीत को सिनेमा का पहला वर्जन गीत कहा जा सकता है। अजंता सिनेटोन, बंबई की सामाजिक फिल्म 'नवजीवन' (1935) के लेखक थे मुंशी प्रेमचंद। इस फिल्म के गीतकार की सूचना उपलब्ध नहीं है, पर इसमें लोक शैली के कुछ गीत अवश्य सम्मिलित थे—'धीरे-धीरे झुलइयो मोरा जिया लरजे', ' काहे करत मोसे रार', 'डार डार पात पात फूले अजब बहार' ऐसे ही गीत थे। इसी क्रम में बांबे टाकीज, बंबई की सामाजिक फिल्म 'अछूत कन्या' (1936) के गीत भी महत्त्वपूर्ण थे। 'हरी बसे सकल संसार, जल थल में, आकाश पवन में', 'मैं बन की चिड़िया बन के बन बन डोलूँ रे', 'पीर पीर क्या करता है तेरी पीर न जाने कोय', इस फिल्म के लोकप्रिय गीतों में सम्मिलित हैं। केदार शर्मा की एक सुंदर रचना न्यू थियेटर्स की सामाजिक फिल्म 'करोड़पति' (1936) में पंकज मलिक के संगीत में इस प्रकार है—'जगत् में प्रेम ही प्रेम भरा है, बिना प्रेम यहाँ कुछ न धरा है'(संथोलिया, रिकॉर्ड संग्रहकर्ता)।

तब की बंबई में जिस फिल्म से पार्श्वगायन का श्री गणेश हुआ, वह सागर फिल्म कंपनी की सामाजिक फिल्म 'महागीत' (1937) थी। इसके संगीतकार अनिल विश्वास थे और गीतकार थे जिया सरहदी। इस फिल्म में 'तुम्हारी सुरतिया मोहे दीवाना बनाए', 'आ री सखी री मैं तोहे प्रीत सिखा दूँ', 'सुख की मूरत बीत गई, दुख भया है जीवनसाथी' जैसे लोक शैली के गीत थे। न्यू थियेटर्स, कलकत्ता की सामाजिक फिल्म 'प्रेसीडेंट' (1937) में कुछ गीत ऐसे हैं, जो सिने इतिहास में अमर हो चुके हैं। रायचंद बोराल के संगीत में ढला के. एल. सहगल का गाया यह गीत आज भी स्मरण किया जाता है—'एक बंगला बने न्यारा, रहे कुनबा जिसमें सारा'। इस रचना के गीतकार का नाम ज्ञात नहीं है, पर इसकी प्रकृति से यह प्रतीत होता है कि यह पारंपरिक गीत है। कल्पना की सुंदर उड़ान लिए यह गीत आज सहगल के स्वर में अद्वितीय बन पड़ा है। इसी फिल्म में एक बाल गीत है, जिसे सहगल ने कहानी शैली में पहले कविता पाठ के रूप में और फिर गाकर प्रस्तुत किया है। इस गीत को फिल्म संगीत का पहला लोकप्रिय बाल गीत भी कहा जाएगा, जिसकी प्रारंभिक पंक्तियाँ हैं—'एक राजे का बेटा, लेकर उड़ने वाला घोड़ा'। न्यू थियेटर्स की ही एक अन्य सामाजिक फिल्म 'धरती माता' (1938) में पंकज मलिक के संगीत में पं. सुदर्शन के लगभग सभी नौ अति सुंदर गीत हैं। एक गीत है—'दुनिया रंग रँगीली, बाबा दुनिया रंग रँगीली'। यह गीत अपने शब्दों, भावों और साहित्यिक स्पर्श तथा इसमें समाए उमंग के अनगिनत तत्त्वों को सुर सरिता की अपूर्व लय में जिस प्रकार उद्घाटित करता है, वह मन के पोर-पोर को झंकृत कर जाता है। पंकज मलिक, उमा शशि, सहगल के स्वरों में यह समूह गान सिने साहित्य की एक अनमोल कृति है। इस गीत में पहली बार तकनीक का एक नया प्रयोग किया गया था, जिसे 'मिक्सिंग' कहा जाता है, यानी किसी एक गायक या गायिका द्वारा जहाँ एक पंक्ति समाप्त हो रही है और वहीं किसी अन्य गायक-गायिका की वाणी में दूसरी पंक्ति प्रारंभ हो रही है, दो स्वरों के इसी मेल को 'मिक्सिंग' कहा जाता है। अर्थात् एक स्वर धीरे-धीरे लुप्त हो रहा है और दूसरा स्वर धीरे-धीरे प्रगट हो रहा है, जिसे आज की तकनीकी शब्दावली में 'फेड आउट-फेड इन' कहा जाता है। न्यू थियेटर्स, कलकत्ता की ही एक और सामाजिक फिल्म 'स्ट्रीट सिंगर' (1938) में आर. सी. बोराल के संगीत में आरजू लखनवी के लिखे कई गीत संस्मरण की श्रेणी में आते हैं। उन्हीं में एक गीत यह भी है—'जीवन बीन मधुर न बाजे, झूठे पड़ गए तार'। इसी फिल्म में सहगल का ही गाया एक पारंपरिक गीत कालजयी कृति है—'बाबुल, मोरा नैहर छूटो ही जाय'। यह अप्रतिम रचना अमीर खुसरो की रचना पर आधारित है, जिसे लखनऊ के अंतिम मुगल शासक नवाब वाजिद अली शाह 'अख्तर पिया' ने लखनऊ छोड़ते समय उद्धृत किया था। वाजिद अली स्वयं एक बड़े शायर थे और वे अमीर खुसरो की हिंदवी (हिंदी) रचनाओं से बड़े प्रभावित थे। उन्होंने अपनी कई रचनाओं में खुसरो की ही तर्ज पर उनकी कुछ पक्तियों को लेकर शायरी प्रस्तुत की है, इसलिए कई बार इस प्रकार का भ्रम उत्पन्न हो जाता है, जिसमें मूल रचयिता को प्रायः भुला दिया जाता है। 'बाबुल मोरा' की नियति भी कुछ अपने अंदर छिपे भावों जैसी ही है, फिर भी यह कालजयी ठुमरी सदा-सदा के लिए हर युग में स्मरण की जाएगी। अमर रचना के क्रम में न्यू थियेटर्स की एक और सामाजिक फिल्म 'दुश्मन' (1939) में पंकज मलिक के संगीत में आरजू लखनवी के इस प्रसिद्ध गीत का स्वरूप कुछ यूँ है—'करूँ क्या, आस निरास भई, दीया बुझे, फिर से जल जाए, रात अँधेरी जाए, दिन आए' (बेरीवाला, रिकॉर्ड संग्रहकर्ता)।

नेशनल स्टूडियोज, बंबई, के लिए निर्देशक महबूब खाँ ने सामाजिक फिल्म 'औरत' (1940) निर्देशित की, जिसके संगीतकार थे उस दौर के जाने माने संगीत मर्मज्ञ अनिल विश्वास और गीतकार थे प्रसिद्ध विद्वान शायर डॉ. सफदर 'आह' सीतापुरी। यह फिल्म हिंदुस्तान

की उस औरत की कहानी थी, जिसने अपनी संकल्प शक्ति, दृढ़ निश्चय, न्यायप्रियता, परिश्रम, स्नेह, बंधुत्व एवं स्त्री चरित्र के गौरव द्वारा नारी की उच्च राष्ट्रीय छवि स्थापित की। इस सिनेमा के गीतों में पारिवारिक जीवन एवं सामाजिक क्रियाकलापों को जनमानस की बोली में उजागर किया गया है। एक पारंपरिक गीत 'मैं न कहूँगी मेरा सैंया री अनोखा, सैंया री अनोखा' के साथ 'मोरे अँगना में लागा अंबवा का पेड़', 'मेरे बाँके साँवरिया साँवरिया रे, मोहे ला दे चुँदरिया चुँदरिया रे' जैसे लोक साहित्य को परिष्कृत करते गाने तो इस फिल्म की शोभा द्विगुणित कर ही रहे थे, पर साथ में होली के उल्लास उमंग से परिपूर्ण त्योहार के उत्सव की अनोखी छटा बिखेरता दो भागों वाला गीत 'आज होली खेलेंगे साजन के संग' एवं 'जमना तट श्याम खेले होली, वृंदावन में धूम मची है' नगीने जैसा था। 'औरत' फिल्म इतनी प्रसिद्ध और लोकप्रिय हुई कि आगे चलकर महबूब खाँ ने 'महबूब प्रोडक्शन' के बैनर तले 'मदर इंडिया' (1957) नाम से इसी फिल्म को पुन: बनाया, यानी आज की भाषा में जिसे हम 'रीमेक' कहते हैं वही रीमेक 'औरत' का 'मदर इंडिया' के नाम से हुआ। रणजीत मूवीटोन, बंबई, की सामाजिक फिल्म 'होली' (1940) में भी एक फागुन त्योहार को उद्घाटित करता सुंदर गीत था 'फागुन की रूत आई रे, जरा बाजे बाँसरी'। इसी का दूसरा भाग था 'फिर फागुन की रुत आई रे' (बेरीवाला, रिकॉर्ड संग्रहकर्ता)। गीत दीनानाथ मधोक ने लिखा था और संगीतकार थे खेमचंद प्रकाश। भवनानी प्रोडक्शन, बंबई की सामाजिक फिल्म 'प्रेम नगर' (1940) में भी दीनानाथ मधोक ने लोक साहित्य के अनुरूप गीत लिखे थे, जिसे संगीत से सजाया था नौशाद अली ने। डी.एन. मधोक की संस्तुति पर ही फिल्म 'प्रेम नगर' में नौशाद को संगीतकार के रूप में काम दिया गया था। संगीतकार के रूप में नौशाद की यह प्रथम फिल्म थी।

गीत-संगीत के स्वर्ण युग का प्रथम दशक (1951-1960)

भारतीय सिने संगीत अंतरराष्ट्रीय स्तर पर आज अपनी जिस बहुआयामी छवि को लिए चमक रहा है, उसमें सिने गीत-संगीत का दो दशकीय स्वर्ण कालखंड का विशेष योगदान है। यही वह समय था जिसमें हिंदुस्तानी फिल्मी गीतों का उत्कृष्ट स्वरूप अपने संपूर्ण यौवन के साथ कालजयी सिंहासन पर विराजमान हुआ। भारत का सिनेमा अपने प्रारंभिक समय से ही गीतों की संगत में नए-नए पड़ाव पार करके उपलब्धियों का कलात्मक कीर्तिमान स्थापित करता हुआ आज भी सुरीलेपन की सौगात दे रहा है। सिने गीत-संगीत के आधार स्तंभों में जहाँ प्रत्येक दशक में गीत, लेखन, संगीत रचना एवं गायन में अनेक व्यक्तित्वों ने अलग-अलग कालखंडों में अपनी विशिष्ट प्रतिभा का परिचय दिया है, वहीं इन विधाओं में कुछ ऐसे भी नाम हैं, जिन्होंने सिने संगीत के स्वर्ण युग से पूर्व एवं उसके बाद के समय में भी अपनी कालजयी रचनाओं का क्रम सँजोए रखा। हिंदी सिने संगीत के सरल, सहज स्वरूप ने छठे दशक में अपना प्रभाव इस प्रकार विकसित कर लिया कि इसकी आभा से सर्वत्र इसका हृदय से स्वागत किया गया। 1951 के साल में ही प्रथम सुरीला उद्घोष हुआ, जिसकी गूँज विश्व पटल पर अपनी अमिट छाप छोड़ गई। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर यह बिगुल बजाया था आर.के. फिल्म्स के बैनर तले प्रदर्शित राजकपूर की तीसरी फिल्म 'आवारा' (1951) के गीत-संगीत ने। हिंदी सिनेमा के गीतों का स्वर्ण युग इसी फिल्म से प्रारंभ हुआ तथा कालजयी गीतों का प्रथम गान इसी फिल्म के शीर्षक गीत से शुरू हुआ। 'आवारा' फिल्म का गीत-संगीत अद्भुत था। इसके आभा मंडल ने विश्व को अचंभित कर दिया। इसकी अपूर्व चकाचौंध से संसारभर के संगीतप्रेमियों की आँखें चौंधिया गईं। भारतीय सिने संगीत का सूरज उदय होते ही शंखनाद कर उठा। स्वर्णिम काल की सूर्य रश्मियों से विश्वव्यापी प्रकाश जगमगा गया। विश्व सिनेमा के इतिहास में यह एक अनोखी, अद्भुत, विस्मयकारी एवं अलौकिक घटना थी। यह प्रथम अवसर था जब किसी हिंदुस्तानी सिनेमा ने अपने गीत-संगीत के माध्यम से अंतरराष्ट्रीय फिल्म जगत् के व्योम पर अपनी पताका फहराई थी (मुकेश, 1974)।

शंकर-जयकिशन का संगीत, शैलेंद्र के शब्द और मुकेश के स्वर की त्रिवेणी ने नायक राजकपूर के नेतृत्व में संगीत के अश्वमेघ यज्ञ का श्रीगणेश कर दिया था। संगीत के श्वेत, ओजस्वी, विराट् अश्व पर आरूढ़ होकर त्रिवेणी की पवित्र धारा चक्रवर्ती सम्राट के अपने महा-अभियान पर निकल चुकी थी। चुनौती मिलती भी तो कैसे! प्रेम, बंधुत्व तथा वसुधैव कुटुंबकम् का संदेश जो इसमें निहित था। सुस्वागतम् के समवेत स्वर दसों दिशाओं से प्रस्फुटित हो रहे थे। इस घटना का एक-एक पल इतिहास में स्वर्णिम पृष्ठ के रूप में जुड़ गया। 'आवारा' (1951) में कालजयी कृति के रूप में कवि शैलेंद्र द्वारा रचित इसका शीर्षक गीत 'आवारा हूँ, या गर्दिश में हूँ, आसमान का तारा हूँ...' अंकित है। साहित्यिक कलेवर में इस गीत के भीतर विद्यमान राजनैतिक एवं सामाजिक चेतना के तत्त्व उस आम इनसान को इंगित करते हैं, जो प्रतिकूल परिस्थितियों में भी अपना संघर्ष जारी रखता है। एक स्वप्न अपने अंदर पालता है, उसे सच में परिवर्तित करने का हौसला है उसमें। हृदय पर अनगिनत घाव हैं, फिर भी अधरों पर मुस्कान है। दुनिया की ठोकरों का मारा है, मगर विश्वास एवं प्यार का तारा है। गूढ़ बातों को अल्प शब्दों में सरलतापूर्वक अभिव्यक्त करने का नितांत अनूठा कौशल शैलेंद्र की व्यक्तिगत विशेषता थी। यह कालजयी गीत उसी कौशल का प्रतिफल है—'आवारा हूँ, या गर्दिश में हूँ, आसमान का तारा हूँ (बेरीवाला, रिकॉर्ड संग्रहकर्ता)।'

वर्ष 1953 में कालजयी स्तर के कई गीत रचे गए। अमिय चक्रवर्ती ही की फिल्म 'पतिता' (1953) में यों तो कई गीत स्तरीय बन पड़े थे, पर शैलेंद्र का लिखा एवं तलत महमूद का गाया यह गीत अपने साहित्यिक अवदान एवं स्वस्थ संदेश के कारण सदैव स्मरण किया जाएगा—'है सबसे मधुर वो गीत जिन्हें हम दर्द के सुर में गाते हैं'। निर्माता-निर्देशक विमल रॉय की अत्यंत सफल फिल्म 'दो बीघा जमीन' (1953) का सुंदर संगीत रचा था प्रतिभाशाली एवं प्रयोगवादी संगीतकार सलिल चौधरी ने। लोकप्रियता के स्तर से इस फिल्म के समस्त गीत विशेष रूप से सराहे गए, जिसमें कालजयी की श्रेणी में शैलेंद्र का लिखा 'धरती कहे पुकार के, बीज बिछा ले प्यार के, मौसम बीता जाए...' जैसा लावण्यमय गीत सम्मिलित है। इस प्रकार सलिल चौधरी हिंदी सिनेमा के एकमात्र विलक्षण प्रयोगवादी संगीतकार कहे जाएँगे। फिल्मिस्तान लिमिटेड की आख्यात्मक फिल्म 'अनारकली' (1953) के गीतों ने भी 1953 के वर्ष में अत्यधिक धूम मचाई थी। इस फिल्म के लगभग सभी गीत लोकप्रिय हुए थे, जिसमें राजेंद्र कृष्ण का लिखा कालजयी श्रेणी का यह गीत था—'ये जिंदगी उसी की है जो किसी का हो गया, प्यार ही में खो गया...' लता मंगेशकर के स्वर में यह गीत एक सुंदर अभिव्यक्ति के रूप में सामने आया है। सी. रामचंद्र का संगीत एक अनोखे रंग का आकर्षण लेकर आया था, जिसने सभी

को बेसुध कर दिया। इस वर्ष एक और उत्कृष्ट संगीत की प्रस्तुति आर.के. फिल्म्स की सामाजिक फिल्म 'आह' (1953) में सुनने को मिली। यह फिल्म व्यावसायिक रूप से सफल नहीं रही, पर इसके गीतों ने अत्यधिक प्रसिद्धि पाई। कालजयी की श्रेणी में इस फिल्म का एक युगल गीत था, जिसे हसरत जयपुरी ने लिखा था और गाया था मुकेश एवं लता मंगेशकर ने। 'आ जा रे, अब मेरा दिल पुकारा, रो रो के गम भी हारा, बदनाम न हो प्यार मेरा...' में दो बिछड़े हुए प्रेमियों की विरह वेदना को चित्रित किया गया है। दु:ख, दर्द, पीड़ा और उदास मन की व्यथा को इस गीत में मुकेश ने जिस कुशलता एवं प्रभावी ढंग से व्यक्त किया है, उसमें सुनने वाला उसे आपबीती मानकर उसी में डूब जाता है। अपनी गायकी से कोई गायक गीत में निहित दर्द या प्रसन्नता की अनुभूति यदि सुनने वालों को करा दे तो यह उस गायक विशेष की सबसे बड़ी उपलब्धि मानी जाएगी। सिने गीत-संगीत में मुकेश गीत के सूक्ष्मतम भावों को प्रभावशाली अभिव्यक्ति देने के लिए विशेष रूप से जाने जाते हैं। कोई गीत यदि भावना प्रधान है तो क्या कहने हैं, मुकेश के स्वर का स्पर्श पाते ही वह जीवंत हो उठता है।

अगले वर्ष 1954 के कालजयी गीतों में जिसका ध्यान सबसे पहले आता है वह फिल्मिस्तान की वेशभूषा प्रधान फिल्म 'नागिन' (1954) का गीत। हेमंत कुमार का संगीत राजेंद्र कृष्ण के शब्दों पर फिल्म के शीर्षक गीत पर कुछ इस प्रकार सजा था कि यह कालजयी की श्रेणी में सरलता से अपना स्थान बना गया। 'मन डोले, मेरा तन डोले, मेरे दिल का गया करार रे...' की बीन ने संगीतप्रेमियों पर ऐसा मोहक बाण चलाया कि वे सभी मस्त होकर झूमने लगे। स्वर लता मंगेशकर का था, पर इस गीत का मुख्य आकर्षण वही पारंपरिक बीन की ध्वनि थी और सँपेरों की सदियों से सुनी जा रही चिर-परिचित धुन थी, जिसे हेमंत कुमार ने सजा-सँवारकर परोसा था। इस गीत में बीन वास्तविक बीन के स्थान पर संगीतकार जोड़ी कल्याणजी-आनंदजी के कल्याणजी वीरजी शाह द्वारा पाश्चात्य वाद्य यंत्र क्लैवियोलिन, जो एक इलेक्ट्रॉनिक वाद्य यंत्र था, पर बजाया गया था। इसी गीत में इसी धुन को संगीतकार रवि ने हारमोनियम पर बजाते हुए कल्याणजी की संगत की थी (कल्याणजी-आनंदजी एवं रवि, 1999)। संगीत का स्वतंत्र रूप से कितना असर होता है या फिर कोई धुन विशेष किस प्रकार का अद्भुत प्रभाव दिखा सकती है उसे इस गीत विशेष में सहज ही अनुभूत किया जा सकता है। साधारण से शब्दों पर सुनने वालों के सर चढ़कर जो चमत्कार बोला था वह न तो शब्द रचना थी न गायिका का स्वर, बल्कि पारंपरिक बीन की धुन थी। इसी वर्ष लोकप्रियता के उच्च आसन पर जो गीत एक पग आगे रहा, वह सचिनदेव बर्मन के संगीत में फिल्म 'टैक्सी ड्राइवर' (1954) के लिए साहिर लुधियानवी का लिखा और तलत महमूद का गाया 'जाएँ तो जाएँ कहाँ, समझेगा कौन यहाँ, दर्द भरे दिल की जुबाँ...' था। इसी क्रम में गालिब की गजलों को सामान्य लोगों तक पहुँचाने का कार्य सिने संगीत ने मिनर्वा मूवीटोन की ऐतिहासिक फिल्म 'मिर्जा गालिब' (1954) में संगीतकार गुलाम मोहम्मद ने अत्यंत ही सुरीले रूप से किया था। गालिब की गजलों को पहले के. एल. सहगल के स्वर में प्रस्तुत किया जा चुका था और तब पहली बार वे जन सामान्य के मध्य लोकप्रिय हुई थीं, पर इस फिल्म में गुलाम मोहम्मद ने इन्हें और भी सरल एवं आकर्षक धुनों में प्रस्तुत कर सामान्य जन के अधरों पर बैठा दिया। सुरैया एवं तलत महमूद के युगल स्वरों में 'दिले नादाँ तुझे हुआ क्या है, आखिर इस दर्द की दवा क्या है...'। गालिब की यह अमर रचना सिने-संगीत की भी एक अनमोल कालजयी निधि बन गई। 1954 की जिस एक काव्य रचना के बिना इस वर्ष के कालजयी गीतों की चर्चा अधूरी रहेगी वह कृति कवि प्रदीप का गया 'आओ बच्चो, तुम्हें दिखायें झाँकी हिंदुस्तान की, इस मिट्टी से तिलक करो, ये धरती है बलिदान की, वंदे मातरम्...' एक ऐसा कालजयी गीत है, जो भारत की स्वतंत्रता दिवस और गणतंत्र दिवस पर अनिवार्य रूप से गाया एवं बजाया जाता है।

1955 का साल एक बार पुन: अंतरराष्ट्रीय स्तर की ख्याति लेकर आया। इसे मात्र संयोग कहा जाए अथवा प्रतिभाओं का अनूठा मेल कि इस बार भी इतिहास उन्हीं लोगों द्वारा दोहराया एवं रचा गया, जो इसे पहली बार सन् 1951 में रच चुके थे। एक बार फिर शंकर-जयकिशन, शैलेंद्र एवं मुकेश की त्रिवेणी ने राजकपूर के नेतृत्व में हिंदी सिने-संगीत में एक ऐसे गीत को जन्म दिया, जिसने विश्वव्यापी असीम लोकप्रियता का वरण कर कालजयी गीतों में अपना नाम सुनहरे अक्षरों में लिखवा लिया। शैलेंद्र ने अपनी लेखनी से इस कालजयी गीत के माध्यम से एक कालजयी संदेश दिया है। एक ऐसा संदेश, जो हर युग, हर काल और जन्म जन्मांतर भारतीयों के लिए चिरस्थायी रहेगा। आधुनिकता और प्रगति के प्रत्येक चक्र में चाहे कुछ भी फेरबदल हो जाए, परिवर्तन एवं नएपन के नाम पर कुछ भी क्यों न अपना लिया जाए या छोड़ दिया जाए, परंतु अपनी भारतीयता को भला कोई हिंदुस्तानी क्यों कर छोड़ने लगा? 'मेरा जूता है जापानी, ये पतलून इंग्लिस्तानी, सर पे लाल टोपी रूसी, फिर भी दिल है हिंदुस्तानी' का उद्घोष भारत की हर गली, हर मुहल्ले, गाँव, कस्बे, नगर, शहर, प्रांत और पाताल, धरा एवं आकाश तक में गूँज उठा। शैलेंद्र की अपनी दूरदर्शिता कितनी परिपक्व थी वह भी इस गीत के इस संदेश से पुष्ट होता है। हम भारतवासी चाहे किसी भी जाति, धर्म, पंथ, भाषा, प्रांत या रंग के क्यों न हो, पर हमारी पहचान संसार भर में हमारी राष्ट्रीयता से ही है। जब तक हमारे हृदय में हमारी भारतीयता अक्षुण्ण रहेगी तब तक हम रहेंगे और हमारा राष्ट्र भी विश्व में सर उठाकर खड़ा रहेगा। आज आतंकवाद, अलगाववाद, प्रांतवाद एवं क्षेत्रवाद की ज्वाला हर तरफ रह-रह कर धधक पड़ती है, उससे छुटकारा पाने का बस एक ही मार्ग है और वह यह है कि हर एक हिंदुस्तानी के मन में भारतीयता की अलख जगती रहे। ऐसी अलख जो धर्म, भाषा, प्रांत, रंग से ऊपर अपनी राष्ट्रीयता को सदा प्रज्वलित करती रहे। सन् 1955 में शंकर-जयकिशन, शैलेंद्र एवं मुकेश की अनूठी प्रस्तुति 'मेरा जूता है जापानी' में 'फिर भी दिल है हिंदुस्तानी' के उद्घोष ने राष्ट्रीय, अंतरराष्ट्रीय जगत् में इतना ऊँचा स्तर प्राप्त कर लिया था कि लोकप्रियता के एक से दस क्रम तक कोई गीत ठहरता ही नहीं था, यानी इस गीत के सामने अन्य गीतों की लोकप्रियता में बहुत बड़ा अंतर था।

फिल्म 'जागते रहो' (1956) में साहित्यिक मर्यादा को सरल शब्दों के साथ निभाने की कला शैलेंद्र का एक अपूर्व कौशल था, जिसे उनके प्रत्येक गीत में देखा जा सकता है। यहाँ पर इसी कालजयी गीत को देखते हैं—'जग उजियारा छाए, मन का अँधेरा जाए, किरणों की रानी गाए जागो हे मेरे मन मोहन प्यारे, जागो, मोहन प्यारे, जागो, नवयुग चूमे नैन तिहारे'। फिल्म 'चोरी-चोरी' (1956) का कालजयी युगल गीत, जिसे मन्ना डे के संग लता ने गाया था और लिखा था हसरत जयपुरी ने—'आ जा सनम मधुर चाँदनी में हम तुम मिले तो विराने में भी आ जाएगी बहार, झूमने

लगेगा आसमान' साहित्यिक रंग में ढला एक मधुर गान है। वी. शांताराम निर्देशित राजकमल कला मंदिर की सामाजिक फिल्म 'दो आँखें बारह हाथ' (1957) संगीतकार वसंत देसाई की अमर संगीत रचना के लिए आज भी स्मरण की जाती है। इस फिल्म का कालजयी गीत भरत व्यास की लेखनी से जिस सरल एवं मनोहारी रूप में सामने आया है वह वर्तमान में भी समस्त मानवता का पथ प्रदर्शन कर रहा है। लता मंगेशकर के स्वर में यह गीत आत्मिक शांति, संतुष्टि एवं स्वकर्तव्य का बोध कराता है। हिंदी भाषा के सरल शब्दों को साहित्य के स्पर्श से एक प्रार्थना का रूप कुछ यों दिया गया है—'ऐ मालिक तेरे बंदे हम, ऐसे हों हमारे करम, नेकी पर चलें और बदी से टलें, ताकी हँसते हुए निकले दम।' महबूब प्रोडक्शन की सामाजिक फिल्म 'मदर इंडिया' (1957) का लोक रंग में रंगा गीत 'होली आई रे कन्हाई रंग छलके, सुना दे जरा बाँसुरी' शमशाद बेगम के स्वर में एक कालजयी गीत है। इस फिल्म में 'गाड़ी वाले गाड़ी धीरे हाँक रे' तथा अन्य गीत भी लोक परंपरा के ही रूप को दर्शाते हैं। विमल रॉय की फिल्म 'मधुमती' (1958) के लिए शैलेंद्र का लिखा, जो गीत कालजयी की श्रेणी में आया वह मुकेश के स्वर में इस फिल्म के नायक दिलीप कुमार के होठों से इस बोल के साथ फूटा—'सुहाना सफर और ये मौसम हँसी, हमें डर है हम खो न जाएँ कहीं…'। लोक तत्त्व को अपने में समाए इस फिल्म के गीत 'डस गयो पापी बिछुआ', 'जुल्मी संग आँख लड़ी', 'घड़ी घड़ी मोरा दिल धड़के' और 'आजा रे परदेसी' की पुकार आज भी जीवंत है। 1959 का वर्ष भी कालजयी गीतों के सौंदर्य से आच्छादित था। कई बड़े ही सुंदर, मन को भाने वाले गीतों में बिमल रॉय की फिल्म 'सुजाता' (1959) का मजरूह सुलतानपुरी का लिखा, सचिनदेव बर्मन का स्वरबद्ध किया और तलत महमूद का गाया 'जलते हैं जिसके लिए तेरी आँखों के दिये, ढूँढ़ लाया हूँ वही गीत मैं तेरे लिए...' कालजयी श्रेणी का एक सदाबहार गीत है। हृषिकेश मुखर्जी निर्देशित फिल्म 'अनाड़ी' (1959) इस वर्ष की सफलतम फिल्म थी और इसका गीत-संगीत भी लोकप्रियता की प्रथम पंक्ति में था—'सब कुछ सीखा हमने न सीखी होशियारी, सच है दुनिया वालों कि हम हैं अनाड़ी।'

छठे दशक के अंतिम वर्ष 1960 में कालजयी श्रेणी में प्रमुख रूप से तीन फिल्मों का गीत-संगीत आता है। शरद प्रोडक्शन की आख्यात्मक फिल्म 'सारंगा' (1960) संगीतकार सरदार मलिक को इस वर्ष पूर्ण रूप से सिने संगीत में स्थापित कर गई। भरत व्यास के लिखे गीतों में से जिस एक गीत की महिमा संगीतप्रेमियों ने मन से गाई, वह मुकेश का गाया उत्कृष्ट श्रेणी का कालजयी गीत सिद्ध हुआ। लोक साहित्य की छवि लिए यह गीत प्रेम की पीड़ा, बिछोह की अकुलाहट एवं प्रियतमा की बाट जोहते व्याकुल मन की व्यथा और प्रेमी की मन:स्थित को चित्रित करने वाला अद्भुत गान है। गीत में कवि द्वारा व्यक्त किए गए भावों को कोई गायक उसमें संवेदना का पुट मिलाकर सजीवता के शीर्ष पर पहुँच कर मनोभावों की सूक्ष्म अभिव्यक्ति से किस प्रकार जीवंत कर सुनने वालों को अभिभूत कर सकता है, उसका प्रत्यक्ष प्रमाण है यह गीत—'सारंगा तेरी याद में नैन हुए बेचैन, मधुर तुम्हारे मिलन बिना दिन कटते नहीं रैन (मलिक, 1995)।' के. आसिफ निर्देशित स्टर्लिंग इनवेस्टमेंट कॉरपोरेशन की आख्यात्मक ऐतिहासिक, अंशत: रंगीन फिल्म 'मुगल-ए-आजम' (1960) में साहित्य एवं लोक तत्त्व को मुखर करता गीत 'मोहे पनघट पे नंदलाल छेड़ गयो रे' अविस्मरणीय है। कालजयी की श्रेणी में जिस एक अन्य फिल्म के गीत संगीत ने लोकप्रियता के शीर्ष को छुआ, वह राजकपूर की सामाजिक सरोकार की असाधारण फिल्म थी 'जिस देश में गंगा बहती है' (1960)। भारतीय संस्कृति, परंपरा एवं दर्शन को आत्मसात् किए इसका यह गीत प्रत्येक हिंदुस्तानी के गौरव को द्विगुणित करने वाला चिरयुवा गीत है—'होठों पे सच्चाई रहती है, जहाँ दिल में सफाई रहती है, हम उस देश के वासी हैं, जिस देश में गंगा बहती है'।

गीत-संगीत के स्वर्ण युग का द्वितीय दशक (1961-1970)

फिल्म 'भाभी की चूड़ियॉ' (1961) के लिए नरेंद्र शर्मा के लिखे गीतों पर सुधीर फड़के का संगीत अत्यंत मनमोहक था। शब्द, सुर, एवं स्वर की त्रिवेणी से इस फिल्म के जिन दो गीतों ने कालजयी की पदवी पाई, उनमें एक था मुकेश का गाया 'दर भी था, थी दीवारें भी, तुमसे ही घर घर कहलाया...' और दूसरा लता मंगेशकर का गाया अविस्मरणीय कालजयी गीत 'ज्योति कलश छलके, हुये गुलाबी लाल सुनहले, रंग दल बादल के...'। ये दोनों गीत हिंदी साहित्य एवं काव्य जगत् की अनूठी रचनाएँ हैं। पं. नरेंद्र शर्मा की लेखनी इन दोनों ही गीतों में अपने श्रेष्ठ स्तर पर मुखर हुई है, जो युगों-युगों तक सुनने वालों के हृदय में आशा एवं विश्वास का दीप प्रज्वलित करती रहेगी। मधुर साहित्यिक, शास्त्रीय एवं कलात्मक विशिष्टता के परिप्रेक्ष्य में इस वर्ष अपनी प्रथम फिल्म 'छोटे नवाब' (1961) के संगीत से राहुलदेव बर्मन ने अपनी प्रतिभा का लोहा मनवा दिया। इस फिल्म के सभी गीतों के रचयिता थे कवि शैलेंद्र। अपनी उत्कृष्ट साहित्यिक बोलों से शैलेंद्र ने जिस खूबी से गीत उकेरे थे उसी शास्त्रीय विशिष्टता से राहुलदेव ने उसे अपने संगीत का आवरण पहनाया है। कालजयी की श्रेणी में यह गीत अपनी मिसाल स्वयं है—'घर आ जा घिर आए बदरा सांवरिया, मोरा जियरा धक धक करे चमके बिजुरिया।'

फिल्म 'सूरत और सीरत' (1962) का एक मात्र कालजयी गीत है—'बहुत दिया देने वाले ने तुझको, आँचल ही न समाए तो क्या कीजे...'। इस गीत को शैलेंद्र ने लिखा था, संगीत रोशन का था और अपनी गायकी से इसमें अनूठा प्रभाव पैदा किया था मुकेश ने। फिल्म 'संगीत सम्राट तानसेन' (1962), जो एक शास्त्रीय संगीत पर आधारित फिल्म थी, के अधिकांशत: गीत मन्ना डे ने गाए थे, पर शास्त्रीय रंगत लिए जो गीत कालजयी की श्रेणी में आता है वह मुकेश का गाया इस फिल्म का एकमात्र गीत है। इसके संगीतकार एस.एन. त्रिपाठी ने यों तो बाकी के सभी गीत मन्ना और लता के साथ रफी, कमल बारोट एवं महेंद्र कपूर से गवाया, पर इस एक गीत को शास्त्रीय संगीत में पिरोने के बाद भी क्यों रफी, मन्ना डे या लता से न गवाकर मुकेश से गवाया, इसका खुलासा करते हुए स्वयं एस.एन. त्रिपाठी (1985) ने शोधकर्ता से कहा था कि यह गीत भावना प्रधान था और इसकी शास्त्रीयता बनाए रखते हुए उसे प्रभावी अभिव्यक्ति देने का काम मुकेश के अतिरिक्त कोई गायक-गायिका नहीं कर सकता था। अत: मुकेश का चुनाव इसके लिए किया गया। शैलेंद्र के लिए इस गीत को राग सोहनी पर आधारित सुरों पर तन्मयता से झुमाते हुए मुकेश ने अपनी सामान्य रूप से निर्धारित प्रचलित परिधि को लाँघकर तार सप्तक तक जाकर भावों की जो अनुपम अभिव्यक्ति दी है, वह अद्भुत है। इस गीत ने एस.एन. त्रिपाठी का कद तो बढ़ाया ही, पर आज यह फिल्म

इसी एकमात्र कालजयी गीत के लिए स्मरण की जाती है। 'झूमती चली हवा याद आ गया कोई, बुझती बुझती आग को फिर जला गया कोई...', शैलेंद्र के लिखे इस गीत में गायक मुकेश के स्वर में पिरोई भावों की सरगम अनुपम बन पड़ी है।

विमल मित्र के उपन्यास और उसी नाम पर बनी फिल्म 'साहब बीवी और गुलाम' का गीत-संगीत भी आज अमर है। कला एवं साहित्य की दृष्टि से इस फिल्म के सभी गीत अति सुंदर बन पड़े हैं। कालजयी के रूप में इस फिल्म के दो गीतों का संदर्भ आवश्यक है—'पिया ऐसो जिया में समाय गयो रे कि मैं तन मन की सुध-बुध गवाँ बैठी' और 'न जाओ सैंया छुड़ा के बैंया, कसम तुम्हारी मैं रो पड़ूँगी...'। इन दोनों गीतों को हेमंत कुमार के संगीत में गाया था गीतादत्त ने। फिल्म 'मेरी सूरत तेरी आँखें' (1963) में सचिनदेव वर्मन के संगीत में शैलेंद्र के लिखे सभी गीतों में दो ने कालजयी श्रेणी में स्वयं को स्थापित करा लिया। इनमें एक गीत मुहम्मद रफी का गाया 'नाचे मन मोरा मगन तक दा धीगी धीगी...' और दूसरा था मन्ना डे का गया 'पूछो न कैसे मैंने रैन बिताई, इक पल जैसे इक युग बीता, नींद न आए मोहे चैन न आए...'। लोक शैली के ये दोनों ही गीत फिल्म संगीत में शास्त्रीय रंग में ढले श्रेष्ठ गीतों में सम्मिलित हैं। बिमल रॉय की 'बंदिनी' (1963) के लिए शैलेंद्र के लिखे गीत 'ओ जाने वाले हो सके तो लौट के आना' को मुकेश ने अपने गायन से अमर कर दिया। इसी फिल्म में लता का गाया 'जोगी जब से तू आया मेरे द्वारे' को भला कोई कैसे विस्मृत कर सकेगा। इस वर्ष के सबसे उत्कृष्ट कालजयी गीत के रूप में मुंशी प्रेमचंद की कथा पर आधारित फिल्म 'गोदान' (1963) के गीत थे। पं. रविशंकर के संगीत में अनजान के लिखे गीतों में से दो गीत इस श्रेणी के थे। मुहम्मद रफी का गाया होली गीत 'होली खेलत नंदलाल बिरज में...' और मुकेश का गाया 'हिया जरत रहत दिन रैन हो रामा...'। इसी के साथ फिल्म 'दिल ही तो है' (1963) के लिए रोशन के संगीत में साहिर लुधियानवी का लिखा मन्ना डे के स्वर में शास्त्रीय संगीत की अपूर्व प्रस्तुति 'लागा चुनरी में दाग छुपाऊँ कैसे, घर जाऊँ कैसे...' कालजयी के साथ-साथ सिने संगीत की एक अनमोल निधि है ।

वी. शांताराम की फिल्म 'गीत गाया पत्थरों ने' (1964) के संगीतकार रामलाल थे। कालजयी के रूप में हसरत जयपुरी का लिखा और महेंद्र कपूर, आशा भोंसले एवं किशोरी अमोनकर का गाया फिल्म का शीर्षक गीत 'साँसों के तार पर....गीत गाया पत्थरों ने...' था। फिल्म 'चित्रलेखा' (1964) के लिए रोशन के संगीत में साहिर लुधियानवी का लिखा और मुहम्मद रफी का गाया गीत 'मन रे तू काहे न धीर धरे, ओ निरमोही मोह न जाने जिनका मोह करे...' कालजयी के साथ-साथ हिंदी सिनेमा के अमर गीतों में से एक है। इस वर्ष जिन दो फिल्मों ने व्यावसायिक रूप से शीर्ष स्थान पाया था, उनके गीत-संगीत ने भी लोकप्रियता के शिखर को छुआ। फिल्म 'दोस्ती' (1964) में एक बार फिर नए-नए संगीतकार जोड़ी लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल का संगीत खूब प्रसिद्ध हुआ। इस फिल्म के सभी गीत लोकप्रियता की अग्रिम पंक्ति में थे, जिसमें साहित्य एवं कला की दृष्टि से कालजयी गीत की श्रेणी में यह गीत अंकित है—'राही मनवा दु:ख की चिंता क्यों सताती है, दु:ख तो अपना साथी है, सुख है इक ढलती छाँव आती है जाती है, दु:ख तो अपना साथी है...'। मजरूह सुलतानपुरी का लिखा यह गीत एक संदेश और दर्शन लिए हुए है। इसी साल जिस फिल्म के गीत-संगीत ने दीवानगी की सीमा तक लोकप्रियता की चोटी को चूमा, वह थी राजकपूर की बहुचर्चित फिल्म 'संगम' (1964)। ऐसा कम ही होता है जब एक ही फिल्म के सभी गीत लोकप्रियता की दौड़ में परस्पर ही होड़ मचा रहे हों। ऐसा भी कम ही देखा गया है कि व्यावसायिक रूप से शीर्ष पर रहा कोई गीत साहित्यिक एवं कलात्मक रूप से भी शिखर पर विराजे और यह हुआ इस फिल्म के शीर्षक गीत के साथ। शैलेंद्र के लिखे इस गीत में नएपन की सुगंध के साथ परंपरा एवं आधुनिकता का मेल जिस साहित्यिक मर्यादा के साथ हिंदी के शुद्ध रूप में हुआ है वह इसे कालजयी के साथ-साथ सिने गीतों के अविस्मरणीय गीत में भी सजाता है। मुकेश के स्वर ने इस गीत के माध्यम से उल्लास, खुशी, उमंग और मनुहार का जो अद्भुत जादू लगाया गया है वह मुकेश की सदाबहार गायकी का एक उत्कृष्ट उदाहरण है—'मेरे मन की गंगा और तेरे मन की जमुना का, बोल राधा बोल संगम होगा कि नहीं।'

कवि नीरज की कालजयी साहित्यिक रचना को इसी साल फिल्म 'नई उमर की नयी फसल' (1965) में मुहम्मद रफी के स्वर में खूब पसंद किया गया, जो साहित्य के स्पर्श से सिने गीतों में भी कालजयी बन गया—'स्वप्न झरे फूल से मीत चुभे शूल से... कारवाँ गुजर गया गुबार देखते रहे...'। साहित्य और लोक का स्पर्श लिए इसी फिल्म में मुकेश का गाया 'देखती ही रहो आज दर्पण न तुम, प्यार का ये मुहूरत निकल जाएगा' अविस्मरणीय है। इसी क्रम में फिल्म 'जब-जब फूल खिले' (1965) के लिए कल्याणजी-आनंदजी के संगीत में आनंद बक्शी का लिखा तथा मुहम्मद रफी एवं लता मंगेशकर द्वारा अलग-अलग गाया कालजयी गीत था 'परदेसियों से न अँखियाँ मिलाना, परदेसियों को है एक दिन जाना...' और इसी संगीत एवं शब्द की जोड़ी ने जिस एक और कालजयी गीत को फिल्म 'हिमालय की गोद में' (1965) रचा, वह मुकेश का गाया हर युवा के दिल में तब बस कर यही कामना करता था 'चाँद-सी महबूबा हो मेरी कब, ऐसा मैंने सोचा था, हाँ तुम बिलकुल वैसी हो जैसा मैंने सोचा था...'। यह गीत आज भी सिने गीत की दुनिया मे चाँद की तरह ही शीतल प्रकाश फैला रहा है। इस वर्ष के सबसे सफल फिल्म के शीर्ष गीत-संगीत के रूप में जो फिल्म आई वह आर.के. नारायण के लिखे उपन्यास पर आधारित उसी नाम से निर्मित नवकेतन इंटरनेशनल की फिल्म 'गाइड' (1965) थी। शैलेंद्र के लिखे और सचिनदेव बर्मन के संगीत में फिल्म के सभी गीत श्रेष्ठ थे, जिसमें कालजयी के रूप में लता मंगेशकर का गाया आनंद, उन्माद एवं उन्मुक्तता की अद्भुत व्यग्रता लिए यह गीत था 'काँटों से खींच कर ये आँचल, तोड़ के बंधन बाँधी पायल कोई न रोके दिल की डगर को, दिल वो चला, आज फिर जीने की तमन्ना है, आज फिर मरने का इरादा है...'। इस दशक की सर्वश्रेष्ठ साहित्यिक, कलात्मक एवं लोकतात्त्विक फिल्म थी स्वयं गीतकार शैलेंद्र द्वारा निर्मित इमेज मेकर्स के बैनर तले प्रस्तुत की गई सामाजिक फिल्म 'तीसरी कसम' (1966)। यह फिल्म प्रसिद्ध हिंदी साहित्यकार फणीश्वरनाथ 'रेणु' की कहानी 'मारे गए गुलफाम' पर बनाई गई थी। ग्रामीण पृष्ठभूमि और लोक संस्कति को दर्शाती यह फिल्म आम मनोरंजन के सिनेमा से पृथक एक संगीत प्रधान कलात्मक फिल्म है। कला फिल्म या समानांतर फिल्म की जो अलग धारा भारतीय सिनेमा में बनाई गई, उसे सही मायने में परिभाषित एवं निरूपित करने वाली फिल्मों में 'जागते रहो' (1956) के बाद 'तीसरी कसम' (1966) ही है। लोक

साहित्य एवं संस्कृति को वर्तमान संदर्भ में किस प्रकार जनरुचि के अनुरूप प्रस्तुत किया जाना चाहिए उसका एक सशक्त उदाहरण है 'तीसरी कसम'। 'तीसरी कसम' भारतीय सिनेमा के इतिहास की एक ऐसी अद्वितीय प्रस्तुति है। इस फिल्म का एक-एक गीत उस मोती के समान है, जो कभी भी अपनी चमक न तो खोता है और न ही कभी उसका प्रकाशपुंज मध्यम पड़ता है। अपनी कई कालजयी रचनाओं के साथ इस फिल्म के जिस एक गीत के दर्शन ने शैलेंद्र को संत कबीर की वाणी के समकक्ष खड़ा कर दिया वह अद्भुत है—'सजन रे झूठ मत बोलो।' इसी फिल्म में मुकेश के ही स्वर में 'सजनवा बैरी हो गए हमार', 'दुनिया बनाने वाले क्या तेरे मन में समाई' और मन्ना डे के स्वर में 'चलत मुसाफिर मोह लियो रे' अद्भुत है (शैलेंद्र, 1998)। विशाल पिक्चर्स के बैनर तले निर्माता-निर्देशक मनोज कुमार की अति सफल फिल्म 'उपकार' (1967) ने लोकप्रियता एवं सफलता का एक नया इतिहास रचा। देशप्रेम की भावना से ओत-प्रोत इस फिल्म के गीत संगीत ने पूरे भारत में एक नया उत्साह उत्पन्न कर दिया था। स्वतंत्रता के पश्चात् प्रथम बार किसी फिल्म ने देशवासियों को झकझोरा था। अपनी धरती, अपने राष्ट्र एवं अपने समाज के लिए कुछ कर गुजरने का भाव एक बार फिर हिलोरें लेने लगा था। इस फिल्म का शीर्षक गीत 'मेरे देश की धरती सोना उगले, उगले हीरे मोती...' बच्चे-बच्चे के होठों पर तैरने लगा। बी.आर. फिल्मस की सफल फिल्म 'हमराज' (1967) में रवि के संगीत में साहिर लुधियानवी के सभी गीत महेंद्र कपूर ने गाए थे और ये सभी गीत लोकप्रियता की दौड़ में आगे थे। प्रकृति की अनुपम छटा को साहिर ने जिस प्रकार अपने शब्दों में बाँधा है कुछ उसी प्यारे अंदाज में महेंद्र कपूर ने इसे अभिव्यक्त भी किया 'नीले गगन के तले, धरती पर प्यार पले, ऐसे ही जग में आती हैं सुबहें, ऐसे ही शाम ढले....' (श्रीवास्तव, 2020)।

इसी वर्ष प्रसाद प्रोडक्शन मद्रास की फिल्म 'मिलन' (1967) भी स्वस्थ मनोरंजन लेकर आई। मुकेश और लता के युगल स्वरों में 'सावन का महिना पवन करे सोर, जियरा झूमे ऐसे जैसे बन मा नाचे मोर....' गीत की लोकप्रियता इस पूरे दशक में शीर्ष पर रही। इसी फिल्म में मुकेश का एकल गान 'राम करे ऐसा हो जाए मेरी निंदिया तोहे मिल जाए' लोक के मर्म का स्पर्श लिए एक अनुपम गीत सिद्ध हुआ। इसी क्रम में कालजयी गीत की सूची में सम्मिलित एक अन्य गीत फिल्म 'सरस्वती चंद्र' (1968) से था, जिसे लता और मुकेश ने पृथक्-पृथक् गाया था। कल्याणजी-आनंदजी का संगीतबद्ध किया और इंदीवर का लिखा यह एक प्रेम एवं श्रृंगार का बड़ा ही सुंदर गीत है—'चंदन-सा बदन चंचल चितवन, धीरे से तेरा ये मुस्काना, दोष न देना जग वालो, हो जाऊँ अगर मैं दीवाना....'। इस गीत में कवि इंदीवर ने काव्य के परिप्रेक्ष में रूपक तथा उपमा का जिस प्रकार प्रयोग किया है वह विलक्षण है। 'ये काम कमान भवें तेरी, पलकों के किनारे कजरारे' पंक्ति का काव्य सौंदर्य अप्रतिम है। दूसरी ओर रोशन के संगीत में इंदीवर का लिखा गीत फिल्म 'अनोखी रात' (1968) के लिए गायक मुकेश के स्वर में अध्यात्म के दर्शन को उजागर कर गया—'ओह रे ताल मिले नदी के जल में, नदी मिले सागर में, सागर मिले कौन से जल में, कोई जाने ना।' इसी वर्ष फिल्म 'संबंध' (1969) का कालजयी गीत बनकर सामने आया ओ.पी. नैयर के संगीत में कवि प्रदीप का लिखा और मुकेश का गाया 'चल अकेला चल अकेला तेरा मेला पीछे छूटा राही चल अकेला...'। यह कालजयी गाना उस साल अमीन सयानी द्वारा प्रस्तुत किए जाने वाले रेडियो कार्यक्रम के वार्षिक गीतमाला की श्रेष्ठता सूची में चौथे स्थान पर था, अर्थात् इस संपूर्ण वर्ष का चौथा सबसे लोकप्रिय गीत (सयानी, 1969)। कालजयी गीतों की इस वर्ष की सूची में अगला गीत है फिल्म 'विश्वास' (1969) का, जिसे लिखा था गुलशन बावरा ने और संगीत में ढाला था कल्याणजी-आनंदजी ने तथा गाया था मुकेश ने—'चाँदी की दीवार न तोड़ी प्यार भरा दिल तोड़ दिया, एक धनवान की बेटी ने निर्धन का दामन छोड़ दिया...'। यह गीत इस वर्ष की सालाना गीतमाला की सर्वश्रेष्ठ गीतों की सूची में सातवें स्थान पर था।

वर्ष 1970 में कवि नीरज ने कई यादगार गीत सिने संगीत को दिए। कालजयी की श्रेणी में फिल्म 'प्रेम पुजारी' (1970) का सचिनदेव बर्मन के संगीत में नीरज का लिखा और किशोर कुमार का गाया साहित्यिक रंग में रंगा यह गीत खूब पसंद किया गया 'फूलों के रंग से, दिल की कलम से, तुझको लिखी रोज पाती... लेना होगा जनम हमें कई कई बार...'। इसी फिल्म में लता मंगेशकर के स्वर में नीरज का लिखा 'रंगीला रे तेरे रंग में यूँ रँगा है मेरा मन' साहित्य की उपमा, रूपक और बिंब के परिप्रेक्ष्य में एक अत्यंत ही मनोहारी गाना सिद्ध हुआ। इसी के साथ हृषीकेश मुखर्जी निर्देशित फिल्म 'आनंद' (1971) और उसका गीत-संगीत लोकप्रियता की दौड़ में आगे था। सलिल चौधरी के संगीत में हिंदी के अनूठे गीतकार योगेश की काव्यात्मक रचना साँझ की बेला का चित्रण करते हुए जिस प्रकार मन का भाव उजागर कर रही थी वह अविस्मरणीय बन पड़ा है—'कहीं दूर जब दिल ढल जाए साँझ की दुल्हन बदन चुराए, चुपके से आए, मेरे खयालों के आँगन में कोई सपनों के दीप जलाए।'

स्वर्ण कालोत्तर कालजयी गीत-संगीत

वर्ष 1981 में उल्लेखनीय गीतों में फिल्म 'क्रांति' (1981) के लिए लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल के संगीत में ढला संतोष आनंद का लिखा 'जिंदगी की न टूटे लड़ी, प्यार कर ले घड़ी दो घड़ी...लंबी-लंबी उमरिया को छोड़ो प्यार की एक घड़ी है बड़ी...' नितिन मुकेश एवं लता मंगेशकर के स्वरों में सर्वाधिक सफल एवं लोकप्रिय गीत बनकर सामने आया। लोक संस्कार से युक्त रोशन के सुपुत्र राजेश रोशन के संगीत में 'कामचोर' (1983) का युगल गान 'तुझ संग प्रीत लगाई सजना...' किशोर कुमार एवं लता के स्वर में खूब पसंद किया गया। इसी के साथ ही फिल्म 'मासूम' (1983) के लिए गुलजार के लिखे गीत 'तुझसे नाराज नहीं जिंदगी हैरान हूँ...' एवं 'लकड़ी की काठी, काठी पे घोड़ा, घोड़े की दुम पे जो मारा हथौड़ा...' स्तरीय बन पड़े हैं। श्रेष्ठता की श्रेणी में निर्माता-निर्देशक राजकपूर की फिल्म 'राम तेरी गंगा मैली' (1985) का संगीत कर्णप्रिय बन कर आया। रवींद्र जैन के संगीत में 'सुन सायबा सुन, प्यार की धुन, मैंने तुझे चुन लिया तू भी मुझे चुन...' और 'सुनो तो गंगा ये क्या सुनाए...' साहित्य का स्पर्श लिए सुरीले बन पड़े हैं। फिल्म 'नाम' (1986) के लिए पंकज उधास का गाया गीत 'चिट्ठी आई है आई है चिट्ठी आई है, बड़े दिनों के बाद हम बेवतनों को याद वतन की मिट्टी आई है...' लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल के संगीत में अपार लोकप्रियता अर्जित करने वाला भावना प्रधान गीत बन कर सबकी आँखें नम कर गया। संगीतकार चित्रगुप्त के दो पुत्र आनंद श्रीवास्तव एवं मिलिंद श्रीवास्तव ने आनंद-मिलिंद के नाम से अपनी जोड़ी बनाकर फिल्म 'कयामत से कयामत तक' (1988) में वर्ष का सर्वाधिक कर्णप्रिय

एवं लोकप्रिय संगीत दिया। गायक उदित नारायण के स्वर में अभिनेता आमिर खान पर चित्रित 'पापा कहते हैं बड़ा नाम करेगा, बेटा हमारा ऐसा काम करेगा, मगर ये तो कोई न जाने कि मेरी मंजिल है कहाँ...' गीत ने रातोंरात सफलता के शीर्ष पर अपनी जगह बना ली। आनंद-मिलिंद, उदित नारायण, आमिर खान की यह पहली फिल्म थी, जिसके गीत लिखे थे अनुभवी वरिष्ठ गीतकार मजरूह सुलतानपुरी ने (श्रीवास्तव, 2020)।

कलात्मकता और लोक संस्कार की दृष्टि से भूपेन हजारिका का संगीतबद्ध एवं स्वयं उन्हीं का गाया फिल्म 'रुदाली' (1992) का गीत 'दिल हूम हूम करे...' उत्कृष्ट था, जिसे अच्छी लोकप्रियता भी मिली। दक्षिण भारतीय युवा संगीतकार अल्लारक्खा रहमान यानी ए. आर. रहमान, जिनका मूल नाम दिलीप था, ने अपनी पहली ही फिल्म 'रोजा' (1993) से अपनी प्रतिभा एवं सुनहरे भविष्य का संकेत दे दिया था। 'दिल है छोटा सा, छोटी सी आशा, मस्ती भरे मन की भोली सी आशा, चाँद तारों को छूने की आशा, आसमानों में उड़ने की आशा...' की मौलिकता ने सिने संगीत में तब नवीनता का बोध कराया था। फिल्म 'डर' (1993) में शिव-हरि यानी शिव कुमार शर्मा संतूरवादक तथा बाँसुरीवादक हरिप्रसाद चौरसिया की जोड़ी ने पुन: कर्णप्रिय संगीत दिया, जो खूब पसंद किया गया, जिसमें उदित नारायण का गाया 'जादू तेरी नजर खुशबू तेरा बदन...' को शीर्ष लोकप्रियता प्राप्त हुई थी।

संगीत लोक का आलोक

लोक छवि को लिए फिल्म 'लगान' (2001) के लिए ए. आर. रहमान द्वारा संगीतबद्ध गीत 'घनन घनन घिर घिर आए बदरा...' को अपार लोकप्रियता मिली। जावेद अख्तर के लिखे इस सहगान को उदित नारायण, अलका याग्निक, सुखविंदर सिंह, शंकर महादेवन, शान और किशोरी अशोक गोवारिकर ने सावन के आगमन के घटनाक्रम को जीवंत करते हुए सहज उल्लास के संग गाया है। इसी फिल्म के लिए 'मितवा' का आलाप लगाते हुए उदित कुछ ऐसे मुखर हुए कि उनकी मधुर वाणी में इसी गीत के लिए उन्हें सर्वश्रेष्ठ पार्श्वगायक का राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कार प्रदान किया गया। फिल्म 'परिणीता' (2005) के लिए शांतनु मोइत्रा के संगीत में स्वानंद किरकिरे का लिखा 'पियू बोले जिया डोले, क्या ये बोले...' और सोनू निगम एवं श्रेया घोषाल के स्वरों में और सुनिधि चौहान का गाया 'कैसी पहेली है ये कैसी पहेली जिंदगानी...' स्तरीय बन पड़े थे, जिन्हें लोगों ने काफी पसंद किया। इस वर्ष का सर्वाधिक लोकप्रिय गीत रहा शंकर-एहसान-लॉय के सगीत में फिल्म 'बंटी और बबली' (2005) के लिए गुलजार का लिखा पारंपरिक शैली में लोक छवि का स्पर्श लिए गीत 'कजरारे कजरारे तोरे कारे कारे नैना...', जिसे स्वर दिया था अलीशा चिनॉय, शंकर महादेवन और जावेद अली ने (चार्टबस्टर, 2005)। फिल्म 'चक दे इंडिया' (2007) का शीर्षक गीत सुखविंदर सिंह के स्वर में खेलप्रेमियों के द्वारा भी खूब गुनगनाया गया था। फिल्म 'जोधा अकबर' (2008) के लिए ए. आर. रहमान का संगीत जावेद अख्तर के शब्दों के साथ पसंद किया गया तो दूसरी ओर 'दिल्ली 6' (2009) के रहमान के ही संगीत में पारंपरिक शैली का छत्तीसगढ़ी लोकगीत 'सास गारी देवे, ननद चुटकी लेवे, ससुराल गेंदा फूल...' रेखा भारद्वाज के स्वर में अपार लोकप्रियता अर्जित कर गया। यह गीत, जिसके गीतकार के रूप में प्रसून जोशी का नाम फिल्म में दिया गया है, पर वास्तव में यह छत्तीसगढ़ का जन-जन में गाया जाने वाला प्रसिद्ध लोकगीत है।

इक्कीसवीं सदी के दूसरे दशक में जब हम हिंदी सिनेमा के गीत-संगीत का आकलन लोक साहित्य, लोक संस्कृति एवं लोक परंपरा के कालजयी तत्त्वों के परिप्रेक्ष्य में करते हैं तो जो दृश्य-परिदृश्य हमारे सामने उभर कर सामने आता है वह एक मिश्रित पर बहुरंगी चित्र लिए हुए है। इस दशक में सिनेमा के माध्यम से जो एक तथ्य स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर हुआ है वह है 'इंडिया' और 'भारत' का पृथक्-पृथक् 'कल्चर' और 'संस्कार'। महानगर और ग्रामीण परिवेश की दो छवियाँ वर्तमान में सिनेमा की प्रस्तुतियों में भी दिखने लगी हैं और सुनाई भी पड़ने लगी हैं। 'ओ राधा तेरी चुनरी ओ राधा तेरा चलना ओ राधा तेरी नटखट नजरिया' गीत का गायन और फिल्म 'स्टूडेंट ऑफ द ईयर' (2012) में इसकी प्रस्तुति मनभावन लगी है संगीत और सिनेप्रेमियों को। अन्विता दत्त के लिखे इस गीत में पारंपरिक हिंदी बोलों तथा आधुनिक अँग्रेजी शब्दों का इस प्रकार से मिश्रण किया गया है जिस प्रकार से संगीत में दो पृथक् शैलियों का विलय अर्थात् 'फ्यूजन' होता है। लय की स्वाभाविक गति लिए इस गीत में संगीतकार विशाल-शेखर ने पारंपरिक एवं आधुनिक दोनों ही प्रकार के प्रभाव को अत्यंत सुरीले रूप में गूँथा है, जिसे उतनी ही सिद्धता के संग श्रेया घोषाल, उदित नारायण, विशाल ददलानी और शेखर रवजीयानी ने साधा है। एक सुंदर गीत, जो संगीत रसिकों को मन से भाया है। मनभावन गीत यदि किसी भी काल में सृजित हो वह स्वतः ही अपने प्रशंसकों का एक बड़ा वर्ग बना लेता है। तीव्र गति से भागते-दौड़ते जगत् की इस आपाधापी में यदि हृदय को पल भर की छाँव देता कोई गीत आपके समक्ष आ जाए तो मन प्रसन्नता से क्यों न भर उठेगा? फिल्म 'लुटेरा' (2013) का गीत 'सँवार लूँ' ऐसा ही एक मोहक गीत है। अमिताभ भट्टाचार्य के लिखे इस गीत को संगीत से सँवारा है अमित त्रिवेदी ने। मोनाली ठाकुर ने अपनी सुरीली वाणी में इस गीत को जिस प्रकार उद्भासित किया है वह किसी की भी सुप्त संवेदना को जाग्रत करने में सक्षम है। इस गीत की पंक्तियों को आप भी गुनगुना कर देखिए—'हवा के झोंके आज मौसमों से रूठ गए, गुलों की शोखियाँ जो भँवरे आके लूट गए, बदल रही है आज जिंदगी की चाल जरा, इसी बहाने क्यों न मैं भी दिल का हाल जरा सँवार लूँ हाय सँवार लूँ'। इस एक गीत की लावण्यमय प्रस्तुति से मोनाली ने अपने गायन में निहित जिन संभावनाओं के विस्तृत व्योम के दर्शन कराए थे, उसे अपने स्वर-सौंदर्य के विविध सुर-शृंगार के तत्त्वों से विभूषित कर उन्होंने शीघ्र ही जीवंत भी कर दिखाया। फिल्म 'दम लगा के हईशा' (2015) में मोनाली ठाकुर के गायन का एक नूतन रूप दिखा। वरुण ग्रोवर के लिखे गीत 'ये मोह मोह के धागे' के लिए उन्हें सर्वश्रेष्ठ गीतकार का राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कार दिया गया और साथ ही इसी गीत की भावपूर्ण सहज प्रस्तुति के लिए मोनाली को सर्वश्रेष्ठ पार्श्वगायिका का राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कार प्रदान किया गया (चौगाले, 2016)। मोनाली के प्रभावी गायन पर यह राष्ट्रीय पुरस्कार निःसंदेह उनकी मधुर गायकी का पुष्ट प्रमाण है। संजय लीला भंसाली की फिल्म 'पद्मावत' (2018) का राजस्थानी पृष्ठभूमि पर सृजित 'घूमर' गीत-नृत्य इस वर्ष अत्यधिक रुचि और कौतूहल के संग देखा गया। श्रेया घोषाल और स्वरूप खान के स्वरों में इस 'घूमर' गीत के रचयिता हैं ए. एम. खान तथा इसमें प्रयुक्त राजस्थानी शब्दावली के

गीतकार हैं स्वरूप खान। इस आंचलिक प्रकृति के गीत का संगीत दिया है स्वयं इस फिल्म के निर्माता-निर्देशक संजय लीला भंसाली ने।

भारतीय सिने गीत संगीत की यात्रा आज भी अनवरत जारी है। वर्तमान समय में सिने संगीत में सुरीलापन अपने आधुनिक रूप में पुन: अपना डेरा डाल रहा है, जिसके स्थायित्व एवं कालजयिता का आकलन तो आने वाले समय में ही किया जा सकेगा, पर हिंदुस्तानी संस्कृति, लोक-परंपरा और इस मिट्टी की सोंधी महक ही ऐसे तत्त्व हैं, जो इसे अमरत्व प्रदान कर सकते हैं। श्रेष्ठ काव्य स्वरूप, लोक संगीत का आधार, मौलिकता की कसौटी और स्वाभाविक गायन का गुण-धर्म ही कालजयी गीतों का मूलभूत आधार होता है। सिने गीत-संगीत अपने मौलिक रूप में ही कल भी श्रेष्ठ था आज भी श्रेष्ठता के प्रति उन्मुख है और आने वाले कल में भी श्रेष्ठता का मापदंड यही रहेगा।

निष्कर्ष

भारतीय सिने संगीत अंतरराष्ट्रीय स्तर पर आज अपनी जिस बहुआयामी छवि को लिए चमक रहा है, उसमें सिने गीत-संगीत का दो दशकीय स्वर्ण कालखंड (1951-1970) का विशेष योगदान है। यही वह समय था जिसमें हिंदुस्तानी फिल्मी गीतों का उत्कृष्ट स्वरूप अपने संपूर्ण यौवन के साथ कालजयी सिंहासन पर विराजमान हुआ। भारत का सिनेमा अपने प्रारंभिक समय से ही गीतों की संगत में नए-नए पड़ाव पार करके उपलब्धियों का कलात्मक कीर्तिमान स्थापित करता हुआ आज भी सुरीलेपन की सौगात दे रहा है। सिने गीत-संगीत के आधार स्तंभों में जहाँ प्रत्येक दशक में गीत, लेखन, संगीत रचना एवं गायन में अनेक व्यक्तित्वों ने अलग-अलग कालखंडों में अपनी विशिष्ट प्रतिभा का परिचय दिया है, वहीं इन विधाओं में कुछ ऐसे भी नाम हैं, जिन्होंने सिने संगीत के स्वर्ण युग से पूर्व एवं उसके बाद के समय में भी अपनी कालजयी रचनाओं का क्रम सँजोए रखा। साहित्य, लोकतत्त्व और संप्रेषण की संगत में हिंदी सिने संगीत में गीतकारों, संगीतकारों और गायक कलाकारों ने मिलकर जो कुछ हमारे मध्य परोसा है, वह हम सबके लिए एक अनमोल निधि है। भारतीय संदर्भ में परिवर्तित होते समय काल में वह रचना ही स्थायी रह पाई, जो साहित्य एवं लोक आचरण से ओतप्रोत थी। पश्चिमी और आधुनिकता के प्रभाव से हिंदी सिनेमा में मौलिक रचनात्मकता की गति समय-समय पर धीमी अवश्य हुई, पर यह कभी थमी नहीं। जो कलात्मक वैभव भारत की आत्मा में युग-युगांतर एवं जन्म-जन्मांतर से बसा हुआ है वह ही अप्रतिम है, इसे सिने गीत-संगीत के स्वर्ण कालखंड ने पूर्ण रूप से स्थापित कर दिया है।

संदर्भ

एनएफएआई. (2021). https://www.nfai.gov.in/index.php से पुन:प्राप्त.

कल्याणजी-आनंदजी एवं रवि (संगीतकार). (1999). *शोधकर्ता से साक्षात्कार*.

गुप्ता, आर. (2000). *पंकज मलिक के नाती*. शोधकर्ता से साक्षात्कार.

चार्टबस्टर. (2005). *कजरारे कजरारे तोरे कारे कारे नैना*. बंटी और बबली.

चौगाले. एस. (2016). *रिपब्लिक वर्ल्ड* . https://www.republicworld.com/entertainment-news/bollywood-news/bhumi-pednekars-dum-laga-ke-haisha-a-list-of-awards-the-film-received.html से पुन:प्राप्त.

चौरसिया, एस. *रिकॉर्ड संग्रहकर्ता*. सिने गीत.

बेरीवाला. के. (2021). *रिकॉर्ड संग्रहकर्ता*. सिने गीत.

मुकेश. (1993). *स्टेज शो में दिया गया वक्तव्य*. रेणुकुट, उत्तर प्रदेश.

मलिक, एस. (1995). *सारंगा फिल्म के संगीतकार*. शोधकर्ता से साक्षात्कार.

सामवेद संहिता. (2011). नई दिल्ली: चौखम्भा विद्या भवन.

श्रीवास्तव, आर. (2020). *सात सुरों का मेला*. नई दिल्ली : प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय.

संथोलिया, वि. *रिकॉर्ड संग्रहकर्ता*. सिने गीत.

शैली, एस. (1998). *गीतकार शैलेंद्र के बेटे*. शोधकर्ता से साक्षात्कार

सयानी, ए. (1969). *गीतमाला*. रेडियो सिलोन.

त्रिपाठी, एस.एन. (1985). *संगीतकार*. शोधकर्ता से साक्षात्कार.

संचार माध्यम | खंड 34(1) : 31-35, जनवरी-जून 2022
आईएसएसएन: 2321-2608

स्वतंत्रता संग्राम में पंजाबी पत्रकारिता के योगदान का अध्ययन

डॉ. मलकीत सिंह[1]

सारांश

भारतीय पत्रकारिता के इतिहास में पंजाबी पत्रकारिता का उद्भव और विकास एक महत्त्वपूर्ण अध्याय है। स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान पंजाब में (जिसमें वर्तमान पाकिस्तान का भी बहुत बड़ा हिस्सा शामिल है) राष्ट्रीय चेतना के विकास में पंजाबी पत्रकारिता ने प्रभावी भूमिका निभाई। प्रारंभिक दौर में पंजाबी पत्रकारिता को किन चुनौतियों का सामना करना पड़ा और स्वतंत्रता संग्राम में इसने जनमानस को कैसे स्वतंत्रता हेतु जाग्रत किया, उन्हें समझना ही प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य है। हालाँकि ब्रिटिश सरकार द्वारा पंजाबी पत्रकारिता का भी उसी प्रकार दमन करने का प्रयास किया गया जैसा देश के अन्य हिस्सों में हुआ, पर उस दौर के पंजाबी कलमगारों ने झुकना स्वीकार नहीं किया। हर प्रकार के दमन के बावजूद उन्होंने अँग्रेज सरकार की विभाजनकारी व शोषणकारी प्रशासनिक तथा आर्थिक नीतियों के विरुद्ध में लोगों को जाग्रत किया। खासतौर से गुरुद्वारा सुधार आंदोलन, जलियाँवाला बाग नरसंहार, गदर लहर, ननकाना साहिब, कामा गाटा मारू और भगत सिंह की फाँसी के विरुद्ध देशवासियों को जागरूक करने में पंजाबी पत्रकारिता ने साहसी भूमिका निभाई। इस कारण बहुत से पत्रकारों को जेल जाना पड़ा तथा कई पंजाबी छापाखानों को प्रतिबंध के साथ जुर्माना भी भुगतना पड़ा। अनेक पत्रकारों ने देशप्रेम और स्वतंत्रता के लिए बलिदान भी दिए। आज स्वतंत्रता के 75वें वर्ष में उन सभी पत्रकारों की शहादत का स्मरण आवश्यक है।

संकेत शब्द : स्वतंत्रता संग्राम, पंजाबी पत्रकारिता, गुरुद्वारा सुधार आंदोलन, जलियाँवाला बाग नरसंहार, कामा गाटा मारू, 'अकाली'

प्रस्तावना

समाचार पत्र-पत्रिकाएँ समाज के बौद्धिक विकास का महत्त्वपूर्ण जरिया हैं। इसलिए माना जाता है कि मनुष्य के शरीर पर नियंत्रण करना उतना कठिन नहीं है, जितना उसकी स्मृति पर। इसी कारण अँग्रेज भारत में पत्रकारिता के विकास के पक्ष में नहीं थे। उनका मानना था कि अगर भारतीयों को बौद्धिक स्वतंत्रता दी गई तो वे राजनीतिक स्वतंत्रता का रास्ता खोज लेंगे। इसलिए अँग्रेज शुरू से ही पत्रकारिता का गला घोंटने के पक्ष में थे। ईस्ट इंडिया कंपनी की इन नीतियों का प्रथम उदाहरण उस समय सामने आया जब कंपनी के ही एक अधिकारी विलियम बोल्ट्स ने कलकत्ता से एक पत्रिका प्रारंभ करने की इच्छा व्यक्त की। उस प्रस्ताव के कारण उसे भारत छोड़ने के लिए मजबूर किया गया (चौधरी, 1955)। कंपनी की इस कार्यवाही से स्पष्ट है कि वह भारत में पत्रकारिता को एक बड़ा खतरा मानती थी और अँग्रेज इसे एक बुराई की तरह दबा देना चाहते थे। कंपनी सरकार द्वारा ऐसा ही व्यवहार जेम्स ऑगस्टस हिकी के साथ हुआ। हिकी ने 'हिकी गजट' नाम से एक अखबार कलकत्ता से 1780 में शुरू किया था, जिसके चलते उसे कई बार जेल जाना पड़ा और जुर्माना भी भरना पड़ा। हिकी का कसूर इतना भर था कि उसने तत्कालीन ब्रिटिश अधिकारियों के काले कारनामों को अपने पत्र में छापा, जिसके चलते सरकार द्वारा उस पर कार्यवाही की गई। परिणामस्वरूप वह पत्र 1782 में बंद हो गया, परंतु वह भारतीय पत्रकारिता के इतिहास में एक बड़ी विरासत छोड़ गया (सिंघल, 2018)। जिस प्रकार सूर्य के प्रकाश को बादल ज्यादा समय तक नहीं रोक सकते, ठीक उसी प्रकार सत्य और ज्ञान के प्रकाश को रोक पाना कठिन है। अँग्रेजों के दमन के कारण भले ही हिकी को अपना पत्र बंद करने के लिए मजबूर होना पड़ा, लेकिन उसके बाद अनेक साप्ताहिक और दैनिक पत्र-पत्रिकाओं का जन्म भारत में हुआ। अँग्रेजों की साम्राज्यवादी सोच ने भारत में पत्रकारिता की स्वतंत्रता को अपने साम्राज्य के लिए एक बड़ी चुनौती माना। सन् 1799 में लार्ड विंसले ने पत्रकारिता की स्वतंत्रता को नियंत्रित करने के लिए सबसे पहला सेंसरशिप कानून बनाया। इस कारण भारतीय पत्र-पत्रिकाओं पर युद्ध के समय लगने वाले सभी प्रतिबंध थोप दिए गए (मंडल, 2021)। परंतु सख्त कानूनी प्रावधानों और दमनकारी नीतियों के बावजूद ब्रिटिश सरकार भारत में पत्रकारिता की लोकप्रियता को रोक नहीं पाई। इसी बीच 1818 तक भारत में कुछ ऐसी पत्रिकाएँ छपने लगी थीं जो सीधे तौर पर व्यापार और लाभ के लिए अँग्रेजों की नई पीढ़ी में लोकप्रिय हो गईं। उसी समय भारतीय कुलीन वर्ग तथा ईसाई मिशनरियाँ भी पत्रकारिता से फैलने वाली जागरूकता के संबंध में सचेत हो गए, जिसके चलते भारत में पत्रकारिता का विकास होने लगा (सोनावालकर, 2015)। भारत में पत्रकारिता का विकास कंपनी प्रशासन और उसके शोषण के विरुद्ध एक बहुत बड़ी ताकत के रूप में सामने आया। 1857 की क्रांति में भारतीय पत्र-पत्रिकाओं ने बहुत बड़ी भूमिका निभाई। भारतीय भाषाओं में छपने वाली पत्रिकाओं ने अँग्रेजों की दमनकारी नीतियों के विरुद्ध जन सामान्य को जागरूक किया। वर्ष 1868 में 'अमृतसर बाजार पत्रिका' ने नील की खेती करने वाले किसानों के शोषण के विरुद्ध जागरूकता पैदा करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसके चलते उस पत्रिका और उसमें काम करने वाले पत्रकारों को दमन का सामना करना पड़ा (मिश्रा, 2021)। पंजाबी भाषा की पत्रकारिता को भी लगातार ऐसे ही दमन का सामना करना पड़ा।

[1]एसोसिएट प्रोफेसर, कश्मीर अध्ययन केंद्र, हिमाचल प्रदेश केंद्रीय विश्वविद्यालय, धर्मशाला, हिमाचल प्रदेश. ईमेल : malkitsaran@gmail.com

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध पत्र इतिहास की घटनाओं पर आधारित है, इसलिए द्वितीयक सामग्री का इस्तेमाल किया गया। इसके लिए सरकारी दस्तावेजों, पंजाबी पत्रकारिता से संबंधित पुस्तकों, समाचार पत्रों, शोधकर्ताओं के लेखों, राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय पत्रिकाओं का अध्ययन किया गया। एक समग्र दृष्टिकोण विकसित करने के लिए बहुविषयक तकनीक अपनाई गई है।

पंजाबी पत्रकारिता का विकास

भारत के अन्य क्षेत्रों की तुलना में पंजाब में ब्रिटिश शासन देर से स्थापित हुआ। पंजाबी पत्रकारिता भी देश के अन्य हिस्सों से प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं की अपेक्षा विलंब से शुरू हुई। पंजाबी पत्रकारिता का जन्म 10 दिसंबर, 1880 को पंजाब की पहली साप्ताहिक पत्रिका 'गुरुमुखी अखबार' के प्रकाशन से हुआ, जो भारत में छपने वाले पहले अखबार से लगभग 100 साल बाद हुआ (सिंह, 1962)। पंजाब में पंजाबी पत्रकारिता के विकास को दो भागों में बाँटा जा सकता है। पहले हिस्से में वे पत्रिकाएँ आती हैं, जो सरकार हितैषी थीं और दूसरे हिस्से में वे पत्रिकाएँ हैं, जो उस समय कुछ सामाजिक, धार्मिक संस्थाओं द्वारा छापी जाती थीं और जिनका उद्देश्य अपने समुदाय के हितों को सुरक्षित करने के साथ ही ब्रिटिश सरकार पर दबाव बनाना था। यहाँ इस तथ्य को समझना आवश्यक है कि पंजाबी पत्रकारिता के शुरुआती दौर में ही अँग्रेज नौकरशाहों ने पंजाबी पत्रकारिता को अपने नियंत्रण में करने के लिए लाभ और दंड की नीति अपनाई। पंजाबी पत्रकारिता के लिए प्रथम प्रयास 1867 में मुंशी हरिनारायण और फरियाल द्वारा शुरू अखबार 'श्री दरबार साहिब' था, जो श्री अमृतसर से छपना शुरू हुआ, परंतु उस समय गुरुमुखी में कंपोजिंग की सुविधा न होने के कारण वह अखबार हाथ से लिखा जाता था। वह अखबार पूरी तरह सरकार समर्थक था और अँग्रेज सरकार द्वारा चलाई गई दमनकारी नीतियों के खिलाफ कोई खबर नहीं छापता था। वह अखबार सरकारी प्रचार सामग्री छापकर आर्थिक लाभ लेता रहा। उस समय पंजाब में कुका आंदोलन को दबाने के लिए इस अखबार में लुधियाना के डिप्टी कमिश्नर की तारीफ भी की गई थी (सिंह, 1974)।

ईसाई मिशनरी और पंजाबी पत्रकारिता

ईसाई मिशनरियों ने भारत में अपनी जड़ें मजबूत करने के बाद साहित्य और पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से भारत के सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक क्षेत्र में हस्तक्षेप करना शुरू किया। पंजाब में ईसाई मिशनरियों द्वारा पंजाबी भाषा की वर्णमाला बनाने के लिए प्रयास शुरू किया गया। परिणामस्वरूप धर्म परिवर्तन के लिए पंजाबी भाषा का इस्तेमाल लिखित पत्र और पत्रिकाओं के रूप में किया जाने लगा। न चाहते हुए भी ईसाई मिशनरियाँ महाराजा रणजीत सिंह के समय पंजाब में प्रवेश कर चुकी थीं। ब्रिटिश सरकार के राजनीतिक प्रतिनिधि कप्तान वादे ने मिशनरी रिबजॉन सी. लाऊची के माध्यम से लुधियाना में एक स्कूल खोलने की कोशिश की थी (अल्टर,1975)। ब्रिटिश दस्तावेजों के अनुसार ईसाई मिशनरी कलकत्ता से रिबजॉन की सहायता के लिए पंजाब में आई और उत्तर भारत में ईसाई धर्म प्रचार के लिए काम तेज किया, परंतु अपने सभी प्रयासों के बावजूद वे अपने मंसूबों में असफल रहे और 6 महीने बाद पंजाब का दायित्व किसी और मिशनरी को देकर रिबजॉन कलकत्ता वापस चला गया। अपने प्रथम तीन वर्षों में ईसाई मिशनरी पंजाब में किसी भी व्यक्ति को ईसाई नहीं बना पाई (वेवेस्टर, 2009)। मिशनरी की योजनाओं को महाराजा रणजीत सिंह की मृत्यु के बाद सफलता मिली। उसके बाद मिशनरियों ने अपने कार्यक्रमों को आगे बढ़ाने के लिए पंजाबी भाषा में अपने विचार को प्रकाशित करना शुरू किया, जिसके लिए उन्होंने छोटे-छोटे पत्र और पत्रिकाएँ छपवाकर जनसाधारण में बाँटने शुरू किए। सन् 1851 में जॉन न्यूटन द्वारा पंजाबी की प्रथम व्याकरण को प्रकाशित किया गया। उसके बाद ईसाई मिशनरियों द्वारा पंजाब में अपना धरातल मजबूत करने के लिए ईसाई साहित्य को पंजाबी भाषा में प्रकाशित किया गया। ईसाई मिशनरियों द्वारा ईसाई धर्म के प्रसार हेतु कुछ ऐसी किताबें भी प्रकाशित की गईं, जिनसे जनसाधारण को यह लगे कि ईसाई धर्म नए विचारों, समानता और मानवता के सिद्धांतों पर आधारित है। इसके लिए कई पुस्तकें प्रकाशित हुईं, जिनमें प्रमुख हैं 'धर्म मार्ग' (1864), 'बाइबिल दिया मूर्त अते कहानियाँ' (1878), इज्लेदा संकेत, तीर्थयात्रा दी ओर' (कौर, 2018)।

ईसाई मिशनरियों का विरोध और पंजाबी पत्रकारिता

ईसाई मिशनरियों का एकमात्र एजेंडा धर्मांतरण था, जिसका पंजाब की धरती पर तीव्र विरोध हुआ। खासतौर से तीन संगठनों द्वारा और सामाजिक आंदोलनों द्वारा मिशनरियों का विरोध किया गया। इनमें प्रमुख हैं आर्य समाज, सिंह सभा और अहमदिया आंदोलन। ये तीनों आंदोलन वास्तव में ईसाई मिशनरियों द्वारा पैदा किए गए सामाजिक-धार्मिक हालात के विरुद्ध लड़ने के लिए पैदा हुए थे, परंतु उस समय भारत के राजनीतिक हालात और ब्रिटिश हुकूमत की 'फूट डालो राज करो' की नीति के चलते ये आंदोलन ब्रिटिश कूटनीति की भेंट चढ़ गए। बाद में तो इनमें आपस में ही संघर्ष शुरू हो गए, जिसका उदाहरण आर्य समाज और सिंह सभा के बीच आपसी टकराव था, हालाँकि राष्ट्रीय चेतना के विकास के कारण लोग फिर से एकजुट हो गए (बसरा, 1996)।

राष्ट्रीय चेतना के कारण पंजाबियों, खासकर सिखों का, ब्रिटिश नौकरशाहों के साथ तनाव बढ़ गया, जिसके कारण उन्होंने राष्ट्रीय संगठनों जैसे इंडियन नेशनल काँग्रेस के साथ हाथ मिला लिया। पंजाब में सरकारी अधिकारियों द्वारा सिखों के धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप के साथ-साथ विदेशी भूमि पर होने वाले दुर्व्यवहार ने सिखों को अँग्रेजों के विरुद्ध खड़ा होने के लिए मजबूर कर दिया। कुछ दुर्भाग्यपूर्ण घटनाओं जैसे रकाबगंज मोर्चा, बज बज घाट का नरसंहार और कामा गाटा मारू जहाज दुखांत ने पंजाब में एक शोक की लहर पैदा कर दी। इन दुर्घटनाओं को पंजाबी पत्रकारिता ने राष्ट्रवाद के साथ जोड़कर पेश किया। गुरुद्वारा सुधार आंदोलन और सिखों पर गुरुद्वारों के सेवकों (महंतों) द्वारा ब्रिटिश नौकरशाह के साथ मिलकर किए गए अत्याचारों को पंजाबी पत्रिकाओं ने गंभीरता से प्रस्तुत किया। इसमें सबसे प्रमुख पत्रिका 'सच्चा ढिढोरा' थी, जो पंजाब के लायलपुर से प्रकाशित होती थी। इस पत्रिका ने पंजाब के जनसाधारण को पूरी दास्ताँ सुनाई। इस अखबार द्वारा चलाई गई मुहिम के कारण गुरुद्वारा रकाबगंज और खालसा कॉलेज सिखों के कुलीन वर्ग के

हाथों से मुक्त हुए (सिंह, 2013)। उस समय की एक और पंजाबी पत्रिका, जिसे 'हिंदुस्तान गदर' के नाम से जाना जाता है, 1 नवंबर, 1913 को सैनफ्रांसिस्को से प्रकाशित हुई। इस पत्रिका का वर्णन यहाँ आवश्यक है। इस पत्रिका ने ब्रिटिश शासन के कुकर्मों और नीतियों को पंजाबी भाषा में पेश करना शुरू किया। यह पत्रिका उस समय सैनफ्रांसिस्को से इसलिए प्रकाशित हुई, क्योंकि भारत में विचार व्यक्त करने की स्वतंत्रता पर अँग्रेजी हुकूमत ने प्रतिबंध लगा दिए थे। सरकार ने इस अखबार पर पंजाब में पाबंदी लगा दी थी। अगर किसी व्यक्ति के पास यह अखबार पकड़ा जाता था तो उसे जेल भेज दिया जाता था, परंतु इन सभी पाबंदियों के बावजूद यह पत्रिका पंजाब के हर गाँव में पहुँचती थी (नैदिस, 1951)।

पंजाब की पत्रिका 'शहीद' का प्रकाशन 4 दिसंबर, 1914 में शुरू हुआ। इस पत्रिका ने राजनीतिक एवं सामाजिक बुराइयों को प्रस्तुत करने के लिए व्यंग्यात्मक नीति अपनाई। उसके बाद पंजाबी में बहुत-सी मासिक पत्रिकाएँ छपने लगीं, जिनमें 'खालसा सेवक' और 'गुरुमत प्रकाश' बहुत महत्त्वपूर्ण थीं। इन मासिक पत्रिकाओं द्वारा ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध किए गए प्रचार के कारण ब्रिटिश सरकार ने सेना में सिखों को भर्ती करना बंद कर दिया था। बाद में सिखों ने खुद ही ब्रिटिश आर्मी में भर्ती होना बंद कर दिया। इसके बाद अँग्रेज अधिकारियों ने कुलीन सिखों से सौदाबाजी करके सिखों को सेना में भर्ती करने के लिए प्रोत्साहित करने हेतु दो पत्रिकाएँ 1907 में शुरू करवाईं। उनका उद्देश्य सिखों को सेना में भर्ती होने के लिए उत्साहित करने के साथ-साथ उन्हें अँग्रेजी हुकूमत के प्रति निष्ठावान होने का पाठ पढ़ाना भी था।

जलियाँवाला बाग नरसंहार और पंजाबी पत्रकारिता

ब्रिटिश साम्राज्य की क्रूरता और अमानवीयता ने जहाँ पंजाबी समाज को उद्वेलित किया, वहीं पंजाबी पत्रकारिता पर भी इसका गहरा असर हुआ। जब-जब पंजाब के लोगों पर संकट आया या लोग अँग्रेजों से टकराए, तब-तब पंजाबी पत्रकारिता के समक्ष परीक्षा की घड़ी पैदा हुई। ब्रिटिश बर्बरता और अन्याय के विरुद्ध लड़ने के लिए निष्पक्ष पत्रकारिता की बहुत बड़ी भूमिका रही है। पंजाब में चाहे वह गुरुद्वारा सुधार लहर हो या जलियाँवाला नरसंहार, पंजाबी पत्रिकाओं ने खुलकर अँग्रेजी शासन के अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाकर राष्ट्रीय चेतना पैदा करने में योगदान दिया। जलियाँवाला बाग नरसंहार एक बहुत बड़ी दुखद घटना थी, जिसे अँग्रेज शासकों द्वारा भारतीयों के मन में खौफ पैदा करने के लिए अंजाम दिया गया था। भारतीय पत्रकारिता ने जलियाँवाला बाग नरसंहार के लिए जनरल डायर और अँग्रेजी शासन को जिम्मेदार ठहराया, जिसके चलते ब्रिटिश सरकार ने भारतीय प्रेस एक्ट 1910 का प्रयोग करते हुए 170 के करीब पत्रिकाओं पर पाबंदी लगा दी थी। जलियाँवाला बाग की घटना पंजाब में होने के कारण पंजाब राष्ट्रवादियों और सरकारी गतिविधियों का केंद्र बन गया था, जिसके चलते पंजाबी पत्रकारिता पर राष्ट्रीय हित को पेश करने की जिम्मेदारी आ पड़ी थी (बैरियर, 1976)। अँग्रेज सरकार ने जब पंजाब में प्रेस और प्रेस की स्वतंत्रता पर पूरी तरह प्रतिबंध लगाया, तब राष्ट्रवादी नेताओं, कवियों, पत्रकारों और समाज के अन्य वर्गों द्वारा सरकारी दमन के विरुद्ध कविताओं और कहानियों के माध्यम से राष्ट्रीय जागरूकता पैदा करने का बीड़ा उठाया गया। उस समय के प्रमुख कवि और लेखकों में मुल्कराज आनंद, विषम साहनी, सरोजनी नायडू आदि थे। नानक सिंह की कविता 'खूनी बैसाखी' तथा मुल्कराज आनंद का उपन्यास 'मोर्निंगफेश' और 'बसंत में जलियाँवाला बाग' ने राष्ट्रीय चेतना पैदा करने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया (वेंकटरमन, 2018)।

गुरुद्वारा सुधार आंदोलन और पंजाबी पत्रकारिता

जलियाँवाला बाग हत्याकांड के बाद सिखों ने अपने धार्मिक स्थानों को महंतों (पुस्तैनी पुजारियों) से मुक्त करवाने के लिए अहिंसात्मक आंदोलन शुरू किया। सिखों का मानना था कि जो महंत पीढ़ी-दर-पीढ़ी गुरुद्वारों में पूजा कार्य कर रहे हैं, उन्होंने गुरुद्वारों पर कब्जा कर लिया है और गुरुद्वारों में श्रद्धालुओं द्वारा अर्पित की जाने वाली राशि का वे अपने हितों के लिए प्रयोग कर रहे हैं। इसके लिए गुरुद्वारों में कई प्रकार के असामाजिक तत्त्वों को शामिल किया गया, जिससे गुरुद्वारा गुरुओं की शिक्षा के अनुसार न चलकर वहाँ समाज विरोधी कार्य होते रहे। वे महंत कभी-कभी ब्रिटिश सरकार का भी सहयोग करते थे। वही महंत पंजाब के लोगों को दबाने में भी ब्रिटिश सरकार का सहयोग करते रहे। सिखों द्वारा चलाए गए इस आंदोलन को 'अकाली आंदोलन' नाम दिया गया, जिसमें सिखों ने अकाली बनकर शांतिपूर्वक गुरुद्वारों में प्रवेश करना चाहा और गुरुद्वारे की पूजा छोड़ने के लिए दबाव बनाने का कार्य किया, परंतु महंतों को ब्रिटिश अधिकारियों का समर्थन प्राप्त होने के कारण उन्होंने हिंसात्मक तरीके से अकाली आंदोलन को दबाने की कोशिश की, जिस कारण पंजाब में महंतों और ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध आक्रोश पैदा हो गया। अकाली आंदोलन के दौरान सबसे पहले सिखों द्वारा शांतिपूर्वक गुरु नानक जी के जन्म स्थान ननकाना साहिब में प्रवेश करने का प्रयास किया गया, परंतु वहाँ के महंतों द्वारा असामाजिक तत्त्वों की मदद से 130 सिखों को शहीद कर दिया गया। उसके बाद भी सिखों ने अपना धैर्य नहीं खोया और अपना आंदोलन जारी रखा।

ऐसी ही और भी घटनाएँ घटीं, जिनमें गुरु का बाग मोर्चा, जैतो मोर्चा आदि शामिल हैं। सरकार द्वारा अकालियों की गुरुद्वारा सुधार माँग को स्वीकार करने में पाँच वर्ष का समय लिया गया। उन पाँच वर्षों में कुल 400 सिखों ने शांतिपूर्ण आंदोलन करते हुए शहादत दी और कई हजार सिखों को जेल में डाल दिया गया। सिखों के इस शांतिपूर्ण आंदोलन में सिख युवाओं ने 'बब्बर अकाली' नाम के एक क्रांतिकारी समूह का निर्माण किया, जिसने अँग्रेजों और महंतों के विरुद्ध खौफ पैदा कर दिया। उसके चलते महंतों द्वारा अपनी गतिविधियों पर नियंत्रण कर लिया गया और अधिकारियों द्वारा भी सिखों के गुरुद्वारों को सिखों को सौंप देने का काम प्रारंभ हुआ। सन् 1925 में शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधन कमेटी द्वारा कानूनी प्रावधान करके गुरुद्वारों को सिखों के हवाले कर दिया गया (सिंह, 1995)। गुरुद्वारा सुधार आंदोलन के समय पंजाबी पत्रकारिता को दोतरफा चुनौतियों का सामना करना पड़ा। ब्रिटिश सरकार की दमनकारी नीतियों के चलते प्रेस सेंसरशिप एक्ट 1910 द्वारा पत्रिकाओं की लाइसेंस फीस बढ़ा दी गई और सरकार के खिलाफ खबर छापने पर जुर्माना लगा दिया गया था, परंतु इन सब घटनाओं के बाद भी पंजाबी पत्रकारिता ने अँग्रेजी प्रशासन और उसके दमनकारी कानून के खिलाफ निष्पक्ष पत्रकारिता का साहस दिखाया (कारखानी, 1981)। पंजाबी पत्रकारिता ने ननकाना

साहिब घटना, गुरुबाग मोर्चा और जैतो मोर्चा पर सरकारी प्रतिबंधों के बावजूद खुलकर लिखा, जिस कारण बहुत सारे अखबारों को अपना लाइसेंस गँवाना पड़ा और अपनी प्रिंटिंग प्रेस तक से हाथ धोना पड़ा। सन् 1920 में सिखों के संघर्ष को पेश करने के लिए 'अकाली' और 'अकाली परदेशी' नामक दो पत्रिकाओं की शुरुआत की गई, जिनका महत्त्व इस बात से पता चलता है कि 'अकाली' नाम की पत्रिका के 10 संपादकों को 6 महीने के अंदर हिरासत में लिया गया और उन पर चार लाख रुपये का जुर्माना लगाकर उन्हें जेल में बंद कर दिया गया (गिल,1983)। परंतु पंजाबी पत्रकारिता ने घुटने टेकने के बजाय खड़े रहने का साहस दिखाया। 'अकाली' अखबार पर पाबंदी लगने के बाद अकाली आंदोलन से जन साधारण को जागरूक करने के लिए 13 नई पत्रिकाओं की शुरुआत की गई, जिनमें मुख्य हैं 'अकाली संसार', 'संगत जथेदार', 'रामगढ़ी गजट', 'बब्बर शेर', 'परदेशी खालसा', 'गणगाज अकाली', 'संत सेवक', 'कृपाल बहादुर' आदि। पंजाबी पत्रकारिता की बात करते हैं तो बहुत सारी पत्रिकाओं ने खुले दिल से राष्ट्रीय आंदोलन में योगदान दिया, परंतु इनमें भी कुछ पत्रिकाएँ जैसे 'बब्बर शेर', 'वीर खालसा', 'कृपाल बहादुर' लगातार अँग्रेजों के खिलाफ खड़ी रहीं। 'गणगाज' और 'अकाली दीवान' नाम की पत्रिकाएँ लोगों में राष्ट्रीय भावना का जागरण कर रही थीं। राष्ट्र के प्रति इनके बलिदान को सुनकर लोग अचंभित हो जाते हैं।

ब्रिटिश दमनकारी नीतियाँ और पंजाबी पत्रकारिता

पंजाबी पत्रकारिता के देशप्रेम का पता मार्च-अप्रैल 1930 में तत्कालीन वायसराय द्वारा प्रस्तुत विवरण से चलता है। वायसराय बताते हैं कि 'पंजाबी पत्रिकाएँ बागी रूप धारण कर चुकी हैं और उनके द्वारा पुलिस और पंजाबी सैनिकों में बगावत फैलाने की कोशिश की जा रही है'। पंजाबी पत्रकारिता पंजाब में कानून व्यवस्था और शांति के लिए खतरा बन चुकी थीं, जिस कारण 1930 में ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रेस एक्ट 1910 को पुनः लागू किया गया। भारतीय प्रेस अध्यादेश को 27 अप्रैल, 1930 को एक नए कानून के रूप में लागू किया गया, जिसके तहत सरकार द्वारा पत्रकारों की सुरक्षा राशि बढ़ा दी गई और अधिकारियों की पत्रिकाओं पर प्रतिबंध लगाने की शक्ति को बढ़ा दिया गया। इसके अलावा लेखकों और पत्रकारों पर देशद्रोह, नफरत फैलाने और डर का माहौल पैदा करने जैसे प्रावधानों के तहत मुकदमे चलाए गए। यह अध्यादेश इतना सख्त था कि इसके अंतर्गत अधिकारियों के पास असीम शक्तियाँ आ गई थीं, जिसके तहत वे किसी भी व्यक्ति को हिरासत में ले सकते थे और उस पर संगीन जुर्म के तहत मुकदमे दर्ज कर सकते थे। इस अध्यादेश के चलते पहले से चली आ रही 324 पत्रिकाओं की सुरक्षा राशि बढ़ा दी गई तथा 29 पत्रिकाओं के खिलाफ मुकदमे दर्ज कर लिए गए। उस समय सरकार द्वारा दमनकारी नीति अपनाते हुए पंजाबी पत्रकारों और पत्रकारिता को दबाने के लिए एक साल के भीतर 110 मुकदमे दर्ज किए गए (बैरियर, 1976)।

निष्कर्ष

स्पष्ट है कि पंजाबी पत्रकारिता और पत्रकारों ने ब्रिटिश शासन के दौरान अन्य भारतीय भाषाई पत्र-पत्रिकाओं की तरह आर्थिक चुनौतियों के साथ-साथ सरकारी दमन का सामना किया। पंजाबी पत्रकारिता का जन्म पंजाब में ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना के बाद हुआ तथा ब्रिटिश सरकार और उसके अधिकारियों द्वारा पंजाबी पत्र-पत्रिकाओं को अपने अधीन करने के लिए लालच और दमन की नीति अपनाई गई, परंतु इन सबके बाद भी पंजाबी पत्रकारों ने ब्रिटिश सरकार के दमन का डटकर सामना किया और स्वतंत्र रूप से पत्रकारिता करते हुए अनेक बार जेल की यात्रा की। अँग्रेज अधिकारियों द्वारा अपने हितों के संरक्षण हेतु पंजाबी पत्रकारों और पत्र-पत्रिकाओं को कई प्रकार के लालच भी दिए गए, जिनमें सरकारी संरक्षण के अंतर्गत सरकारी इश्तिहार और सरकारी सहायता देने की योजना भी लागू की गई। पंजाबी पत्रकारिता के संबंध में ब्रिटिश अधिकारियों के डर का आलम यह था कि उस दौरान कोई भी धनी व्यक्ति अथवा औद्योगिक घराना पंजाबी पत्रों में निवेश नहीं करना चाहता था। पंजाबी पत्र और पत्रिकाओं को पढ़ने वाले लोग भी बहुत कम थे। साथ ही पंजाबी पत्रकार और संपादकों को वेतन कम मिलता था और सरकारी अधिकारी उन्हें परेशान करने का कोई मौका नहीं चूकते थे। पंजाबी पत्रकार और संपादक हथकड़ी लगने के डर से हमेशा आशंकित रहते थे। इस कारण पंजाबी पत्रिकाओं को पूरी तरह से कुशल संपादक नहीं मिल पाते थे, परंतु इन सारी घटनाओं के बावजूद पंजाबी अखबारों की लोकप्रियता इतनी ज्यादा थी कि अगर एक गाँव में एक अखबार आता था तो पूरा गाँव उसे सुनता था। वह अखबार रात और दिन दोनों समय पढ़ा जाता था। पूरे गाँव के लोग एक जगह इकट्ठा होते थे और कोई पढ़ा-लिखा व्यक्ति उसे पढ़कर सुनाता था। यह अखबार तब तक पढ़ा जाता था जब तक वह पूरी तरह फट न जाए। पंजाबी पत्रकारिता के ऐसे प्रभाव और उस समय के पत्रकारों तथा संपादकों का स्मरण आजादी के अमृत महोत्सव के निमित्त आवश्यक है। बेहतर होगा कि मीडिया संस्थानों में इस संबंध में व्यापक चर्चा-परिचर्चा का आयोजन किया जाए, ताकि मीडिया की नई पीढ़ी उस समय के पत्रकारों के बलिदानों और साहस से परिचित हो सके।

संदर्भ

आल्टर, जे. पी. (1975). अमेरिकन प्रेस्बिटेरियंस इन नॉर्थ इंडिया : मिशनरी मोटिव्स एंड सोशल ऐटिट्यूड्स अंडर ब्रिटिश कॉलोनिज्म *जर्नल ऑफ प्रेस्बिटेरियंस हिस्ट्री*. https ://citeseerx.ist.psu.edu/viewdoc/ownload?doi=10.1.1.474.790&rep=rep1&type=pdf से पुनःप्राप्त.

कारखानीस, एस. (1981). *इंडियन पॉलिटिक्स एंड द रोल ऑफ प्रेस*. न्यू दिल्ली : विकास पब्लिशिंग हाउस.

कौर, ऍम. (2018). द अमेरिकन प्रेस्बिटेरियन मिशन इन कॉलोनियल पंजाब : कंट्रीब्यूशन इन सोशल एंड रिलीजियस फील्ड्स (1834-1930) *रिमार्किंग ऐन एनलाइजेशन*. https ://www.jstor.org/stable/3517790?origin=cross से पुनःप्राप्त.

गिल, के. (1983). *रोल ऑफ वर्नाकुलर प्रेस ड्यूरिंग द गुरुद्वारा रिफार्म मूवमेंट*. https ://www.jstor.org/stable/44139886 से पुनःप्राप्त.

चौधरी, आर. (1995). *द स्टोरी ऑफ इंडियन प्रेस*. https ://www.epw.in/system/files/pdf/1955_7/9/the_story_of_the_indian_press.pdf. से पुनःप्राप्त.

नैदिस, ऍम. (1951). प्रोपैगेंडा ऑफ गदर पार्टी. *पेसिफिक हिस्टोरिकल रिव्यू*. 20(3), पेज 251-260.

बसरा ए. के. (1996). द पंजाब प्रेस एंड द गोल्डन टेंपल कंट्रोवर्सी (1905) : एन इशू ऑफ सिख आइडेंटिटी. *सोशल साइंटिस्ट* 24 (4/6), पेज 41-61. https ://www.jstor.org/stable/363570 से पुनःप्राप्त.

बैरियर जी. एन. (1976). *बैंड : कंट्रोवर्सियल लिटरेचर एंड पोलिटिकल कंट्रोल इन इंडिया*. न्यू दिल्ली : मनोहर.

मंडल, पी. (2021). हिस्ट्री एंड डेवलपमेंट ऑफ इंडियन प्रेस एंड प्रेस एक्ट्स. https ://www.yurarticlelibrary.com से पुनःप्राप्त.

मिश्रा, एस. (2021). *अमृत बाजार पत्रिका*. https : //theprint.in/tag/amrita-bazar-patrika/ से पुनःप्राप्त.

वेंकटरमन, वी. (2018). *द एगनी ऑफ पंजाब : इंफ्लुएंस ऑफ जालियाँवाला बाग ऑउटरेज ऑन सेडिशस पॉलिटिकल लिटरेचर इन द मद्रास प्रेसीडेंसी 1919-1923*. https ://www.researchgate.net/profile/V-Venkatraman/publication/327163267_The_Agony_of_Punjab_Influence_of_Jallianwala_Bagh_Outrage_on_Seditious_Political_Literature_i_the_Madras_Presidency_1919_-_1923/links/5cb699ef92851c8d22f0b893/The-Agony-of-Punjab-Influence-of-Jallianwala-Bagh-Outrage-on-Seditious-Political-Literature-in-the-Madras-Presidency-1919-1923.pdf से पुनःप्राप्त.

वेब्स्टर, जे. सी. बी. (2009). पंजाबी क्रिस्चियन. *जर्नल ऑफ पंजाब स्टडीज*. http ://www.socialresearchfoundation.com/upoadreserchpapers/5/210/1807140521371st%20maninder%20kaur.pdf से पुनःप्राप्त.

सिंघल, एस. (2018). *जेम्स ऑगस्टस हिकीज स्टोरी थाटफुली एक्सकैवेट्स एशियाज फर्स्ट प्रिंटेड न्यूज पेपर*. https ://theprint.in/pageturner/book-bites/james-augustus-hickys-story-thoughtfully-excavates-asias-first-printed-newspaper/79401/ से पुनःप्राप्त.

सोनवालकर, पी. (2015). अ नाइनटींथ सेंचुरी स्टोरी ऑफ पोलिटिकल प्रोटेस्ट, *इंडियन जर्नलिज्म इन कॉलोनियल क्रूसिबल*. lhttps ://www.tandfonline.com/doi/full/10.1080/1461670X.2015.1054159 से पुनःप्राप्त.

सिंह, के. (1962). *पत्रकारी*. न्यू दिल्ली : पंजाबी साहित्य सभा.

सिंह, एच. (2013). *कनसाइज इनसाइक्लोपीडिया ऑफ सिखइज्म*. पटिआला : पंजाबी युनिवर्सिटी पटियाला.

सिंह एच. (2014). डेवलपमेंट ऑफ पंजाबी जर्नलिज्म ड्यूरिंग फ्रीडम स्ट्रगल. *इंटरनेशनल रिसर्च जर्नल ऑफ मैनेजमेंट सोशियोलॉजी एंड ह्यूमैनिटी*.

सिंह, बी. एन. और सिंह, किरपाल. (1995). *रेबल्स अगेंस्ट द ब्रिटिश रूल*. न्यू दिल्ली : अटलांटिक पब्लिशर्स.

सिंह, जे. (1997). द *सिख रेसरजेंस*. न्यू दिल्ली : नेशनल बुक आर्गनाइजेशन. पेज, 167-169.

संचार माध्यम | खंड 34(1) : 36-41, जनवरी-जून 2022
आईएसएसएन: 2321-2608

स्वतंत्रता संग्राम और भारतीय भाषाई पत्रकारिता

विकाश कुमार[1] और डॉ. अंजनी कुमार झा[2]

सारांश

संचार की विशाल दुनिया का एक अभिन्न अंग है पत्रकारिता, जो समाज को समसामयिक घटनाओं तथा गतिविधियों के प्रति सूचित, शिक्षित तथा जागरूक करने का काम करता है। साथ ही यह मनोरंजन और जनमत निर्माण का कार्य भी करता है। समाज में इसके महत्त्व को देखते हुए पत्रकारिता को लोकतंत्र के चौथे स्तंभ की संज्ञा दी गई है। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में भारत की भाषाई पत्रकारिता की विशेष भूमिका है, क्योंकि भारत में स्वाधीनता संघर्ष का युग भारतीय पत्रकारिता के विकास का युग भी है। ब्रिटिश शासन के विरुद्ध वैचारिक लड़ाई में भारत के सभी प्रांतों की क्षेत्रीय पत्रकारिता ने उल्लेखनीय योगदान दिया है। भारतीय भाषाओं में की जा रही पत्रकारिता ने आमजन में स्वतंत्रता की चेतना का प्रसार करते हुए संपूर्ण स्वतंत्रता संग्राम को एक बौद्धिक विस्तार दिया, जिसके फलस्वरूप भारतवासियों को अँग्रेजी हुकूमत और उसके शोषण से मुक्ति मिली तथा स्वतंत्र भारत में लोकतंत्र तथा लोकतांत्रिक मूल्यों की पुन:स्थापना हुई। प्रस्तुत शोध पत्र के माध्यम से स्वतंत्रता संग्राम में भारत की भाषाई पत्रकारिता के योगदान तथा महत्त्व का विभिन्न दृष्टिकोणों से अध्ययन और विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है।

संकेत शब्द : स्वतंत्रता संग्राम, भाषायी पत्रकारिता, समाचार-पत्र, लोकतंत्र, राष्ट्रीयता

प्रस्तावना

भारत में पत्रकारिता की शुरूआत ही अन्याय और भ्रष्टाचार के विरुद्ध आवाज बुलंद करने से हुई। 29 जनवरी, 1780 को कलकत्ता से जेम्स ऑगस्टस हिकी द्वारा प्रकाशित 'बंगाल गजट' के माध्यम से भारत में पत्रकारिता का आरंभ हुआ। इस समाचार-पत्र ने तत्कालीन ईस्ट इंडिया कंपनी के आंतरिक भ्रष्टाचार को उजागर किया। इस दृष्टि से भारतीय पत्रकारिता की बुनियाद में ही शोषण, दमन और अन्याय के खिलाफ आवाज बुलंद करना शामिल रहा है। इसलिए पत्रकारिता को 'बेजुबानों की जबान' भी कहा जाता है। तब से लेकर वर्तमान समय तक भारतीय पत्रकारिता विभिन्न चरणों से होकर गुजरी है। इन्हीं में से एक महत्त्वपूर्ण चरण भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का है, जिसके माध्यम से स्वाधीन भारत का सपना साकार हुआ। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की विजय-गाथा भारतीय पत्रकारिता के योगदान के बिना अधूरी है। 1857 में आजादी की प्रथम क्रांति से लेकर 1947 में स्वतंत्रता प्राप्ति के संघर्ष तक भारतीय पत्रकारिता की विशेष भूमिका रही है। देशभर में चल रहे स्वतंत्रता प्राप्ति के विभिन्न जनआंदोलनों में न सिर्फ स्वतंत्रता सेनानियों ने भागीदारी की, बल्कि समकालीन भारतीय भाषाओं के पत्रकारों तथा साहित्यकारों ने भी इसमें बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया। उन्होंने अपनी लेखनी से अँग्रेजों की दमनकारी नीतियों के विरुद्ध आवाज बुलंद करने के साथ-साथ जनमानस में राष्ट्रीयता और देशप्रेम की भावना का प्रसार करने का कार्य भी किया। राजा राममोहन राय, बालकृष्ण भट्ट, भारतेंदु हरिश्चंद्र, महावीर प्रसाद द्विवेदी, हजारी प्रसाद द्विवेदी, प्रेमचंद, माखनलाल चतुर्वेदी, महात्मा गांधी, बालगंगाधर तिलक तथा गणेश शंकर विद्यार्थी जैसे कई साहित्यकारों तथा पत्रकारों ने विभिन्न समाचार पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से समाज में स्वतंत्रता की चेतना का प्रसार किया। उस दौर में अँग्रेजी हुकूमत द्वारा इन पत्रकारों की आवाज को दबाने के लिए कई काले कानून लागू किए गए, उन पर मुकदमे हुए, जुर्माना लगाया गया और कई बार उन्हें जेल की काल कोठरी में डाल दिया गया। इसके बावजूद अँग्रेजी हुकूमत इनकी लेखनी की धार को कमजोर करने में सफल नहीं हो पाई। भारत का स्वतंत्रता संग्राम वह रणक्षेत्र था, जिसमें देश के लगभग हर क्षेत्र, भाषा, बोली, धर्म, जाति तथा समुदाय के नागरिकों ने अँग्रेजों के शोषण के विरुद्ध आजादी की लड़ाई शुरु की और साथ ही सैकड़ों साहित्यकारों, पत्रकारों तथा संपादकों ने भी इस संग्राम में अपना सर्वस्व समर्पित कर दिया था। लंबे समय तक चले संघर्षों, आंदोलनों के साथ-साथ नागरिकों, राजनेताओं, क्रांतिकारियों, समाज-सुधारकों, साहित्यकारों तथा पत्रकारों के साझा प्रयासों के फलस्वरूप ही देश को 1947 में आजादी मिली।

साहित्य समीक्षा

जोशी (1991) ने स्वतंत्रता संग्राम में हिंदी समेत अन्य भारतीय भाषाओं के योगदान पर विस्तृत चर्चा की है। 1780 में हिकी द्वारा निकाले गए समाचार-पत्र के बाद की पत्रकारिता का उल्लेख विशेष रूप से किया है। वे भारतीय पत्रकारिता के जन्म का श्रेय राजा राममोहन राय को देते हुए उनके द्वारा निकाले गए विभिन्न भाषाई समाचार-पत्र-पत्रिकाओं की चर्चा करती हैं, जिनके माध्यम से भारतीय जनमानस के बीच राष्ट्रीयता की भावना का प्रसार हुआ। इनमें बांग्ला भाषा में 'संवाद कौमुदी' (1820), फारसी में 'मिरात उल अखबार' (1821), हिंदी, बांग्ला, फारसी तथा अँग्रेजी में 'बंगदूत' (1829), तथा अँग्रेजी तथा बांग्ला में 'ब्रह्मैनिकल मैगजीन' प्रमुख हैं। इनके अतिरिक्त वह तत्कालीन अँग्रेजी सरकार द्वारा भारतीय लेखकों, पत्रकारों तथा संपादकों की लेखनी पर अंकुश हेतु लाए गए दमनकारी कानूनों और प्रावधानों का उल्लेख भी करती हैं।

मिश्र (1979) ने भारतीय पत्रकारिता के इतिहास के साथ-साथ इसके व्यावहारिक तथा सैद्धांतिक आयामों का वर्णन भी व्यापकता के साथ किया है। उनके अनुसार भारत में सामाजिक सुधार का प्रयास करने तथा विदेशी शासन के विरुद्ध जनता में जागृति उत्पन्न करने के

[1]पीएचडी शोधार्थी (मीडिया अध्ययन विभाग), महात्मा गांधी केंद्रीय विश्वविद्यालय, मोतिहारी, बिहार- 845401, ईमेल : vkmail93@gmail.com
[2] एसोसिएट प्रोफेसर (मीडिया अध्ययन विभाग), महात्मा गांधी केंद्रीय विश्वविद्यालय, मोतिहारी, बिहार- 845401, ईमेल : anjanikumarjha@mgcub.ac.in

उद्देश्य से पत्र-पत्रिकाओं की आवश्यकता महसूस हुई। वे बताते हैं कि स्वतंत्रता आंदोलन के नेताओं और स्वतंत्रता सेनानियों ने जनजागरण की आवश्यकता को समझते हुए विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन और संपादन में रुचि लेना आरंभ किया। उस दौरान ब्रिटिश सरकार के दमन के कारण स्पष्ट रूप से राजनीतिक जागरण के नाम पर पत्र न निकालते हुए समाज सुधार के नाम पर पत्रों का प्रकाशन शुरु हुआ। लेखक ने भारतीय भाषाओं की पत्रकारिता पर विस्तृत रूप से प्रकाश डालते हुए अँग्रेजी, बांग्ला, फारसी तथा हिंदी के कई समाचारपत्र-पत्रिकाओं और उनके महत्त्व और योगदान का उल्लेख भी किया है; जैसे—बंगाल हेराल्ड, इंडियन हेराल्ड, टेलीग्राफ, समाचार दर्पण, दिग्दर्शन इत्यादि।

मिश्र (1968) के अनुसार भारतीय नवजागरण का अनुभव पहली बार बंगाल ने किया था। भारतीय पत्रकारिता की जन्मभूमि बंगाल है और हिंदी पत्रकारिता का जन्म और विकास भी कलकत्ता में ही हुआ। वे बताते हैं कि राजा राममोहन राय और उनके सहयोगी द्वारकानाथ ने अनुभव किया था कि सामाजिक-राजनीतिक-आर्थिक सुधार आंदोलन की अपेक्षित सक्रियता बनाए रखने के लिए स्वतंत्र पत्रों की आवश्यकता प्राथमिक है। इसी दृष्टि से उन्होंने अँग्रेजी, बांग्ला, फारसी और हिंदी में कई पत्र प्रकाशित किए। वे भारतीय पत्रकारिता के इतिहास का वर्णन करते हुए हिंदी के साथ-साथ अन्य भारतीय भाषाओं के समकालीन व महत्त्वपूर्ण पत्र-पत्रिकाओं की चर्चा करते हैं। लेखक ने 'तिलक युग' तथा 'गांधी युग' राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन में बाल गंगाधर तिलक तथा महात्मा गांधी जैसे स्वतंत्रता सेनानियों के पत्रकारीय जीवन, संघर्ष और सामाजिक अवदान पर विस्तार से प्रकाश डाला है।

शोध पत्र का उद्देश्य

- स्वतंत्रता संग्राम के संदर्भ में भारतीय भाषाई पत्रकारिता के विभिन्न पक्षों और भूमिकाओं को समझना।
- स्वतंत्रता संग्राम के दौरान प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं की विषयवस्तु का अध्ययन करना।

शोध प्रश्न

- भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में भारतीय भाषाई पत्रकारिता ने किस प्रकार अपना योगदान दिया?
- स्वतंत्रता संग्राम के दौरान भाषाई पत्रकारिता को किस प्रकार की चुनौतियों का सामना करना पड़ा?

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध पत्र के अंतर्गत विषय के विविध आयामों का व्यापक और समग्र रूप में अध्ययन और विश्लेषण करने हेतु वर्णनात्मक प्रविधि का प्रयोग किया गया है।

भारत में भाषाई पत्रकारिता और स्वतंत्रता संग्राम

पत्रकारिता को समाज का दर्पण माना जाता है, जिसमें समाज का हर अच्छा-बुरा चेहरा प्रतिबिंबित होता है। भारत में स्वतंत्रता संग्राम तथा पत्रकारिता के विकास का सिलसिला साथ-साथ चला है। 1857 के विद्रोह के कुचले जाने के बाद भी पराधीन भारत के अलग-अलग हिस्सों में स्वतंत्रता का संघर्ष चलता रहा। विभिन्न भाषाओं और बोलियों के माध्यम से की जा रही पत्रकारिता ने अँग्रेजी हुकूमत के विरोध में आमजन को जागरूक करने का कार्य जारी रखा। 29 जनवरी, 1780 को 'हिकी गजट' के प्रकाशन के बाद से भारतीय समाज में अँग्रेजी पत्र-पत्रिकाओं की संख्या में अप्रत्याशित रूप से वृद्धि हुई। ऐसी परिस्थिति में भारतीय भाषाओं के चिंतक, साहित्यकार, पत्रकार, राजनेताओं तथा समाज सुधारकों द्वारा लोगों में राष्ट्रीयता और स्वतंत्रता की भावना के प्रसार के लिए उनकी अपनी भाषा में समाचारपत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन आरंभ किया गया, ताकि देश के प्रत्येक प्रांत का निवासी अँग्रेजों की शोषणकारी नीतियों से अवगत हो सके।

कोलकाता को भारत की भाषाई पत्रकारिता का उद्गम स्थल माना जाता है। भारतीय भाषाओं में समाचार-पत्रों का इतिहास बांग्ला भाषा के 'दिग्दर्शन' (1818) से आरंभ होता है जो मासिक पत्र था। इसके बाद बांग्ला भाषा में ही 'समाचार दर्पण' का प्रकाशन हुआ, जो साप्ताहिक था। बांग्ला के बाद गुजराती भाषा का पदार्पण 'बंबई समाचार' (1822) के साथ हुआ। इसके बाद 30 मई 1826 को कोलकाता से ही हिंदी के पहले समाचार-पत्र 'उदंत मार्तंड' का प्रकाशन हुआ। मराठी भाषा के पहले समाचार-पत्र का नाम 'बंबई-दर्पण' था, जो 1832 में निकला। (मिश्र, ह, 1979)। इन समाचार-पत्रों के आगमन से भारत में राष्ट्रीय अस्मिता की भावना को नवीन अभिव्यक्ति प्राप्त हुई।

स्वतंत्रता संग्राम में भारतीय पत्रकारिता की भूमिका का उल्लेख करते हुए चौबे (hindisamay.com)[1] बताते हैं कि भारतीय भाषाई प्रेस के जनक बांग्लाभाषी राजा राममोहन राय ही थे। उन्होंने हिंदी, बांग्ला, अँग्रेजी और फारसी भाषाओं की पत्रकारिता के लिए जो रचनात्मक संघर्ष किया, वह इतिहास स्वीकृत तथ्य है। उनके समाचार-पत्रों में 'बंगदूत' (1829), 'मिरात उल अखबार' (1822), 'ब्रह्मैनिकल मैगजीन' (1821) प्रमुख हैं। 8 मार्च, 1854 को कलकत्ता से निकले हिंदी के प्रथम दैनिक 'समाचार सुधावर्षण' के संपादक श्यामसुंदर सेन द्वारा 1857 के आंदोलन में ब्रिटिश सेना के अत्याचारों की खबर साहस के साथ प्रकाशित की गई। श्यामसुंदर सेन ने 5, 9 और 10 जून, 1857 के अंकों में अँग्रेजों के विरुद्ध सक्रिय विप्लवी सेना की तैयारी और प्रगति के समाचारों को प्रकाशित किया था। उन समाचारों से ब्रिटिश सरकार इतनी डर गई कि गवर्नर जनरल ने 12 जून, 1857 को श्यामसुंदर सेन पर मुकदमा चलाने का निर्णय लिया।

स्वतंत्रता संग्राम काल की हिंदी पत्रकारिता ने संघर्षशील, ध्येय-निष्ठा और प्रतिरोध के जीवट का जहाँ साहसिक आचरण प्रस्तुत किया, वहीं फिरंगी हुकूमत की अमानुषिक यातनाएँ भी झेलीं। यह भाषाई पत्रकारिता की नैतिक शक्ति का ही भय था कि फिरंगी गवर्नर जनरल लार्ड लिटन को वर्नाक्युलर प्रेस एक्ट का कवच ओढ़ना पड़ा था (श्रीधर, 2018)। 8 फरवरी, 1857 को अजीमुल्ला खाँ द्वारा दिल्ली से 'पयामे-आजादी' पत्र आरंभ किया गया, जो अपनी प्रखर वाणी और साहसिक पत्रकारिता के लिए प्रसिद्ध हुआ। उन्होंने इसी साल ये कौमी तराना लिखा—

"हम हैं इसके मालिक, हिंदुस्तान हमारा,
पाक वतन है कौम का, जन्नत से भी प्यारा।" (श्रीवास्तव, 2021)

'पयामे-आजादी' में ब्रिटिश सरकार विरोधी विचारों का प्रकाशन किया जाता था। इसने समस्त देशवासियों के दिलों में स्वतंत्रता की चिंगारी सुलगा दी थी, जिसके कारण इसे अँग्रेजों के दमन का शिकार होकर बंद होना पड़ा। तिवारी (2008) ने हिंदी पत्रकारिता का काल-विभाजन तथा नामकरण पाँच प्रकार से किया है—1. उदय काल (1826-1867), 2. भारतेंदु युग (1867-1900), 3. तिलक या द्विवेदी युग (1900-1920), 4. गांधी युग (1920-1947), 5. स्वातंत्र्योत्तर युग (1947 से वर्तमान)। यह संपूर्ण अवधि भारतीय पत्रकारिता के संक्रमण काल की है, जिसमें केवल हिंदी ही नहीं, बल्कि अन्य भारतीय भाषाओं की पत्रकारिता का विकास भी हो रहा था। उदय काल की पत्र-पत्रिकाओं के उल्लेख के पश्चात् भारत की भाषाई पत्रकारिता को निम्नलिखित कालक्रम के अनुसार समझा जा सकता है।

भारतेंदु युग (1867-1900)

मिश्र (1968) के अनुसार यह युग दरबारी संस्कृति व रीतिकालीन साहित्य के प्रति राष्ट्रीय विद्रोह प्रकट कर रहा था। यह नवजागरण का वह दौर था जब भारतीय साहित्य और पत्रकारिता, दोनों के साझा प्रयासों से लोगों में राष्ट्रीयता तथा देशप्रेम की भावना का प्रसार हो रहा था। इस समय भारत के अधिकांश साहित्यकार स्वयं पत्रकार की भूमिका का निर्वाह भी कुशलतापूर्वक कर रहे थे और उनके लेखन में समाज के हर वर्ग की पीड़ा स्पष्ट रूप से दिख रही थी—

"अब जहँ देखहु तहँ दुःखहिं दुःख दिखाई
हा हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई।"

भारतेंदु की उपर्युक्त पंक्तियों में भारत की तत्कालीन परिस्थितियों के प्रति उनकी पीड़ा साफ दिखाई पड़ती है। उन्नीसवीं शताब्दी के साठवें दशक के अंत तक भारतेंदु जी की पत्रिका 'कविवचन सुधा' ने 1857 के गदर की दबी चिनगारी को फिर अंगार बनाने की ठोस पृष्ठभूमि तैयार कर दी, जिसके कारण ब्रिटिश सरकार ने उसकी प्रतियाँ लेना बंद कर दिया। इस दौर में अँग्रेज सरकार की आलोचना करना राजद्रोह था, उसमें भारतेंदु अपनी कचोट को निम्न पंक्तियों के माध्यम से व्यक्त करते हैं—

"प्रभुजी एसो दिन कब अइहैं।
भारत के धन भारत रहि हैं।
कबहूँ विदेश न जइहैं"।

इस दौर में 'कविवचन सुधा' (1867), 'हरिश्चंद्र मैगजीन' (1873), 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' (1874), 'हिंदी प्रदीप' (1877), 'ब्राह्मण' (1883), 'उचितवक्ता' (1880), 'भारतमित्र' (1878), 'सार सुधानिधि' (1879) जैसे कई पत्र भी निकले, जिन्होंने प्रखरता के साथ समकालीन राजनीतिक परिस्थितियों पर टिप्पणी की तथा जनसंवाद किया।

तिलक या द्विवेदी युग (1900-1920)

'स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है' का नारा देने वाले क्रांतिकारी बाल गंगाधर तिलक ने पराधीन भारत के लोगों में स्वराज्य और स्वतंत्रता की चेतना का प्रवाह किया। उनकी पत्रकारिता में राष्ट्रप्रेम, स्वदेशी और स्वाधीनता के विचारों का समावेश देखने को मिलता है। उन्होंने अँग्रेजी में 'मराठा दर्पण' तथा मराठी में 'केसरी' नामक समाचार-पत्रों का प्रकाशन कर अँग्रेजी हुकूमत के खिलाफ वैचारिक लड़ाई छेड़ दी। 30 अप्रैल, 1908 को खुदीराम बोस तथा प्रफुल्लचंद चाकी द्वारा किए गए बम विस्फोट के समर्थन में अपने समाचार-पत्र 'केसरी' में लेख लिखने के अपराध में 3 जुलाई, 1908 को अँग्रेजों ने बाल गंगाधर को गिरफ्तार कर उन पर मुकदमा चलाया, जिसमें उन्हें छह साल की सजा भी सुनाई गई। जेल से बाहर आने के बाद भी तिलक आजीवन अपने रचनाकर्म से स्वाधीन भारत के सपने को साकार करने में तथा भारतीयों को जागरूक करने में प्रयासरत रहे[2]।

तिलक के 'केसरी' समाचार-पत्र की लोकप्रियता के कारण इसमें लिखित लेखों का अनुवाद अन्य भाषाओं की पत्र-पत्रिकाओं में भी होने लगा। इसी से प्रेरित होकर नागपुर से हिंदी भाषा में 'हिंदी केसरी' नामक साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन भी आरंभ हो गया, जो हिंदीभाषी क्षेत्रों में खूब लोकप्रिय हुआ (मिश्र, 1968)। तिलक की ओजस्वी और साहसी पत्रकारिता ने समकालीन पत्र-पत्रिकाओं और उनके पत्रकारों व संपादकों को प्रभावित करने का काम किया। इसके परिणामस्वरूप बंगाल से 'वंदे मातरम्', 'युगांतर' तथा 'संध्या' जैसे पत्र पूरे भारत में अपने क्रांतिकारी विचारों के लिए प्रसिद्ध हुए।

गरमपंथी विचारों वाले स्वतंत्रता सेनानी विपिनचंद्र पाल के संपादन में 1906 को 'वंदे मातरम्' नामक समाचार-पत्र का प्रकाशन हुआ, जिसका संपादन दायित्व आगे चलकर एक और क्रांतिकारी श्री अरविंद को मिला, जिन्हें अपने बेबाक लेखन के कारण अँग्रेजी सरकार के मुकदमों को भी झेलना पड़ा। इस पत्र की विस्फोटक खबरें, ओजस्वी भाषा तथा प्रखर लेखों के कारण इसकी प्रसार संख्या में भारी वृद्धि हुई। इसके पश्चात् बांग्ला, अँग्रेजी, हिंदी तथा अन्य प्रांतीय भाषाओं में भी 'वंदे मातरम्' नाम से समाचार-पत्रों का प्रकाशन आरंभ हो गया (सबनीस, 2007)। इस अवधि की अन्य चर्चित और लोकप्रिय पत्र-पत्रिकाओं में 'सरस्वती' (1900), 'अभ्युदय' (1907), 'स्वराज्य' (1907) 'हिंद केसरी' (1907) आदि थे। मदनमोहन मालवीय द्वारा निकाला गया 'अभ्युदय' पत्र राष्ट्रप्रेम तथा समाज सुधार में अग्रणी था। इसने भगत सिंह की शहादत के बाद 'फाँसी अंक' निकालकर क्रांति ला दी।

इसी तरह 'स्वराज्य' का प्रकाशन भी 1907 में इलाहाबाद से शांति नारायण भटनागर ने किया। इसके सभी संपादकों तथा सहायक कर्मियों को इसकी क्रांतिकारी सामग्री के प्रकाशन हेतु न्यायालय द्वारा दंडित किया गया था। इस पत्र की आवाज को 1910 के भारतीय प्रेस एक्ट की सहायता से दबा दिया गया। इस पत्र में संपादक के पद के लिए निकाले गए विज्ञापन की पंक्तियाँ इसके साहस की गाथा आज भी बयाँ करती हैं—

"चाहिए 'स्वराज्य' के लिए एक संपादक। वेतन—दो सूखी रोटियाँ, एक गिलास ठंडा पानी और हर संपादकीय के लिए दस साल जेल।"

इसके अतिरिक्त 1907 में कलकत्ता से अंबिका प्रसाद वाजपेयी के संपादन में 'नृसिंह' तथा नागपुर से बालकृष्ण शिवराम द्वारा प्रकाशित 'हिंद केसरी' भी इस काल के महत्त्वपूर्ण पत्र हैं (जोशी, 1991)।

गणेश शंकर विद्यार्थी द्वारा कानपुर से प्रकाशित 'प्रताप' (1913)

भारत के स्वतंत्रता संग्राम में राष्ट्रप्रेम और स्वाधीनता के विचार को जन-जन तक पहुँचाने में अग्रणी भूमिका निभा रहा था। वह प्रताप से पहले 'कर्मयोगी' तथा उर्दू के 'स्वराज्य' पत्र के लिए भी लेखन कार्य कर चुके थे। उनके अखबार 'प्रताप' का दफ्तर क्रांतिकारियों के लिए घर की तरह था। लाहौर षड्यंत्र कांड के बाद भगत सिंह ब्रिटिश सरकार की खुफिया एजेंसियों से बचने के लिए 'प्रताप' के दफ्तर में लगभग 6 महीने तक बलवंत सिंह के नाम से रहे (सलिल, 2014)।

इसी काल में माखनलाल चतुर्वेदी ने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया और जेल भी गए। उन्होंने जबलपुर से प्रकाशित 'कर्मवीर' (1919) के माध्यम से मूल्य आधारित पत्रकारिता के मानक गढ़े। उनका पत्रकारीय लेखन बहुविध था, जिसके द्वारा उन्होंने भारतीय समाज में व्याप्त विघटनकारी ताकतों, कुप्रथाओं पर कड़ा प्रहार किया (अवस्थी, 2010)। उनका पत्र 'कर्मवीर' त्याग, तप, आहुति और क्रांति का उद्घोषक था। स्वतंत्रता संग्राम में 12 बार जेल यात्रा और 63 बार तलाशियों के कारण माखनलाल चतुर्वेदी का व्यक्तित्व जुझारू बन गया था।

"मुझे तोड़ लेना वनमाली उस पथ पर तुम देना फेंक,
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने जिस पथ पर जाएँ वीर अनेक।"

उनके द्वारा लिखित उपर्युक्त पंक्तियों में निहित देशप्रेम की भावना ने हजारों स्वतंत्रता सेनानियों में राष्ट्रीयता का संचार किया। (जोशी, 1991)

गांधी युग (1920-1947)

महात्मा गांधी सिर्फ एक राजनेता ही नहीं, बल्कि एक कुशल संचारक के साथ ओजस्वी पत्रकार भी थे। दक्षिण अफ्रीका से लेकर भारत के प्रवास में उन्होंने कई पत्रों का प्रकाशन कर तत्कालीन प्रासंगिक मुद्दों और समस्याओं पर जनसंवाद किया। वे संचार में भाषाओं के महत्त्व से भलीभाँति परिचित थे। इसलिए उन्होंने देश के नागरिकों से संवाद करने के लिए विभिन्न भाषाओं का प्रयोग किया। उन्होंने अँग्रेजी भाषा के 'इंडियन ओपीनियन' (1903), 'यंग इंडिया' (1919) तथा 'हरिजन' (1933), के साथ-साथ हिंदी भाषा में 'हिंदी नवजीवन' (1921), 'हरिजन सेवक' (1936), गुजराती में 'नवजीवन' (1919), 'हरिजन बंधु' (1933) जैसे समाचार-पत्रों के माध्यम से अपने विचारों का प्रचार-प्रसार किया[3]।

अँग्रेजों द्वारा किए जा रहे अत्याचार और दमन को देखने के बाद ब्रिटिश साम्राज्य के ऊपर से महात्मा गांधी का भरोसा उठ चुका था और अपनी पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से वह उनकी नीतियों की आलोचना करने लगे थे। अपने समाचार-पत्र 'यंग इंडिया' में की गई कुछ टिप्पणियों की वजह से उन्हें 13 मार्च, 1922 को अँग्रेजों द्वारा गिरफ्तार कर उन पर राजद्रोह का मुकदमा चलाया गया और बाद में 6 वर्ष के कड़े कारावास की सजा भी सुनाई गई (मिश्र, 1968)। किंतु प्रतिबंधों के बाद भी गांधी की लेखनी की धार कुंद नहीं हुई और वे लगातार ब्रिटिश सरकार की शोषणकारी नीतियों की आलोचना करते रहे। 4 अगस्त, 1920 को कलकत्ता से निकला 'स्वतंत्र' गांधी युग का एक तेजस्वी पत्र था, जिसे पं. अंबिकाप्रसाद वाजपेयी ने प्रकाशित किया था। गांधी के नमक सत्याग्रह आंदोलन का समर्थन करने के कारण अँग्रेज सरकार ने इस पर 5000 रुपये का जुर्माना लगाया, जिसके न देने पर यह बंद हो गया।

इस युग में 'आज' (1920), 'मतवाला' (1923), 'सुधा' (1929), 'माधुरी' (1922), 'विशाल-भारत' (1928), 'हंस' (1930) आदि कई पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ, जिसमें अँग्रेज सरकार के विरुद्ध साहित्यिक तथा वैचारिक लेख, व्यंग्य, टिप्पणी आदि का समावेश होता था। इन पत्र-पत्रिकाओं को बाबूराव विष्णु पराड़कर, बनारसीदास चतुर्वेदी, प्रेमचंद, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला जैसे यशस्वी लेखकों का सान्निध्य मिला।

स्वतंत्रता संग्राम और भारतीय भाषाई पत्रकारिता की चुनौतियाँ

भारतीय पत्रकारिता की विकास यात्रा में भारत में राष्ट्रीयता और नवजागरण की चेतना के विकास की यात्रा भी शामिल है। इस यात्रा में भारतीय पत्रकारिता को विभिन्न सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक समस्याओं और चुनौतियों से जूझना पड़ा, जिनसे कई बार पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन तथा वितरण बुरी तरह प्रभावित हुआ। स्वाधीनता संग्राम के दौरान भारत की भाषाई पत्रकारिता के समक्ष आई चुनौतियों को निम्नलिखित बिंदुओं के माध्यम से समझा जा सकता है :

भारतीय प्रेस और सरकार की दमनकारी नीतियाँ : स्वतंत्रता संग्राम की अवधि में तत्कालीन ब्रिटिश सरकार की कुटिल नीतियों के विरुद्ध जनता को एकजुट करने के लिए तथा संचार व संवाद के लिए मुद्रित माध्यम का प्रयोग सर्वाधिक किया गया। 1857 के स्वतंत्रता संग्राम के बाद से अँग्रेजी हुकूमत इस जनमाध्यम की ताकत से भलीभाँति परिचित हो चुकी थी। इसलिए भारतीय भाषाई पत्रकारिता का दमन करने के लिए उनके द्वारा कई काले कानून लागू किए गए। भारतीय पत्रकारिता के विकास के साथ-साथ ब्रिटिश सरकार की दमन नीति भी उग्र होती गई। लार्ड वेलेजली के समय में भारतीय पत्रों की धार को कुंठित करने के लिए ब्रिटिश सरकार ने पहला प्रेस कानून 13 मई, 1799 में बनाया। इसके नियम निम्न प्रकार थे :

- प्रत्येक समाचार-पत्र को संपादक एवं संचालक के नाम सरकार को लिखित रूप में देने होंगे।
- प्रत्येक समाचार-पत्र के अंक पर मुद्रक एवं संपादक के नाम अंकित करने होंगे।
- समाचार-पत्र की सामग्री का सर्वेक्षण किसी सरकारी अधिकारी द्वारा किया जाएगा और रविवार को प्रकाशन बंद रहेगा।

उपर्युक्त नियमों के उल्लंघन पर विभिन्न दंडों तथा जुर्मानों सहित देश से निष्कासित करने का कठोर प्रावधान भी था। उसके बाद लार्ड हैस्टिंग्ज ने इन नियमों में थोड़ी राहत देते हुए कुछ बदलाव किए, जैसे—

- किसी प्रकार की ऐसी खबरें प्रकाशित नहीं की जाएँ, जो कोर्ट की डायरेक्टरी, ब्रिटिश सरकार के अधिकारियों, कौंसिल के सदस्यों, सुप्रीम कोर्ट के जजों के विरुद्ध हों।
- किसी के धार्मिक विश्वासों और भावनाओं पर चोट करने वाली तथा भारतीय प्रजा में आतंक पैदा करने वाली बातों का प्रकाशन न किया जाए।

- किसी के व्यक्तिगत आचरण पर आघात करने वाली खबरें न छापी जाएँ आदि।

लार्ड हैस्टिंग्ज के भारत से जाने के बाद जॉन ऐडम कार्यवाहक गवर्नर बना, जो प्रेस की स्वतंत्रता का कट्टर विरोधी था। चार अप्रैल 1823 को ऐडम ने सुप्रीम कोर्ट की सहायता से समाचार-पत्रों के नियंत्रण के कानून में कई कठोर बदलाव किए, जिसका सबसे पहला वार राजा राममोहन राय के समाचार-पत्र 'मिरात उल अखबार' पर हुआ, जिसके कारण वह बंद हो गया। ऐडम के बाद सन् 1823 में लार्ड विलियम बैंटिक का आगमन हुआ, जिसने प्रेस कानूनों के प्रति थोड़ी नरमी दिखाई तो जरूर, लेकिन अधिकांश नियमों में कोई परिवर्तन नहीं किया। उसके बाद आए चार्ल्स मेटकाफ ने प्रेस के वर्तमान कानूनों के प्रति उदारता बरतते हुए कई नियमों में छूट दी। जैसे 15 सितंबर, 1835 को उसने समाचार-पत्रों की लाइसेंस प्रणाली को समाप्त करके समाचार-पत्रों के स्वतंत्र विकास में योगदान दिया। उसके बाद भारतीय पत्रकारिता को जून 1857 में लार्ड कैनिंग के 'गलाघोंट प्रेस एक्ट' को भी झेलना पड़ा (जोशी, 1991)। कैनिंग का यह अधिनियम विशेष रूप से 1857 के स्वतंत्रता संग्राम की पृष्ठभूमि में विरोध और असंतोष को कुचलने के लिए लाया गया था। इसके कारण जहाँ एक ओर द्वारकानाथ टैगोर द्वारा चलाए जा रहे पत्र 'बंगाल हाराकारू' का लाइसेंस रद्द कर दिया गया, वहीं दूसरी ओर 'दूरबीन', 'सुल्तान उल अखबार', 'समाचार सुधावर्षण' पर देशद्रोह का मुकदमा भी चलाया गया (जोशी, 2020)।

स्वतंत्रता संग्राम में योगदान दे रहे समाचार-पत्रों का दमन यहीं नहीं रुका। लार्ड लिटन द्वारा भारत की भाषाई पत्रकारिता को कुचलने के उद्देश्य से 1 मार्च, 1878 को 'वर्नाक्युलर प्रेस एक्ट' जैसे दमनकारी कानून को लागू किया गया, जिसकी भर्त्सना पूरे देश में हुई। इसमें अँग्रेजी को छोड़ अन्य सभी भारतीय भाषाओं की पत्र-पत्रिकाओं को कानून के अंतर्गत लाया गया और पत्रों के मालिकों से न्यायालय में अपील करने का अधिकार भी छीन लिया गया। इस कानून के कारण कई समाचार-पत्रों पर मुकदमे दर्ज हुए और कई देशी समाचार-पत्रों की प्रतियाँ जला दी गईं। इसके अतिरिक्त सन् 1885 में जनसंचार माध्यमों की सामग्री पर नियमन के लिए 'टेलीग्राफ एक्ट' तथा 1905 के बंगाल विभाजन के बाद के आंदोलनों को खामोश करने के लिए 1910 में 'भारतीय प्रेस एक्ट' लाया गया। सन् 1923 में 'सरकारी गोपनीयता अधिनियम' लाकर भारतीय पत्रकारिता की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार को सीमित करने का प्रयास किया गया (जोशी, 2020)।

सांप्रदायिक सौहार्द बनाए रखने की चुनौती : भारत विविधताओं का देश है, जहाँ विभिन्न धर्म, जाति, भाषा-बोली तथा समुदाय के नागरिक 'अनेकता में एकता' की भावना के साथ निवास करते हैं। लेकिन भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना के साथ ही अँग्रेजों ने 'फूट डालो और राज करो' की कूटनीति अपना कर देश की एकता और अखंडता को कमजोर करने के कई सफल और असफल प्रयास किए। उनके इस षड्यंत्र को रोकने के लिए देश के विभिन्न पत्रकारों द्वारा विभिन्न प्रयास किए गए। महात्मा गांधी अपने समाचार-पत्रों के माध्यम से हर तरह की धार्मिक कट्टरता का विरोध करते हुए भारत की साझी संस्कृति और विरासत के मूल्यों के सहेजने की बात आजीवन करते रहे। 23 मार्च, 1931 को सुखदेव-भगत सिंह-राजगुरु को फाँसी दिए जाने के बाद देश भर में दंगे शुरू हो गए। ऐसी विषम परिस्थिति में 'प्रताप' के यशस्वी पत्रकार गणेश शंकर विद्यार्थी ने कानपुर में दंगों को शांत करने की कई कोशिशें कीं और ऐसी ही एक कोशिश में वे 25 मार्च, 1931 को खुद शहीद हो गए (सलिल, 2014)। ऐसे कई उदाहरण भारतीय पत्रकारिता में विद्यमान हैं, जहाँ स्वतंत्रता के संघर्ष के साथ-साथ समाज की अन्य दूसरी अलगाववादी ताकतों से लड़ने का काम भी पत्रकारों ने किया।

अँग्रेजों के शोषण के साथ-साथ सामाजिक बुराइयों के प्रति जागरूक करने की चुनौती : स्वतंत्रता संग्राम के दौरान भारतीय भाषाओं के माध्यम से की जा रही पत्रकारिता के केंद्र में अनिवार्य रूप से आजादी की चेतना और देशप्रेम का भाव का प्रसार करना सम्मिलित था, किंतु इसके साथ-साथ तत्कालीन समाज में व्याप्त छुआछूत, सती-प्रथा, बाल-विवाह, विधवाओं की दयनीय दशा, वेश्यावृत्ति जैसी सामाजिक कुरीतियों और धार्मिक अंधविश्वास व पाखंड के विरुद्ध भी लोगों को जागरूक करना एक बड़ी चुनौती थी, जिसके लिए पत्रकारों, साहित्यकारों तथा समाज सुधारकों द्वारा लिखे गए विशेष लेखों, संपादकीय आदि रचनाओं का समावेश पत्र-पत्रिकाओं में किया जा रहा था। डॉ. भीमराव आंबेडकर द्वारा 31 जनवरी, 1920 को मराठी भाषा में प्रकाशित अपने पहले समाचार-पत्र 'मूकनायक' से लेकर 4 फरवरी, 1956 को निकले 'प्रबुद्ध भारत' के प्रकाशन तक समकालीन सामाजिक कुरीतियों, धार्मिक अंधविश्वासों तथा पाखंडों से पीड़ित हाशिये के समाज के मुद्दों को देश के समक्ष प्रस्तुत करने का काम किया गया। उन्होंने 'बहिष्कृत भारत' (1927), 'समता' (1928), तथा 'जनता' (1930) जैसे अन्य कई पत्रों के माध्यम से तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक समस्याओं के प्रति व्यापक रूप से जागरूक करने का कार्य किया (सिद्धार्थ, 2020)। आंबेडकर की भांति महात्मा गांधी भी अपने समाचार-पत्र 'हरिजन' तथा 'हरिजन सेवक' के माध्यम से समाज में दलित उत्पीड़न के प्रति लोगों को जागरूक करने का काम कर रहे थे। उनके पत्रों में अँग्रेजी सरकार के शोषण के साथ-साथ विभिन्न सामाजिक कुरीतियों पर भी लेखों का प्रकाशन नियमित रूप से किया जाता था।

निष्कर्ष

भारतीय पत्रकारिता के इतिहास में स्वतंत्रता संग्राम के दौर को 'मिशनरी पत्रकारिता' के नाम से जाना जाता है, जिसका पहला लक्ष्य भारत से औपनिवेशिक शासन को उखाड़ फेंकने के लिए राष्ट्रीय स्तर पर जन-जागरूकता का प्रसार करना था। अँग्रेजों की दमनकारी नीतियों, काले कानूनों के जरिये लगाए गए प्रतिबंधों, पत्रकारों पर की गई कठोर कार्रवाईयों के बावजूद तत्कालीन पत्रकारिता ने अपने मूल दायित्वों का निर्वाह बखूबी किया। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम को पत्रकारिता के माध्यम से ही वह वैचारिक शक्ति मिली, जिसने देशवासियों में 'राष्ट्रीयता', 'एकता' तथा 'अखंडता' और 'स्वराज्य' का भाव जाग्रत किया। स्वतंत्रता संग्राम के दौरान भारतीय भाषाओं की पत्रकारिता के संयुक्त प्रयासों, संघर्ष, त्याग और बलिदानों के परिणामस्वरूप ही आज भारत स्वतंत्रता के 75 वें वर्ष में प्रवेश कर चुका है और 'अमृत महोत्सव' के रूप में इसका उत्सव भी

भारतवासी मना रहे हैं। वर्तमान में भारतीय पत्रकारिता स्वतंत्रता संग्राम के दौरान अपनाए गए 'मिशन' के मूल्यों को पीछे छोड़ते हुए 'प्रोफेशन' और 'बाजारीकरण' की अवधारणा को तेजी से आत्मसात् कर रही है, जो जनहित से ज्यादा मुनाफे पर आधारित है। इसलिए आज आवश्यकता है कि भारत की समस्त भाषाओं की पत्रकारिता का मूल भाव लोक-कल्याण पर आधारित हो, ताकि समाज में सूचनाओं का लोकतंत्रीकरण सुनिश्चित हो और भारत एक श्रेष्ठ राष्ट्र बनने की ओर अग्रसर हो सके।

संदर्भ

अवस्थी, एस. के. (2010). *पत्रकारिता के युग निर्माता : माखनलाल चतुर्वेदी*. नई दिल्ली : प्रभात प्रकाशन.

जोशी, एस. (2020). *मीडिया कानून और आचार संहिता*. नई दिल्ली : सेज पब्लिकेशन इंडिया प्रा. लिमिटेड.

जोशी, एस. (1991). *हिंदी पत्रकारिता : विकास और विविध आयाम*. जयपुर : राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी.

तिवारी, आर. (2008). *पत्रकारिता के विविध रूप*. दिल्ली : आलेख प्रकाशन.

मिश्र, एच. (1979). *संपूर्ण पत्रकारिता*. इलाहाबाद : अभिनव भारती.

मिश्र, के.बी. (1968). *हिंदी पत्रकारिता : जातीय चेतना और खड़ी बोली साहित्य की निर्माण-भूमि*. वाराणसी : भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन.

शर्मा, एस. (1978). *हिंदी पत्रकारिता : राष्ट्रीय नव उद्बोधन*. दिल्ली : राज पब्लिशिंग हाउस.

सबनीस, एम. पी. (2007). *वंदे मातरम्*. नई दिल्ली : प्रभात प्रकाशन.

सलिल, एस. (2010). *गणेश शंकर विद्यार्थी और उनका युग*. नई दिल्ली : अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स.

सिद्वार्थ. (2020, जनवरी, 26). *डॉ. आंबेडकर की पत्रकारिता : 'मूकनायक' से 'प्रबुद्ध भारत' की यात्रा*. फारवर्ड प्रेस. https://www.forwardpress.in/2020/01/mooknay-ak-100-years-journalism-ambedkar-hindi/ से पुन:प्राप्त.

श्रीधर, वी. (2018, फरवरी). *हिंदी नवजागरण का पुनःपाठ*. आंचलिक पत्रकार.

श्रीवास्तव, पी. (2021, मई 10). 1857 की क्रांति का गुमनाम नायक अजीमुल्ला खाँ, जिसने पहला 'कौमी तराना' लिखा. *मीडिया विजिल*. https://www.mediavigil.com/op-ed/document/the-unsung-hero-of-1857-azimullah-khan/) से पुन:प्राप्त.

नोट

1 https://www.hindisamay.com/contentDetail.aspxp?id=6578&pageno=1

2 https://www.bhaskar.com/national/news/bal-gangadhar-tilak-was-arrested-by-the-british-he-defended-the-revolutionaries-in-his-newspaper-128660766.html

3 https://www.gandhiheritageportal.org/hi/journals-by-gandhiji

संचार माध्यम | खंड 34(1) : 42-47, जनवरी-जून 2022
आईएसएसएन: 2321-2608

हिंदी नवजागरण और भारतेंदु युग की स्त्री विषयक चिंता : कवि वचन सुधा, बालाबोधिनी, हरिश्चंद्र चंद्रिका, हिंदी प्रदीप और ब्राह्मण पत्र-पत्रिकाओं के विशेष संदर्भ में

सत्यप्रकाश सिंह[1]

सारांश

भारतेंदु युग के रचनाकारों ने समय और समाज की माँग को न सिर्फ ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में समझा, अपितु उसके अंतर्विरोधों, अंतःसंघर्षों का मूल्यांकन करते हुए गतिशील मूल्यों की तलाश की तथा उसे पत्रकारिता के माध्यम से नवीन युग धर्म के रूप में स्थापित किया। 'हिंदी नवजागरण' की जिस परंपरा का उल्लेख हिंदी साहित्य और पत्रकारिता के संदर्भ में किया जाता है, उसके जनक भारतेंदु हरिश्चंद्र थे, जो 'स्वत्व निज भारत गहै' का मंत्र लेकर पत्रकारिता और साहित्य में सक्रिय हुए। हालाँकि इस स्वत्व-प्राप्ति की अनिवार्य शर्त राजनीतिक स्वाधीनता की प्राप्ति है, किंतु 1857 के स्वाधीनता संग्राम को छोड़ दिया जाए तो कुछेक छिटपुट आंदोलनों के अतिरिक्त उसकी प्राप्ति का कोई संगठित प्रयास इस दौर में दिखाई नहीं पड़ता है। उस 'स्वत्व' को पहचानने और उसकी प्राप्ति का मार्ग सुनिश्चित करने का कार्य, भारतेंदु युग की नवजागरण कालीन पत्रकारिता में दिखाई पड़ता है। स्वदेशी वस्तुओं का प्रचार, हिंदी भाषा की उन्नति, देशोन्नति जैसे अनेक ऐसे विषयों को चिंतन में लाने का कार्य उन्होंने किया, जिसके बिना स्वाधीनता आंदोलन की रूपरेखा अधूरी रह जाती। स्वाधीनता की लड़ाई उस रूप में नहीं लड़ी जा सकती थी, जैसे लड़ी गई। स्त्री विषयक चिंतन उसमें से एक है। स्त्रियों के मुद्दों और सरोकारों के बगैर नवजागरण की संकल्पना करना भी बेमानी है। उसे एक आधार देने और हिंदी नवजागरण के अनिवार्य विषय के रूप में प्रस्तुत करने का श्रेय भारतेंदु मंडल के रचनाकारों को ही जाता है।

संकेत शब्द : भारतेंदु हरिश्चंद्र, हिंदी नवजागरण, स्वत्व, स्वाधीनता आंदोलन, भारतेंदु मंडल

प्रस्तावना

भारतेंदु युग की पत्रकारिता और साहित्य समान मूल्यों का संवाहक है। प्रत्येक साहित्यकार किसी-न-किसी पत्र-पत्रिका से जुड़कर साहित्य साधना कर रहा था, इसलिए साहित्य और पत्रकारिता का कोई स्पष्ट विभाजन उस दौर में प्राप्त नहीं होता है। भारतेंदु, जिससे हिंदी साहित्य में आधुनिकता की शुरुआत मानी जाती है, ने कई पत्रिकाओं 'कवि वचन सुधा', 'हरिश्चंद्र मैगजीन' तथा 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' इत्यादि को संचालित और संपादित किया। भारतेंदु मंडल के वरिष्ठ सदस्य बालकृष्ण भट्ट 'हिंदी प्रदीप' से और प्रताप नारायण मिश्र 'ब्राह्मण' से जुड़े रहे। इन पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से भारतेंदु मंडल ने अपने युग का प्रतिनिधित्व किया। हिंदी भाषा, राजनीति, इतिहास, साहित्य, धर्म, समाज इत्यादि विषयों पर महत्त्वपूर्ण सामग्री छापकर लोगों को जागरूक करने तथा नवीन युग-बोध से संयुक्त करने का कार्य किया। भारतेंदु के पिता श्री गोपाल चंद्र साहित्यकार और विद्यानुरागी थे, इसलिए साहित्यिक वातावरण और संस्कार उन्हें परिवार से मिला। भारतेंदु के व्यक्तित्व का आकर्षण ऐसा था कि उनके आस-पास बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', प्रताप नारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, ठाकुर जगमोहन सिंह, अंबिकादत्त व्यास, राधाचरण गोस्वामी, राधाकृष्ण दास जैसे लेखकों का एक समूह तैयार हो गया, जिसे भारतेंदु मंडल के नाम से भी जाना जाता है। मंडल के सभी सदस्य किसी-न-किसी पत्र-पत्रिका से जुड़े रहे और युग को नई चेतना से संयुक्त करते रहे। वे आधुनिक इन अर्थों में कहे जाएँगे कि उन्होंने रूढ़ियों, अज्ञानताओं, संकीर्णताओं की घोर भर्त्सना की है। स्त्रियों के प्रति समाज के सौतेले व्यवहार पर विचार करते हुए वे समाज की सड़ी-गली मान्यताओं पर सवाल उठाकर जनसामान्य को जागरूक करने का कार्य करते हैं। प्रस्तुत शोध-आलेख ऐसी ही स्त्री-विषयक सामग्री पर आधारित है, जो उस दौर को समझने में सहायता करने के साथ-साथ नवजागरण कालीन चेतना के आलोक में हिंदी नवजागरण को समझने में सहायता प्रदान करती है। विश्लेषण के क्रम में मुख्यतः तीन रचनाकार, बालकृष्ण भट्ट, भारतेंदु हरिश्चंद्र और प्रतापनारायण मिश्र तथा उनके द्वारा संचालित, संपादित पत्र-पत्रिकाओं जैसे 'हिंदी प्रदीप', 'बालाबोधिनी', 'कवि वचन सुधा', 'हरिश्चंद्र चंद्रिका', 'ब्राह्मण' में स्त्री समस्या से संबंधित कुछ लेखों का उपयोग किया गया है।

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध-पत्र द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है, जिसके लिए ग्रंथावली, पुस्तकों, लेखों और इंटरनेट पर उपलब्ध सामग्री का उपयोग किया गया है। विश्लेषणात्मक और व्याख्यात्मक शैली के साथ विद्वानों से बातचीत भी इस शोध-पत्र के लेखन का आवश्यक हिस्सा है। लेख मुख्य रूप से बालकृष्ण भट्ट, भारतेंदु और प्रताप नारायण मिश्र के स्त्री विषयक चिंतन और सरोकारों पर आधारित है।

हिंदी नवजागरण और स्त्री

नवजागरण मनुष्य को सही-सही पाने और उसे संवलित करने की मूल चेतना का नाम है। मनुष्य उसके केंद्र में है। हिंदी साहित्य में आधुनिकता का विकास पत्रकारिता और हिंदी गद्य के विकास के साथ होता है। युग की यह माँग नवजागरण के परिप्रेक्ष्य में ही संभव थी। जो विद्वान हिंदी के नवजागरण और पुनर्जागरण को एक करके देखते हैं, वे भी मानते हैं कि यह दौर मनुष्य के संपूर्ण और संश्लिष्ट रूप की तलाश का दौर है। रामस्वरूप चतुर्वेदी 'हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास' पुस्तक

[1]सहायक आचार्य, हिंदी विभाग, राजधानी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली. ईमेल : satyaraghuvanshi@gmail.com

में लिखते हैं—"पुनर्जागरण का एक चिह्न यदि दो जातीय संस्कृतियों की टकराहट है तो दूसरा चिह्न यह भी कहा जाएगा कि वह मनुष्य के संपूर्ण तथा संश्लिष्ट रूप की खोज और उसका परिष्कार करना चाहता है। ...समग्र और संपूर्ण मनुष्य की यह परिकल्पना भारतीय पुनर्जागरण चेतना के केंद्र में है। इसका आरंभ राजा राममोहन राय (1772-1833) के व्यक्तित्व में है तो निष्पत्ति महात्मा गांधी के साथ (1869-1948)" (चतुर्वेदी, 2000)। विद्वानों का एक वर्ग नवजागरण और पुनर्जागरण में अंतर करके चलने का आग्रही है। उसका मानना है कि पुनर्जागरण शब्द से पुनरुत्थान का बोध होता है। दोनों दो शब्दावलियाँ जरूर हैं, किंतु हिंदी नवजागरण ही क्या भारतीय नवजागरण को भी पुनर्जागरण के भाव से अलग करके नहीं देखा जा सकता है। खास तौर पर तब, जब राष्ट्र एक विशेष परिस्थिति से गुजर रहा था और एक बड़े भाव की ओर अग्रसर होना चाहता था। हिंदी प्रदेश में नवजागरण की यह लहर उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में उठी और बंगाल तथा महाराष्ट्र के नवजागरण का अनुसरण करते हुए आगे बढ़ी।

हिंदी नवजागरण की अगुआई करने वाले समाज सुधारकों में स्वामी दयानंद सरस्वती को छोड़कर कोई भी हिंदी समाज का प्रतिनिधित्व नहीं करता है, इसलिए हिंदी के पत्रकारों, साहित्यकारों, समाज सुधारकों को हिंदी प्रदेश में नवजागरण का कार्य स्वयं ही करना पड़ा। नामवर सिंह कहते हैं—"हिंदी नवजागरण की चर्चा अँग्रेजी पढ़े-लिखे भारतीय बौद्धिकों के हलके में कम ही सुनाई पड़ती है; यहाँ तक कि कुछ लोग उसके अस्तित्व को भी स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हैं। कारण शायद यह हो कि हिंदी नवजागरण संबंधी अधिकांश रचनाएँ हिंदी में ही हुई; अँग्रेजी में उन्हें सुलभ कराने के प्रयास भी बहुत कम हुए। विडंबना तो यह है कि स्वयं हिंदी जानने वाले आधुनिक बौद्धिक भी, अपनी इस समृद्ध विरासत से भलीभाँति परिचित नहीं हैं" (प्रसाद, 1996)। सामग्रियों की उपलब्धता से अब यह प्रमाणित हो चुका है कि नवजागरण की प्रेरणा हिंदी पट्टी के रचनाकारों और समाज सुधारकों ने मुख्य रूप से बंगाल से ग्रहण की। नामवर सिंह भी हिंदी नवजागरण को बंगाल नवजागरण से प्रभावित मानते हैं—"यह न भूलना चाहिए कि भारतेंदु का सीधा संपर्क ईश्वर चंद्र विद्यासागर, केशवचंद्र सेन, बंकिमचंद्र, राजेंद्र मित्र और सुरेंद्र बनर्जी से था। भारतेंदु ने बंगला नवजागरण की मनपसंद रचनाओं से छाया ग्रहण तो की ही, अपने नाटकों में जहाँ उन्हें क्रांतिकारी विचारों को व्यक्त करना होता था, प्रायः बंगाली चरित्रों की अवतारणा करते थे और उन्हीं को प्रवक्ता भी बनाते थे" (सिंह, 1986)। नवजागरण की प्रेरणा उस समय दो स्रोतों से प्राप्त की जा सकती थी। 1857 की क्रांति से या फिर ज्ञान और संस्कृति के केंद्र बंगाल से। उस समय ऐसे लोगों की संख्या भी काफी थी, जो अँग्रेजों की सत्ता को मुसलमानों की सत्ता से बेहतर मानते थे। फिर 1857 की असफल क्रांति को प्रायः राजाओं और सामंतों के विद्रोह और राजनीतिक हित के संघर्ष के रूप में देखा गया। लोक साहित्य ने फिर भी भारत के प्रथम स्वाधीनता संग्राम को स्वर प्रदान किया, किंतु शिष्ट साहित्य उदासीन ही बना रहा, जबकि बंगाल नवजागरण सांस्कृतिक अधिक था, जिसकी जरूरत उस समय के हिंदी पट्टी के रचनाकार अधिक महसूस कर रहे थे। नामवर सिंह लिखते हैं—"भारतेंदु तथा उनके मंडल के लेखक सन् सत्तावन की राजक्रांति की अपेक्षा बंगाल के उस नवजागरण से प्रेरणा प्राप्त कर रहे थे, जो उससे पहले ही शुरू हो चुका था। कारण यह कि भारतेंदु और उनके मंडल के लेखकों की दृष्टि में अँग्रेजी राज की चुनौती राजनीतिक से अधिक सांस्कृतिक थी और इस सांस्कृतिक संघर्ष में बंगाल नवजागरण से अस्त्र-शस्त्र मिलने की संभावना अधिक थी" (सिंह, 1986)। 1857 की पराजय, अँग्रेजों का दमन, संगठित राष्ट्रीय राजनीतिक मंच का अभाव, अँग्रेजों की व्यवस्था को मुसलमानों के शासन से बेहतर मानना तथा सांस्कृतिक पक्ष के प्रति झुकाव जैसे अनेक कारण ऐसे रहे, जिससे बंगाल नवजागरण के प्रति हिंदी लेखकों के झुकाव को बल मिला।

हिंदी नवजागरण पर बंगाल नवजागरण के प्रभाव को अक्षरशः प्रभाव मानकर नहीं चलना चाहिए। स्थानीय स्थितियाँ, परिवेश, लोगों के संस्कार उसे अपने ढंग से प्रभावित करते रहते हैं। उसे नया स्वरूप प्रदान करते चलते हैं। भारतेंदु या उस युग के अन्य रचनाकारों ने उससे बाहर निकलकर मौलिक रचना सृजन किया है। रामस्वरूप चतुर्वेदी स्वदेशी वस्तुओं के व्यवहार का प्रतिज्ञा-पत्र, जो भारतेंदु ने 23 मार्च, 1874 की 'कवि वचन सुधा में प्रकाशित किया था, के संदर्भ में लिखते हैं—"यहाँ समझा जा सकता है बंगाल में आरंभ हुई पुनर्जागरण चेतना मध्यदेश में पहुँच कर अधिक प्रखर रूप में राष्ट्रीय हो जाती है और उसके वाहक बनते हैं भारतेंदु हरिश्चंद्र" (चतुर्वेदी, 2000)। रामस्वरूप चतुर्वेदी उचित ही कहते हैं कि भारतेंदु के नेतृत्व में बंगाल से प्रेरणा लेकर मध्यदेश का जागरण अभियान अधिक प्रखर रूप से विकसित होता है और स्वाधीनता आंदोलन की नींव को अधिक मजबूत वैचारिक आधार प्रदान करता है। स्त्रियों, दलितों, अस्पृश्यों के प्रति जो चिंता वहाँ दिखाई पड़ती है, वही कमोवेश यहाँ भी परिलक्षित होती है, किंतु उसे स्वाधीनता आंदोलन और देश के विकास से जोड़ने का जैसा अभियान भारतेंदु और उनके मंडल के सदस्य चलाते हैं वह अपने आप में अप्रतिम है। स्त्रियों की स्थिति पर भारतेंदु और उनके मंडल के सदस्यों ने काफी कुछ लिखा है। उसकी मुक्ति से राष्ट्र की मुक्ति को जोड़कर लिखा है। यह भारतेंदु और उनके मंडल का ही असर था कि जो स्त्री अमानवीय जीवन जीने के साथ साहित्य में भी भोग की वस्तु थी, वह मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करने का गुरुतर दायित्व निर्वाह करने लगी। भारतेंदु और उनके युग की अनेक सीमाएँ हैं, किंतु रीतिकाल की मानसिकता से निकालकर साहित्य और स्त्री का जैसा वर्णन उनके यहाँ प्राप्त होता है, वही आगे चलकर राजनीति के केंद्र में उनके मुद्दों को स्थापित करने की पृष्ठभूमि निर्मित करता है।

पितृसत्तात्मक व्यवस्था और स्त्री जीवन

भारतेंदु मंडल समाज में स्त्रियों की दशा और उनके मुद्दों को लेकर काफी सक्रिय रहा है। स्त्रियों के ऊपर हो रहे शोषण की बहुआयामी प्रस्तुति उनकी रचनाशीलता में मुखरता से अभिव्यक्त हुई है। पुरुष प्रधान व्यवस्था ने स्त्रियों को हाड़-मांस की वस्तु बनाकर रख दिया था। उसका सार निर्धारित करके उसे अस्तित्वहीन बना दिया था। भारतेंदु इसे मनुष्यता के विपरीत पाते हैं। उन्होंने 9 फरवरी, 1972 को 'कवि वचन सुधा' में लिखा—"हमारे भारतवर्ष के निवासी स्त्री के विषय में केवल इतना ही समझते हैं कि स्त्री एक वस्तु है, जिसे भगवान ने शुद्ध पुरुषों की सेवा के ही हेतु बनाया है और पुरुषों को उनको अन्न, वस्त्र दे देना, इतना ही कर्तव्य है। इससे विशेष न तो यहाँ के लोगों का स्त्रियों से स्नेह है, न आदर है" (सिंह, 2008)। जबकि स्त्रियाँ बिल्कुल इसके उलट सोचती हैं और पुरुषों के प्रति निष्ठा और सम्मान के भाव के साथ उसकी सेवा को अपना धर्म मानती हैं। 'हिंदी प्रदीप' समाचार पत्र में जुलाई 1891 में बालकृष्ण भट्ट ने लिखा—"अलावे मुहब्बत के माता अपने पुत्र को पालना, रोग-दोख, घाम-छाँह से बचाए रखना अपना मुख्य काम समझती हैं। बहन अपने भाई

का, देवरानी अपने देवर का सब काम कर देना अपना धर्म समझती है। स्त्री अपने पति को आराम और हर्ष पहुँचाना अपने लिए सबसे श्रेष्ठ काम, वरन अपने जन्म की सफलता मानती ही है, इसे कौन न स्वीकार करेगा" (पाठक, 2015)। किंतु पुरुष का दिमाग इतना कुढ़मगज है कि स्त्रियों को वह स्वयं के सुख के साधन के रूप में देखना ही पसंद करता है। स्त्रियों के बिना उसका काम भी नहीं चलता है और उसके सरोकारों के प्रति वह उदासीन भी बना रहता है।

भारतेंदु युग की रचनाओं पर आरोप लगाया जाता है कि वहाँ स्त्रियों के प्रति चिंता का अर्थ महज उन्हें रोटी, कपड़ा मुहैया कराने की चिंता तक सीमित है, किंतु उपरोक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि समाज की वह मानसिकता, जो स्त्रियों को रोटी-कपड़ा देकर अपने दायित्व की समाप्ति समझ लेती है, को भी भारतेंदु मंडल अपनी लेखनी के माध्यम से चुनौती देता है। भारतेंदु इसलिए विशिष्ट रचनाकार हैं कि उन्होंने अपने युग की सामान्य समझ का अतिक्रमण करते हुए पुरुषों की भाँति स्त्रियों के लिए भी सम्मानजनक स्थितियों की माँग की। आज की परिस्थिति में यह माँग बहुत सामान्य लग सकती है, क्योंकि हमारा बोध काफी विकसित हो चुका है, किंतु उस समय, जब साहित्य में दो सौ वर्षों का रीतिकाल स्त्रियों को वस्तु मानकर लिखा गया हो, वहाँ एक साहित्यकार-पत्रकार का स्त्रियों को मनुष्य समझने का भाव काफी आगे की बात लगती है। भारतेंदु एक अलग प्रश्न उठाते हुए कहते हैं कि जब स्त्री-पुरुष एक-दूसरे से प्रेम करते हैं तो आपस में एक-दूसरे के प्रति आदर और स्नेह का भाव रखते हैं। यहाँ तक कि घर-बार भी छोड़ देते हैं, लेकिन समय के साथ वहाँ भी स्त्री धीरे-धीरे वस्तु में बदल जाती है। वह सुख देने का साधन मात्र बनकर रह जाती है—"यह आदर वा स्नेह केवल इतना ही समझकर है कि स्त्री एक सुख की वस्तु है तो अब जब स्त्रियों में बुद्धि केवल सुखावलंबिनी हुई तो उनके वास्तविक स्वरूप के ज्ञान का लोप हो गया और मूर्खता फैलने का यही कारण है" (सिंह, 2008)। समाज में वह कौन-सी ऐसी चीज या समझ है, जो दो लोगों के आपसी प्रेम को प्रेम नहीं रहने देती है। संबंधों को सामान्य नहीं रहने देती है। इन तथ्यों की तरफ इशारा करते हुए भारतेंदु भारतीय समाज की उस मानसिकता पर सवाल उठाते हैं, जिसने स्त्रियों को अपनी जागीर या वस्तु बनाकर रखने को नितांत सहज बना दिया है। इस तरह के कृत्य के साथ समाज का जुड़ा होना पूरे समाज का गुनहगार होना है। यह भाव उनके लेखन से स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है।

पुरुष प्रधान समाज का दोहरा व्यवहार

स्त्री को अपने प्रत्येक संबंध में एक पुरुष ही मिलता है। वह पिता हो सकता है, पति या पुत्र या प्रेमी हो सकता है, किंतु जब एक स्त्री को इन रिश्तों की जरूरत होती है, तब उसके सामने एक पुरुष ही खड़ा मिलता है। पितृसत्ता की जकड़बंदी और व्यवस्था ऐसी है कि अक्सर स्त्री ही स्त्री के सामने खड़ी हो जाती है। सैद्धांतिक रूप से बड़े आदर्शों से जुड़े व्यक्ति भी व्यवहार में स्त्रियों को दबाकर रखना, उन्हें हीन बनाए रखना अपना कर्तव्य समझते हैं। अनेक अवसर पर यह व्यवहार सामाजिक प्रतिष्ठा का आधार बन जाता है। समाज के इस व्यवहार से पत्रकारिता कर्म भी अप्रभावित नहीं था। प्रताप नारायण मिश्र 'ब्राह्मण' में लिखते हैं—"अर्द्धांगिनी नारी का कहना ही क्या है, संसार की उत्पत्ति, गृहस्थी का सुख, रसिकों का प्रमोद इन्हीं के हाथ में है। पर परमात्मा न करे कहीं रुक्माबाई ऐसी हों कि सात पीढ़ी की नाक कटावैं। कर्कशा हों तो जीना भारी कर दें" (मल्ल, संवत् 2049)। बालकृष्ण भट्ट 'स्त्रियाँ' नामक लेख में सुशील और सुघर स्त्रियों की प्रशंसा करते हैं, किंतु कर्कशा स्त्री को घर ही नहीं, अपितु मुहल्ला और जाति को नुकसान पहुँचाने वाला मानते हैं। यह उस दौर का बोध-वृत्त था, जहाँ स्त्रियों के गुण-अवगुण पुरुष अपने दृष्टिकोण से तय कर रहा था। स्त्री के बिना पुरुष का काम भी नहीं चल सकता है, किंतु उसे नीचा दिखाकर उस पर अपना वर्चस्व बनाना, अपनी अक्षुण्ण सत्ता को बनाए रखने का ही उपक्रम है। इसी आधार पर एक पुरुष अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करता है और अपने लाभ के अवसर इकट्ठा करता है। यह दोहरा व्यवहार भारतेंदु की निगाह में भारत का दुर्भाग्य बनकर सामने आता है। उन्होंने लिखा है—"यहाँ के लोगों ने सब भाँति स्त्रियों को हीन कर रखा है और यही इस देश की हानि का मुख्य कारण है। पुरुष स्वतंत्र होकर घूमैं फिरैं, स्त्रियाँ पिजड़े में बंद रहैं; पुरुष लिखैं पढ़ैं, स्त्रियाँ मूर्ख बनी रहैं; पुरुष गद्दी तकिया लगाकर बैठें, स्त्री झाड़ू दें, रसोई करैं और दासियों की सी बनी रहैं; पुरुष तो अनेक विवाह करैं, वेश्याओं के घर में घूमैं, स्त्री यदि किसी की ओर आँख उठाकर देखै तो नष्ट हो जाय; पुरुष की स्त्री मर जाय तो विवाह कर लें, पर स्त्री बाल विधवा हो तौ भी वही दुःख भोगै" (सिंह, 2008)। स्त्रियों की स्थिति में सुधार, शिक्षा और पुनर्विवाह उस दौर में समाज सुधार का मुद्दा तो बन गए थे, किंतु व्यवहार में परिवर्तन का आधार नहीं बन सके। सामाजिक बदलाव, मानसिकता से जुड़ा मामला है। उसके बदलाव हेतु प्रयास का यह शुरुआती दौर था। अतः इस कमी को उस दौर के बोध की सीमा समझना चाहिए।

संतति और स्त्री

'हरिश्चंद्र चंद्रिका' पत्रिका में 1875 ई. में भारतेंदु एक बड़ा लेख 'भ्रूणहत्या : निवारण के हेतु आर्य्यगण से निवेदन' नाम से लिखते हैं। इस लेख की मूल अंतर्वस्तु है 'स्त्रियों का पुनर्विवाह'। इस लेख में भारतेंदु स्त्रियों की कामवासना का प्रश्न उठाकर, मनुष्य होने के नाते उसकी इच्छापूर्ति की माँग करते हैं और समाज के बोध को विस्तृत तथा तार्किक बनाने का प्रयास करते हैं। भारतेंदु लिखते हैं—"हम सर्कार से और अपने सब आर्य्य भाइयों से हाथ जोड़कर निवेदन करते हैं। इस को सब लोग एक बेर चित्त देकर और हठ छोड़कर सुनैं। यदि सर्कार कहे कि हम धर्म्म विषय में नहीं बोलते तो उसका हमसे पहिले उत्तर सुन ले। सती होना हमारे यहाँ स्त्रियों का परम धर्म्म है इस को सर्कार ने बल पूर्व्वक क्यौं रोका है? क्यौंकि यह धर्म्म प्राण से संबंध रखता है और प्रजा के प्राण की रक्षा राजा की सबके पहिले मान्य है। वैसे ही जो हम कहैंगे, उससे भी प्रजा के प्राण से संबंध है, इससे सर्कार को अवश्य सुनना चाहिए" (सिंह, 2008)। अँग्रेज भारतीयों के धार्मिक मामलों में दखलंदाजी नहीं करना चाहते थे। अँग्रेज ऐसा न करें, समाज का एक प्रभावशाली वर्ग भी चाहता था, किंतु मनुष्य के प्राण से संबंधित विषय होने के कारण भारतेंदु उसे ऐसा मामला नहीं मानते हैं कि सरकार उसमें हस्तक्षेप नहीं कर सकती है। भारतेंदु चाहते थे कि अँग्रेज सरकार विधवा विवाह जैसी समस्याओं के संदर्भ में कोई कानून बनाए, जिससे एक बड़ी आबादी के दुर्भाग्य को कुछ हद तक सीमित किया जा सके।

भारतेंदु इसी लेख में प्राचीन ग्रंथों और विद्वानों का सहारा लेते हुए कहते हैं कि पुरुषों की भाँति स्त्रियों में भी कामभावना होती है। जब उससे देवता, ऋषि-मुनि नहीं बच सके, पुरुष उसके वशीभूत होकर अनेक शादियाँ या संबंध रखते हैं, तो स्त्रियों से इसके विपरीत उम्मीद क्यों की

जाती है। इसलिए जिन स्त्रियों की काम चेष्टा हो अथवा जो कन्या-दशा में विधवा हो गई हों, उनका विवाह अवश्य होना चाहिए—"क्या हमारे धर्म्माभिमानी पंडित और आर्य्यगण उस प्रकृति के नित्य और प्रबल प्रवाह को भी अपने हठ से रोका चाहते हैं। वह कदापि न रुकैगा। समुद्र का वेग किस ने रोका है।....बड़े ऋषि मुनि जिस वेग को नहीं रोक सके, उस वेग को आप इस काल की अबलाओं से रुकवाना चाहते हैं" (सिंह, 2008)। सीमाओं के बावजूद, स्त्रियों को पुरुषों की भाँति मनुष्य मानकर चलने पर ही इस तरह का चिंतन किया जा सकता है। इसका एक अन्य सामाजिक पहलू है 'व्यवस्था का'। शादी-ब्याह सामाजिक मर्यादा और व्यवस्था के लिए बहुत जरूरी होता है। जबरदस्ती किसी की कामभावना को नियंत्रित करने से सामाजिक व्यभिचार ही बढ़ता है, इसलिए भारतेंदु का मानना है कि जिस भी कन्या में काम दृष्टिगोचर होने लगे, यह समाज की जिम्मेदारी है कि वह उसका ब्याह सुनिश्चित करे, न कि उसे जाति निकाला दें। "मेरे प्यारे भाइयो, देखो व्यभिचार कैसे दिन-दिन बढ़ा जाता है। इसे रोकने का एकमात्र यही उपाय है, जिस स्त्री को ऐसी देखो व जिसका गौना न हुआ हो व जिसमें तनिक भी काम चेष्टा का संदेह हो, उसको चटपट किसी के माथे मढ़ो। ...इसमें आप लोगों को और बहुत कुछ करना भी नहीं है, केवल इतना ही करना है कि जो पुनर्विवाह करे, उसको जाति से बाहर मत करो और न उसकी निंदा करो। जो कोई पूछने आवै उसका अनुमोदन करो तो इसका रिवाज आप से आप हो जाय" (सिंह, 2008)। यह समाज की महिलाओं के प्रति अमानवीयता ही है, जो उसकी इच्छाओं का सम्मान नहीं करता है। हालाँकि, बिना स्त्री की सहमति के, चटपट ब्याह करा देना भी एक तरह से अमानवीयता ही है, किंतु जिस तरह से स्त्री के सवाल को वे उठाते हैं, वह निश्चय ही एक नए सामाजिक मन की माँग करता है। जो कम-से-कम स्त्रियों को मनुष्य मानकर चले।

सुरक्षा और स्वतंत्रता का अंतर्विरोध

स्त्रियों की 'सुरक्षा और स्वतंत्रता' में गहरा अंतर्विरोध है। यदि उन्हें रोटी, कपड़ा के साथ सुरक्षित जीवन चाहिए तो पुरुष प्रधान व्यवस्था में उन्हें अपनी स्वतंत्रता से समझौता करना ही पड़ता है। ऐसे समाज में, जहाँ अधिकतर संसाधन पुरुषों के हाथ में हो, स्त्रियों को अपना घर भी छोड़कर पुरुष के घर जाना पड़े, उनके अस्तित्व से पहले उनका सार निर्धारित कर दिया जाए, वहाँ सुरक्षित जीवन की आकांक्षा में समझौते करना एकमात्र रास्ता रह जाता है, क्योंकि किसी भी कमी और गलती का जिम्मेदार अंततः उसी को ठहराया जाता है। भारतेंदु युग की पत्रकारिता और साहित्य इस स्थिति से अपने ढंग से संघर्ष करती है। लेकिन उसके अपने अंतर्विरोध रहे हैं। नई चेतना विद्वानों को प्रभावित तो कर रही थी, किंतु सामंती मानसिकता को बदलने में प्रायः असमर्थ थी। 'ब्राह्मण' पत्र के संपादक और भारतेंदु मंडल के सदस्य प्रताप नारायण मिश्र के इस कथन को देखा जा सकता है—"दुनिया भर का बखेड़ा फैलाने वाली शक्ति स्त्री कहलाती है। अरबी में नार कहते हैं अग्नि को, विशेषतः नरक की अग्नि को और तत्संबंधी शब्द है नारी। जैसे हिंदुस्तान से हिंदुस्तानी बनता है, वैसे ही नार से नारी होता है, जिसका भावार्थ यह है कि महादुख रूपी नर्क का रूप गृहस्थी की सारी चिंता, सारे जहान का पचड़ा केवल स्त्री ही के कारण ढोना पड़ता है" (मल्ल, संवत् 2049)। 'नारी' नामक लेख में भी प्रताप नारायण मिश्र कहते हैं कि यदि नारी कर्कशा मिल जाए तो जीना भारी कर दे। 'स्त्री' नामक लेख में स्त्रियों को सुधारकर रखने वालों के प्रति अप्रत्यक्ष रूप से उन्होंने प्रशंसा का भाव भी प्रकट किया है।

संसाधनों और ज्ञान पर वर्चस्व होने के बावजूद पुरुषों ने अपनी अकर्मण्यता, कमियों और आलस्य का दोषारोपण स्त्रियों पर किया है। ऐसा 'नैरेटिव' गढ़ने की चेष्टा की है गोया, सारी समस्याओं की जड़ स्त्रियाँ ही हैं। यदि स्त्रियाँ नहीं होती तो सारी समस्याएँ स्वतः ही समाप्त हो जातीं। उन्होंने पुरुषों को अपने आकर्षण में बाँधकर उसे घर-गृहस्थी में ऐसा फँसा रखा है कि वे किसी काम के नहीं रह गए हैं। प्रताप नारायण मिश्र ने अपने लेख में लिखा है—"हम इन्हीं के वश में पड़े रहे तो किसी प्रकार कल्याण की आशा नहीं है। जन्म भर नोन, तेल, लकड़ी की फिक्र में दौड़ना होगा। और यदि छोड़ भागे तो भी लोक में निंदास्पद और परलोक में पापभागी होंगे" (मल्ल, संवत् 2049)। उनका आगे का कथन और गंभीरता से पढ़ने की आवश्यकता है। वे लिखते हैं—"जगत् में लाखों मनुष्य ऐसे हैं कि यदि उन्हें घर के धंधों से छुट्टी मिले तो पृथ्वी का बहुत बड़ा भाग मंगलमय कर दें, पर भवबंधन में पड़े हुए अपना जीवन नष्ट कर रहे हैं। ...हमारे ऋषि लोग बहुधा अविवाहित थे। महात्मा मसीह भी अविवाहित थे। आज उनके नाम से लाखों आत्माओं का उपकार हो रहा है" (मल्ल, संवत् 2049)। स्त्री पुरुषों की सुख-सुविधा की वस्तु है, परिवार बढ़ाने का साधन है तथा अकर्मण्य बनाने वाली मोह-माया भी है। उस दौर के अध्ययन से एक बात स्पष्ट हो जाती है कि यह उस समय की सामान्य समझ है, जिससे हिंदी पट्टी के पत्रकार और साहित्यकार जैसे संवेदनशील लोग भी अछूते नहीं थे। नवजागरण के अंतर्गत जहाँ एक तरफ मनुष्य के संपूर्ण संश्लिष्ट रूप की खोज की जा रही थी, वहीं आधी आबादी मनुष्य समझे जाने के संकट से गुजर रही थी। ऐसे में स्त्रियों की स्वतंत्रता का सवाल, गंभीर सवाल बन जाता है।

स्त्री और सामाजिक परिवर्तन

पुरुषों ने अपने निमित्त आदर्श स्त्री की छवि गढ़ी है। एकतरफा गढ़ी गई यह छवि पुरुषों को प्रत्येक प्रकार की जिम्मेदारी और जवाबदेही से मुक्त करती रही है, जबकि स्त्रियों को निर्धारित सार के अनुसार जीवन जीने पर विवश करती है। जैसे कि स्त्रियों में सीता और सती का आदर्श पुरुषों को विशेष रूप से आकर्षित करता है, क्योंकि ये दोनों चरित्र बुरी से बुरी स्थिति में पति के साथ रहते हैं, अपनी सुख-सुविधाओं की परवाह न करते हुए प्रत्येक कदम पर पति का साथ देते हैं। एकनिष्ठ भाव से चुपचाप उसकी सेवा करते हैं। प्रताप नारायण मिश्र लिखते हैं—"सीता जी समान स्त्रियाँ पूजनीया हैं, जो पति प्रेम निभाने को बरसों के कठिन दुःख को सुख से शिरोधार्य कर लें, राज्य सुख को पतिमुखदर्शन के आगे तुच्छ समझें। सती जी सी गृहदेवी माननीया है, जो पति का अपमान न सह सके, चाहे सगे बाप का मुलाहिजा टूट जाय, चाहे प्राण तक जाते रहें। पर ऐसी गृहेश्वरी होती कहाँ हैं ? सतयुग त्रेतादि में भी एक ही दो थीं, अब तो कलिकाल है" (मल्ल, संवत् 2049)। दोनों चरित्र भारतीय संस्कृति का आधार चरित्र हैं और भारतीय जनमानस को ऊर्जा प्रदान करते रहे हैं, किंतु स्त्रियों की शुचिता और आदर्श पर विशेष ध्यान रखने वाली पुरुष मानसिकता के समक्ष सवाल, पुरुषों की भूमिका का भी होना चाहिए था। उस दौर में स्त्रियों के आदर्श पर खूब लिखा-पढ़ा गया। पत्रकारिता से अधिक साहित्य में लिखा गया, किंतु द्रौपदी जैसा चरित्र उस दौर का आदर्श नहीं बन सका, जो पुरुषों से भी उसी तरह की निष्ठा और सम्मान की माँग करता है। बराबरी और अधिकार की माँग करता है।

नवजागरण और स्त्री शिक्षा

समाज सुधार के लिए स्त्री शिक्षा ही पर्याप्त नहीं है, उसके साथ पुरुषों की समुचित और तार्किक शिक्षा भी आवश्यक है। भारतेंदु मंडल के ज्यादातर चिंतक स्त्री शिक्षा के पक्षधर थे। बालकृष्ण भट्ट 'हिंदी प्रदीप' पत्र में 1885 में ' स्त्रियाँ और उनकी शिक्षा' नामक लेख में लिखते हैं—"अपनी स्त्रियों की मंदबुद्धि की आप बाहर बहुत झीखते हैं, पर स्वयं यही नहीं सोचते कि हम कैसे इस लायक हुए जो दूसरों का ऐब समझने लगे। क्या खाली स्त्री की जाति में जन्म पाने के भेद से बुद्धि बल में भी भेद आ जाता है? कदापि नहीं। आपने खुद ऊँचे दरजे की शिक्षा पाई है तब इस योग्य हुए कि दूसरों की न्यूनता समझें, तब फिर वही शिक्षा फैलाने का प्रयत्न आप उनमें भी क्यों नहीं करते" (पाठक, 2015)। बालकृष्ण भट्ट यूरोप और भारत की स्त्रियों की शिक्षा के अनुपात का प्रश्न उठाते हुए कहते हैं—"जब हम देखते हैं कि दुनिया की पढ़ी-लिखी हुई आबादी में यूरोप के किसी-किसी भाग की पढ़ी हुई स्त्रियों की संख्या 92 और 94 सैकड़ा पीछे हो गई हैं, वहीं भारतवर्ष के किसी-किसी हिस्से में सैकड़ा पीछे 3 या 4 से अधिक नहीं पढ़ने पाई तो क्या हमको दुख न होगा" (पाठक, 2015)। किंतु वे यह भी मानते हैं कि पाश्चात्य ढंग की विदेशी स्वच्छंदता उन्हें देना उचित नहीं है। यह उनके प्रति जुल्म है। वे कहते हैं—"खयाली बुराइयों का झींखना छोड़ यत्न कीजिए कि जो बुराइयाँ हम लोगों की स्त्रियों में हैं उसको वे लोग आप समझ जाएँ। तभी ठीक रास्ते पर उनको आप ला सकते हैं। इसकी शिकायत मत कीजिए कि विद्या आदि अमूल्य रत्नों से हमारी स्त्रियाँ वंचित हैं, वरन् यह यत्न कीजिए उन अमूल्य रत्नों की कदर वे खुद समझ जाएँ" (पाठक, 2015)। सवाल उठता है कि जिसका सार निर्मित करके उसके अस्तित्व को ही नकार दिया गया हो, बोध को सीमित कर दिया गया हो, वह अपने हित या अपने वर्ग-हित को समझे कैसे? समझे तो उस पर अमल करने की छूट परिवार और समाज से कैसे प्राप्त करे? विशेष तौर पर उस समाज से जो तय छवि के अतिरिक्त स्त्री को किसी अन्य छवि में देखना उचित नहीं समझता है। प्रताप नारायण मिश्र 'ब्राह्मण' पत्र में स्त्रियों की दुर्दशा का वर्णन तो करते हैं, किंतु पितृसत्तात्मक व्यवस्था के अधिकतर मूल्यों से बहुत हद तक सहमत भी हैं। उन्होंने 'स्त्री' नामक लेख में लिखा है—"पुरुषों के लिए सब कहीं पाठशाला, इनके लिए यदि हैं भी तो न होने के बराबर। यदि आज सब लोग इधर झुक पड़ें तो शायद कुछ दिन में कुछ आशा हो" (मल्ल, संवत् 2049)। लेकिन इसी लेख में उन्होंने स्त्री को सभी बुराइयों की खान भी कहा है। पुरुष को भटकाने वाली और सामाजिक-सांस्कृतिक क्षेत्र में उसकी भावी भूमिका को सीमित करने वाला भी बताया है। यहाँ तक कि उसे बीमारी की संज्ञा दी है: "अर्धांगी स्त्री का नाम इसलिए रखा गया है कि जैसे अर्धांगी नामक बीमारी से स्थूल शरीर आधा किसी काम का नहीं रहता, वैसे ही अर्धांगी के कारण मन, बुद्धि, आत्मा, स्वातंत्र्य, उदार चित्तादि आधी (नहीं, बिल्कुल) निकम्मी हो जाती है। मनुष्य केवल भय निद्रादि के काम का रह जाता है, सो भी निज बस नहीं" (मल्ल, संवत् 2049)। भारतेंदु स्त्री शिक्षा के प्रबल समर्थक हैं। वे अँग्रेज सरकार की स्त्रियों की शिक्षा की व्यवस्था करने के लिए प्रशंसा करते हैं। 'बालाबोधिनी' पत्रिका में जनवरी 1874 में 'स्त्री-2' नामक लेख में स्त्री शिक्षा और उसके व्यवधानों के प्रति उन्होंने अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट किया है—"सरकार ने स्त्री शिक्षा का प्रबंध बहुत उत्तम किया है, तथापि हम लोग देखते हैं तो हिंदुओं के बड़े-बड़े कुलों में अभी विद्या का प्रचार नहीं है और सबसे बढ़कर आश्चर्य यह है कि जो मूर्ख हैं वह तो किसी भाँति स्त्रियों को पढ़ने-लिखने देते भी हैं, पर जो पंडित लोग हैं वे तो स्त्रियों को पढ़ाने में और भी हठ करते हैं और न जाने अपने वंश के लोगों को मूर्ख देखकर रात-दिन उनकी संगत में उनसे कैसे रहा जाता है" (सिंह, 2008)। भारतेंदु स्त्रियों की शिक्षा में आने वाली समस्याओं को ढूँढ़ने का प्रयास करते हुए पितृसत्तात्मक व्यवस्था के चरित्र और काम करने के तरीके की तरफ इशारा करते हैं, किंतु वे भी स्त्री शिक्षा की सर्वाधिक आवश्यकता पीढ़ियों को सुशिक्षित करने में ही देखते हैं। स्त्री का व्यक्तित्व, उसकी अस्मिता का सवाल उनके यहाँ भी बहुत महत्त्वपूर्ण नजर नहीं आता है। 'कवि वचन सुधा' में 'स्त्री-1' लेख में उन्होंने लिखा है—"पंडित जी तो षट् शास्त्र के वेत्ता परम रसिक, उनकी स्त्री बिचारी (उन्हीं के दोष से) महामूर्खा। अब कहिए कि यह विषम प्रीति कैसे निबहैगी और इस्से कल्याण कैसे भावी है और लड़कों की शिक्षा क्या संभव है। ...बालकों की शिक्षा स्कूल के बल से नहीं होती। इनकी शिक्षा देने वाली और छोटेपन से ही कुसंस्कार छुड़ाने वाली केवल माता ही है" (सिंह, 2008)। भारतेंदु स्त्री शिक्षा को लेकर अपनी सीमाओं के बावजूद मुखर हैं और उसकी शिक्षा को भारत के बेहतर भविष्य और पीढ़ियों के उत्थान के लिए आवश्यक मानते हैं। सीमाओं का अतिक्रमण न कर पाने के कारण वीर भारत तलवार लिखते हैं कि 'बालाबोधिनी के माध्यम से स्त्रियों की दशा सुधारने के बजाय भारतेंदु स्त्रियों को ही सुधारने में लग गए।' उन्होंने उस पूरे दौर पर विचार करते हुए निष्कर्ष प्रस्तुत किया—"19वीं सदी के आखीर तक पुरुष सुधारकों की एक पूरी परंपरा मिलती है, जिसने स्त्रियों की दशा में सुधार का आंदोलन चलाया। उन्होंने परदे और बाल-विवाह की प्रथा का विरोध किया, स्त्री शिक्षा और विधवा-विवाह का समर्थन किया। पुरुषों द्वारा नियंत्रित-संचालित यह आंदोलन आज के स्त्री आंदोलन से मौलिक भिन्नता रखता है। सबसे बुनियादी फर्क यह है कि पुरुष सुधारक समाज के पितृसत्तात्मक ढाँचे पर हमला नहीं करते थे, बल्कि इसे सुरक्षित रखते हुए ही इसके अंदर कुछ सुधार लाना चाहते थे" (तलवार, 1994)। किंतु यह एक प्रकार से आज की निगाह से उस दौर के मूल्यांकन का प्रयास है, जो नवीन ज्ञान के आलोक में परिवार, समाज और संस्थाओं को नए ढंग से जानने-समझने और उन्हें तार्किक बनाने का प्रयास कर रहा था।

साथीपन और पूर्व निर्धारित सार

भारतेंदु मंडल पुरुष प्रधान सामाजिक ढाँचे से बहुत हद तक सहमत होते हुए स्त्रियों की दशा को सुधारना चाहता था। सामाजिक बदलाव के साथ अपने वर्गीय हितों की रक्षा भी करना चाहता था, इसलिए आमूलचूल परिवर्तन के बजाय उसने सीमित सुधार की आवश्यकता पर बल दिया। 'स्त्रियाँ और उनकी शिक्षा' लेख में बालकृष्ण भट्ट लिखते हैं—"हमारे समाज में यह बड़ा दोष है कि बहुधा पुरुष लोग अपनी स्त्रियों पर कड़ाई के साथ पेश आते हैं, पर सच पूछो तो यह कोई बुराई नहीं है, क्योंकि यह प्राकृतिक नियम है कि स्त्री (जिनको कि अँग्रेजी में वीकर सैक्स हैं) सदा पुरुष के वशवर्तिनी या अनुयायिनी रहे" (पाठक, 2015)। हालाँकि अनेक लेखों में वे स्त्रियों को पुरुषों के मुकाबले अधिक शक्तिशाली और संभावनाशील भी मानते हैं। उनके लगाव और स्नेह की तारीफ करते हैं। वे 'स्त्रियाँ' नामक लेख में लिखते हैं—"कौन-सी चीज है, जिसमें औरतें मर्द से अधिक बढ़ी-चढ़ी नहीं हैं। जहाँ कहीं वे पढ़ाई-लिखाई जाती हैं, वहाँ स्त्रियाँ पुरुषों के ऊपर हो गई हैं। हमारे यहाँ के ग्रंथकार और धर्मशास्त्र गढ़ने वालों की कुंठित बुद्धि में न जाने क्यों यही समाया हुआ था कि स्त्रियाँ

केवल दोष की खान हैं गुण इनमें कुछ हई नहीं। इसी से चुन-चुन उन्हें जहाँ तक ढूँढ़े मिला केवल दोष ही दोष इनके लिख गए" (पाठक, 2015)। स्त्रियों की शक्ति और संभावना में विश्वास करते हुए भी स्त्रियों पर पुरुषों के वर्चस्व को बालकृष्ण भट्ट अनुचित नहीं मानते हैं। प्रताप नारायण मिश्र के 'ब्राह्मण' पत्र में छपे अनेक लेख तो स्त्रियों को अनेक समस्याओं की खान के रूप में देखते हैं, जिसका उल्लेख किया जा चुका है। इसे पुनः समझा जा सकता है—"दुष्टा कटुभाषिनी कुरूपा स्त्रियों की कथा जाने दीजिए। उनके माथ तो प्रतिक्षण नर्क जातना हई है, यदि परम साध्वी महामृदुभषिनी अत्यंत सुंदरी हो तौ भी बंधन ही है। हम चाहते हैं कि अपना तन-मन-धन, सर्वस्व परमेश्वर के भजन में, राजा के सहाय में, संसार के उपकार में निछावर कर दें, पर क्या हम कर सकते हैं? कभी नहीं! क्यों? गृहस्वामिनी किसको देखके जिएँगी। वे क्या खाएँगी" (मल्ल, संवत् 2049)? भारतेंदु ने परिवार और समाज में स्त्रियों की भूमिका को स्वीकार किया है। 'स्त्री सेवा पद्धति' में स्त्रियों के प्रति वे एक स्तोत्र पाठ लिखते हैं, जिसमें स्त्री की तुलना देवी-देवताओं से करते हैं। व्यंग्य की आभा लिए हुए इस स्तोत्र के अंत में वे लिखते हैं—इस दिव्य स्तोत्र पाठ से तुम हम पर प्रसन्न हो। समय पर भोजनादि दो। बालकों की रक्षा करो। भृकुटी धनु के संधान से हमारा वध मत करो और हमारे जीवन को अपने कोप से कंटकमय मत बनाओ" (प्रसाद, 1996)। हालाँकि उन्होंने यह व्यंग्य में लिखा है, किंतु यह उस समय, स्त्रियों के प्रति समाज के समझ की सामान्य तस्वीर है। नवजागरण के आलोक में पढ़े-लिखे नए मध्यवर्ग का उदय हो रहा था, जो सामाजिक व्यवस्था की पुरानी परिपाटी से बहुत हद तक असहमत था। इसलिए स्त्री जीवन में सुधार का प्रश्न तो उस दौर के चिंतन में शामिल है, किंतु वह गुणात्मक बदलाव का विचार नहीं बन सका। स्त्री-पुरुष के मध्य साथीपन की तलाश वहाँ नहीं है।

निष्कर्ष

हिंदी नवजागरण बंगाल और महाराष्ट्र के नवजागरण से प्रभावित था। उसने समाज और राष्ट्र के तत्कालीन मुद्दों को नई चेतना के प्रकाश में समझने का अवसर प्रदान किया। परिणामस्वरूप मनुष्य और उसकी चिंताएँ युग की चिंताओं के रूप में तत्कालीन पत्रकारिता और साहित्य में प्रकट हुई हैं। जहाँ तक स्त्री विषयक चेतना की बात है, वह युग की माँग से निर्धारित होते हुए भी हिंदी क्षेत्र की सामंती मानसिकता से परिचालित रही है। स्त्रियों से जुड़े अनेक मुद्दों का समावेश और उस पर गंभीरता से विचार उस दौर की पत्रकारिता में स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। सामाजिक सुधार के साथ यह अँग्रेजों के उस 'नैरेटिव' का जवाब देने के लिए भी जरूरी था कि भारतीय असभ्य होते हैं, पुरानी मान्यताओं में जीने वाले होते हैं। इसलिए अधिकतर विद्वान इस बात पर सहमत थे कि बिना स्त्री उत्थान के भारतवर्ष का उत्थान संभव नहीं है, किंतु समाज उन्हें खास उद्देश्यों के लिए सीमित छूट देने को ही तैयार था। वह आवश्यक सुधारों के साथ पुरुष प्रधान ढाँचे को भी अक्षुण्ण रखना चाहता था। इसका एक बड़ा कारण था कि हिंदी नवजागरण के ज्यादातर अग्रदूत मध्यवर्ग से आते हैं, जिनमें अपनी परंपरा का संस्कार काफी गहरा होता है। परिवर्तन का परंपरा से संघर्ष स्वाभाविक है। फिर चाहे वह परंपरा के नाम पर प्रचलित कुरीति ही क्यों न हो, लोग उसकी रक्षा के लिए तत्पर हो जाते हैं। इसलिए बदलाव की क्या दिशा होगी, इसको लेकर बहुत स्पष्टता उस दौर में नहीं दिखाई पड़ती है, विशेषकर स्त्री अधिकार से संबंधित मुद्दों में। उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में पंडिता रमाबाई, आनंदीबाई जोशी, रमाबाई रानाडे और रुक्माबाई जैसी स्त्रियों ने विदेश से उच्च शिक्षा ग्रहण की और अपनी तरह से पुरुष प्रधान समाज में महिलाओं के उत्थान के लिए कार्य किया। रोटी, कपड़ा, मकान, विधवा विवाह, शिक्षा इत्यादि से आगे उन्होंने स्त्री अधिकारों और हक के लिए संघर्ष किया। अनेक स्त्रियों ने स्त्रियों के लिए संगठन खोले, अपनी पत्रिकाएँ निकालीं, राजनीति में सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित की; तब जाकर स्त्री समस्या से स्त्री अधिकार का संदर्भ जुड़ पाया। दरअसल, यह वह दौर था, जब पुरुषों ने स्त्रियों की शक्ति का परिचय प्राप्त किया और वह अपनी संभावनाशील उपस्थिति से बहुत जल्दी ही दासी से साथी की भूमिका ग्रहण कर लेती है। स्त्रियों को इस भूमिका तक पहुँचने में राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन के प्रमुख नेताओं का भी सहयोग प्राप्त होता है, जो कि भारतेंदु युग में संभव नहीं था। युग के शुरुआती दौर में स्त्री संगठन और आंदोलन नहीं थे। यहाँ तक कि काँग्रेस की स्थापना भी भारतेंदु युग के उत्तरार्द्ध में होती है। परिणामस्वरूप उस दौर की पत्र-पत्रिकाओं में स्त्रियों का पक्ष भी पुरुषों के मार्फत ही आया है। राजनीतिक क्षेत्र में सक्रिय होने के उपरांत लोगों ने राष्ट्र के जीवन में उनकी भावी भूमिकाओं और योगदान पर चर्चा करना प्रारंभ किया। भारतेंदु युग में और उससे पहले भी अनेक स्त्रियाँ समाज सुधार के लिए कार्य कर रही थीं, लेकिन वह समाज में सुधार की कोशिश के रूप में ही सामने आता है। स्त्रियों के लिए नवजागरण की शुरुआत भारतेंदु युग में जरूर हो गई, किंतु वास्तविक नवजागरण की चेतना उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में ही प्राप्त होती है। हालँकि, इससे भारतेंदु युग का महत्त्व कम नहीं हो जाता है। परिवर्तन गुणात्मक न होकर क्रमिक होते हैं। अतः कहा जा सकता है कि स्त्री अधिकारों की लड़ाई को भारतेंदु युग के स्त्री सुधार आंदोलन के परिप्रेक्ष्य में ही तार्किक ढंग से समझा जा सकता है।

संदर्भ

चतुर्वेदी, आर. (2000). *हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, (तेरहवाँ संस्करण)*. इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन.

तलवार, वी. बी. (1994). *राष्ट्रीय नवजागरण और साहित्य कुछ प्रसंग : कुछ प्रवृत्तियाँ (द्वितीय संस्करण)*. दिल्ली : हिमाचल पुस्तक भंडार.

पाठक, एस. के. (सं.). (2015). *बालकृष्ण भट्ट रचनावली (प्रथम संस्करण, अंक 2)*. नई दिल्ली : अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर (प्रा.) लिमिटेड.

प्रसाद, के. (सं.). (1996). *भारतेंदु हरिश्चंद्र प्रतिनिधि संकलन (प्रथम संस्करण)*. नई दिल्ली : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत.

मल्ल, वी. (सं.). (संवत् 2049). *प्रतापनारायण मिश्र ग्रंथावली (नवीन संस्करण, अंक 4)*. वाराणसी : नागरी प्रचारिणी सभा.

सिंह, एन. (1986, अक्टूबर-दिसंबर). *हिंदी नवजागरण की समस्याएँ. आलोचना*, 79, 1-8.

सिंह, ओ. (सं.). (2008). *भारतेंदु हरिश्चंद्र ग्रंथावली (प्रथम संस्करण, अंक 6)*. नई दिल्ली : प्रकाशन संस्थान.

संचार माध्यम | खंड 34(1) : 48-52, जनवरी-जून 2022
आईएसएसएन: 2321-2608

सामाजिक सुधार पर आधारित पत्रकारिता : अंबेडकरवादी और गांधीवादी दृष्टिकोण

डॉ. सुनीता मंगला[1] और संजय कुमार भारती[2]

सारांश

पत्रकारिता विश्व के महान बौद्धिक व्यक्तित्वों द्वारा तैयार किए गए जन आंदोलनों की शुरुआत से ही उनकी रणनीतिक चाल का एक अभिन्न हिस्सा रही है। आधुनिक पत्रकारिता ने जहाँ अपनी स्थापना के बाद से ही सरकार का ध्यान आकर्षित किया, वहीं आम आदमी के लिए इसकी दुर्गमता के कारण इसे एक कुलीन उत्पाद माना गया। परंतु, इसका एक दूसरा पहलू भी था। यदि अपने इतिहास की ओर हम पुनः देखें तो हमें पता चलता है कि पत्रकारिता हमेशा सामाजिक बुराइयों की ओर आमजन का ध्यान आकर्षित करने के लिए एक महत्त्वपूर्ण माध्यम रही है और हिंदू समाज में एक महत्त्वपूर्ण औजार और सामाजिक सुधार के रूप में इसका इस्तेमाल किया जाता रहा है। इसीलिए हमेशा से ही पत्रकारिता जनता तक पहुँचने का सबसे मजबूत उपकरण थी। यदि सत्य और अहिंसा गांधीवादी दर्शन के सबसे मजबूत सिद्धांत थे, तो अंबेडकर की पत्रकारिता भी पूरे आंदोलन में उनकी आवाज को जनता तक पहुँचाने का सबसे मजबूत उपकरण थी। प्रस्तुत शोध पत्र में अंबेडकरवादी और गांधी दृष्टिकोण के अंतर्गत सामाजिक सुधारों पर आधारित पत्रकारिता की भूमिका को समझने का प्रयास किया गया है।

संकेत शब्द : पत्रकारिता, सामाजिक सुधार, गांधी, अंबेडकर, समाचारपत्र

प्रस्तावना

यह स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है जब गांधी ने अपनी आत्मकथा में पत्रकारिता के साधनों को वर्णित किया तो उनका मानना था कि पत्रकारिता के सबसे महत्त्वपूर्ण साधन के रूप में अखबार के तीन घटक होते हैं—पहला, अखबार द्वारा किसी की भावना को समझना और उस लोकप्रिय भावना को जनता को समझाना; दूसरा, लोगों के अंतर्मन की वांछनीय भावनाओं को जगाना; और तीसरा, निडर होकर लोकप्रिय दोषों को उजागर करना (नटराजन, 1955)। अंबेडकर ने भी कलम और कागज के महत्त्व को महसूस किया और समाज के एक विशेष वर्ग, जो शोषित व पीड़ित था, उसे यह बताया कि अपने दुख और पीड़ा को कागज पर उतारकर सभी को उसके बारे में जागरूक कराकर सत्ता को भी उसकी जिम्मेदारियों से परिचित कराया जा सकता है। वह चाहे 'मूकनायक', 'बहिष्कृत भारत' या 'जनता' हो, अंबेडकर ने हमेशा इनको सामाजिक सुधार के प्रमुख हथियारों के रूप में इस्तेमाल किया। जब भारत में औपनिवेशिक शासन स्थापित हुआ तो व्यक्ति की अभिव्यक्ति की आजादी से लेकर सत्ता के प्रत्येक स्वरूप पर अँग्रेजी प्रभुत्व विद्यमान था। ईस्ट इंडिया कंपनी के अधिकारी तो शुरुआत से ही भारत में प्रेस को संदिग्ध मानते थे और उसके प्रति असहिष्णु थे, हालाँकि तत्कालीन इंग्लैंड में ही प्रेस अपना महत्त्व प्राप्त कर रहा था। भारत में विलियम बोल्ट द्वारा 1776 में कलकत्ता में एक अखबार शुरू करने का पहला प्रयास किया गया था, लेकिन दुर्भाग्य से उन्हें यूरोप भेज दिया गया। भारत में अखबार शुरू करने का यह पहला प्रयास था। एक अन्य अँग्रेज और ईस्ट इंडिया कंपनी के एक अधिकारी जेम्स ऑगस्टस हिक्की द्वारा इस दिशा में एक और उल्लेखनीय प्रयास किया गया जब 1780 में कलकत्ता से उन्होंने 'बंगाल गजट' निकाला, लेकिन जल्द ही उन्हें तत्कालीन गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग्स के असंतोष का सामना करना पड़ा।

स्वतंत्रता से पहले ब्रिटिश सरकार अपने कड़े कानूनों और कृत्यों द्वारा हमेशा ही प्रेस और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर अंकुश लगाती रही। अमृत बाजार पत्रिका, जो बंगाली भाषा में प्रकाशित हुआ करती थी, 1878 में वायसराय लॉर्ड लिटन के वर्नाक्युलर प्रेस अधिनियम द्वारा रातोंरात अँग्रेजी भाषा में परिवर्तित हो गई। यह अँग्रेजों की प्रभुत्ववादी चाल ही थी, जिसकी वजह से भारत में ब्रिटिश सरकार ने अपने अधिनायकवादी शासन के खिलाफ आवाज उठाने वाली किसी भी अभिव्यक्ति को आरंभ में ही दबा दिया था। केवल ब्रिटिश शासन के दौरान ही नहीं, बल्कि स्वतंत्रता के बाद आपातकालीन अवधि के दौरान प्रेस पर लगाए गए प्रतिबंधों को भूलना असंभव है।

विभिन्न महापुरुषों ने भारतीय प्रेस के माध्यम से सामाजिक सुधार आंदोलन शुरू किए। राजा राममोहन रॉय, बाल गंगाधर तिलक, बी. आर. अंबेडकर, महात्मा गांधी आदि द्वारा अपनी पत्रकारिता के जरिये किए गए सामाजिक सुधार आंदोलनों को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। राजा राममोहन रॉय का भारतीय पत्रकारिता के संस्थापक के रूप में स्मरण किया गया है। उनके लेखन ने समाज में सती प्रथा जैसी क्रूरतम बुराई के उन्मूलन की धारणा को जन्म दिया। औपनिवेशिक शासन के दौरान ये महापुरुष अपने प्रकाशनों को चलाने के लिए अधिकतम खर्च स्वयं ही वहन करते थे। उन्होंने पत्रकारिता को कभी भी आज की तरह पैसा कमाने का व्यवसाय नहीं माना, बल्कि जनमानस को उद्वेलित करने और अपने हक की लड़ाई लड़ने के एक साधन के रूप में माना। इसलिए हम कह सकते हैं कि भारतीय पत्रकारिता की शुरुआत समाज में एक जाग्रत भावना के साथ की गई थी, क्योंकि यह कहीं-न-कहीं राष्ट्रवाद और समाज के बाकी हिस्सों के बीच एक जीवनदायिनी औषधि थी।

भारतीय समाज एक उत्कृष्ट एवं अतुलनीय सभ्यता का साक्षी रहा है, जिसने संपूर्ण विश्व को समानता, स्वतंत्रता, भाईचारे और सहिष्णुता जैसे

[1]एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीतिक विज्ञान विभाग, कालिंदी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय. ईमेल : sunitamangla@gmail.com
[2]लेक्चरर, प्रिंटिंग टेक्नोलॉजी विभाग, पूसा इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी, पूसा, दिल्ली. ईमेल : sunnyapp24@gmail.com

सिद्धांतों का अध्याय सिखाया है, परंतु साथ ही यह भी कटु सत्य है कि भारतीय समाज कभी भी सामाजिक कुरीतियों से अछूता नहीं रहा। इसलिए समय-समय पर ऐसे सामाजिक उद्धारक भी रहे, जिन्होंने किसी-न-किसी माध्यम से तत्कालीन सत्ता और जनमानस को इन कुरीतियों के प्रति अवगत कराया। राजा राममोहन रॉय के पश्चात् बी. आर. अंबेडकर और महात्मा गांधी ऐसे विचारक थे, जिनके राजनीतिक विचारों में भिन्नता थी, परंतु दोनों का ही यह मानना था कि पत्रकारिता की ताकत राजा और प्रजा अर्थात् सत्ता और जनमानस को झकझोर कर रख सकती है। उन्होंने पत्रकारिता को एक महत्त्वपूर्ण और शक्तिशाली हथियार के रूप में इस्तेमाल किया।

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध पत्र में अंबेडकरवादी और गांधीवादी दृष्टिकोण के अंतर्गत सामाजिक सुधारों पर आधारित पत्रकारिता की भूमिका को समझने का प्रयास किया गया है। शोध पत्र में द्वितीयक सामग्री का इस्तेमाल किया गया है, जिसके तहत विभिन्न पुस्तकों, समाचार पत्रों, पत्रिकाओं, आलेखों आदि का अध्ययन किया गया है।

साहित्य समीक्षा

पत्रकारिता के संदर्भ में अंबेडकरवादी और गांधीवादी जीवन के पहलू पर ज्यादा नहीं लिखा गया है। अध्ययन को एक आधारभूमि प्रदान करने के उद्देश्य से, गांधीवादी पत्रकारिता और अंबेडकरवादी पत्रकारिता पर कुछ आंशिक अध्ययनों की समीक्षा की गई है जो परोक्ष या अपरोक्ष तरीके से इस शोध पत्र के विषय से संबंधित हैं।

अजनात (1993) ने अंबेडकरवादी विचारों का प्रतिपादन करते हुए मीडिया और प्रकाशन की भूमिका और उसकी समाज के प्रति जिम्मेदारी का विस्तार से वर्णन करने की कोशिश की है। वे अंबेडकरवादी पत्रकारिता और समकालीन मीडिया के व्यवसायीकरण से संबंधित बहस के सार्थक रूप से पाठकों को अवगत कराने की क्षमता रखते हुए पत्रकारिता में नैतिकता के मुद्दों पर समकालीन मीडिया की आलोचना करते हैं। गोयनका (2008) ने पत्रकारिता संबंधी सिद्धांतों को गांधीवादी पायदानों पर परखने की कोशिश की और उससे संबंधित नीतियों पर प्रकाश डाला है। समाज और अर्थव्यवस्था के प्रति मीडिया की जिम्मेदारी, उसके प्रबंधन की संरचना, प्रेस की स्वतंत्रता और समाचार पत्रों में विज्ञापन संबंधी विषयों को सामने रखा है और इन विषयों को गांधीवादी दृष्टिकोण से परखने की कोशिश की है। संपूर्ण गांधी वाङ्मय (गांधी पर पूर्ण खंड) के 98 संस्करणों के आधार पर किया गया उनका कार्य अफ्रीका में 'इंडियन ओपिनियन' से लेकर भारत में 'नवजीवन' और 'हरिजन' के तहत गांधीवादी पत्रकारिता से संबंधित विभिन्न पहलुओं को उजागर करता है।

विलानिलम (2005) गांधीवादी विचारों पर आधारित कल्याणकारी पत्रकारिता और समकालीन मीडिया के अंतर-संबंधों पर प्रकाश डालते हुए बताते हैं कि किस तरह से गांधी एक पत्रकार के रूप में अपनी भूमिका को निभाते हैं और वर्तमान समय में किस तरह से मीडिया नैतिकता को त्याग कर सिर्फ व्यवसायीकरण की ओर मुड़ गई है जो कि गांधीवादी विचारों के बिल्कुल विपरीत है। गांधीवादी और समकालीन आधुनिक पत्रकारिता में मुख्य अंतर करते हुए वे बताते हैं कि पत्रकारिता समाज को सेवा प्रदान करने संबंधी एक संस्था है, जो धर्म, नैतिकता, धार्मिकता, राजनीति और अर्थव्यवस्था को एक पहिये के रूप में गति प्रदान करती है। आधुनिक समय के प्रकाशक और संपादक पुस्तकों और विभिन्न प्रकाशनों को एक बिजनेस की तरह इस्तेमाल करते हैं, जो उनके आर्थिक लाभ और सामाजिक प्रतिष्ठा को बढ़ाने में सहायक होता है (विलानिलम, 2005, पृ॰82)। भट्टाचार्य (1965) ने गांधीवादी पत्रकारिता पर अब तक का सबसे प्रसिद्ध और प्रामाणिक शोध कार्य किया है। गांधी ने अखबारों से जुड़े प्रबंधकीय पहलू को कभी भी नजरअंदाज नहीं किया था। लेखक इस विषय को प्रमुखता से स्थान देते हुए कहते हैं कि गांधी को पता था कि एक कागज या प्रकाशन का सफलतापूर्वक संचालन केवल अच्छे संपादकीय पर ही नहीं, बल्कि कुशल प्रबंधन पर भी बहुत निर्भर करता है (पृ. 100)।

रणसुभे (2017) लिखते हैं कि जाने-अनजाने बाबा साहेब अंबेडकर ने दीन-दलित, शोषित और हजारों वर्षों से उपेक्षित मूक जनता के नायकत्व को स्वीकार किया। समकालीन समय की पत्रकारिता का वर्णन करते हुए लेखक ने यह तर्क प्रस्तुत किया कि वर्तमान समय में अंबेडकर जैसे संकल्पित पत्रकार और संपादकों की कमी है, जो पत्रकारिता के सामाजिक महत्त्व को समझते थे और समाजोत्थान के लिए ही पत्रकारिता का सदुपयोग करते थे। भारत की पत्रकारिता, जो पूँजीवादी सिद्धांतों पर आधारित है, के पास आज अंबेडकर जैसा कृत-संकल्पित पत्रकार नहीं है, जो कि सामाजिक उतरदायित्व की भावना से कार्य करते थे। ठेंगड़ी (2005) ने अंबेडकर की पत्रकारिता पर अपने विचारों को पाठकों के समक्ष रखते हुए लिखा है कि आज के समय में संपूर्ण समाज का हित चाहने वाले और पत्रकारिता को एक मिशन के रूप में मानने वाले और उसकी आराधना करने वाले अंबेडकर जैसे कर्तव्यनिष्ठ और सामाजिक सुधारक अपने पेशे के प्रति ईमानदारी की भावना रखने वाले दुर्लभ पत्रकारों की कमी है। सिद्धार्थ (2020) पत्रकारिता के विषय में अंबेडकर के पत्रकारिता संबंधी विचार, सिद्धांतों और मापदंडों का मूल्यांकन करते हैं। उन्होंने भारतीय समाचार पत्रों के लिए कुछ मानक निर्धारित करने का विचार रखते हुए कहा है कि भारत के विशेष संदर्भ में अखबारों और पत्रिकाओं को तथ्यों और वास्तविकता पर आधारित होना चाहिए एवं किसी भी प्रकार के जातीय पक्षपात और पूर्वाग्रह से स्वतंत्र होना चाहिए। सामाजिक हितों का पोषण करना व सामाजिक उतरदायित्व की भावना से कार्य करना ही पत्रकारिता और पत्रकार का कर्तव्य होना चाहिए। बेचैन (2005) ने अंबेडकर की पत्रकारिता के उद्भव और किस तरह से तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों ने उनकी पत्रकारिता को मुख्यधारा में ला दिया था, इसका वर्णन किया है। वर्तमान समय में, जब मीडिया और पत्रकारिता का व्यवसायीकरण हो रहा है, तो अंबेडकर के सामाजिक सुधारों पर दिए गए विचारों को किस तरह से मीडिया द्वारा जनता के समक्ष रखा जा सकता है, इसका भी वृहत् रूप से वर्णन लेखक ने किया है।

समकालीन पत्रकारिता में गांधी की पत्रकारिता का संदर्भ

भारतीय पत्रकारिता की गाथा समाज के कल्याण के पेशे के रूप में आरंभ हुई, परंतु आज यह अपनी गरिमा को बचाने के संघर्ष में लगी हुई है। आज सोशल मीडिया और तकनीकी उत्कृष्टता की वजह से मीडिया

से अधिक जिम्मेदार भूमिका की उम्मीद की जाती है, लेकिन पिछले कुछ समय से पत्रकारिता वाणिज्यिक हितों के नीचे दबी नजर आ रही है। ऐसी परिस्थितियों में, गांधीवादी और अंबेडकरवादी दृष्टिकोण के संदर्भ में पत्रकारिता को देखना होगा, आज संतुलित एवं समाज के प्रति उतरदायी दृष्टिकोण के लिए ऐतिहासिक तरीकों की खोज करना उचित होगा। जैसा कि नोआम चॉम्स्की (1975) ने कहा है कि नागरिकों को वैकल्पिक मीडिया से जानकारी लेनी चाहिए, मुख्य धारा मीडिया के बाहर मीडिया आमतौर पर एक विशेष दृष्टिकोण रखता है। यह प्रवृत्ति सामने आई है कि लोग पारंपरिक मीडिया से सोशल मीडिया पर स्थानांतरित हो रहे हैं, जो उन्हें स्मार्टफोन और अन्य गैजेट के उपयोग के साथ तेजी से प्रतिक्रिया करने में सक्षम बनाता है। ऑनलाइन मीडिया पर निर्भरता दिन-प्रतिदिन बढ़ रही है। इसके अलावा स्वतंत्र पोर्टल उपलब्ध हैं, जिनका बड़ी मीडिया फर्मों के साथ कोई संबंध नहीं है। सोशल नेटवर्किंग साइट जैसे फेसबुक, इंस्टाग्राम, ब्लॉग, ट्विटर आदि चर्चा, आलोचना और जनमत के लिए एक अच्छा मंच बनाते हैं।

नई मीडिया प्रौद्योगिकियों के आगमन के साथ पत्रकारिता ने सभी को एक साथ एक नया आकार दिया है। इन मीडिया तंत्रों तक जनता की अधिक पहुँच के साथ, लोकतंत्र के चतुर्थ स्तंभ पर नई जिम्मेदारियाँ सौंपी गई हैं। मीडिया से अधिक समझदार भूमिका की उम्मीद की गई है, जिसमें भागीदारी एवं नागरिक पत्रकारिता आधारित वास्तविक पत्रकारिता के नए रूप सामने आ रहे हैं। गांधीजी के जन आंदोलनों में शुरुआत से ही पत्रकारिता उनके रणनीतिक कदमों का एक अभिन्न अंग बन गई थी। परिणामस्वरूप पत्रकारिता उनके पूरे आंदोलन में जनता तक पहुँचने का सबसे मजबूत उपकरण थी। उन्होंने अपने महत्त्वाकांक्षी कार्यक्रमों को आरंभ करने और उसके लिए मार्ग प्रशस्त के उद्देश्य से कलम की ताकत का इस्तेमाल किया, जो बड़े पैमाने पर लोकप्रियता भी प्राप्त करता रहा था। उदाहरण के लिए 'यंग इंडिया' के एक लेख में उन्होंने लिखा है कि वे विशुद्ध रूप से राजनीतिक कार्यों से हट रहे थे और अपना सारा समय रचनात्मक कार्यों के लिए समर्पित कर रहे थे। इस अवधि के दौरान खादी के काम को एक बड़ी प्रेरणा मिली (कृपलानी, 1991)। यह न केवल जनता के बीच जागरूकता का माध्यम था, बल्कि गांधीजी की सत्य और अहिंसा पर आधारित शैली की झलक उनके प्रकाशनों में भी देखने को मिलती थी। गांधीजी का विचार था की सभी भाषाओं के लिए एक सामान्य लिपि का इस्तेमाल किया जाना चाहिए, ताकि ज्यादा से ज्यादा लोग विभिन्न भारतीय भाषाओं और उनके विचारों को जान सकें (कृपलानी, 1991)। ताकि बड़े लोग विभिन्न विचारों और ज्ञान के साथ भाषाओं को सीख सकें और विभिन्न प्रकार के साहित्य को समझ सकें। इसलिए उन्होंने स्कूलों की दार्शनिक और तकनीकी भाषा का उपयोग नहीं किया, न ही पढ़े-लिखे विद्वत्जनों की भाषा का इस्तेमाल किया। उन्होंने जनमानस की समझ में आने वाली आम बोलचाल की भाषा का सहारा लेकर जनता को अपने विचारों से अवगत कराया।

गांधीजी ने अपने अखबारों के माध्यम से एक अलग दृष्टिकोण के साथ सभी के लिए एक सामान्य मंच बनाया। गांधी के समाचार पत्रों में किसी भी प्रकार के विज्ञापनों का प्रकाशन नहीं होता था। उन्होंने अपने लेखों को अक्सर समाचार एजेंसियों द्वारा प्रतिदिन या एक दिन बाद दैनिक प्रेस में प्रकाशित किया। उनका प्रभाव उनके समकालीनों और प्रकाशन एजेंसियों पर इतना मजबूत था कि 1942 में गांधी की गिरफ्तारी के तुरंत बाद ही नेशनल हेराल्ड सहित कई समाचार पत्रों जैसे इंडियन एक्सप्रेस ने अपने प्रकाशन को निलंबित कर दिया (नटराजन, 1955)।

आज के संदर्भ में भी पत्रकारिता में कुछ आशावाद देखे जा सकते हैं। यदि मीडिया उद्योग गांधीजी के विचारों को ध्यान में रखकर सामाजिक कर्तव्य और व्यक्तिगत हित के बीच संतुलन बनाता है, तो वह समाज के प्रति सच्ची संवेदनशीलता निभाएगा। एक सच्ची स्वदेशी स्वेदनशीलता को गांधीजी ने परिभाषित किया था और कहा था—"एक स्वदेशी कंपनी की परिभाषा के संबंध में मैं कहूँगा कि केवल उन संस्थाओं को स्वदेशी माना जा सकता है जिनका नियंत्रण, निर्देशन और प्रबंधन भारतीय हाथों में है। मुझे विदेशी पूँजी के उपयोग या विदेशी प्रतिभाओं को यहाँ पर रोजगार देने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए, लेकिन पूर्व शर्त सिर्फ यह है कि ऐसी पूँजी और ऐसी प्रतिभाएँ विशेष रूप से भारतीयों के हितों, नियंत्रण, निर्देशन और प्रबंधन में कार्य करें'' (वर्मा, 1998)। उनकी पत्रकारिता में हमेशा ही 'व्यक्ति' केंद्र बिंदु रहा है। यह गांधीजी का ही प्रयास था कि उन्होंने 1933 में अँग्रेजी साप्ताहिक पत्र 'हरिजन' की स्थापना की, जिसमें वे सामाजिक कुरीतियों के खिलाफ नियमित रूप से संपादकीय लिखते थे।

यह गांधी की ही देन या करिश्मा था कि उनके द्वारा 'यंग इंडिया' (अँग्रेजी में प्रकाशित) और 'नवजीवन' (गुजराती भाषा और हिंदी में प्रकाशित) आदि पत्रिकाओं के संपादक के रूप में कार्यभार सँभालने के बाद समाचार पत्रों का प्रसार 40 हजार प्रतियों के स्तर तक पहुँच गया। गांधीजी लाभ और हानि के मुद्दे पर अपने विचारों में बहुत स्पष्ट थे। 'नवजीवन' की आत्मनिर्भरता के मुद्दे पर वे पाठकों से कहते हैं कि कागज अर्थात् पत्रों के प्रकाशक किसी भी लाभ या व्यावसायिक उद्देश्य के लिए इनको नहीं चला रहे थे। वे इस बात की स्वीकारोति नहीं देते थे कि समाचार पत्रों को आर्थिक नुकसान की स्थितियों में प्रकाशित किया जाए। वे ऐसी परिस्थितियों में प्रकाशन को बंद कर देने के पक्ष में थे। इस प्रकार, गांधी नुकसान की अर्थव्यवस्था को स्वीकार नहीं करते हैं। न ही वे एक अखबार के लाभ को दूसरे के नुकसान के साथ समायोजित करना पसंद करते थे। वे चाहते थे कि अखबार लाभदायक हो, ताकि उससे अर्जित लाभ को सार्वजनिक भलाई की ओर मोड़कर उसका रचनात्मक तरीके से उपयोग कर सकें। गांधीजी एक पत्रकार की भूमिका का निर्वहन करते हुए अखबार और उपभोक्ताओं के आर्थिक और मौद्रिक रिश्तों को संतुलित करना चाहते थे। उनका प्रयास था कि अखबार कंपनियों को किसी भी कीमत पर अपने ग्राहकों या पाठकों को संतुष्ट करना चाहिए (भट्टाचार्य, 1965)। इस प्रकार, पत्रकारिता के लिए गांधीवादी विचारधारा को पढ़ने और नई व्याख्याओं के आलोक में अपने प्रकाशनों की छानबीन के माध्यम से समकालीन पत्रकारिता में नैतिकता और व्यावसायिकता के बीच संतुलन बनाने का प्रयास किया जा सकता है।

अंबेडकर की पत्रकारिता

अंबेडकर एक उत्कृष्ट विद्वान, न्यायविद, समाज सुधारक, राजनीतिज्ञ और भारतीय संविधान के जनक होने के साथ-साथ एक सफल पत्रकार भी थे। उनके प्रकाशन चार दशकों तक समाज के अछूते और

पिछड़े तबके के लिए उनके संघर्ष के हिस्से के रूप में कार्य करते रहे। अंबेडकर ने हमेशा अछूतों को मुक्त करने और उनकी आवाज को ऊँचाई देने के लिए पत्रकारिता का उपयोग किया। सन् 1920 में जब उन्होंने अपना संघर्ष आरंभ किया तो शुरुआत में उन्होंने एक मराठी पत्रिका 'मूकनायक' प्रकाशित की। अंबेडकर ने इस पत्रिका के लिए संपादकीय लिखे थे। पत्रिका की शुरुआत कोल्हापुर के शाहू छत्रपति महाराज द्वारा प्रदान की गई वित्तीय सहायता से हुई। अप्रैल 1927 में उन्होंने 'बहिष्कृत भारत' नामक पत्रिका शुरू की, जो पहले प्रकाशन से अधिक विस्तृत और संगठित थी। 1930 में उन्होंने 'जनता' नाम से एक नई पत्रिका शुरू की। यह पत्रिका 26 वर्ष तक छपती रही। उसके बाद यह पत्रिका 'प्रबुद्ध भारत' के नाम से जनता के सामने आई। अंबेडकर द्वारा प्रकाशित प्रत्येक रचना उनके आंदोलन की दिशा का प्रतिबिंब और साधन थी। उन्होंने समाज सुधार और जनता के एक विशेष तबके के अंदर नवचेतना जाग्रत करने के लिए पत्रकार के रूप में एक नया रास्ता अपनाया।

अंबेडकर जी का मानना था कि उनकी विचारधाराओं को एक मुखपत्र की आवश्यकता थी, जो समाज के शोषित वर्ग की आवाज बन सके। इसके लिए अंबेडकर ने स्वयं संघर्ष किया था। उन्होंने इस चीज को दृढ़ता से माना कि समाचार पत्र लाखों उत्पीड़ित लोगों के जीवन में बदलाव ला सकते हैं। इसीलिए यह कहा जा सकता है कि उनके समाचार पत्र सक्रिय रूप से एक राष्ट्र के निर्माण, सामाजिक असमानता के प्रति लोगों को जाग्रत करने और आजादी का बिगुल बजाने में सहभागी बनने के लिए जनता का समर्थन जुटाने में शामिल थे। अपने अखबार 'जनता' के माध्यम से अंबेडकर ने दलितवाद का एक अलग दृष्टि से प्रचार करना शुरू कर दिया, जिसने राष्ट्र की मुख्यधारा और दलितों की अस्मिता के अंतर पर जोर दिया।

गांधीवादी एवं अंबेडकरवादी पत्रकारिता या दूसरे शब्दों में कहें तो गांधीजी और अंबेडकर के राजनीतिक विचारों में मुख्य अंतर यह रहा कि जहाँ गांधीजी एक सुसंगत, समरूप राष्ट्र-स्थान के निर्माण और स्वतंत्रता संघर्ष के प्रति जनमानस का ध्यान एकत्रित करने के लिए अखबारों और अपने प्रकाशनों का इस्तेमाल कर रहे थे, वहीं अंबेडकर अखबारों द्वारा समाज के शोषित वर्ग की आवाज उठा रहे थे। उन्होंने 1920 में 'मूकनायक', 1928 में 'समता', 1930 में 'बहिष्कृत भारत', 1940 में 'आम्ही शासनकर्ती जमात बनगार' और 1956 में 'प्रबुद्ध भारत' आदि का प्रकाशन किया और अपने विचारों को जनता तक पहुँचाया। अंबेडकर ने लगभग 36 वर्षों तक पत्रकारिता की और सामाजिक रूप से बहिष्कृत वर्गों, जिसमें महिलाओं का बहुत बड़ा वर्ग शामिल था, के हितों के लिए अपने विचारों को प्रस्तुत करने का काम किया। हालाँकि बीच–बीच में उन्होंने पत्रकारिता से अंतराल भी लिया, लेकिन समाज के प्रति अपने दायित्वों से वे जुड़े रहे। अंबेडकर ने महिलाओं के लैंगिक असमानता संबंधी विषयों को भी अपने प्रकाशनों के माध्यम से सत्ता और शोषित, दोनों के सम्मुख रखा। 'मूकनायक' और 'बहिष्कृत भारत' मुख्य रूप से महिलाओं और उनके सशक्तीकरण से संबंधित मुद्दों को कवर करते थे। अंबेडकर ने मीडिया को जो सामाजिक पहचान दिलाई, वह अपने आप में उनके द्वारा पत्रकारिता को दिया गया अभूतपूर्व योगदान है। अतः हम यह मान सकते हैं कि अंबेडकर ने अपने अखबारों में उत्पीड़ित लोगों का प्रतिनिधित्व किया था।

निष्कर्ष

पत्रकारिता समाज का महत्त्वपूर्ण आधार स्तंभ है जो जनमानस की आकांक्षाओं का प्रतीक होता है। यहाँ तक कि टीवी और रेडियो भी समाज की विकास प्रक्रिया में एक सराहनीय भूमिका निभाते हैं। स्वतंत्रता के पहले पत्र-पत्रिकाओं और समाचार पत्रों ने और बाद में रेडियो और दूरदर्शन ने सामाजिक महत्त्व और राष्ट्रीय एकीकरण के कार्यक्रमों को आगे बढ़ाया है। आज भूमंडलीकरण के दौर में जहाँ हम तकनीकी क्षेत्र में तो चरम पर हैं, परंतु मानवीय मूल्यों को पीछे छोड़ रहे हैं। इसलिए आवश्यकता है सभी व्यवसायों, विशेषकर पत्रकारिता में गांधीवादी और अंबेडकरवादी विचारों को आत्मसात् किया जाए। पत्रकारिता स्वयं एक लाभ कमाने का व्यवसाय न हो, बल्कि सामाजिक दायित्वों को निभाने वाला और समाज के प्रति उतरदायी कार्य हो। गांधी और अंबेडकर की पत्रकारिता हमेशा व्यक्ति और समाज सुधारों को केंद्र में रखती थी, इसीलिए वे हमेशा तत्कालीन और समकालीन पत्रकारों के लिए एक प्रेरणा रहे हैं। राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और सामाजिक सुधार के लिए किए गए उनके प्रयास व कार्य और उनकी पत्रकारिता भारतीय स्वतंत्रता की लड़ाई के समानांतर चलते रहे। आधुनिक समय के प्रकाशक और संपादक अपने काम को मुख्य रूप से व्यवसाय की तरह देखते हैं, जो लाभ और सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त करने की मंशा से भरे हुए हैं। दोनों ही बुद्धिजीवियों ने अपनी पत्रकारिता को मुख्य रूप से समाज की सेवा और धर्म, नैतिकता, राजनीति और अर्थशास्त्र पर अपने विचारों के लिए एक वाहन माना। अंबेडकर और गांधी प्रदत्त राजनीतिक दृष्टिकोण अलग-अलग थे, परंतु उनकी पत्रकारिता में एक चीज सामान्य थी। दोनों ही चिंतकों ने जनसंवेदना को महसूस किया और उसको अपने प्रकाशनों द्वारा समाज के सामने प्रस्तुत किया। पत्रकारिता को व्यवसाय की तरह नहीं, बल्कि एक नैतिक जिम्मेदारी की तरह इस्तेमाल किया। उन्होंने जनता के बीच जाकर उनकी राजनीतिक, सामाजिक और मनोवैज्ञानिक समस्याओं को अपनी पत्रकारिता का केंद्रबिंदु बनाया।

संदर्भ

अजनात, एस. (1993). *भीमराव रामजी अंबेडकर*. जालंधर : भीम पत्रिका प्रकाशन.

कृपलानी, जे. बी. (1991). *गांधी : हिज लाइफ एंड थॉट*. दिल्ली : प्रकाशन विभाग, भारत सरकार.

गोयनका, के. के. (2008). *गांधी : पत्रकारिता के प्रतिमान*. दिल्ली : नटराज प्रकाशन.

ठेंगड़ी, डी. (2005). *डॉ. अंबेडकर और सामाजिक क्रांति की यात्रा*. लखनऊ : लोकहित प्रकाशन.

नटराजन, जे. (1955). *हिस्ट्री ऑफ जनर्लिज्म*. दिल्ली : प्रकाशन विभाग, भारत सरकार.

नटराजन, जे. (2000). *हिस्ट्री ऑफ इंडियन जनर्लिज्म*. दिल्ली : प्रकाशन विभाग, भारत सरकार.

बेचैन, आर. एस. (2005). *हिन्दी की दलित पत्रकारिता पर पत्रकार अंबेडकर का प्रभाव*. दिल्ली : समता प्रकाशन.

भट्टाचार्य, एस. एन. (1996). *महात्मा गांधी : द जनर्लिस्ट*. दिल्ली : साहित्य अकादमी.

विलानिलम, जे.वी. (2005). *मास कम्युनिकेशन इन इंडिया : ए सोशियोलॉजिकल पर्सपेक्टिव*. दिल्ली : सेज पब्लिकेशन्स.

सिद्धार्थ. (2020, जनवरी 26). डॉ. आंबेडकर की पत्रकारिता - 'मूकनायक' से 'प्रबुद्ध भारत' की यात्रा. *फॉरवर्ड प्रेस*. https://www.forwardpress.in/ से पुन:प्राप्त.

वर्मा, आर. (1998). *गांधी फिलॉसॉफी ऑफ स्वदेशी*. दिल्ली : गांधी स्मृति और दर्शन समिति.

रणसुभे, एस. एन. (2017). *भीमराव अंबेडकर*. दिल्ली : प्रभात प्रकाशन.

संचार माध्यम | खंड 34(1) : 53-57, जनवरी-जून 2022
आईएसएसएन: 2321-2608

हरियाणवी लोकगीतों में सामाजिक रिश्तों का चित्रण

डॉ. शिखा सैनी[1]

सारांश

लोकगीत लोकगायन की वह परंपरा है, जिसमें ग्रामीण स्त्रियाँ समूह बनाकर विशेष अवसरों पर अपने विचारों का आदान-प्रदान करती हैं। लोकगीत कल्पना पर आधारित नहीं, बल्कि वास्तविक होते हैं। इसीलिए ये सीधे दिल को छू जाते हैं। लोकगीतों की भाषा आम होने के कारण ये बहुत ही आनंददायक होते हैं और सभी को आसानी से समझ में आ जाते हैं। लोकगीत समूह व एकल भी गाए जाते हैं। इनका विषय विविध घटनाओं पर आधारित होता है। इनमें करुणा भाव होता है तो विरह का भाव भी। लोकगीतों के लिए साधना की जरूरत नहीं होती है। ये स्वतः ही एक महिला से दूसरी महिला तथा पीढ़ी-दर-पीढ़ी स्थानांतरित हो जाते हैं। लोकगीतों को प्राचीन काल से ही गाया जाता है। इनकी रचना में महिलाओं का विशेष योगदान रहा है। लोकगीत महिलाओं के सुख व दुख को जाहिर करने का माध्यम होते हैं। गाँव में जब लड़की का जन्म होता है तो उसके जन्म से लेकर शादी तक के गीत महिलाओं द्वारा गाए जाते हैं। जब लड़की का विवाह तय होता है तो माँग भराई की रस्म भी होती है। माँग भराई की रस्म से लेकर बान, हल्दात फेरे, विदाई व जब वह दुल्हन बनकर ससुराल जाती है तब तक सभी रस्मों को गीतों द्वारा ही पूर्ण माना जाता है। इसलिए लोकगीत परंपरागत संस्कारों को भी एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचाने का माध्यम हैं। प्रस्तुत शोध पत्र में हरियाणा में प्रचलित कुछ लोकगीतों में मौजूद ऐसे ही संस्कारों, संदेशों और सामाजिक रिश्तों का अध्ययन करने का प्रयास किया गया है।

संकेत शब्द : लोकगीत, जनमानस, लाड्डो, लोक साहित्य, हरियाणा, सामाजिक रिश्ते

प्रस्तावना

हरियाणा में लोक साहित्य की अनेक विधाएँ हैं, जिनमें लोकगीत ऐसी विधा है जो जन-मन में गहराई तक समाई है। लोक साहित्य की सभी विधाएँ निर्विवाद रूप से जन सामान्य द्वारा ही रचित हैं। वैसे तो लोकसाहित्य की प्रचलित अधिकतर विधाओं पर पुरुष वर्चस्व स्पष्ट दिखाई देता है, परंतु लोकगीत एकमात्र ऐसी विधा है, जिस पर पुरुषों का अधिकार न के बराबर है और जिसे स्त्रियों की अभिव्यक्ति कहा जा सकता है। ग्रामीण जनजीवन में रचित लोकगीत हरियाणा की सबसे प्रचलित विधा है। जन्म-मृत्यु, विवाह-संस्कार, व्रत-उत्सव, रहन-सहन, खान-पान, पहनावा, व्यवसाय व सामाजिक संबंधों के साथ-साथ ऐतिहासिक-पौराणिक किस्सों, राजनैतिक फेरबदल, राष्ट्रीय आंदोलनों, धार्मिक आस्था आदि की अभिव्यक्ति लोकगीतों में बहुत शानदार ढंग से की गई है। रामनरेश त्रिपाठी के शब्दों में—"हमको स्त्रियों के मस्तिष्क की महिमा देखने को मिलेगी, जिनको हमने मूर्ख समझ रखा है उनके मस्तिष्क से ऐसे-ऐसे कवित्वपूर्ण गीत निकलते हैं कि उन पर हिंदी के कितने ही कवियों की रचनाएँ न्योछावर की जा सकती हैं। बिना किसी छंद विधान, अलंकार आरोपण के ये गीत सीधी-सी लोकभाषा में रचित हैं, जिन पर कोई भी नियम लागू नहीं होता।" लोकगीतों के व्याकरण की खोज शास्त्रीय औजारों से नहीं की जा सकती। शास्त्रीयता का अर्थ है संस्कार और कौशल। इसके विपरीत, लोकगीत के उन्मुक्त स्वरों में लोकचेतना अपने समूचे उल्लास और अवसाद को लेकर उमड़ती है, वह किसी बनावट को स्वीकार नहीं करती। इन गीतों में दिखावा बिल्कुल भी नहीं होता, ये अपने आप में अर्थपूर्ण व आनंदमयी होते हैं। अपने आप ही इन गीतों की लय-सुर-ताल बनती गई है, जिसे शिल्प की दृष्टि से काफी समृद्ध कहा जा सकता है।

शोध प्रविधि

प्रस्तुत अध्ययन के लिए लोकगीतों से संबंधित पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं और शोधपत्रों से द्वितीयक सामग्री प्राप्त की गई है। हरियाणवी गीतों और साहित्य के जानकारों से भी बात की गई है।

लोकगीतों के शिल्प पक्ष को एक बार छोड़कर हम कथ्य की बात करें और लोकसाहित्य की परंपरा का मूल्यांकन करे तो पाएँगे कि लोकगीतों को एक विशेष उद्देश्य के साथ मनोरंजन के रूप में प्रस्तुत किया जाता रहा है। ज्यादातर लोकगीतों में उत्साह और आनंद भरा होता है, जिसको महिलाओं की अभिव्यक्ति द्वारा देखा और महसूस किया जा सकता है कि किस प्रकार वे अपने जीवन में लोकगीतों द्वारा उत्साह व उल्लास प्रकट करती हैं। बढ़ती प्रतिस्पर्धा के कारण द्विअर्थी बातों से कई जगह महिलाओं की भद्द पीटी जा रही है। परिवारिक उत्सवों, त्योहारों व नाचने के गीतों तक ही अब तक हमारी दृष्टि पहुँची है। इससे हम न तो लोक साहित्य का उपकार कर पाए हैं और न ही महिलाओं की प्रतिभा का सकारात्मक मूल्यांकन। अगर संपूर्ण हरियाणा प्रदेश के बहुषियक गीतों का ठीक से अध्ययन किया जाए तो प्रचलित कहावत कि 'महिलाओं की अक्ल गर्दन के पीछे होती है' पूरी तरह खारिज होती है, क्योंकि निःसंदेह लोकगीतों का एकमात्र उद्देश्य आनंद प्रदान करना है। लोकगीत लोकजीवन की दलील हैं। ये वस्तुतः लोकजीवन के सुख-दुख, आशा-आकांक्षा, वंचना-वेदना की प्रतिमूर्ति हैं। सत्ता परिवर्तन हो या किसी तरह का सामाजिक और राष्ट्रीय आंदोलन, हर घटना पर अपनी पैनी नजर से महिलाओं ने गीत बनाए व गाए हैं।

लोकगीत पूरी तरह से परंपरा का निर्वहन करते हुए समाज में

[1]सहायक प्राध्यापक, राजनीति विज्ञान विभाग, डी.ए.वी. कॉलेज फॉर गर्ल्स, यमुना नगर, हरियाणा. ईमेल : shikhasainisaran@gmail.com

प्रचलित मूल्य-मान्यताओं को दर्शाते हैं। जन्म-संस्कार, विवाह के रीति-रिवाज, पर्व-त्योहार व महिलाओं के लिए बने 'सीख' के गीत पूरी तरह से नैतिक, धार्मिक मूल्यों को कायम करते हैं। जन्म-संस्कारों के गीत भी महिलाओं द्वारा ही गाए जाते हैं, परंतु ये गीत केवल तब गाए जाते हैं जब लड़के का जन्म होता है। लड़का होने पर महिला को अत्यधिक महत्त्व दिया जाता है (कुमार, 2015)। विवाह के समय ग्रामीण समाज में महिलाओं की स्थिति को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। कई दिन तक रीति-रिवाज के अनुसार कार्यक्रम होते हैं, जिनमें पूरी तरह से पुरानी मान्यताओं का भी पालन किया जाता है। आज बहुत से पढ़े-लिखे नवयुवक व नवयुवतियों को न चाहकर भी इनका पालन करना पड़ता है। 'सीख' के गीत तो बने ही महिला को एक लाइन पर चलाने के लिए हैं। सीख देने के नाम पर कई जगह उसको शोषण सहना भी सिखाया गया है, जैसे :

देश पराया ए लाड्डो जाना होगा-2
ना वहाँ दादी होगी, ना वहाँ अम्मा होगी
ना वहाँ बीरण लाड़ला होगा
चारों तरफ से पड़े झिड़कियाँ
फिर भी शीश झुकाना ही होगा।
देश पराया ए लाड्डो जाना होगा-2
ना वहाँ ताई होगी, ना वहाँ चाची होगी
ना वहाँ बीरण लाड़ला होगा
चारों तरफ से पड़े झिड़कियाँ
फिर भी शीश झुकाना ही होगा।
देश पराया ए लाड्डो जाना होगा-2
ना वहाँ बुआ होगी, ना वहाँ मामी होगी
ना वहाँ बीरण लाड़ला होगा
चारों तरफ से पड़े झिड़कियाँ
फिर भी शीश झुकाना ही होगा।
देश पराया ए लाड्डो जाना होगा-2
ना वहाँ बोबो होगी, ना वहाँ भाभी होगी
ना वहाँ बीरण लाड़ला होगा
चारों तरफ से पड़े झिड़कियाँ
फिर भी शीश झुकाना ही होगा। (कुमारी राणा, 2017)।

इस प्रकार के गीतों के माध्यम से बेटी को विवाह के समय बताया जाता है कि जहाँ तू जा रही है वह बिल्कुल पराया परिवेश होगा। वहाँ घर का कोई भी सदस्य नहीं होगा। मतलब वहाँ तुम्हारी दादी, अम्मा, ताई, चाची कोई भी नहीं होंगी और न ही तुम्हारा भाई होगा और तुझे वहाँ हर कोई छोटी-छोटी बात पर डाँटेगा, लेकिन तुझे अपने ससुराल में सिर झुकाकर ही रहना है। इस प्रकार से बेटी को समझाया-बुझाया जाता है। अपने मायके की इज्जत रखने के लिए उसे सब सहन करना सिखाया जाता है, ताकि उनकी बेटी की इज्जत व परिवार की मान-मर्यादा पर कोई भी आँच न आए। इस प्रकार हरियाणा व ग्रामीण समाज में महिलाएँ रहती हैं।

हरियाणा में मनाए जाने वाले तीज-त्योहारों का जिक्र भी लोकगीतों में हुआ है। हरियाणा के ग्रामीण क्षेत्र में वहाँ के लोगों का पहनावा सीधा सादा माना जाता है। वहाँ सूती कपड़े, खद्दर, छींट, डोवटी के बने घाघरा-लूगड़ी, लहँगा-कुर्ता, दामण-चुँदड़ी, सूट-सलवार महिलाओं का पहनावा है। पुरुष धोती-कुर्ता, चादर-कुर्ता व पजामा-कमीज पहनते हैं और सिर पर पगड़ी बाँधते हैं। पैरों में जूतियाँ पहनी जाती हैं। महिलाएँ बहुत तरह के सोने-चाँदी के गहने पहनती हैं, जिनमें कड़े नेवरी, रमझोल, पाती, बिछुआ, हथफूल, टड्डे, ग्यानी, पैंडल, झुमके, बूजली, बोरला, टीक्का आदि शामिल हैं। पुरुष ज्यादा गहने नहीं पहनते। कुछ लोग कड़ा, अँगूठी व चैन पहनते हैं। पहनावे पर बहुत से गीत भी बने हुए हैं व लोक साहित्यकार गर्व के साथ इनका गुणगान करते हैं। महिला मायके से तीवलों की माँग करती है तो कभी गहनों के लिए खेत गिरवी रखवा देती है। वहीं महिला गहनों के बंधन माँगते हुए कहती है :

कारो के बीच लाडो ने शोर मचाया
कारो के बीच लाडो ने शोर मचाया
बाबा जी जल्दी दौड़े आना, हमें बन्ना लिए जाए
लाडो ने शोर मचाया
लाडो तू हो गई परायी
हमसे राखी भी ना जाए, लाडो ने शोर मचाया
कारो के बीच लाडो ने शोर मचाया
कारो के बीच लाडो ने शोर मचाया
पापा जी जल्दी दौड़े आना
हमें बन्ना लिए जाए, लाडो ने शोर मचाया
कारो के बीच लाडो ने शोर मचाया
कारो के बीच लाडो ने शोर मचाया
ताऊ जी जल्दी दौड़े आना
चाचा जी जल्दी दौड़े आना
हमें बन्ना लिए जाए, लाडो ने शोर मचाया
लाडो तू हो गई परायी
हमसे राखी भी ना जाए, लाडो ने शोर मचाया
कारो के बीच लाडो ने शोर मचाया
कारो के बीच लाडो ने शोर मचाया
भैया जी जल्दी दौड़े आना
जीजा जी जल्दी दौड़े आना
हमें बन्ना लिए जाए, लाडो ने शोर मचाया
लाडो तू हो गई परायी
हमसे राखी भी ना जाए, लाडो ने शोर मचाया (पाल, 2018)।

इस गीत में लड़की जब ससुराल जाती है तब वह बहुत दुखी होती है। वह रोती हुई अपने सभी घरवालों को बुलाती है, लेकिन उसके घर वाले उसे कहते हैं कि तू आज परायी हो गई है, अब तुझे हम भी नहीं रख सकेंगे। इस प्रकार उसको यह अहसास दिलाकर विदा करते हैं।

''पैर मरेर म्है आँती र पाँती, ओ हो किससे मारूँ गाती।''...ऐसे गीतों में वह जवाब भी खुद ही देती है कि उसे गहनों से प्यारे खेत हैं, उसके बच्चों की जरूरतें हैं, परंतु अगर वह सजेगी नहीं तो उसका पति दूसरी स्त्री पर सम्मोहित हो जाएगा, जो उसके लिए सबसे ज्यादा तकलीफदेह है। हरियाणवी लोकगीतों में सबसे ज्यादा प्रसिद्ध एक गीत है, जो लगभग हँसी-मजाक का भी है और इस गीत में महिला अपने पति को 'नणदी का

बीरा' यानी 'ननद का भाई' कहके संबोधित करती है, जो अपने लिए चीजों की माँग करती है :

मेरा चूँदड़ मँगादे हो, ओ नणदी के बीरा
तन्नै न्यूँ, तन्नै न्यूँ, तन्नै न्यूँ मंडो पा राखूँगी
ओ नणदी के बीरा
मेरा बोड़ला घढ़ादे हो, ओ नणदी के बीरा
तन्नै न्यूँ, तन्नै न्यूँ, तन्नै न्यूँ हाथ्याँ पा राखूँगी
ओ नणदी के बीरा
मेरा कूड़ता सीमांदे हो, ओ नणदी के बीरा
तन्नै न्यूँ, तन्नै न्यूँ, तन्नै न्यूँ काध्यां पा राखूँगी
ओ नणदी के बीरा
मेरा टीक्का घढ़वादे हो, ओ नणदी के बीरा
तन्नै न्यूँ, तन्नै न्यूँ, तन्नै न्यूँ माथे पा राखूँगी
ओ नणदी के बीरा
मेरा पायल घढ़ादे हो, ओ नणदी के बीरा
तन्नै न्यूँ, तन्नै न्यूँ, तन्नै न्यूँ ठोकर पा राखूँगी
ओ नणदी के बीरा
मेरा घाघरा सीमांदे हो, ओ नणदी के बीरा
तन्नै न्यूँ, तन्नै न्यूँ, तन्नै न्यूँ काध्याँ पा राखूँगी
ओ नणदी के बीरा (शर्मा, 2017)।

हरियाणा में यह गीत बहुत प्रसिद्ध है। स्कूल या कॉलेज में हरियाणवी कार्यक्रम में लड़कियाँ बढ़-चढ़कर इस गीत पर नाचती हैं। इसी प्रकार पारिवारिक आयोजनों में महिलाएँ खूब आनंद लेकर इस गीत को गाती व नाचती हैं। इस गीत में महिला अपने पति को 'ननद का भाई' कहकर बुलाती हुई अपने लिए पहनने-ओढ़ने का सामान मँगवाती है व खूब हँसती और मजाक करती है। वह अपने पति को चुन्नी लाने के लिए बोलती है तो कहती है कि तुझे मैं अपने कंधों पर बिठाऊँगी। और जब टीका मँगवाती है तब उसे माथे पर रखने को कहती है। जब चूड़ियाँ मँगवाती है तो कहती कि तुझे हाथों पे रख के नाचूँगी। इस प्रकार वह एक-एक चीज की माँग करती है। अपने लिए और उसके साथ खूब मजाक भी करती है। पहले औरतें अपने मुँह से अपने पति का नाम नहीं लेती थीं। वे ऐसा मानती थीं कि पति का नाम लेने से उसके पति की उम्र घटती है, इसलिए वे 'ननद का भाई' कहकर अपने पति को बुलाती हैं।

इस प्रकार ग्रामीण महिलाओं को अगर देखा जाए तो उनका व्यक्तित्व बहुत ही लाजवाब होता है। उनकी तुलना किसी के साथ नहीं की जा सकती। वे अपने आप में बहुत ही सहनशील, गरिमा व प्यार से भरपूर होती हैं। गोटे और सितारों से सजे दामण में मटकती चाल पर तो सबकी नजर गई है, पर उस दामण को पहनने की मजबूरी शायद महिला के सिवा कोई और नहीं समझ सकता है। समय के साथ-साथ बहुत-सी चीजों में बदलाव आया है, जिससे रहन-सहन व पहनावा बदला है और बहुत-सी सुविधाएँ उपलब्ध हुई हैं। शिक्षा के विस्तार से यह बदलाव संभव हो सका है। लोकगीतों में शिक्षण संस्थानों, विद्यार्थियों व नए व्यवसायों का वर्णन हम देख सकते हैं जो कृषि-पशुपालन व परंपरागत व्यवसायों से फौजी, डाकिया मास्टर, सिपाही, पटवारी आदि है। अधिकतर गीत तो अस्सी के दशक के पहले से हैं, जिस कारण उच्च शिक्षा का बहुत वर्णन मिलता है। उस समय तक गाँव उच्च शिक्षा से अछूते थे। मदरसे, स्कूल व कॉलेज का जिक्र गीतों में हैं।

बाबा जी की प्यारी लाड्डो, स्कूल में पढ़ने जाती है
हाथ में लेकर ओम् का झंडा, जय-जय करती जाती है
आठ बजे का आना जाना, 9 बजे दफतर खुलता है
4 बजे की सारी छुट्टी वापिस घर को आती है।
पिताजी की प्यारी लाड्डो, स्कूल में पढ़ने जाती है
ताऊ जी की प्यारी लाड्डो, स्कूल में पढ़ने जाती है
चाचा जी की प्यारी लाड्डो, स्कूल में पढ़ने जाती है
हाथ में लेकर ओम् का झंडा, जय-जय करती जाती है
आठ बजे का आना जाना, 9 बजे दफतर खुलता है
4 बजे की सारी छुट्टी, वापिस घर को आती है।
फूफा जी की प्यारी लाड्डो, स्कूल में पढ़ने जाती है
ममा जी की प्यारी लाड्डो, स्कूल में पढ़ने जाती है
मासड़ जी की प्यारी लाड्डो, स्कूल में पढ़ने जाती है
हाथ में लेकर ओम् का झंडा, जय-जय करती जाती है
आठ बजे का आना जाना, 9 बजे दफतर खुलता है
4 बजे की सारी छुट्टी, वापिस घर को आती है (शकुंतला, 2017)।

इस प्रकार लोकगीतों में स्कूल व कॉलेज का भी कहीं-कहीं पर जिक्र देखने को मिलता है।

फौजियों की जिंदगी, दुख-दर्द व उनके फौज में शहीद होने के बाद उनके परिवार पर आने वाली मुसीबतों, पत्नी के वियोग आदि को लोकगीतों में बहुत प्रभावी ढंग से उद्घाटित किया गया है। किस तरह उनके अंदर वियोग का दुख व दर्द होता है और वे किस तरह उनके बिना अपना जीवन व्यतीत करती हैं, इस गीत से स्पष्ट होता है :

म्हारे राजा गए परदेश बिस्तरा बाँध लिया
वे तो होया मँडेरे की ओट ठाड्डो ऐ ठाड्डो रो ऐ पड़ी
उंकी सासू पूछै बात बहू री राज किस ते लड़ी
थारे लाल गए परदेश जीया ना लागै एक घड़ी
उनै दस का गेरया तार जलंधर चिट्ठी पोंहच गई
उनै बाँच रहे सरदार बीरा रे थारी नार दुखी
वो तो आया महलों के बीच महलों म्हँ उंकी अम्मा खड़ी
अम्मा साचो साच बता री काहँ तो म्हारी फूलझड़ी
बेटा हमनै क्या खबराँ मेरा लाल कहाँ से थारी फूलझड़ी
अम्मा आज काल के छोरे बदनाम बहुआँ न कह फूलझड़ी (दुग्गल, 2017)।

गाँव में जब किसी भी स्त्री का पति फौज में जाता है तब उसकी जुदाई का उसको बहुत गम होता है। इस गीत में जब एक महिला का पति फौज में जाने वाला होता है तब वह जाने से पहले मजाक में छुप जाता है और उसकी पत्नी जोर-जोर से रोने लगती है। उसकी सास बहू से पूछती है कि आज तेरी किसके साथ लड़ाई हुई है। फिर वह बताती है कि तेरा बेटा परदेश चला गया है और मेरा मन नहीं लग रहा है। वह बताती है कि उसके

बिना उसकी पत्नी दुखी है। फिर वह उनके सामने आता है और मजाक में अपनी माँ से पूछता है कि मेरी फूलझड़ी (पत्नी) कहाँ है? फिर उसकी माँ उसको पूछती है कि बेटा मुझे नहीं पता कि तू फूलझड़ी किसे कह रहा है। तब वह अपनी माँ को बताता है कि आजकल के लड़के अपनी बहुओं को फूलझड़ी कहकर बुलाते हैं। इस प्रकार इस गीत में यह दिखाया गया है कि गाँव की औरतों के लिए उनके पति का विछोह कितना दुखदायक होता है।

आधुनिक समय में बाजार के विस्तार से शिक्षा के स्वरूप में बदलाव आया है। रोज खुलती नई फैक्ट्रियों व निजी कंपनियों को ध्यान में रखते हुए अनेक तकनीकी व व्यावसायिक शिक्षा के कॉलेज गाँवों तक पहुँच गए हैं। उच्च शिक्षा में भी विद्यार्थियों की रुचि बढ़ी है, जिसे देखते हुए कई विश्वविद्यालय भी अस्तित्व में आए हैं। महिला शिक्षा भी पिछले सालों में बढ़ी है। महिलाएँ भी शिक्षित होकर उच्च पदों पर पहुँची हैं, लेकिन आमजन को पूर्ण शिक्षित करके उसकी चेतना का संपूर्ण विकास करना अभी बाकी है। आज भी समाज शिक्षा के बजाय धर्म से अधिक प्रभावित है, जिसमें धार्मिक शिक्षाओं को दरकिनार करते हुए धार्मिक आडंबरों व अंधविश्वास को बढ़ावा दिया जा रहा है। लोकगीतों में महिलाओं की रुचि इतनी होती है कि वे अपने देवी-देवतओं को भी लोकगीतों के माध्यम से मनाती हैं और विवाह वाले दिन, जिसके घर में विवाह होता है वह सुबह 4 बजे उठकर पड़ोस में जाती है और सभी को न्योता देती है, फिर वे सभी जल्दी-जल्दी उठकर उनके घर एकत्रित होती हैं और सभी बैठकर राम का नाम लेती हैं व अपने-अपने देवी-देवताओं को मनाती हैं। ऐसा करना वे विवाह संपन्न होने के लिए शुभ मानती हैं। वे गीतों के माध्यम से इस प्रकार राम का नाम लेती हैं :

पाँच पतासे पन्ना का बिड़ला
ले रमजी पा जइयो जो
जिस डाली मारे रमजी बैठे, वा डाली झुक जइयो जी
वा डाली झुक जइयो रे कनवा, वा डाली फल लाइयो जी
पाँच पतासे पन्ना का बिड़ला
ले खड़े पा जइयो जी
जिस डाली मारा खेड़ा बैठया, वा डाली झुक जइयो जी
वा डाली झुक जइयो रे कनवा, वा डाली फल लाइयो जी
पाँच पतासे पन्ना का बिड़ला
ले पितरो पा जइयो जी
जिस डाली मारे पितर बैठे, वा डाली झुक जइयो जी
वा डाली झुक जइयो रे कनवा, वा डाली फल लाइयो जी
पाँच पतासे पन्ना का बिड़ला
ले गुरू पा जइयो जी
जिस डाली मारे गुरू बैठे, वा डाली झुक जइयो जी
वा डाली झुक जइयो रे कनवा, वा डाली फल लाइयो जी (शर्मा, 2018)।

इस गीत में महिलाएँ अपने-अपने देवी-देवताओं को पूजती हैं। जिस महिला का जिस पर विश्वास होता है वह उसी की पूजा करती है व सच्चे मन से विवाह के सुख-शांतिपूर्वक पूर्ण होने के लिए अरदास करती हैं। वे कहती हैं कि पाँच पतासे तथा पान का जोड़ा लेकर राम जी के पास जाना और जिस स्थान पर हमारे राम जी बैठे हों वहाँ नतमस्तक होकर झुक जाना। तुम वहाँ से आर्शीवाद रूपी फल लेकर आना। इसमें दर्शाया गया है कि वे कहती हैं कि जिसके ऊपर परमात्मा की दया होती है उसका जीवन हमेशा फलदार वृक्ष की तरह झुका हुआ व आनंद से भरपूर होता है। इस तरह सुखपूर्वक जीवन जीने की कामना करती हैं।

लोकगीतों में बसे साकार स्वरूप के दर्शन अंतरात्मा द्वारा किए जा सकते हैं। अप्रवीण व्यक्ति भी इनकी सादगी, भोलेपन और माधुर्य को समझ सकता है। भारत के पास लोकगीतों की अथाह संपदा है, जिसका प्रसार किया जाना चाहिए, क्योंकि मनोरंजक होने के अलावा इनकी आधारशिला शिक्षाप्रद भी है। लोकगीतों की एक खास बात यह भी है कि ये आनंद के साथ शिक्षा और शिक्षा के साथ आनंद प्रदान करते हैं। लोकगीतों के साथ आयोजित होने वाली सांस्कृतिक गतिविधियों के माध्यम से जीवन को खुशहाल बनाया जा सकता है। लोकगीत अपनी ताजगी और लोकप्रियता में शास्त्रीय संगीत से भिन्न होते हैं। ये सीधे जनता के संगीत होते हैं। इनके लिए साधना की जरूरत नहीं होती। इनको रचने वाले भी अधिकतर गाँव के ही लोग होते हैं। स्त्रियों ने इनकी रचना में विशेष योगदान दिया है। ये गीत वाद्यों के बिना ही या साधारण वाद्य जैसे कि ढोलक, झाँझ, करताल, बाँसुरी आदि की मदद से गाए जाते हैं। लोकगीतों के माध्यम से जीवन के अनेक महत्त्वपूर्ण समृद्ध संस्कार एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचते हैं। इस दृष्टि से लोकगीत संचार का बेजोड़ माध्यम हैं। ग्रामीण जीवन में इनका इतना अधिक प्रभाव है कि इनके माध्यम से प्रसारित होने वाले संदेश सीधे दिल तक पहुँचते हैं, जो आधुनिक संचार माध्यमों के संबंध में नहीं कहा जा सकता है। यही कारण है कि अनेक सरकारी संस्थाओं को भी जब अपनी बात जन सामान्य तक पहुँचानी होती है तो वे आज डिजिटल युग में भी लोक संचार माध्यमों का ही सहारा लेते हैं। इस दृष्टि से लोक संचार माध्यमों के प्रमुख अंग लोकगीतों का संरक्षण एवं संवर्धन बड़े पैमाने पर किए जाने की आवश्यकता है।

निष्कर्ष

अंततः कहा जा सकता है कि समाज में आज भले ही मनोरंजन के कितने भी नवीन साधन क्यों न आ गए हों, लेकिन वे लोकगीतों का स्थान नहीं ले सकते। हरियाणा के ग्रामीण जीवन में बहुत-सी परंपराएँ तो ऐसी हैं जो लोकगीतों से ही पूरी मानी जाती हैं, जैसे विवाह-बान, हल्दात, मंडा, सगाई इत्यादि। ये रस्में लोकगीतों से ही सुशोभित होती हैं। इस दृष्टि से लोकगीतों का समाज में तब तक महत्त्वपूर्ण स्थान रहेगा, जब तक समाज अपनी जड़ों से जुड़ा हुआ है। खासतौर से महिलाओं के जीवन में तो इनका विशेष महत्त्व है। जब वे एकत्र होती हैं तो हर गम व काम के दबाव से आजाद होकर खूब नाचती-गाती हैं। इस दृष्टि से लोकगीत महिलाओं के जीवन का आधार हैं। लोकगीतों के बिना उनका जीवन नीरस है। ग्रामीण जीवन में सुख-दुख को प्रकट करने का माध्यम लोकगीत ही हैं। ये एक प्रकार से महिलाओं की दिमागी उपज हैं। इनको किसी पेशेवर लेखक द्वारा नहीं लिखा गया है। ग्रामीण महिलाएँ ही स्थिति को देखकर लोकगीतों को गाती हैं। लोकगीतों में वे हर मौसम, सुख-दुख, तीज-त्योहार को इस प्रकार प्रकट करती हैं कि सुनने वाला उसी चीज को महसूस करने लगता है। लोकगीतों में ग्रामीण महिलाओं की आंतरिक भावना प्रदर्शित होती

है। मनुष्य की वास्तविक संस्कृति उसकी प्रथाओं लोकनृत्यों, परंपराओं, परंपरागत विश्वासों और लोकगीतों में अंतर्निहित होती है, इसलिए इस संस्कृति का संरक्षण अनिवार्य है। यह काम सरकारी संस्थाओं के भरोसे नहीं हो सकता है, इसके लिए समाज को ही प्रयास करने होंगे।

संदर्भ

कुमार, डी. (2015). *हरियाणवी महिलाओं के सर्व-सुलभ लोकगीत*. वाराणसी : काशी हिंदू विश्वविद्यालय. पृष्ठ-12.

कुमारी, आर. (2017). *बदडी गीत. बन्नी दादा ना दादी होगी, देश पराया होगा*. http ://youtub.com/channel/UCIQM से पुनःप्राप्त.

दुग्गल, ए. (2017). *म्हारे राजा गज परदेश बिस्तर बाँध लिया*. https :// www.youtube.comchannel/UC43n से पुनःप्राप्त.

पाल, पी. (2018). *मोटर के बीच लाडो ने शोर मचाया*. https ://www. youtube.com/watch?v=AqvRUiMoDTM से पुनःप्राप्त.

शर्मा, डी. (2017). *मेरा चुन्दर मंगा दे हो ननदी के बीरा*, https ://www. youtube.com/channel/UC/WM से पुनःप्राप्त.

शकुंतला, एन. (2017). *बाबा जी की प्यारी लाड्डो, स्कूल में पढ़ने जाती है*. https ://www.youtube.com/channel.com/ से पुनःप्राप्त.

शर्मा, डी. (2018). *पाँच पतासे का बिड़ला*. http ://google/Aqpgxr ls 2 fnlacj 2021 से पुनःप्राप्त.

संचार माध्यम | खंड 34(1) : 58-63, जनवरी-जून 2022
आईएसएसएन: 2321-2608

इक्कीसवीं सदी के मीडिया में नैतिकता एवं निष्पक्षता का प्रश्न एवं सामाजिक उत्तरदायित्व का मूल्यांकन

डॉ. संजय वर्मा[1]

सारांश

मीडिया की पहुँच और दायरा आज बहुत व्यापक है। बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक की सूचना क्रांति के प्रभाव के कारण कहा जा सकता है कि मीडिया वर्तमान युग में ऐसा अचूक अस्त्र है, जिसकी सीमा अनंत है। मीडिया की योग्यता और उपयोगिता आज सिद्ध हो चुकी है। चाहे ग्रामीण जीवन का दर्शन कराने से लेकर वैश्विक स्तर पर या लोकतांत्रिक मूल्यों की स्थापना से विश्व शांति की बात हो, मीडिया ने सभी स्तरों पर अपनी निर्णायक भूमिका अदा की है। उसने आज सुविकसित लोकतंत्र का अभिन्न अंग बनकर लोकतंत्र के चौथे स्तंभ की भूमिका को मजबूत किया है, किंतु इक्कीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक तक आते-आते सूचना क्रांति की चकाचौंध में मीडिया भटक गया है। इसके लक्ष्य और आदर्श बदल गए प्रतीत होते हैं। आज मीडिया लोकतंत्र का पर्याय नहीं, अपितु एक ऐसा शस्त्र बन गया है, जिसकी काट ढूँढ़ पाना आसान नहीं। इसने अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता नामक ऐसा आवरण ओढ़ लिया है, जो कर्ण के कवच से ज्यादा अभेद्य है और इसी कवच ने मीडिया को ऐसी असाधारण शक्ति प्रदान की है, जो वस्तुतः इसकी गिरती नैतिकता और निष्पक्षता के प्रश्न को स्वतः आमंत्रित करती है। प्रस्तुत शोध-पत्र में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की आड़ में मीडिया की घटती 'नैतिकता एवं निष्पक्षता' और 'सामाजिक उत्तरदायित्व' का मूल्यांकन किया गया है।

संकेत शब्द : मीडिया, लोकतंत्र, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, नैतिकता, निष्पक्षता, सामाजिक उत्तरदायित्व, चौथा-स्तंभ

प्रस्तावना

मीडिया की व्यापकता और उपयोगिता तथा समाज और राष्ट्र निर्माण में इसकी भूमिका को समझने के लिए प्राचीनकाल से विवेचना की जरूरत है। स्वतंत्रता आंदोलन के दौर तथा इसके पूर्व में किस प्रकार सूचना तंत्र कार्य करता था, यह हमें समझने की आवश्यकता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद मीडिया ने धीरे-धीरे असीमित शक्तियाँ प्राप्त कीं और आज मीडिया वह शक्ति है जो दूसरों पर अंकुश लगाते-लगाते स्वयं निरंकुश हो गया है। मीडिया का वर्चस्व समाज और राष्ट्र निर्माण में आधुनिक नहीं, अपितु प्राचीनकाल से ही देखा जा सकता है। प्राचीनकाल के संदर्भ में मीडिया उस महाभारत काल में भी उपयोगी था जहाँ जन्मांध नरेश धृतराष्ट्र अपने सारथी से युद्धक्षेत्र में प्रवेश किए बिना ही युद्ध का संपूर्ण हाल प्राप्त करते थे। मीडिया न सिर्फ वृत्तांत वर्णन हेतु आवश्यक है, अपितु स्वतंत्रता आंदोलन में भी इस तंत्र ने भरपूर सहयोग प्रदान किया। स्वतंत्रता आंदोलन के दौर में कई क्रांतिकारियों द्वारा विभिन्न प्रकार के संचार माध्यमों से जनसमूह को संगठित करने का प्रयास किया, जिसमें राजा राममोहन राय, बंकिमचंद्र, महात्मा गांधी, बाल गंगाधर तिलक, श्री अरविंद, लाला लाजपत राय, गोपाल कृष्ण गोखले, भगत सिंह, बाबा साहब अंबेडकर, रवींद्रनाथ टैगोर, वीर सावरकर एवं महामना मालवीय प्रमुख रूप से शामिल थे। इनके द्वारा प्रकाशित लेखों के माध्यम से इन स्वतंत्रता सेनानियों ने न सिर्फ इस तंत्र का सदुपयोग किया, अपितु संपूर्ण नैतिकता एवं निष्पक्षता के साथ उसकी मान-प्रतिष्ठा को भी सदैव बरकरार रखा। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सत्ता, मीडिया और व्यावसायिकता के गठजोड़ ने मीडिया के लक्ष्य और आदर्शों से उसे विचलित कर दिया। भूमंडलीकृत मीडिया में नैतिकता एवं निष्पक्षता का विषय सिर्फ आदर्श बनकर रह गया है। सफलता और व्यावसायिकता की अंधी दौड़ में मीडिया ने पत्रकारिता एवं लेखन में अपनी निष्पक्षता का निर्ममता से स्वयं ही गला घोंट दिया। आज का मीडिया वह अनियंत्रित शक्ति का रूप धारण किए हुए है, जो सैद्धांतिक रूप से तो प्रायः वही पुराने नीति-निर्देशकों का पालन कर रही है, परंतु वास्तविकता में इन निर्देशकों की निर्मम हत्या करने में भी कोई कसर नहीं छोड़ी। प्रस्तुत पत्र उसी विचार और चिंतन का वर्णन करता है, जो मीडिया को वर्तमान में एक अभेद्य शस्त्र का प्रारूप देती है।

मीडिया का वर्तमान स्वरूप और प्रस्तुतीकरण देखने के बाद आज के विद्यार्थियों, शोधार्थियों और जनमानस के मन में बारंबार यह प्रश्न उठता है कि क्या है मीडिया? ऐसा क्या है इस शब्द का महत्त्व जो इसे आज लोकतंत्र की सबसे बड़ी शक्ति का स्थान प्रदान करता है? क्या कारण है कि मीडिया के बिना वर्तमान समय में आधुनिकता की अनुभूति लगती ही नहीं? किस कारणवश इस तंत्र पर जनसमूह की अनियंत्रित निर्भरता बढ़ती जा रही है? क्या मीडिया का जनमानस की उम्मीदों के प्रति कोई उत्तरदायित्व नहीं है कि खबरों एवं पत्रकारिता में नैतिकता एवं निष्पक्षता का प्रयोग कर अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह करे? यह विषय चिंतनीय है कि किस कारणवश मीडिया ने यह रूप धारण किया है? यह तो एक ऐसा तंत्र था जो स्वयं ही समाज का विकास एवं नैतिक दृष्टि से समाज को मजबूती प्रदान करता था, किंतु आज का मीडिया स्वार्थवश विवश हो कर दोराहे पर खड़ा प्रतीत हो रहा है, जो सैद्धांतिक दृष्टि से तो निस्संदेह असंख्य शक्ति का अधिपति है, परंतु वास्तविकता में इस शक्ति का सही प्रयोग करने की मानसिकता नहीं दिखा रहा। हालाँकि यह कहना कि संपूर्ण मीडिया आज विवश हो चला है या शक्तिहीन हो गया है, अतिशयोक्ति होगा, परंतु वास्तविकता से यह कोसों दूर भी नहीं। मीडिया शब्द अँग्रेजी के माध्यम का अग्रगामी है। मीडियम शब्द का शाब्दिक अर्थ है 'माध्यम'। मीडियम का अर्थ है साधन, जबकि 'मीडिया' शब्द एकवचन में प्रयुक्त

[1]सहायक आचार्य, किरोड़ी मल महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली. ईमेल : sanmani97@hotmail.com

होता है और इसके अर्थ बहुआयामी हैं, अर्थात् मीडिया का ताल्लुक मुख्य रूप से प्रिंट, प्रसारण, सामान्य संचार, कंप्यूटर संचार, यहाँ तक कि लोक माध्यम इत्यादि भी मीडिया के अभिन्न अंग हैं (मीणा, 2012)। मीडियम का एक अर्थ है—दो बिंदुओ को जोड़ने वाला। वक्ता और श्रोता ये दो बिंदु हैं, जो मीडियम या माध्यम द्वारा जुड़ते हैं (मीणा, 2012)। प्रस्तुत व्याख्या से यह ज्ञात होता है कि मीडिया वस्तुतः उस विमर्श को समाज में उत्पन्न करता है, जिसमें परस्पर सभी वर्गों का समावेश होता है। इसी संदर्भ में मीडिया विशेषज्ञ सुधीश पचौरी का मानना है, कि मीडिया विकास के नए प्रतिमानों में भौतिक विकास ही नहीं, मानसिक विकास भी महत्त्वपूर्ण होता है। एक अच्छे जनतंत्र एवं आधुनिक समाज के लिए जनता का सुसज्जित होना और ज्ञानी होना बहुत जरूरी है। मीडिया अपने सूचना संचार के जरिए जनतंत्र की बुनियादी प्रक्रिया को मजबूत कर सकता है। वह छोटे कामगारों, बुर्जुआ वर्ग, उत्पादकों, कारीगरों को विकास के नए रास्ते दिखा सकता है (मीणा, 2012)। आज मीडिया इस बुनियादी चिंतन से कोसों दूर जा चुका है।

वर्तमान मीडिया लोकतंत्र को सर्वाधिक प्रभावित करने में सक्षम है, क्योंकि जनमानस तक सीधा संबंध बनाने के लिए उसके पास परंपरागत और आधुनिक मार्ग उपलब्ध है। उपर्युक्त संदर्भ में राम लखन मीणा लिखते हैं कि भारत में मीडिया के विभिन्न रूपों का इतिहास लोकतांत्रिक संघर्ष की महागाथा का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा है। भारत में लोकतंत्र को विकसित, पुष्ट और निरंतर अग्रगामी बनाने में मीडिया विमर्श ने उल्लेखनीय भूमिका निभाई है (मीणा, 2012)। मीडिया के संबंध में यह कहा जा सकता है कि वह किसी का सगा नहीं है, एवं आधुनिक काल में उसने 'वन मैन आर्मी' की भूमिका अपना ली है। आज उसका जो स्वरूप सामने आ रहा है, उसमें वह स्वयं ही नियमों का निर्माण करता है, स्वयं ही उसका क्रियान्वयन करता है और स्वयं ही न्यायाधीश की भूमिका भी निभाता है। मीडिया का वर्तमान चरित्र स्वयं ही उसके दोहरे मापदंड को परिभाषित करता है। उसके दोहरे चाल और चरित्र से यह प्रमाणित हो चुका है कि किस प्रकार मीडिया ने आधुनिकतावाद का चोला ओढ़े छद्म, दंभी एवं आडंबरपूर्ण कार्य किए हैं। आधुनिकतावाद में मीडिया का अभेद्य कवच 'अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता' के साथ-साथ छद्म 'वैचारिक दृष्टिकोण' भी है, जिसने प्रायः वर्तमान काल में मीडिया की नैतिकता और निष्पक्षता को कलंकित किया है। लोकतंत्र के इस चौथे स्तंभ पर जनमानस का विश्वास डोलने लगा है, जो भारतीय लोकतंत्र और स्वस्थ समाज के लिए उचित नहीं है। इस संदर्भ में मीडिया विशेषज्ञों का मानना है कि मीडिया आज 'नागरिक से ग्राहक', 'सूचना एक माध्यम से सूचना एक वस्तु', 'वास्तविकता से कल्पना' तथा 'शक्ति की सहभागिता से शक्ति की एकाग्रता' की ओर निरंतर अग्रसर है, जो वास्तव में संकट सूचक है (सईद, 2016)। इसी प्रकार के विचारों से सरोकार रखते हुए दिलीप मंडल अपनी पुस्तक, 'चौथा खंभा (प्राइवेट) लिमिटेड' में कहते हैं कि इक्कीसवीं सदी के पास मीडिया से देश के ज्यादातर लोगों का वास्ता है, लेकिन यह देश के ज्यादातर लोगों के हितों के खिलाफ काम करता है (मंडल, 2014)।

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध-पत्र द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है, जिसमें शिक्षाविदों और मीडिया विशेषज्ञों द्वारा लिखित पुस्तकों और शोध-पत्रों का अध्ययन एवं विश्लेषण किया गया है। इस पत्र के माध्यम से मीडिया के समाज विज्ञान और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की आड़ में मीडिया की घटती नैतिकता एवं निष्पक्षता का अध्ययन करने का प्रयास है, जो वर्तमान संदर्भों में प्रासंगिक है।

स्वच्छ समाज और मीडिया

स्वतंत्रता आंदोलन के दौर में मीडिया और मीडियाकर्मी आपस में एक-दूसरे से जुड़े थे और उसका आधार नैतिकता, निष्पक्षता और देशप्रेम था। उस दौर में मीडिया को मिशन माना जाता था। स्वतंत्रता पश्चात् भी मीडिया के एक वर्ग ने इस मिशन को कायम रखा और स्वस्थ भारतीय समाज और परिपक्व लोकतंत्र के निर्माण में अपना योगदान दिया, किंतु मीडिया का दूसरा, वर्ग जो पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव से ग्रसित था, उसने मीडिया को मिशन मोड से निकालकर बाजार के हाथों की कठपुतली बना दिया। बीसवीं शताब्दी के नब्बे के दशक में यह दूसरा वर्ग अत्यंत प्रभावशाली हो गया एवं उसने सूचना क्रांति के नाम पर भारतीय मीडिया की पूरी परिभाषा को ही बदल दिया। इस नई संस्कृति में सूचना एवं संस्कार दोनों ही पाश्चात्य संस्कृति पर आधारित एवं आयातित थे। वर्तमान काल में मीडिया एक भटका हुआ-सा मुसाफिर प्रतीत होता है। दूसरी ओर वह स्वयं इस बात से अनजान है कि वह किस प्रकार की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं वैचारिक दृष्टि से मलिन हो चुका है। इस मलिनता एवं अस्वच्छता के पीछे प्रायः कितने ही कारण हों, परंतु प्रश्न यह है कि क्या मीडिया ने यह अनभिज्ञ प्रारूप स्वयं ही धारण किया हुआ है अथवा परिस्थितियों से परिचित होने के पश्चात् भी अनभिज्ञता का स्वांग रचे हुए है। लोकतंत्र और समाज की रक्षा के लिए पाश्चात्य और कॉरपोरेट प्रभाव से ग्रसित मीडिया पर अंकुश लगाना आवश्यक है। इस संबंध में दिलीप मंडल लिखते हैं कि पत्रकारिता इनके लिए पैसा और रुतबा पाने का जरिया है। इन्हें सेंसर करने की जरूरत नहीं होती। लगभग सभी मामलों में ये खुद पर ही सेंसरशिप लगा लेते हैं। 'सेल्फ सेंसरशिप' इस समय के मीडिया का सबसे पॉपुलर शब्द है (मंडल, 2014)। मीडिया विशेषज्ञ, विद्यार्थी और शोधार्थी भी वर्तमान मीडिया के स्वरूप और प्रस्तुतीकरण से भ्रमित हैं। इस संबंध में सुधीश पचौरी का मानना है कि आज मीडिया का आम विद्यार्थी मीडिया की कार्यप्रणाली, उसके कला-कौशल पर ज्यादा ध्यान देने की जगह मीडिया के प्रभाव पर ज्यादा ध्यान देता है। वह मीडिया के वस्तुगत ताने-बाने को समझने की जगह उस पर एकाग्र होने की जगह प्रायः उन प्रश्नों में उलझा रहता है, जिनमें मीडिया का अध्ययन न करने वाले साधारण जन उलझे रहते हैं (पचौरी, 2009)। विशेषज्ञ मानते हैं कि मीडिया के ग्लैमर, चकाचौंध और सुनहरे सपने दिखाने वाले रूप से स्वस्थ और स्वच्छ समाज का निर्माण नहीं हो सकता। इस संबंध में प्रांजल धर लिखते हैं कि मीडिया की इस व्यापक पहुँच के चिराग तले कुछ अँधेरे टापू भी हैं (धर, 2014)।

प्राचीनकाल में संचार के विभिन्न माध्यमों और उनकी भूमिका के अध्ययन से ज्ञात होता है कि मीडिया ने सदैव सकारात्मक एवं सृजनात्मक भूमिका अदा की है। इसके विभिन्न आयामों ने सूचना, सृजनात्मकता, प्रशासनिक और सामाजिक उत्तरदायित्व के अपने उद्देश्य को बखूबी निभाया है। इसलिए मीडिया को समाज का दर्पण माना जाता है। एक ऐसा माध्यम जो समाज में घटित सभी घटनाओं को निष्पक्षता के साथ प्रस्तुत करने के लिए ही है या कहें कि उसका प्रारब्ध ही इन्हीं उद्देश्यों और लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए हुआ है। यह उसके अलग-अलग प्रारूपों से भी

ज्ञात होता रहा है, जैसे पत्रकारिता, समाचार माध्यम अथवा अन्य किसी और माध्यम से। निष्पक्षता ही वह बुनियादी सिद्धांत है, जिस कारण आज मीडिया आम जनता के लिए एकमात्र वह उपलब्ध साधन है, जिस पर वे पूर्ण विश्वास करने का साहस कर सकते हैं, परंतु स्वातंत्र्योत्तर मीडिया के अवलोकन से ज्ञात होता है कि शनैः शनैः मीडिया ने अपने लक्ष्य, आदर्श और सामाजिक उत्तरदायित्व की परिभाषा बदल कर अपने आर्थिक हितों को प्रगाढ़ किया है।

इक्कीसवीं सदी के प्रारंभ से ही मीडिया के विषयों से किसान, गरीब, मजदूर और सामाजिक रूप से उपेक्षित वर्ग गायब हो गया। सामाजिक स्वच्छता की श्रेणी में मीडिया ने भी जनसमूह को निराश ही किया है। अनेकानेक उदाहरण हैं, जहाँ मीडिया ने जनमानस में अपनी छवि को मलिन ही किया है। उदाहरण के तौर पर 1975 के आपातकाल के दौरान मीडिया का सेंसरशिप के आगे घुटने टेक देना, सन् 1984 के सिख दंगों के बाद मीडिया का सत्ताधारी पार्टियों के ही इशारों पर खबरों को प्रसारित करना, मीडिया द्वारा खरीद-फरोख्त का 'नीरा राडिया' कांड, जिसने अकेले ही मीडिया के छद्म मान-सम्मान को नष्ट कर जनसमूह के सामने अपनी मलिनता को उजागर किया। लोकतंत्र में चुनाव एक उत्सव की तरह होते हैं, किंतु पैसे लेकर उम्मीदवारों के पक्ष में खबर छापना और दूसरे की छवि को धूमिल करने के अनेकों उदाहरण जनता के समक्ष हैं। मीडिया की इस हरकत ने न सिर्फ लोकतंत्र को कमजोर किया है, बल्कि मीडिया के चौथे स्तंभ की छवि को भी तार-तार किया है। इक्कीसवीं सदी के दूसरे दशक में भारतीय मीडिया का जो चेहरा सामने आया, उसने जनमानस के साथ-साथ मीडिया विश्लेषकों को चिंतित कर दिया है कि मीडिया कितना पतित हो सकता है। नागरिकता संशोधन कानून और भारतीय राष्ट्रीय नागरिक रजिस्टर (सीएए-एनआरसी) की रिपोर्टिंग में भारतीय मीडिया के एक वर्ग ने स्वच्छता और आदर्शों की बलि चढ़ा दी। इस दौरान मीडिया और कुछ मीडिया विश्लेषक राजनीतिक दलों के प्रवक्ता की भूमिका में थे। कोरोना महामारी और भारत द्वारा स्वदेशी वैक्सीन के निर्माण के दौरान पाश्चात्य मीडिया के प्रभाव से ग्रसित भारतीय आयातित अँग्रेजी मीडिया ने भारतीयता और मीडिया एथिक्स की धज्जियाँ उड़ा दीं। ऐसा लगा कि अँग्रेजी मीडिया और कुछ अन्य भारतीय भाषाओं के संचार माध्यमों ने भारत के खिलाफ युद्ध छेड़ रखा हो। इस संबंध में राम लखन मीणा की एक टिप्पणी उचित लगती है कि मीडिया की आत्मा है कि बिना लाग-लपेट के जन समस्याओं पर कलम चलाकर उसे उजागर करके उनके समाधान का मार्ग प्रशस्त करना। इससे मीडिया में जनरुचि बढ़ती है और मीडिया का समाज में आदर होता है। वस्तुतः सामाजिक सरोकार रखने वाले मीडिया में रोचकता रहती है, सनसनी नहीं; प्रभावोत्पादकता रहती है, उन्माद नहीं; लोगों में विश्वास जगाने की चाहत होती है, धर्मिता नहीं; संपादन की गंभीरता होती है, छिछलापन और छिछोरापन नहीं (मीणा, 2012)।

इस दौर की मीडिया की विषयवस्तु और प्रस्तुतीकरण ने भारतीय समाज ही नहीं वैश्विक स्तर पर भी भारतीय मीडिया को तीव्र आलोचना और जगहँसाई का पात्र बना दिया। वर्तमान मीडिया का आडंबर और दोहरा चरित्र इस बात से उजागर होता है कि मीडिया ने सदैव ही स्वच्छता को स्वयं से पृथक् रखा है, अथवा यह कहने में भी कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि मीडिया ने प्रायः स्वच्छता की परिभाषा से स्वयं को बहुत ही सुंदर नाटकीय रूप से दूर रखा और सदैव ही स्वच्छता का पैमाना समाज के लिए रखा। उसने उन तमाम आयामों को भी अपनी सहूलियत के अनुसार परिवर्तित किया है, जो मीडिया में स्वच्छता बनाए रखने की वकालत करती हैं। वर्तमान मीडिया एक ऐसा रंगमंच है, जहाँ कलाकार, निर्देशक और कहानी के रचयिता वे खुद ही हैं। इसका तात्पर्य यह है कि मीडिया ने स्वयं को एक स्वायत्त संस्था स्वयं ही घोषित किया है, किंतु वास्तविकता यह है कि स्वायत्तता का लेश मात्र भी मीडिया के पास नहीं है, क्योंकि स्वायत्तता की जागीरदारी तो मीडिया ने वैचारिक एवं कॉरपोरेट जगत् के मालिकों के पास गिरवी रखी है। इस अनैतिकता के संदर्भ में राम लखन मीणा का मानना है कि चूँकि मीडिया जनमानस को सर्वाधिक प्रभावित करता है और इस कारण लोकतंत्र में मीडिया की अनिवार्यता बरकरार है। जनमानस को प्रभावित करने की मीडिया की क्षमता असाधारण है। व्यक्ति से लेकर समाज तक और समाज से लेकर शब्द तक की हर गतिविधि को मीडिया अपने प्रभाव क्षेत्र में लेता है। इस मूल धारणा को ध्यान में रखें तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि वास्तव में जनता को ही इतना जागरूक होना पड़ेगा कि वह मीडिया को आत्म-नियंत्रण और आत्म-निरीक्षण के लिए मजबूर करे, जिससे मीडिया भारतीय संविधान द्वारा दिए गए अधिकार का सही अर्थों से प्रयोग करे और लोकतंत्र के चौथे स्तंभ के रूप में अपनी सार्थकता बनाए रखे (मीणा, 2012)। गौरतलब बात यह है कि क्यों वर्तमान मीडिया को निष्पक्ष रहना अथवा मीडिया का प्रसारण स्वच्छ होना आवश्यक है? क्यों मीडिया स्वतः ही इस कार्यभार को सँभालने में सक्षम नहीं रहा? कदापि मीडिया में बढ़ते अनैतिक तत्त्वों के निरंकुश हस्तक्षेप ने ही उसकी यह दशा कर दी। आज मीडिया स्वच्छता और निष्पक्षता की बीन बजाता अवश्य है, परंतु इस यंत्र की ध्वनि केवल मीडिया तक ही सीमित रह जाती है। यह बड़ी विडंबना का विषय है कि मीडिया में व्याप्त अनैतिकता, अराजकता और अविश्वास ने लोकतंत्र के चौथे स्तंभ को हिला दिया है।

नैतिकता और निष्पक्षता के प्रश्न

मीडिया में निष्पक्षता के प्रश्न का सीधा संबंध नैतिकता से है। घटती नैतिकता से निष्पक्षता बरकरार रख पाना मुश्किल है, जहाँ मीडिया व्यावसायिक घरानों से जुड़ी हो और पाठक या श्रोता खरीददार की भूमिका में हों। नैतिकता और निष्पक्षता का छद्म दंभ भरने वाली आज की मीडिया ने कभी यह विचार किया कि आज जिस सफलता के मुकाम पर वह है, उसका श्रेय जनमानस के अपार विश्वास पर है। सच्चाई यह है कि मीडिया ने उस विश्वास को बरकरार रखने के लिए सार्थक प्रयास कभी नहीं किया। पीटर पारकर सिद्धांत के अनुसार, 'महान शक्ति के साथ महान जिम्मेदारी आती है'। क्या इक्कीसवीं सदी की मीडिया ने इस जिम्मेदारी का वहन किया? सच तो यह है, मीडिया ने जिम्मेदारी को शक्ति के समक्ष तुच्छ वस्तु का दर्जा दिया है। प्रो. सुधीश पचौरी लिखते हैं कि वर्तमान काल का मीडिया विमर्श स्वयं प्रयत्क्ष और अप्रयत्क्ष रूप से, उत्तर-औद्योगिक, उत्तर-आधुनिक समय के विमर्श की देन है। फलस्वरूप वे स्वतः ही अपनी निष्पक्षता खो देते हैं (पचौरी, 2009)। मीडिया में घटती नैतिकता का प्रश्न समकालीन परिस्थितियों में नया नहीं, अपितु मीडिया पर तो उचित अंतराल में नैतिकता के विषय में प्रश्नचिह्न लगते रहे हैं, परंतु जो परिस्थितियाँ वर्तमान काल में मीडिया ने जनसमूह के समक्ष रखी हैं, वे निस्संदेह विचारणीय हैं। कुछ प्रश्न स्वतः उठते हैं जैसे, नैतिकता को बरकरार रखने में इतना जटिल क्या है, जबकि उस पर जनसमूह का अटूट विश्वास है? खबरों के प्रसारण एवं प्रकाशन में निष्पक्षता और स्वच्छता का एहसास बनाए रखने में मीडियाकर्मियों की क्या मजबूरी है? इस संदर्भ में दिलीप मंडल लिखते हैं कि स्पष्ट है कि कारोबारी संरचना और स्वामित्व

के ढाँचे से मीडिया का कंटेंट निर्धारित हो रहा है। कॉरपोरेट मीडिया से आम आदमी की पूरी तरह विदाई हो चुकी है। मीडिया की इस प्रवृत्ति के लिए जो सबसे कम जवाबदेह है, वह है पत्रकार। कॉरपोरेट मीडिया में आम आदमी ही नहीं, पत्रकार की भूमिका भी घटी है। कंटेंट के निर्धारण में मार्केटिंग, ब्रांड और विज्ञापन विभागों का दखल बढ़ा है (मंडल, 2014)। यह कोई विज्ञान के समीकरणों जितना भी जटिल नहीं जिसे मीडिया समझ न सके, अपितु यह तो अत्यंत सरल एवं सटीक अवधारणा है, जिसका दम भरते हुए मीडिया आज उस स्थान पर काबिज है, जहाँ वह अपने समक्ष स्वयं लोकतंत्र को भी तुच्छ समझता है। भारतीय लोकतंत्र, जिसने मीडिया को अपार शक्तियों का अधिपति निर्विरोध घोषित किया है, आज वह मीडिया लोकतंत्र के विश्वास को हास्यास्पद बनाए हुए है। शिक्षाविद एवं लेखक रवि सुंदरम भी इस बात से पूर्णतः सरोकार रखते हैं कि मीडिया बढ़ा है, लेकिन उत्पादन, परिसंचरण और उपयोग की सीमाएँ अब धुँधली हो गई हैं (सुंदरम, 2013)।

प्रश्न अगर नैतिकता का ही है, तो वर्तमान मीडिया में इस शब्द को लेश मात्र भी ढूँढ़ पाना संभव नहीं है। इस शोध के माध्यम से यहाँ मीडिया की उपेक्षा करना एकमात्र लक्ष्य नहीं है, परंतु आज का मीडिया, 'अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता' के नाम पर दिग्भ्रमित है। उसे लगता है कि लोकतंत्र के मूलभूत सिद्धांतों का एकमात्र रक्षक वह ही है, जो सरासर निरर्थक है एवं सत्यता से कोसों दूर है। लोकतंत्र का आधार जनता है, किंतु बड़े खेद की बात है कि मीडिया से आम जनता, गाँव, किसान, गरीब, असहाय, दलित-शोषित वर्ग गायब है। महिला तो गरमा-गरम कहानी को बेचने का आधार बस बनकर रह गई है। महिला या तो विज्ञापन अथवा बलात्कार की किसी कहानी, जो न्यूजरूम में बैठकर लिखी गई हो, में ही स्थान पाती है। आजकल मीडिया में जो मुद्दे चर्चा में प्रस्तुत किए जाते हैं, वे प्रायः सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, शैक्षिक, धार्मिक होते हैं, जिसमें मीडिया परस्पर विरोधी वैचारिक दृष्टिकोणों को समाहित करता है। मीडिया का कार्य है, घटनाओं की साक्षी बने न कि उन्हीं में प्रयत्क्ष एवं अप्रयत्क्ष रूप से लिप्त रहे अथवा निर्णायक की भूमिका अदा करे। सुप्रसिद्ध पाश्चात्य चिंतक व लेखक 'ऑस्कर वाईल' ने कहा था कि 'समाचार पत्र (मीडिया) चौथी रियासत है', परंतु वर्तमान में मीडिया तो स्वतः ही अन्य तीन रियासतों को भी निष्क्रिय कर स्वयं ही लोकतंत्र में आधिपत्य स्थापित कर चुका है। इस संबंध में रामबहादुर राय लिखते हैं कि साफ है कि खबरों के धंधे में संसद, सरकार, चुनाव आयोग और न्यायपालिका लाचार दिखते हैं, फिर इसका इलाज कैसे हो (राय, 2010)? वर्तमान कालखंड की अगर कुछ खबरों पर ध्यान दिया जाए तो यह ज्ञात होता है कि मीडिया ने न सिर्फ प्रायः नियमों को खंडित किया है, अपितु खबरों को भी विस्तृत रूप से खंडित कर प्रसारण का माध्यम बनाया है। ऐसे अनेकों उदाहरण हमें मिलते हैं जैसे, मुंबई बम धमाके एवं ताज होटल की कमांडो कार्रवाई या भारत की सरहदों की संवेदनशील रिपोर्टिंग के मामले हों या कोरोना काल में मीडिया की संवेदनहीन रिपोर्टिंग का मामला। इसी कड़ी में खोजी पत्रकारिता के नाम पर न सिर्फ नियमों की, अपितु निजता के नियमों की भी अनदेखी की जा रही है। विनीत कुमार लिखते हैं कि खोजी पत्रकारिता का सबसे कुरूप प्रारूप तब देखने को मिलता है जब नैतिकता की साख को ताक पर रख मीडिया कर्मठता से उन तमाम प्रतिबंधित क्षेत्रों में प्रवेश कर जाता है, जहाँ नैतिक दृष्टि से प्रसारण करना कतई आवश्यक नहीं होता है। फिर चाहे वह बरखा दत्त द्वारा कारगिल युद्ध क्षेत्र का आधुनिक सेटेलाइट उपकरणों के द्वारा सीधा प्रसारण करने की होड़ हो या फिर संसद के दृश्यों का एवं अन्य प्रतिबंधित क्षेत्रों का, जिनमें प्रमुखता से गणतंत्र दिवस एवं स्वतंत्रता दिवस की तैयारियाँ होती हैं। 'अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता' या फिर किसी भी अन्य प्रकार के मौलिक सिद्धांतों का हवाला देकर की गई पत्रकारिता हो, निस्संदेह अस्वीकार्य ही रहेगी। निश्चय ही यह पत्रकारिता तो नहीं हो सकती है, जो राष्ट्र की सुरक्षा के साथ समझौता करे। (कुमार, 2014)।

आज मीडिया का एक वर्ग सिर्फ धर्म ही नहीं, अपितु समाज में सवर्ण एवं दलितों और आदिवासियों के बीच में भी विभाजन की रेखाएँ खींचता है। जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के कुछ शिक्षकों, एन.जी.ओ. के कार्यकर्ताओं और कुछ पत्रकारों द्वारा आदिवासियों में धर्म परिवर्तन और देशद्रोह के मामले न सिर्फ मीडिया की सुर्खियाँ बन चुके हैं, अपितु न्यायालय में इस संबंध में आपराधिक मुकदमे भी चल रहे हैं। मीडिया में बलात्कार जैसे घृणित कार्यों की भी दिल खोल के विवेचना होती है, जिसमें प्रायः सबसे पूर्व पीड़िता की जाति, धर्म का विश्लेषण होता है, फिर आरोपी का विश्लेषण होगा कि किस विशिष्ट वर्ग-समूह, धर्म एवं जाति से उसका संबंध है, जिसे सामान्य रूप से 'मीडिया ट्रायल' कहा जाता है। यहाँ मीडिया घटना के साक्षी या पीड़ित को न्याय दिलाने की अपनी आदर्श भूमिका त्याग कर, एक ओर जज बन बैठता है तो दूसरी ओर अपनी टी.आर.पी. बढ़ाने की सोचता है। इसका उदाहरण सितंबर 2020 में उत्तर प्रदेश के हाथरस में हुई बलात्कार की घटना से देखा जा सकता है। यह घटना न सिर्फ 'मीडिया ट्रायल' का उत्तम उदाहरण है, बल्कि 'एजेंडा सेटिंग का भी एक अच्छा उदाहरण है। आजकल खबरों के विश्लेषण का बहुत प्रचलन हो चला है जहाँ विभिन्न दलों, समुदायों के लोगों को विशेषज्ञ के रूप में बैठाकर खबर का विश्लेषण किया जाता है, जो वास्तविकता में एजेंडा सेटिंग और टी.आर.पी. बढ़ाने का कार्य है। क्या होगा अगर आप उस बलात्कार पीड़िता की जाति, धर्म का विश्लेषण कर भी लेंगे? क्या वह उसे शीघ्रातिशीघ्र न्याय दिलाने में सक्षम होगा? बलात्कार पीड़िता चाहे दलित, मुस्लिम, अथवा हिंदू या किसी भी धर्म की हो उससे क्या प्रतीत होगा? क्या मीडिया समाज में यह भ्रांति फैलाना चाहता है कि कुछ विशेष वर्गों को ही न्याय मिलता है? यह कहना उचित होगा कि यह भी एक विशेष 'एजेंडा' के तहत ही मीडिया की कार्य प्रणाली में शामिल है। वर्तमान में मीडिया सिर्फ कॉरपोरेट जगत् एवं वैचारिक दृष्टिकोणों के अधीन होकर ही खबरों का प्रसारण कर रहा है। आज मीडिया में 'सैटेलाइट राइट्स' से लेकर विज्ञापन के प्रसारण तक कॉरपोरेट के अधीन हैं। इसलिए मीडिया घराने स्वयं ही कॉरपोरेट के हस्तक्षेप का स्वागत करते हैं। मीडिया के इतिहास में नीरा राडिया फोन टेप कांड को पत्रकारों का एक बड़ा समूह भारतीय पत्रकारिता के लिए काला धब्बा मानता है। तत्कालीन संदर्भ में इसे 'लॉबिस्ट' की संज्ञा दी गई थी? इस आधुनिक खरीद-फरोख्त या 'लॉबिंइंग' का कई नामचीन मीडिया विशेषज्ञों ने पुरजोर समर्थन किया था। विनीत कुमार लिखते हैं कि राडिया प्रकरण के बाद बाजार और कॉरपोरेट की आड़ लेकर मीडिया के भ्रष्ट होने को जिस तरह सही साबित करने की कोशिश हुई, वही सब अगर किसी दूसरे क्षेत्र में हुआ होता तो अपराध की श्रेणी में रखा जाता। लेकिन प्रभु चावला, बरखा दत्त और वीर सांघवी के कारनामे की 'कॉरपोरेट मीडिया एथिक्स' के नाम पर जो वकालत की गई, उससे साफ है कि मीडिया की नैतिकता कितनी किताबी बात हो चुकी है (कुमार, 2014)।

कॉरपोरेट जगत का सकारात्मक एवं नकारात्मक हस्तक्षेप तो वर्तमान सदी में मीडिया के लिए प्रासंगिक बन गया है। विनीत कुमार लिखते हैं कि इंडिया टीवी के मैनेजिंग डायरेक्टर रजत शर्मा तहलका में प्रकाशित अपने साक्षात्कार में कहते हैं, 'कॉरपोरेट जगत् और कॉरपोरेट प्रारूप देने में उन्हें कोई बुराई लगती भी नहीं', अपनी इसी बात की पुष्टि के लिए वे कहते हैं कि 'जब चैनल ही खत्म हो जाएगा तो आदर्श पत्रकारिता बचाकर क्या कर लोगे?' अपने इस कृत्य के समर्थन में जो तर्क वे प्रदान करते हैं, उससे यह ज्ञात होता है कि मीडिया में कुछ हद तक, विशेष कर मीडिया के निजीकरण के पश्चात् यह कॉरपोरेट (व्यावसायिक) हस्तक्षेप भी महत्त्वपूर्ण है (कुमार, 2014)। आज मीडिया अनैतिकता की ओर निरंतर अग्रसर है, जिसके कई आयामों में प्रमुखतः विज्ञापन है। टेलीविजन रेटिंग्स पॉइंट अर्थात् 'टी.आर.पी.' की अंधी दौड़ में सभी प्रमुख मीडिया चैनल आज व्यस्त हैं। विनीत कुमार आगे लिखते हैं कि यह टी.आर.पी का खेल इतना रोमांचक है कि परस्पर प्रतिस्पर्धा और सर्वोच्च बनने की होड़ में आज मीडिया ने अनैतिकता की सभी सीमाएँ पार कर दीं। फलस्वरूप, मीडिया चैनलों में प्रसारित खबरें, फिर चाहे वह 60 सेकंड्स में 60 खबरों का प्रचलन हो, 5 मिनट में 200 खबरें, भी आज प्रतिस्पर्धा की दौड़ में शुमार हैं। बुद्धिजीवियों के विचारों में इसे ही 'नैतिकता की हत्या' की उपमा दी गई है, परंतु कुछ मीडियाकर्मी ऐसे भी हैं जो इसे वक्त के अनुसार चलने की अग्रिम जमानत दे आगे निकल जाते हैं (कुमार, 2014)। उपर्युक्त विश्लेषण से यही प्रतीत होता है कि वर्तमान में मीडिया के लिए निष्पक्षता एवं नैतिकता को बरकरार रखना दिन-ब-दिन जटिल होता जा रहा है। आज भारत अपनी स्वाधीनता के सात दशक पूर्ण कर चुका है, परंतु इस बात पर किसी ने विचार नहीं किया कि मीडिया भी लोकतंत्र का ही अभिन्न अंग है और इसका भी 'सामाजिक लेखा-जोखा' (सोशल ऑडिटिंग) एवं मूल्यांकन करना अति आवश्यक है कि 'चौथा स्तंभ' की उपमा लिए मीडिया ने अपनी भूमिका (निष्पक्षता एवं नैतिकता) किस प्रकार से निभाई है?

नैतिकता का अंतर्द्वंद्व

प्रेस काउंसिल ऑफ इंडिया और मीडिया के महत्त्व को उजागर करते हुए पूर्व राष्ट्रपति श्री प्रणव मुखर्जी ने प्रेस दिवस 2015 के अभिभाषण में कहा था कि प्रेस परिषद को प्रेस की स्वतंत्रता की रक्षा करने तथा यह सुनिश्चित करने की दोहरी जिम्मेदारी सौंपी गई है कि प्रेस अपनी स्वतंत्रता का प्रयोग पत्रकारिता की नैतिकता और हमारे देश के विधिक ढाँचे के दायरे में करे। मीडिया को जनहित के प्रहरी के तौर पर कार्य करना चाहिए तथा उपेक्षित लोगों की आवाज उठानी चाहिए। सार्वजनिक जीवन को स्वच्छ बनाने में मीडिया की एक अहम भूमिका है। इसके लिए मीडिया का आचरण ईमानदार होना चाहिए। स्वतंत्रता और निष्ठा एक ही सिक्के के दो पहलू हैं और मीडिया सहित यह बात हममें से प्रत्येक पर लागू होती है। सनसनी को वास्तविक, सटीक और संतुलित रिपोर्टिंग का विकल्प नहीं बनाना चाहिए। विचार स्वतंत्र हैं, परंतु तथ्य सही होने चाहिए। निर्णय देने, विशेषकर उन मामलों में, जिनमें यथोचित कानूनी प्रक्रिया पूरी होनी बाकी है, में सावधानी बरतनी चाहिए। हमें यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि जीवनवृत्ति और प्रतिष्ठा बनने में वर्षों लगते हैं, परंतु इन्हें खराब होने में कुछ क्षण लगते हैं। यह कहा जाता है कि आरोप सुर्खी बनते हैं, खंडन छोटे अक्षरों में छपता है और विरोधाभास सस्ते प्रचार के बीच छिप जाते हैं। मीडिया को जानना चाहिए कि यह अपने पाठकों और दर्शकों और उनके माध्यम से समूचे देश के प्रति जवाबदेह है। (श्री प्रणव मुखर्जी, पूर्व राष्ट्रपति, प्रेस दिवस, 2015)। श्री मुखर्जी का यह सकारात्मक वक्तव्य इस शोध का सार है। उनके द्वारा कही गई बातें वर्तमान मीडिया की सच्चाई है, जिन्हें पूर्व राष्ट्रपति ने आदर्श वाक्य के रूप में व्यक्त किया। मीडिया के अंदर नैतिकता और निष्पक्षता को लेकर अंर्तद्वंद्व क्यों है? मीडिया में स्वच्छता को बरकरार रखना आज इतना जटिल क्यों हो रहा है? क्या वास्तव में मीडिया इस अपयश के विरुद्ध कुछ सकारात्मक कदम उठाने का दम रखता है? वास्तव में मीडिया में ही कुछ ऐसे तत्त्व हैं, जो इसे अनैतिक बनाए रखने को आमादा हैं।

वर्ष 2011 में आउटलुक (अँग्रेजी संस्करण) ने मीडिया पर केंद्रित जन समूह के मध्य एक सर्वेक्षण का आयोजन किया था, जिसका शीर्षक था—'क्यों सभी मीडिया से घृणा करते हैं?' (अनुवादित)। इस विषय पर आउटलुक ने पूर्व न्यायाधीश जस्टिस काटजू के मीडिया विरोधी तर्कों को (कु) तर्कों से जवाब देना बेहतर समझा। इस सर्वेक्षण में जनता से यह नहीं पूछा गया कि मीडिया आज कितना सफल है और कितना नैतिक, बल्कि सवालों की अंकतालिकाओं में अग्रिम श्रेणियों में वे सवाल थे, जिनका उद्देश्य मात्र मीडिया को श्रेय दे देना था। सर्वेक्षण में मीडिया को एक पीड़ित के रूप में प्रदर्शित किया गया, जो अन्य तीन स्तंभों द्वारा प्रताड़ना झेल रहा हो। लोकतंत्र के महापर्व, आम चुनाव में पत्रकारों व मीडिया के संबंध में मुकेश कुमार लिखते हैं कि यह बात भी विचारणीय है कि चुनाव का ऐलान होने के बाद तो वे केंद्रीय भूमिका में ही आ जाते हैं। वे न केवल खबरों की रिपोर्टिंग करते हैं, बल्कि खबरों के निर्माता भी बन जाते हैं और इस प्रक्रिया में चुनावी राजनीति को भी आकर देने लगते हैं। यही वजह है कि नेता और राजनीतिक दल इस शक्तिशाली माध्यम को बहुत गंभीरता से लेने लगे हैं (कुमार, 2014)। नेताओं और राजनीतिक दलों के प्रति दबी-छिपी वफादारियों की इसमें अहम भूमिका है। सर्वेक्षण के नतीजे या तो पूर्व निर्धारित होते हैं या फिर चैनल की जरूरत के हिसाब से उन्हें जोड़ा-घटाया जाता है। चुनाव के दूसरे कवरेज में भी यही संपादकीय विवेक काम करता है... रैलियों के लाइव कवरेज तक की कीमत वसूली जाती है। भुगतान के आधार पर नेताओं के इंटरव्यू आदि तो बहुत मामूली बातें बन गई हैं। जस्टिस काटजू के मीडिया विरोधी बयानों का जिस तरह पुरजोर विरोध दर्ज हुआ, उससे स्थिति साफ हो चली है कि कुछ तत्त्व आज भी सक्रिय रूप से राजनैतिक दलों के कार्यकर्ता के रूप में अप्रयत्क्ष रूप से मीडिया में कार्यरत हैं (कुमार, 2014)। मीडिया इतिहास में राडिया प्रकरण और उसके बाद जस्टिस काटजू के वक्तव्य ने मीडिया में 'स्व-नियंत्रण' अर्थात् 'सेल्फ रेगुलेशन' की बात पर पुनः जोर दिया। यही मीडिया और नैतिकता के अंर्तद्वंद्व को उजागर करता है। वह लोकतंत्र के चौथे स्तंभ होने का दावा करता तो है, किंतु संविधान के किसी कानून के दायरे में आना नहीं चाहता। इसलिए अपने अंर्तद्वंद्व को छिपाने और कानूनी दायरे से बचने के लिए मीडिया के कुछ मठाधीशों और एडिटर्स गिल्ड ऑफ इंडिया ने स्व-नियंत्रण की बात को बार-बार दोहराया है। वर्तमान मीडिया में वैचारिक दृष्टि, कॉरपोरेट हस्तक्षेप, टी.आर.पी. की होड़, स्व-नियंत्रण की हिचक और सोशल मीडिया के प्रभाव ने मीडिया के वास्तविक चरित्र को उजागर कर दिया है।

निष्कर्ष

भारत में मीडिया की उत्पत्ति का आधार स्वाधीनता संग्राम के

मूल्य और नैतिकता है। पत्रकारिता का मूल उद्देश्य राष्ट्र और समाज की सेवा होनी चाहिए, क्योंकि उसके पास असीमित शक्तियाँ हैं, इसलिए उसे लोकतंत्र का चौथा स्तंभ कहते हैं। बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में भारत में हुई सूचना क्रांति के बाद मीडिया का विकास देखने को मिलता है, जो किसी भी देश में लोकतंत्र को मजबूत करने के साथ ही उसके विकास को दर्शाता है। मीडिया आम जनता की जुबान होता है, क्योंकि यह उन्हें सूचना देने, उनकी राय जानने और स्वस्थ बहस के शक्तिशाली उपकरण के रूप में अपनी भूमिका निभाता है। 1975 के आपातकाल को छोड़कर, किसी भी सरकार, राजनेता या आम जनता ने मीडिया के मुक्त संप्रेषण और प्रेस की स्वतंत्रता का हमेशा समर्थन किया। इन पर किसी प्रकार के सरकारी प्रतिबंधों या नियंत्रण की बात को हमेशा नकारा तथा इसके लिए संघर्ष किया। पत्रकारिता के उद्देश्यों में सामाजिक उत्तरदायित्व प्रमुख है। साथ ही निष्ठा और लगन के साथ समाज की सेवा करना उसका कर्तव्य। समाचार रिपोर्टों में तथ्यों की संवेदनशीलता, विकृति एवं हेरफेर से बचना और लोगों को जागरूक करना ही मीडिया का कार्य है। मीडिया संस्थानों को खुद के लाभ के लिए पत्रकारिता के नैतिक मूल्यों के साथ समझौता नहीं करना चाहिए। इक्कीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक में मीडिया का विकृत रूप देखने को मिलता है, जिसमें वैचारिक दृष्टि, कॉरपोरेट घराने का प्रभाव, पाश्चात्य प्रभाव और राजनीतिक दलों से साँठ-गाँठ के मामले बहुतायत में मिलते हैं। ऐसे मामलों की संख्या दिन-पर-दिन बढ़ती जा रही है और यही मीडिया के नैतिक पतन का कारण है। मीडिया के पतन, स्वार्थ और समझौतावादी प्रवृत्ति के कारण समाज और सरकार के अंदर उसे नियंत्रित करने की आवाज उठने लगी है। मीडिया के लिए यह आवश्यक हो गया है कि वह स्वतः ही नैतिक मानदंडों का पालन कर उच्च आदर्श स्थापित करे, जिससे वह न वह सिर्फ अपनी गिरती साख को बचा पाएगा, बल्कि सही मायनों में लोकतंत्र के चौथे स्तंभ होने का गौरव स्थापित करेगा।

संदर्भ

आउटलुक (अँग्रेजी संस्करण). 25 नवंबर 2011. Only 31% Back Katju's Views on News Media: Survey (outlookindia.com) से पुनःप्राप्त.

कुमार, वी. (2014). *मंडी में मीडिया*. दिल्ली : वाणी प्रकाशन.

कुमार, एम. (2014). *कसौटी पर मीडिया*. दिल्ली : राजकमल प्रकाशन.

धर, पी. (2014). *मीडिया और हमारा समय*. दिल्ली : भारतीय ज्ञानपीठ.

पचौरी, एस. (2009). *उत्तर आधुनिक मीडिया विमर्श*. दिल्ली : वाणी प्रकाशन.

मंडल, जी. (2014). *चौथा खंभा प्राइवेट लिमिटेड*. दिल्ली: वाणी प्रकाशन.

मीणा, आर. एल. (2012). *मीडिया विमर्श : आधुनिक संदर्भ*. दिल्ली : कल्पना प्रकाशन.

मुखर्जी, पी. (16 नवम्बर 2015). *राष्ट्रीय प्रेस दिवस समारोह के उपलक्ष्य में संबोधन*. श्री प्रणब मुखर्जी: भारत के पूर्व राष्ट्रपति (pranabmukherjee.nic.in). से पुनःप्राप्त

राय, आर. बी. (सं.). (2010). *काली खबरों की कहानी...रिपोर्ट जो दबा दी गई*. (प्रथम संस्करण ed.). गाजियाबाद : रेमाधव पब्लिकेशन प्रा. लि.

सईद, एस. (2016). *स्क्रीनिंग द पब्लिक स्फीयर : मीडिया एंड डेमोक्रेसी इन इंडिया*. दिल्ली : रूटलेज इंडिया प्रकाशन.

सुंदरम, आर. (2013). *नो लिमिट्स : मीडिया स्टडीज फ्रॉम इंडिया*. दिल्ली : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.

संचार माध्यम | खंड 34(1) : 64-69, जनवरी-जून 2022
आईएसएसएन: 2321-2608

समाधानमूलक पत्रकारिता : हिमाचल प्रदेश के संदर्भ में एक अध्ययन

मुनीश[1]

सारांश

भारतीय पत्रकारिता को अनेक विद्वानों और चिंतकों ने समय-समय पर दिशा प्रदान की है। ऐसे ही विद्वानों और चिंतकों में शामिल हैं एकात्म मानवदर्शन के प्रणेता, भारतीय जनसंघ के पूर्व अध्यक्ष और स्वतंत्र भारत की राजनीति में विपक्ष को स्थापित करने वाले मौलिक चिंतक, विचारक एवं लेखक दीनदयाल उपाध्याय। हालाँकि उन्होंने स्वयं किसी समाचार पत्र अथवा पत्रिका में संवाददाता अथवा संपादक के रूप में कभी नौकरी नहीं की, परंतु वे भारतीय पत्रकारिता को रचनात्मक दिशा प्रदान करने वाले एक मनीषी के रूप में विख्यात हैं। वे एक दर्जन से अधिक पुस्तकों के लेखक थे और 'राष्ट्रधर्म' मासिक, 'पाँचजन्य' साप्ताहिक और 'स्वदेश' दैनिक को आरंभ कर उन्हें स्थापित करने में उनकी भूमिका सर्वज्ञात है। अपने सार्वजनिक जीवन में उन्होंने अनेक संपादकों का मार्गदर्शन किया और उनके लेखन और चिंतन को नई दृष्टि प्रदान की। उनकी इसी भूमिका के कारण उन्हें 'संपादकों का संपादक' कहा जाता है। दीनदयाल उपाध्याय ने पत्रकारिता में मौजूद नकारात्मक दृष्टि और भारतीयता के कमजोर पक्ष पर प्रश्न खड़े किए। वे कहते थे कि भारत की पत्रकारिता में भारत की बात होनी चाहिए और पत्रकारिता समाज को रचनात्मक दिशा प्रदान करने के एक प्रभावी माध्यम के रूप में काम करे। प्रस्तुत शोध पत्र के माध्यम से यह जानने का प्रयास किया गया है कि दीनदयाल उपाध्याय भारतीय पत्रकारिता में जिस रचनात्मक भाव की अपेक्षा करते थे वह आज कितना मौजूद है। इस उद्देश्य से हिमाचल प्रदेश के धर्मशाला से प्रकाशित चार प्रमुख समाचार पत्रों—पंजाब केसरी, अमर उजाला, दैनिक जागरण और दिव्य हिमाचल—के संस्करणों में समाज के रचनात्मक पक्ष को उजागर करने वाले समाचारों की पड़ताल की गई है। अध्ययन से पता चला है कि इन चारों समाचार पत्रों में समाज के रचनात्मक पक्ष को उजागर करने वाले समाचार प्रकाशित होते हैं, परंतु ऐसे सर्वाधिक समाचार 'अमर उजाला' और 'दैनिक जागरण' में प्रकाशित होते हैं। समाज पर इन समाचारों का कैसा असर हो रहा है इस पर एक अलग अध्ययन की आवश्यकता है। हालाँकि इन समाचार पत्रों के संपादकों के पास आने वाले पाठकों के पत्रों को यदि आधार मानें तो ऐसे समाचारों को पाठक सर्वाधिक पसंद करते हैं और वे इस प्रकार की सामग्री नियमित पढ़ना चाहते हैं।

संकेत शब्द : रचनात्मक पत्रकारिता, नकारात्मक पत्रकारिता, पंजाब केसरी, अमर उजाला, दैनिक जागरण, दिव्य हिमाचल

प्रस्तावना

पत्रकारिता के बदलते परिवेश में भारतीय मीडिया ने भी अपनी कार्यप्रणाली बदली है, परंतु बदलाव की इस प्रक्रिया में लगता है भारतीय मीडिया भूल गया है कि मीडिया का काम सिर्फ नकारात्मक जानकारी ही लोगों तक पहुँचाना नहीं है, देश-दुनिया में जो कुछ अच्छा हो रहा है उसे भी पाठकों तक पहुँचाना मीडिया की ही जिम्मदारी है। यहाँ विस्तार से इस बात की व्याख्या करने की आवश्यकता नहीं है कि नकारात्मक खबरों से लोगों में घृणा और नफरत का भाव पैदा होता है। 'बीबीसी' और 'न्यूयॉर्क टाइम्स' (कस्रिल, 2016 और हचिंग्स एवं ग्रेंजर, 2019) जैसे वैश्विक समाचार पत्रों द्वारा वर्ष 2016 और 2019 में अपने ऑनलाइन पाठकों पर किए गए सर्वेक्षण में इसका विस्तार से जिक्र किया गया है। वर्ष 2019 में जोडी जैक्सन की पुस्तक 'यू आर व्हाट यू रीड : व्हाई चेंजिंग योर मीडिया डाइट कैन चेंज द वर्ल्ड' (जैक्सन, 2019) में भी इस पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। इन वैश्विक अध्ययनों का निष्कर्ष है कि रचनात्मक समाचार पाठकों को कोई-न-कोई रचनात्मक कार्य करने के लिए प्रेरित करते हैं और पाठक ऐसे समाचारों को अधिक पसंद करते हैं। हालाँकि भारत में ऐसे किसी बड़े वैज्ञानिक अध्ययन के संबंध में जानकारी उपलब्ध नहीं है, परंतु भारत में अनेक विद्वान, चिंतक, लेखक, अध्येता और स्वतंत्रता सेनानी लगातार इस बात का आग्रह करते रहे हैं कि समाज को आगे बढ़ाना है या देश को विकास की ओर अग्रसर करना है तो समाज में रचनात्मक दृष्टि का विकास आवश्यक है। यह रचनात्मक दृष्टिकोण पैदा करने का काम मीडिया बेहतर ढंग से कर सकता है। नकारात्मक दृष्टि से कोई समाज तरक्की नहीं कर सकता। जन सामान्य की दृष्टि से बात करें तो हर वह सूचना, जो लोगों में सकारात्मक दृष्टिकोण पैदा करे और उन्हें रचनात्मक कार्य हेतु प्रेरित करे, सकारात्मक समाचार है। ऐसी खबरों से पाठकों को संतुष्टि तो मिलती ही है, उन्हें समाज में कुछ रचनात्मक काम करने की प्रेरणा भी मिलती है।

रचनात्मक दृष्टिकोण की बात हमारे सभी मनीषियों ने की है। महात्मा गांधी, बाल गंगाधर तिलक, लाला लाजपत राय, महर्षि अरविंद, मदन मोहन मालवीय, बाबासाहब भीमराव अंबेडकर और यहाँ तक की क्रांतिवीर भगत सिंह जैसे स्वतंत्रता सेनानियों ने भी पत्रकारिता को स्वातंत्र्य संघर्ष हेतु जनजागरण और जनांदोलन का माध्यम बनाया। ये सभी महापुरुष केवल नेता नहीं, बल्कि कुशल संपादक एवं पत्रकार भी थे। गांधी, तिलक, अरविंद, अंबेडकर, मालवीय, नेताजी आदि ने समाचार पत्रों के माध्यम से राष्ट्रीय भाव को ही प्रसारित-प्रचारित नहीं किया, बल्कि सामाजिक-सांस्कृतिक प्रश्नों पर भी देशवासियों का मार्गदर्शन किया। स्वतंत्रता के पश्चात् स्थितियाँ बदलीं और पत्रकारिता से धीरे-धीरे मिशन का भाव कम होने लगा। हालाँकि यह भाव कमजोर न पड़े, इसके लिए

[1]एम.फिल शोधार्थी, दीनदयाल उपाध्याय अध्ययन केंद्र, हिमाचल प्रदेश केंद्रीय विश्वविद्यालय, धर्मशाला, हिमाचल प्रदेश. ईमेल: manugariya007@gmail.com

दीनदयाल उपाध्याय जैसे अनेक मनीषियों ने पत्रकारों और पत्रकारिता को समय-समय पर सावधान किया और प्रयास किया कि स्वतंत्रता के बाद भी मीडिया समाज जागरण का काम उसी मिशनरी भाव से करता रहे, जिस भाव से वह स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान कर रहा था, परंतु लाभ कमाने की वैश्विक आंधी में भारतीय मीडिया के एक बड़े वर्ग में नकारात्मक भाव हावी होता गया। दीनदयाल उपाध्याय 'पाँचजन्य' और 'ऑर्गनाइजर' में नियमित स्तंभ लिखा करते थे। अपने स्तंभों में वे अक्सर इस ओर मीडिया का ध्यान आकर्षित करते थे। दीनदयाल जी एक तात्कालिक विषय को भी स्थायी सैद्धांतिक अधिष्ठान देकर लिखा करते थे। केवल तात्कालिक बात कहकर उसे छोड़ देना उनका स्वभाव नहीं था। वे मूलगामी विचारों के अभ्यासक थे। यह ठीक है कि विरोधी दल के नेता के नाते सत्ताधारी दल के अनेक कार्यों और नीतियों पर उन्होंने टिप्पणी की है। कभी-कभार कुछ व्यक्तियों के संबंध में भी टिप्पणी की, परंतु टीका-टिप्पणी करते समय भी उनके हृदय में किसी दल और व्यक्ति के प्रति अनादर की भावना नहीं रहती थी। उन्होंने जो कुछ लिखा वह आत्मीयता से लिखा है।

दीनदयाल उपाध्याय भले ही स्वयं किसी समाचार पत्र के संपादक न रहें हों, लेकिन पत्रकारिता को लेकर उनके दृष्टिकोण और संपादकीय कुशलता की वजह से उन्हें 'संपादकों का संपादक' की संज्ञा दी जाती है। वे शुरू से ही रचनात्मक व सकारात्मक पत्रकारिता के पक्षधर थे। वर्ष 1963 में 'हिंदुस्थान समाचार' बहुभाषी संवाद समिति की 15वीं वर्षगाँठ के अवसर पर प्रकाशित एक स्मारिका में दीनदयाल उपाध्याय ने एक संदेश भेजा था, जिसमें उन्होंने पत्रकारिता के बारे में अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट किया। अपने संदेश में उन्होंने समाचार के प्रारूप, विशेषता एवं रचनात्मक भाव को स्पष्ट किया है। वे लिखते हैं—"जनरुचि और जन जिज्ञासा का विचार करते हुए भी संवाददाता केवल दृष्टा और उदासीन भाव से काम नहीं करता। जनरुचि की तुष्टि तथा उत्पन्न जिज्ञासा की संतुष्टि ही नहीं तो जनरुचि का निर्माण तथा उसे दिशा देने का महत्त्वपूर्ण कार्य भी संवाददाता को करना होता है। यह उसके कार्य का भावात्मक एवं रचनात्मक पहलू है। यदि उसे इस दिशा का भान नहीं रहा तो समाचार संकलन तथा वितरण में उसे सदैव कठिनाई बनी रहेगी तथा उसमें वह कोई विशेष रुचि निर्माण नहीं कर सकेगा। चुगलखोर एवं संवाददाता में अंतर है। चुगली जनरुचि का विषय हो सकती है, किंतु वह सही मायने में संवाद नहीं। संवाद को तो सत्य, शिव, सुंदर के तीनों आदर्शों को चरितार्थ करना चाहिए। केवल सत्य और सुंदर से काम नहीं चलेगा" (शर्मा, 2011)।

दीनदयाल जी अपने इसी संदेश में आगे कहते हैं कि प्रत्येक समाचार में अपनी निजी विशेषता रहनी चाहिए। भारत के समाचार जगत् में इस दृष्टि की बहुत कमी है। यहाँ अधिकांश समाचार पत्र एक ही ढाँचे के हैं। संपादकीय तथा एक-दो समाचारों को छोड़कर सब पत्र एक से हैं। फलत: सार्वजनिक जीवन में महत्त्वपूर्ण काम करने वाले लोग भी यह आवश्यक नहीं समझते कि वे एकाधिक समाचार पत्र पढ़ें। किसी भी एक समाचार पत्र से उसका काम चल जाता है। भारत के समाचार पत्रों का अपना कोई निजी व्यक्तित्व नहीं विकसित हुआ है। इसका कारण है समाचार पत्रों का एक ही सूचना स्रोत। सरकारी सूचना विभाग ही इन पत्रों के समाचारों के लिए आधार हैं। पत्रों में निजी संवाददाता नहीं के बराबर हैं। बहुधा तो एक ही संवाददाता कई-कई पत्रों को समाचार भेजता है। जहाँ अलग-अलग संवाददाता हैं भी, वहाँ भी सभी संवाददाता प्राय: एक ही संवाद भेजते हैं। कारण किसी घटना के संवाद मूल्य के संबंध में अधिकांश संवाददाताओं की घिसी-पिटी धारणाएँ हैं। यदि किसी संवाददाता ने नए ढंग का समाचार भेजा भी तो समाचार संपादक अपनी लीक छोड़ने को तैयार नहीं। फलत: स्वराज्य के बाद भी हमने पत्रकारिता के क्षेत्र में कोई नया विकास नहीं किया है (शर्मा, 2011)। 'हिंदुस्थान समाचार' की स्मारिका हेतु लिखा गया यह संदेश संक्षिप्त अवश्य है, परंतु है अत्यंत दिशाबोधक और सारगर्भित।

साहित्य समीक्षा

समाज के रचनात्मक पक्ष को उजागर करने वाले समाचारों के संबंध में 'बीबीसी' और 'न्यूयॉर्क टाइम्स' जैसे किसी बड़े अध्ययन के संबंध में जानकारी भारत में उपलब्ध नहीं है। इस संबंध में एक पुस्तक और एक शोध पत्र के संबध में जानकारी अवश्य मिलती है। ये दोनों (पुस्तक और शोध पत्र) भारतीय जन संचार संस्थान में इस समय अँग्रेजी पत्रकारिता विभाग में प्रोफेसर डॉ. प्रमोद कुमार द्वारा लिखे गए हैं। इस टॉपिक पर हाल ही में सेज टेक्स्ट्स द्वारा भी एक पुस्तक 'बीट रिपोर्टिंग एंड एडिटिंग : जर्नलिज्म इन द डिजिटल ऐज' (दहिया एवं साहू, 2021) प्रकाशित हुई है, जिसमें समाधानपरक पत्रकारिता पर एक पूरा अध्याय है। संयोग से यह अध्याय भी प्रो. प्रमोद कुमार द्वारा ही लिखा गया है। प्रो. प्रमोद कुमार द्वारा लिखित शोध पत्र 'रोल ऑफ मीडिया इन इग्नाइटिंग माइंडस फॉर पॉजिटिव चेंज' शीर्षक से 'इंडियन जर्नल ऑफ एप्लाइड रिसर्च' शोष पत्रिका के मार्च 2019 (कुमार, 2019) के अंक में प्रकाशित हुआ था। इस शोध पत्र में प्रो. कुमार ने नई दिल्ली से प्रकाशित चार राष्ट्रीय दैनिक समाचार पत्रों (दैनिक भास्कर, दैनिक जागरण, अमर उजाला और द इंडियन एक्सप्रेस) में प्रकाशित रचनात्मक समाचारों और लेखों का अध्ययन एवं विश्लेषण किया है। समाज के रचनात्मक पक्ष को उजागर करने की दृष्टि से भारतीय मीडिया के संबंध में यह भारत में हुआ पहला अकादमिक शोध है। 'इंडियन जर्नल ऑफ एप्लाइड रिसर्च' की वेबसाइट से इस शोध पत्र को अभी तक कई सौ शोधार्थियों द्वारा डाउनलोड किया जा चुका है।

भारत सरकार के संस्कृति मंत्रालय के अधीन गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति, राजघाट, नई दिल्ली, द्वारा प्रकाशित डॉ. प्रमोद कुमार की बहुचर्चित पुस्तक 'आधुनिक भारत के गुमनाम समाज-शिल्पी' भी समाज के रचनात्मक पक्ष को उजागर करने का एक ठोस प्रयास है। इस पुस्तक में कुल 40 ऐसे व्यक्तियों और संस्थाओं का जिक्र है, जिनके काम से जन सामान्य के जीवन में व्यापक रचनात्मक बदलाव आया है (कुमार, 2019)। यह पुस्तक दरअसल प्रो. कुमार द्वारा अँग्रेजी साप्ताहिक 'ऑर्गनाइजर' में प्रकाशित उनके नियमित स्तंभ 'द ट्रेंडसेटर' पर आधारित है। वह स्तंभ समाज के रचनात्मक पक्ष को उजागर करने के उद्देश्य से वर्ष 2013 में प्रकाशित होना प्रारंभ हुआ था और वर्ष 2019 तक प्रकाशित हुआ। भारत में संगठित रूप से रचनात्मक अथवा समाधानपरक पत्रकारिता की यदि बात की जाए तो 'ऑर्गनाइजर' में प्रकाशित यह स्तंभ शुरुआती संगठित प्रयासों में से एक है, जिसे पाठकों द्वारा बेहद पसंद किया गया। सेज टेक्स्ट्स

द्वारा प्रकाशित 549 पृष्ठों की पुस्तक 'बीट रिपोर्टिंग एंड एडिटिंग: जर्नलिज्म इन द डिजिटल ऐज' दिसंबर 2021 में प्रकाशित हुई। इस पुस्तक में कुल 48 अध्याय हैं, जिनमें से एक अध्याय (अध्याय 47, पृष्ठ संख्या 524 से 531) 'सोलुशन बेस्ड जर्नलिज्म' आईआईएमसी में प्रोफेसर डॉ. प्रमोद कुमार द्वारा लिखा गया है। यह अध्याय रचनात्मक पत्रकारिता की संपूर्ण अवधारणा और इससे जुड़े व्यावहारिक पक्ष को प्रभावी ढंग से प्रस्तुत करता है। यहाँ इस बात का उल्लेख करना प्रासंगिक होगा कि प्रो. प्रमोद कुमार गत एक दशक से भी अधिक समय से भारत में समाधानपरक पत्रकारिता को पुष्ट करने के लिए समर्पित भाव से काम कर रहे हैं। आजकल वे प्रमुख दैनिक समाचार पत्रों और पत्रिकाओं के संपादकों से मिलकर समाधानपरक पत्रकारिता को न्यूजरूम की दैनंदिन बीट का हिस्सा बनवाने हेतु प्रयासरत हैं। नई दिल्ली से प्रकाशित अनेक समाचार पत्रों के संपादकों ने इस दिशा में प्रयास प्रारंभ भी किए हैं। समाज के रचनात्मक पक्ष को उजागर करने के लिए प्रो. कुमार के अनेक विद्यार्थियों ने भी कई वेब पोर्टल प्रारंभ किए हैं।

शोध उद्देश्य एवं शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य हिमाचल प्रदेश के धर्मशाला से प्रकाशित चार प्रमुख दैनिक समाचार पत्रों (दैनिक जागरण, अमर उजाला, दिव्य हिमाचल एवं पंजाब केसरी) के संस्करणों में समाज के रचनात्मक पक्ष को उजागर करने वाले समाचारों की कवरेज का अध्ययन है। चूँकि शोधार्थी हिमाचल प्रदेश केंद्रीय विश्वविद्यालय के दीनदयाल उपाध्याय अध्ययन केंद्र में एम.फिल का शोधार्थी है, इसलिए यह अध्ययन दीनदयाल उपाध्याय के रचनात्मक पत्रकारिता के संबंध में प्रस्तुत सैद्धांतिक दृष्टिकोण पर केंद्रित है। वैज्ञानिक विधि से किए जाने वाले किसी भी अकादमिक शोध हेतु तथ्यों का संकलन एक महत्त्वपूर्ण पड़ाव है। प्रस्तुत शोध पत्र प्राथमिक और द्वितीयक दोनों स्रोतों पर आधारित है। विषय से संबंधित पुस्तकें, पत्रिकाएँ, लेख, समाचार पत्र और वेबसाइट पर उपलब्ध सामग्री का अध्ययन किया गया है। साथ ही चयनित समाचार पत्रों (दैनिक जागरण, अमर उजाला, पंजाब केसरी एवं दिव्य हिमाचल) के अक्टूबर 2020 के अंकों का अध्ययन किया गया है। इन अंकों में खासतौर से समाज के रचनात्मक पक्ष को उजागर करने वाले समाचारों का अध्ययन एवं विश्लेषण किया गया है।

हिमाचल प्रदेश में पत्रकारिता

कुल 55,673 वर्ग किलोमीटर में फैला हिमाचल प्रदेश भारत का एक पर्वतीय प्रदेश है। यह उत्तर में जम्मू-कश्मीर और लद्दाख, पश्चिम तथा दक्षिण-पश्चिम में पंजाब, दक्षिण में हरियाणा एवं उत्तर प्रदेश, दक्षिण-पूर्व में उत्तराखंड तथा पूर्व में तिब्बत से घिरा हुआ है। सन् 1956 में इसे केंद्र शासित प्रदेश बनाया गया, लेकिन 25 जनवरी, 1971 को इसे हिमाचल प्रदेश राज्य अधिनियम-1971 के अंतर्गत भारत का अठारहवाँ राज्य बनाया गया। यहाँ की जनसंख्या 68,64,602 (2011 जनगणना) है। प्रदेश के दुर्गम इलाकों तक संचार माध्यमों का विस्तार है। प्रदेश में रेडियो, टेलीविजन, दूरभाष, डाक, ईमेल, इंटरनेट आदि सुविधाएँ उपलब्ध हैं। 1914 में शिमला में देश का प्रथम स्वचालित दूरभाष केंद्र स्थापित किया गया था। पाँच नवंबर 1983 को लाहौल-स्पीति के हिक्किम क्षेत्र में विश्व का सर्वाधिक ऊँचाई वाला डाकघर खोला गया था। शिमला में प्रदेश का प्रथम आकाशवाणी केंद्र खोला गया। हमीरपुर, धर्मशाला, कुल्लू, कसौली और किन्नौर में आकाशवाणी केंद्र, प्रसारण केंद्र स्थापित किए गए है। तरंग टावर मंडी जिला के जोगिंदर नगर तहसील में स्थापित किया गया था। प्रदेश में कुल 12 जिले हैं (सूचना एवं जनसंपर्क, 2021)। हिमाचल प्रदेश में पत्रकारिता की शुरुआत 1980 के दशक में हुई। उस समय राष्ट्रीय समाचार पत्रों में हिमाचल से जुड़ी खबरों का अधिक से अधिक एक पृष्ठ होता था। उस समय सारे अखबार जालंधर व लुधियाना (पंजाब) से प्रकाशित होते थे। 1997 में हिमाचल की पत्रकारिता में नए युग की शुरुआत हुई, जिसके बाद हिमाचल से ही अखबार प्रकाशित होने लगे। कई संस्थानों ने यहीं अपनी प्रकाशन यूनिट स्थापित की। आज अमर उजाला, दैनिक जागरण, दिव्य हिमाचल व पंजाब केसरी हिमाचल प्रदेश के चार मुख्य दैनिक समाचार पत्र हैं। इन सभी का प्रकाशन केंद्र कांगड़ा है।

अमर उजाला

'अमर उजाला' हिंदी का एक प्रमुख दैनिक है, जिसका प्रकाशन पश्चिमी उत्तर प्रदेश के आगरा से 18 अप्रैल 1948 को डोरीलाल अग्रवाल तथा मुरारीलाल माहेश्वरी ने किया। 1967 में इसका बरेली संस्करण शुरु हुआ। यह पश्चिमी उत्तर प्रदेश के आगरा, बुलंदशहर, अलीगढ़, मथुरा, बरेली आदि जिलों का लोकप्रिय पत्र है। 11 दिसंबर, 1968 से 'अमर उजाला' का मेरठ संस्करण भी शुरू हुआ। इस अख़बार की वेबसाइट (www.amarujala.com)1999 में लॉञ्च की गई। राष्ट्रीय स्तर की बात करें तो 'अमर उजाला' इस समय देश का तीसरा सर्वाधिक पढ़ा जाने वाला समाचार पत्र है। 21 संस्करणों वाले 'अमर उजाला' का दैनिक प्रसार 20,67,256 है। अमर उजाला संस्थान ने 23 नवंबर, 2006 को हिमाचल में अपनी यूनिट शुरू की। धर्मशाला क्षेत्र में इस समाचार पत्र का प्रकाशन केंद्र एवं प्रिंटिंग प्रेस कांगड़ा जिले के उपमंडल नगरोटा बगवाँ के तहत आने वाले औद्योगिक क्षेत्र में स्थित है। वर्तमान में 'अमर उजाला' के हिमाचल प्रदेश के राज्य संपादक राकेश भट्ट हैं।

दैनिक जागरण

'दैनिक जागरण' उत्तर भारत का लोकप्रिय हिंदी दैनिक है। इसका प्रकाशन 1942 में स्वतंत्रता सेनानी श्री पूर्णचंद्र गुप्त द्वारा किया गया। 1942 का वर्ष भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का बहुत महत्त्वपूर्ण वर्ष था, जब भारत में अँग्रेजों की दासता से मुक्त होने के लिये संघर्ष अपने चरम पर था। भारत छोड़ो आंदोलन इस संघर्ष का एक महत्त्वपूर्ण पड़ाव था। ऐसे निर्णायक मोड़ पर 'दैनिक जागरण' प्रारंभ हुआ। इसका प्रथम संस्करण 1942 में झाँसी से शुरू किया गया। बाद में 1947 में इसका मुख्यालय झाँसी से कानपुर बनाया गया। इस समय 'दैनिक जागरण' विश्व के पाँच सबसे अधिक पढ़े जाने वाले समाचार पत्रों में शुमार है। भारत में यह दूसरा सर्वाधिक बिकने वाला दैनिक पत्र है (एबीसी, 2019)। हिंदी के अलावा इसका अँग्रेजी में 'मिड डे', 'आई-नेकस्ट', पंजाबी में 'पंजाबी जागरण' और उर्दू भाषा में भी पत्र है। हिमाचल प्रदेश में 'दैनिक जागरण' के राज्य संपादक नवनीत शर्मा

हैं। राज्य में इसकी यूनिट 23 अक्टूबर, 2006 को स्थापित की गई। इस पत्र का प्रकाशन केंद्र एवं प्रिंटिंग प्रेस कांगड़ा जिले के उपमंडल शाहपुर में बनोई क्षेत्र में है। 40 संस्करणों वाले 'दैनिक जागरण' की दैनिक 33,79,253 प्रतियाँ बिकती हैं।

दिव्य हिमाचल

'दिव्य हिमाचल' हिमाचल प्रदेश का प्रमुख स्थानीय अखबार है। इसकी शुरुआत वर्ष 1997 में हुई। कांगड़ा जिले के तहत पड़ते वाले सराह निवासी भानु धमीजा ने इसकी शुरुआत की। यह हिमाचल प्रदेश का पहला समाचार पत्र है। इसकी एक साप्ताहिक पत्रिका 'हिमाचल दिस वीक' भी थी, जो 2020 में बंद हो गई। इसके अलावा संस्थान की अन्य पत्रिकाएँ भी हैं। इसमें हर शनिवार को 'आस्था पत्रिका', हर रविवार को 'उत्सव' व हर बुधवार को 'कंपीटिशन रिव्यू' पत्रिका आती है। 'दिव्य हिमाचल' का प्रकाशन केंद्र एवं प्रिंटिंग प्रेस जिला कांगड़ा के पुराना मटौर में है। इस समय 'दिव्य हिमाचल' के प्रधान संपादक अनिल सोनी हैं।

पंजाब केसरी

'पंजाब केसरी' उत्तर भारत का प्रमुख हिंदी दैनिक समाचार पत्र है। यह पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, दिल्ली, जम्मू-कश्मीर के विभिन्न नगरों से प्रकाशित होता है। उत्तर हिमाचल प्रदेश में भी इसकी मजबूत पाठक संख्या है। प्रदेश के सभी समाचार पत्रों में 'पंजाब केसरी' शीर्ष पर है। 'पंजाब केसरी' समाचार पत्र का हिमाचल में प्रकाशन केंद्र एवं प्रिंटिंग वर्ष 2004 में शुरू हुई थी। समाचार पत्र की हिमाचल प्रदेश यूनिट का संपादकीय कार्यभार विनय वशिष्ट देख रहे हैं।

चयनित समाचार पत्रों में प्रकाशित रचनात्मक समाचार

चयनित समाचार पत्रों में प्रकाशित सकारात्मक समाचारों का अध्ययन करने के लिए चारों पत्रों (दैनिक जागरण, अमर उजाला, दिव्य हिमाचल और पंजाब केसरी) के अक्टूबर 2020 के अंकों का अध्ययन किया गया। इस पूरे माह में जो सकारात्मक समाचार प्रकाशित हुए उनका विवरण निम्नवत है :

दैनिक जागरण : 'दैनिक जागरण' नियमित रूप से समाज के रचनात्मक पक्ष को उजागर करने वाले समाचार प्रकाशित करता है। यह सिलसिला कई वर्षों से नियमित जारी है। नियमित सामग्री के अलावा इस पत्र ने अक्टूबर 2020 में महिला सशक्तिकरण एवं महिलाओं को प्रेरित करने वाले विशेष समाचार प्रकाशित किए। 17 अक्टूबर, 2020 को 'मनाली की बहनों का कबड्डी में कमाल' शीर्षक से पृष्ठ संख्या दो पर दो फोटो सहित चार कॉलम में समाचार छपा। इसी प्रकार 20 अक्टूबर, 2020 को 'मिक्स मार्शल आर्ट्स में लगाया कामयाबी का पंच' शीर्षक से पृष्ठ दो पर पाँच कॉलम में खबर थी। दिनांक 21 अक्टूबर, 2020 को 'प्रदेश से राष्ट्र स्तर पर एरिका के पंच की गूँज' शीर्षक से पृष्ठ दो पर पाँच कॉलम की खबर थी। 23 अक्टूबर, 2020 को 'तन्नवी की हाकी ने दागे खुशियों के गोल' शीर्षक से पृष्ठ दो पर पाँच कॉलम के खबर थी। इसके अलावा नवरात्र के दौरान 'नमो देव्यै महा देव्यै' कॉलम के तहत विशेष सामग्री प्रकाशित की गई।

दैनिक जागरण में अक्टूबर 2020 में प्रकाशित समाधानमूलक समाचारों का विवरण निम्नवत है :

क्र. सं	दिनांक	शीर्षक	पृष्ठ सं.	स्पेस
1.	2 अक्टूबर, 2020	सेरी नाले ने डराया, पहाड़ जैसे हौंसले से पार पाया	2	पाँच कॉलम स्पेस फोटो सहित
2.	4 अक्टूबर, 2020	हद में सरहद, शीत मरुस्थल को बर्फ से आजादी	2	आधा पृष्ठ दो फोटो सहित
3.	17 अक्टूबर, 2020	दृष्टि बाधित बच्चों की खुशी के लिए रोशन का कारोबार	4	चार कॉलम स्पेस फोटो सहित
4.	17 अक्टूबर, 2020	मनाली की बहनों का कबड्डी में कमाल	2	चार कॉलम स्पेस दो फोटो सहित
5.	19 अक्टूबर, 2020	जुडो में चमक रही ऊना की रूपांशी	2	चार कॉलम स्पेस में फोटो सहित
6.	20 अक्टूबर, 2020	पहाड़ों की सैर के साथ काम का मजा	1	चार कॉलम स्पेस
7.	20 अक्टूबर, 2020	मिक्स मार्शल आर्ट्स में लगाया कामयाबी का पंच	2	पाँच कॉलम स्पेस
8.	20 अक्टूबर, 2020	मंदी के बावजूद साहस नहीं छोड़ा, अब रफ्तार पकड़ रहा व्यवसाय	5	एक तिहाई पृष्ठ
9.	21 अक्टूबर, 2020	प्रदेश से राष्ट्र स्तर पर एरिका के पंच की गूँज	2	पाँच कॉलम स्पेस
10.	21 अक्टूबर, 2020	भारत के लिए हींग उत्पादन की उम्मीद बने लाहुल स्पीति और किन्नौर	5	सात कॉलम स्पेस
11.	23 अक्टूबर, 2020	तन्नवी की हाकी ने दागे खुशियों के गोल	2	पाँच कॉलम स्पेस
12.	23 अक्टूबर, 2020	कानून की बेड़ियाँ नहीं जकड़ पाई इस युवा के सपने	1	चार कॉलम स्पेस
13.	24 अक्टूबर, 2020	ग्राहकों का नहीं छोड़ा साथ, की होम डिलीवरी	6	पाँच कॉलम स्पेस
14.	25 अक्टूबर, 2020	नहीं टूटा भरोसा, स्कूल खुलने पर रफ्तार पकड़ेगा काम	2	पाँच कॉलम स्पेस
15.	26 अक्टूबर, 2020	किसान हुए अब प्राइवेट लिमिटेड कंपनी	1	पाँच कॉलम स्पेस
16.	26 अक्टूबर, 2020	दीवाली से ज्यादा रोशनी करेंगे दीये	3	चार कॉलम स्पेस

तालिका संख्या-1

अमर उजाला : 'अमर उजाला' में अक्टूबर 2020 में प्रकाशित सकारात्मक समाचारों का विवरण निम्नवत है :

क्र. सं	दिनांक	शीर्षक	पृष्ठ सं.	स्पेस
1.	4 अक्टूबर, 2020	अटल टनल की रोशन की छँट गया सदियों का अँधेरा	2	छह कॉलम स्पेस

2.	18 अक्टूबर, 2020	धर्मशाला में बनेगा थ्रीजी एक्वेरियम, पर्यटक होंगे आकर्षित	1	चार कॉलम स्पेस
3.	18 अक्टूबर, 2020	लाहौल घाटी के क्वारिंग गाँव में रोपा देश का पहला हींग का पौधा	7	छह कॉलम स्पेस
4.	19 अक्टूबर, 2020	एचपीयू से अब बीटेक ऑनर्स की डिग्री भी लें सकेंगे विद्यार्थी	9	चार कॉलम
5.	21 अक्टूबर, 2020	10वीं व 12वीं में विद्यार्थियों को ऑनलाइन सांइस पढ़ा रहा कैदी, सालाना 8 लाख पैकेज	1	चार कॉलम
6.	22 अक्टूबर, 2020	कोरोना टेस्ट के लिए कारगर साबित हो रही आरटीरआीसीप-तकनीक	4	सात कॉलम स्पेस

तालिका संख्या-2

'अमर उजाला' में अक्टूबर 2020 के दौरान 'मंजिलें और भी हैं' विशेष स्तम्भ के तहत विशेष सामग्री प्रकाशित की गई, जिसका विवरण निम्नवत है :

क्र. सं	दिनांक	शीर्षक	पृष्ठ सं.	स्पेस
1.	1 अक्टूबर, 2020	मंजिलें और भी हैं : पोषण के लिए अहम बाजार विलुप्त न हो	8	पाँच कॉलम स्पेस
2.	10 अक्टूबर, 2020	मंजिलें और भी हैं : पश्चिमी घाट के जंगलों में आर्किड का संरक्षण	8	पाँच कॉलम स्पेस
3.	14 अक्टूबर, 2020	मंजिलें और भी हैं : बच्ची की देखभाल के लिए छोड़ी बैंकिंग, बन गई शेफ	8	पाँच कॉलम स्पेस
4.	16 अक्टूबर, 2020	मंजिलें और भी हैं : चावल एटीएम की शुरुआत ताकि कोई भूखा न सोए	8	पाँच कॉलम स्पेस
5.	17 अक्टूबर, 2020	मंजिलें और भी हैं : तकनीक को गाँवों तक पहुँचाने की कवायद	8	पाँच कॉलम स्पेस
6.	19 अक्टूबर, 2020	मंजिलें और भी हैं : रेजिन के आभूषणों में सँजोएँ अपनी यादें	10	पाँच कॉलम स्पेस
7.	20 अक्टूबर, 2020	मंजिलें और भी हैं : सिंथेटिक कपड़ों का विकल्प प्राकृतिक फाइबर से बने धागे	8	पाँच कॉलम स्पेस
8.	21 अक्टूबर, 2020	मंजिलें और भी हैं : जनशक्ति के बल पर एक नदी को पुनर्जीवन	8	पाँच कॉलम स्पेस
9.	22 अक्टूबर, 2020	मंजिलें और भी हैं : एचआईवी संक्रमित अनाथ बच्चों के लिए अपना घर	8	पाँच कॉलम स्पेस
10.	24 अक्टूबर, 2020	मंजिलें और भी हैं : पुरखों के पर्यावरण ज्ञान का दस्तावेजीकरण	8	पाँच कॉलम स्पेस
11.	25 अक्टूबर, 2020	मंजिलें और भी हैं : महिलाएँ एकजुट हुईं तो शोषण से मिला छुटकारा	8	पाँच कॉलम स्पेस
12.	26 अक्टूबर, 2020	मंजिलें और भी हैं : ओडिशा के सुदूर गाँव जुड़ रहे हैं ऑनलाइन शिक्षा से	6	पाँच कॉलम स्पेस
13.	28 अक्टूबर, 2020	मंजिलें और भी हैं : पति का सपना पूरा करने को निशुल्क इलाज का मॉडल	8	पाँच कॉलम स्पेस
14.	30 अक्टूबर, 2020	मंजिलें और भी हैं : खुद सँभाली खेती चुकाया लाखों का कर्ज	6	पाँच कॉलम स्पेस

तालिका संख्या-3

दिव्य हिमाचल

अक्टूबर 2020 में दिव्य हिमाचल समाचार पत्र में प्रकाशित हुए सकारात्मक एवं प्रेरणादायक समाचार

क्र. सं	दिनांक	शीर्षक	पृष्ठ सं.	स्पेस
1.	2 अक्टूबर, 2020	मुस्लिम युवती बेड़ियाँ तोड़ कर रही शास्त्री	5	छह कॉलम स्पेस
2.	4 अक्टूबर, 2020	अटल टनल विकास का नया युग	2	आधा पृष्ठ स्पेस
3.	18 अक्टूबर, 2020	हमीरपुर का बेटा न्यूजीलैंड में बना मेंबर ऑफ पार्लियामेंट	2	आठ कॉलम स्पेस
4.	21 अक्टूबर, 2020	राष्ट्रीय पत्र लेखन स्पर्धा में नाहन की डिंपल का डंका	7	तीन कॉलम स्पेस
5.	22 अक्टूबर, 2020	आइजीएमसी भी ढूँढ़ेगा एंटीबॉडी	2	पाँच कॉलम स्पेस

तालिका संख्या-4

पंजाब केसरी

अक्टूबर 2020 में पंजाब केसरी समाचार पत्र में प्रकाशित हुए सकारात्मक एवं प्रेरणादायक समाचार

क्र. सं	दिनांक	शीर्षक	पृष्ठ सं.	स्पेस
1.	23 अक्टूबर, 2020	पीएमजीएसवाई के कार्यान्वयन में देश के शीर्ष 30 जिलों में मंडी प्रथम	1	तीन कॉलम स्पेस
2.	25 अक्टूबर, 2020	इंडियन एंडवेंचर फाउंडेशन ने माउंट फ्रैंडशिप पर लहराया 50 फुट लंबा तिरंगा	2	चार कॉलम स्पेस

तालिका संख्या-5

विश्लेषण एवं निष्कर्ष

भारतीय मीडिया में इस समय 'गुड न्यूज इज नो न्यूज एंड बैड न्यूज इज गुड न्यूज' का चलन है। इस नकारात्मक सोच के बावजूद कुछ मीडिया

घराने आज भी समाज जागरण और समाज के रचनात्मक पक्ष को उजागर करने की अपनी जिम्मेदारी निभा रहे हैं। अध्ययन से स्पष्ट है कि 'अमर उजाला' में अक्टूबर 2020 के दौरान सर्वाधिक सकारात्मक खबरें तथा अन्य सामग्री (कुल 20 खबरें और लेख) प्रकाशित हुई। इसके बाद 'दैनिक जागरण' में इसी अवधि में सर्वाधिक कुल 16 सकारात्मक खबरें प्रकाशित हुईं। वैसे यदि गत कुछ वर्षों पर नजर डालें तो 'दैनिक जागरण' सकारात्मक समाचारों के लिए विशेष रूप से प्रयास करता रहा है। 'दैनिक जागरण' ने समाज के रचनात्मक पक्ष को उजागर करने के लिए अपने लिए सात सरोकार (सुशिक्षित समाज, स्वस्थ समाज, जनसंख्या नियोजन, महिला सशक्तिकरण, गरीबी उन्मूलन, जल संरक्षण और पर्यावरण संरक्षण) निर्धारित कर उन्हें अपनी दैनंदिन कार्यप्रणाली का हिस्सा बनाया है। इन सात सरोकारों में समाज के लगभग हर वर्ग को सम्मिलित किया गया है। इन सरोकारों से खबरों को 'जन सरोकार' अथवा 'जागरण विशेष' स्तंभ के तहत विशेष स्थान दिया गया। सकारात्मक समाचारों के संदर्भ में 'दैनिक जागरण' और 'अमर उजाला' की तुलना में 'दिव्य हिमाचल' और 'पंजाब केसरी' के प्रयास अभी बहुत कम हैं। 'पंजाब केसरी' में 31 दिन में मात्र दो सकारात्मक समाचार प्रकाशित हुए और 'दिव्य हिमाचल' में पाँच। हालाँकि सकारात्मक समाचारों को तरजीह देने के लिए 'दिव्य हिमाचल' हर पखवाड़े 'अपनी माटी' पृष्ठ प्रकाशित करता है। इस पृष्ठ में वह हिमाचल प्रदेश के किसानों के लिए सकारात्मक समाचार प्रकाशित करता है, जिसमें कृषि से संबंधित सकारात्मक जानकारियाँ दी जाती हैं। प्रदेश के नागरिक यदि कोई उपलब्धि हासिल करते हैं तो 'दिव्य हिमाचल' ऐसे समाचारों को 'चक दे हिमाचल' कॉलम में स्थान देकर प्राथमिकता के साथ प्रकाशित करता है। अन्य समाचार पत्रों की बात करें तो चारों चयनित समाचार पत्रों में अधिकतर सकारात्मक समाचार दूसरे पृष्ट पर खासतौर से बॉटम में प्रकाशित किए गए हैं।

सकारात्मक पत्रकारिता का तकाजा है कि ऐसे समाचार मुखपृष्ठ पर पहली लीड बनें। तभी भारत के पूर्व राष्ट्रपति डॉ. ए.पी.जे अब्दुल कलाम का सपना साकार होगा। नए भारत के निर्माण के लिए आवश्यक है कि मीडिया अब नकारात्मकता को छोड़कर सकारात्मकता को तरजीह दे। नकारात्मक समाचारों को बड़े-बड़े शीर्षकों के साथ प्रकाशित करने के बजाय समाज को कुछ नया करने के लिए प्रेरित करने वाले सकारात्मक समाचारों को स्थान दिया जाए, क्योंकि नकारात्मकता से नकारात्मकता ही फैलती है। वास्तव में इस नकारात्मकता के कारण ही बहुत से पाठकों ने समाचार पत्र पढ़ने बंद कर दिए हैं। सकारात्मक समाचारों की कवरेज पर भारत में राष्ट्रीय स्तर के बड़े शोध की आवश्यकता है। इसके अलावा सभी मीडिया संस्थानों को अपनी संपादकीय नीति में बदलाव करते हुए समाज के रचनात्मक पक्ष से जुड़े समाचारों के संकलन हेतु विशेष बीट स्थापित कर कम-से-कम एक संवाददाता को इस काम पर लगाना चाहिए। साथ ही मीडिया प्रशिक्षण संस्थानों के पाठ्यक्रम में भी सकारात्मक पत्रकारिता को पढ़ाने की ठोस व्यवस्था बननी चाहिए, ताकि मीडिया में आने वाले नए पत्रकार सही दृष्टिकोण के साथ मीडिया में आएँ।

संदर्भ

एबीसी. (2019). हाईएस्ट सर्कुलेटेड डेलीज, वीकलीज एंड मैगजींस. *ऑडिट ब्यूरो ऑफ सर्कुलेशन*. http://www.auditbureau.org/ से पुन:प्राप्त.

कस्रिल, ई. (2016). *व्हाई वी नीड सोलुशंस-फोकस्ड जर्नलिज्म*. https://www.bbc.co.uk/blogs/academy/entries/be8991c7-c1c7-42e6-a371-f40278838fa2 से पुन:प्राप्त.

कुमार, पी. (2019). *रोल ऑफ मीडिया इन इग्नाइटिंग माइंडस फॉर पॉजिटिव चेंज : ए स्टडी ऑफ द कवरेज ऑफ इंसपाइरिंग स्टोरीज बाय फोर नेशनल डेलीज दैनिक भास्कर, दैनिक जागरण, अमर उजाला एंड द इंडियन एक्सप्रेस*. https://www.worldwidejournals.com/indian-journal-of-applied-research-(IJAR)/article/role-of-media-in-igniting-minds-for-positive-change-a-study-of-the-coverage-of-inspiring-stories-by-four-national-dailies-dainik-bhaskar-dainik-jagran-amar-ujala-and-the-indian-express/MTcyODI=/?is=1&b1=109&k=28 से पुन:प्राप्त.

कुमार, पी. (2019). *आधुनिक भारत के गुमनाम समाज-शिल्पी*. नई दिल्ली : गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति.

जैक्सन, जे. (2019). *यू आर व्हाट यू रीड : व्हाई चेंगिंग योर मीडिया डाइट कैन चेंज द वर्ल्ड*. लंदन : अनबाउंड.

दहिया, एस. एवं साहू, एस. (2021). *बीट रिपोर्टिंग एंड एडिटिंग : जर्नलिज्म इन द डिजिटल एज*. नई दिल्ली : सेज टेक्स्ट्स.

शर्मा, एम. सी. (सं.). (2011). *पत्रकारिता और दीनदयाल उपाध्याय*. नई दिल्ली : दीनदयाल समग्र, भारतीय जनता पार्टी.

सूचना एवं जनसंपर्क. (2021). *हिमाचल प्रदेश सरकार*. http://himachalpr.gov.in/Index.aspx?Data=99&Language=2

हचिंग्स, एन. एवं ग्रेंजर, जे. (2019). *बीबीसी न्यूज दैट शोज दैट हार्ड-हिटिंग सोलुशंस जर्नलिज्म स्टोरीज कैन थराइव ऑन सोशल मीडिया*. https://www.journalism.co.uk/news/bbc-news-shows-that-hard-hitting-solutions-journalism-can-thrive-on-social-media/s2/a735912/ से पुन:प्राप्त.

संचार माध्यम | खंड 34(1) : 70-73, जनवरी-जून 2022
आईएसएसएन: 2321-2608

भारत के मुक्त एवं दूरस्थ विश्वविद्यालयों के मीडिया पाठ्यक्रमों की मीमांसा

डॉ. सुबोध कुमार[1]

सारांश

देश के कई मुक्त विश्वविद्यालयों में मीडिया शिक्षा के पाठ्यक्रमों का संचालन सफलतापूर्वक किया जा रहा है। ये पाठ्यक्रम परास्नातक, स्नातक स्तर पर संचालित हो रहे हैं, साथ ही कई विषयों में पीजी डिप्लोमा, डिप्लोमा और प्रमाण पत्र कार्यक्रमों का भी संचालन किया जा रहा है। कई विश्वविद्यालय छोटे-छोटे पाठ्यक्रमों पर भी फोकस कर रहे हैं, जिनके जरिये युवाओं को रोजगार से जुड़ने के अवसर आसानी से प्राप्त हो रहे हैं। मीडिया विशेषज्ञों का तर्क है कि चूँकि मुक्त विश्वविद्यालयों में मीडिया के 'प्रैक्टिकल' की सुविधाएँ कमोबेश नाममात्र ही हैं, अतः यहाँ के पाठ्यक्रमों पर सवालिया निशान खड़ा हो जाता है, लेकिन विद्वान यह भी तर्क देते हैं 'नॉलेज सोसायटी' में मुक्त विश्वविद्यालयों की शिक्षा कम खर्चीली तथा लचीले प्रवेश नियमों के चलते सर्वसुलभ है, जिसका लाभ लाखों युवा उठा रहे हैं। प्रस्तुत शोध पत्र में देश के प्रमुख मुक्त एवं दूरस्थ विश्वविद्यालयों के मीडिया पाठ्यक्रमों की मीमांसा की गई है और कुछ सुझाव भी दिए गए हैं।

संकेत शब्द : मुक्त विश्वविद्यालय, दूरस्थ शिक्षा, मीडिया पाठ्यक्रम पत्रकारिता

प्रस्तावना

केंद्र सरकार ने वर्ष 1986 में नई शिक्षा नीति को अंगीकार किया। नीति-नियंताओं और शिक्षाविदों ने माना कि स्वतंत्रता प्राप्ति के इतने वर्षों बाद भी भारत में उच्च शिक्षा के लिए उपलब्ध अवसर अपर्याप्त और असमान हैं। इस नीति में इस बात पर भी जोर दिया गया कि पारंपरिक शिक्षा प्रणाली की सीमाओं को ध्यान में रखते हुए एक नवीन शिक्षा प्रणाली को अपनाया जाए, जो उच्च शिक्षा से वंचित लोगों को शिक्षा के समुचित अवसर प्रदान करे और व्यावसायिक उन्नयन के मार्ग खोजने या अपनी शैक्षणिक योग्यताओं में अभिवृद्धि करने के आकांक्षी शिक्षार्थियों को उच्च शिक्षा का सीधा लाभ पहुँचा सके। इन्हीं आधारभूत उद्देश्यों की पूर्ति हेतु मुक्त शिक्षा प्रणाली तथा दूरस्थ शिक्षा प्रणाली को अपनाकर देश भर में नए मुक्त विश्वविद्यालयों की स्थापना की गई। सबसे पहले सितंबर 1985 में नई दिल्ली में इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की स्थापना की जा चुकी थी तथा अन्य मुक्त विश्वविद्यालयों को खोलने की तैयारी थी। इसी क्रम में राजस्थान सरकार ने दूरदर्शिता का परिचय देते हुए विधानसभा से पारित अधिनियम के अंतर्गत वर्ष 1987 में कोटा खुला विश्वविद्यालय की स्थापना की। विश्वविद्यालय का मुख्यालय कोटा शहर बनाया गया, किंतु इसका कार्यक्षेत्र संपूर्ण राजस्थान को घोषित किया गया। बाद में 21 सितंबर, 2002 से इसका नाम बदलकर वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा कर दिया गया। इस प्रकार कार्यक्षेत्र की दृष्टि से यह विश्वविद्यालय आज राजस्थान का सबसे बड़ा विश्वविद्यालय है। अनेक पाठ्यक्रमों के साथ-साथ मीडिया शिक्षा का कार्यक्रम भी विश्वविद्यालय द्वारा वर्ष 1988 में प्रारंभ किया गया। मुक्त विश्वविद्यालयों का प्रमुख उद्देश्य था कि उच्च शिक्षा के प्रजातांत्रीकरण से शिक्षा प्राप्ति के इच्छुक सभी समूहों, रोजगार प्राप्त व्यक्तियों, महिलाओं, विशेष योग्यजन एवं वयस्कों को शिक्षा प्राप्ति का अवसर प्रदान करना। कम लागत पर गुणात्मक एवं रोजगारोन्मुखी उच्च शिक्षा उपलब्ध कराना तथा देश के उच्च शिक्षा से वंचित दूरस्थ क्षेत्रों, आदिवासी एवं मरुस्थलीय क्षेत्र में उच्च शिक्षा का प्रसार करना।

मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा के प्रचार-प्रसार के लिए उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी की स्थापना 2005 में की गई, जिसमें पहाड़ में उच्च शिक्षा के प्रसार को बढ़ावा देने का संकल्प लिया गया। इसके अलावा एमपी भोज मुक्त विश्वविद्यालय की स्थापना 1991 में हो चुकी थी। इग्नू की स्थापना के बाद 1987 में बिहार में नालंदा मुक्त विश्वविद्यालय की स्थापना की गई। पूर्वोत्तर राज्यों में भी उच्च शिक्षा को लोगों के घरों तक पहुँचाने का कार्य कृष्णा कांता हांडिक मुक्त विश्वविद्यालय द्वारा किया जा रहा है। इसकी स्थापना वर्ष 2006 में की गई। उत्तर प्रदेश राजर्षि टंडन मुक्त विश्वविद्यालय की स्थापना वर्ष 1999 में की गई।

मुक्त विश्वविद्यालयों की प्रमुख विशेषताएँ

मुक्त विश्वविद्यालय में प्रवेश संबंधी लचीले नियम हैं। शिक्षार्थी को उसकी अपनी अध्ययन क्षमताओं और सुविधाओं के अनुरूप अध्ययन के अवसर उपलब्ध कराए जाते हैं। अगली कक्षा में प्रवेश हेतु परीक्षा में उत्तीर्ण होने की बाध्यता नहीं है। शैक्षणिक पाठ्यक्रमों में मनपसंद विषय चुनने की अधिक स्वतंत्रता है। विश्वविद्यालयों द्वारा आधुनिक संचार और शैक्षणिक तकनीकी का उपयोग किया जाता है। दूरस्थ शिक्षार्थियों की मदद के लिये विद्यार्थी सहायता सेवाओं का संचालन किया जाता है। रेडियो काउंसलिंग के जरिये शंकाओं का समाधान किया जाता है। ऑनलाइन प्रवेश प्रक्रिया की सुविधा है। डेबिट कार्ड, इंटरनेट बैंकिंग एवं ई-मित्र से शुल्क जमा करने की सुविधा है। वेबसाइट पर प्रश्न बैंक, सत्रीय कार्य उपलब्ध रहता है। वेबसाइट में 'स्टूडेंट वनव्यू' एक सुविधा है, जिससे विद्यार्थी अपने से संबंद्ध समस्त जानकारी स्कॉलर नंबर एवं जन्मतिथि डालकर प्राप्त कर सकता है। 'स्टूडेंट वन व्यू' से ही परिचय पत्र प्राप्त करने की सुविधा

[1]सह-आचार्य, पत्रकारिता विभाग, वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा, राजस्थान. ईमेल: skumar@vmou.ac.in

है। विद्यार्थी जिज्ञासा समाधान शिविर आयोजित होते हैं। वेबसाइट पर डिजिटल अध्ययन सामग्री उपलब्ध रहती है। वेबसाइट पर मल्टीमीडिया आधारित व्याख्यान की उपलब्धता भी इलेक्ट्रॉनिक मीडिया प्रोडक्शन सेंटर के माध्यम से सुनिश्चित कराई गई है। व्यवहार की बात करें तो इनमें से कई सुविधाएँ कई मुक्त विश्वविद्यालयों में अभी उपलब्ध नहीं हैं और तकनीकी संसाधनों का भी अभाव है।

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध पत्र में रैंडम सैंपलिंग के माध्यम से देश के 13 मुक्त एवं दूरस्थ विश्वविद्यालयों में से छह मुक्त विश्वविद्यालयों को लॉटरी पद्धति से चुना गया। इनमें इग्नू नई दिल्ली, वीएमओयू कोटा, यूओयू हल्द्वानी, एनओयू पटना, एमपी भोज मुक्त विवि भोपाल, यूपीआरटीओयू प्रयागराज को शामिल किया गया है।

मीडिया पाठ्यक्रमों का विवेचन

- **इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय (इग्नू) :** वर्ष 2007 से इग्नू में एम.ए. जेएमसी कार्यक्रम के अलावा पोस्ट ग्रेजुएट डिप्लोमा इन जर्नलिज्म एंड मॉस कॉम, पोस्ट ग्रेजुएट डिप्लोमा इन ऑडियो प्रोग्राम प्रोडक्शन तथा कम्युनिटी रेडियो में प्रमाण पत्र कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं। इसके अलावा बीए जेएमसी कोर्स और पोस्ट ग्रेजुएट डिप्लोमा इन इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का कोर्स भी जल्द ही शुरू किया जाना है। इग्नू में मल्टीमीडिया लैब की सुविधाओं के अलावा वर्चुअल क्लासरूम और ऑडियो-विजु-अल सुविधाओं वाला ईएमपीसी केंद्र भी है। एमए जेएमसी में लैटरल प्रवेश की सुविधा भी दी जा रही है। मीडिया और इनफॉरमेशन लिटरेसी में मूक्स कोर्स और पोस्ट ग्रेजुएट डिप्लोमा इन डेवलपमेंट कम्युनिकेशन जैसे प्रोग्राम चलाने का प्रयास अच्छा है। इग्नू को कम अवधि के छोटे-छोटे कैप्स्यूल प्रोग्राम भी शुरू करने चाहिए, जिससे विद्याथियों का मीडिया की ओर और ज्यादा रुझान हो सकेगा। हालाँकि अंतरराष्ट्रीय स्तर का विश्वविद्यालय होने के अलावा यहाँ विद्यार्थियों की संख्या लाखों में है। यहाँ का सामुदायिक रेडियो काफी अच्छा कार्य कर रहा है। ईएमपीसी के माध्यम से और इग्नू के अपने चैनल से प्रसारित होने वाले वीडियो विद्यार्थियों में खासा लोकप्रिय हैं और उनकी उपादेयता भी है। विश्वविद्यालय अपने स्टडी मैटीरियल की गुणवत्ता के लिए पूरी दुनिया में जाना जाता है और पत्रकारिता एवं जनसंचार के क्षेत्र में विश्वविद्यालय ने अपना एक मुकाम स्थापित कर रखा है (इग्नू, 2021)।
- **वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय (वीएमओयू) :** विश्वविद्यालय में वर्ष 1988 में पत्रकारिता विभाग को सतत शिक्षा विद्यापीठ के अंतर्गत संचालित किया गया। पत्रकारिता विभाग के संयोजक प्रोफेसर रमेश जैन ने बीजेएमसी पाठ्यक्रम को लांच किया, जिसमें तत्कालीन समय के कई नामचीन मीडिया शिक्षकों और अखबार, रेडियो तथा टीवी जगत् की कई प्रमुख हस्तियों का सहयोग प्राप्त हो सका। बीजेएमसी पाठ्यक्रम में बेसिक चीजों पर ज्यादा जोर दिया गया। इसमें मीडिया लेखन पर जोर देने के अलावा फीचर लेखन, संपादकीय लेखन, पेज मेकिंग, लेआउट डिजाइन, प्रूफ रीडिंग, बेसिक कंप्यूटर, मीडिया कानून के अलावा जनसंपर्क और विज्ञापन के पहलुओं पर विस्तार से जानकारी देने का प्रयास किया गया। प्रोफेसर जैन बताते हैं कि वर्ष 2000 में एमजेएमसी पाठ्यक्रम संचालित किया गया। दो वर्षों के इस पाठ्यक्रम के शुरू होने से पत्रकारिता विभाग ने गति पकड़ी और देश स्तर पर काफी नाम कमाया (जैन, 2021)। वर्ष 2002 में विभागाध्यक्ष प्रोफेसर रमेश जैन के सेवानिवृत्त होने के बाद प्रो. एचबी नंदवाना को पत्रकारिता विभाग का अतिरिक्त कार्यभार सौंपा गया। प्रो. नंदवाना बताते हैं कि वर्ष 2007 के बाद संशोधित बीजेएमसी कार्यक्रम को लांच किया गया। चूँकि विश्वविद्यालय जुलाई से जून और जनवरी से दिसंबर के दो शैक्षिक सत्रों में संचालित हो रहा था, लिहाजा विद्यार्थियों की संख्या में निरंतर वृद्धि होने लगी (नंदवाना, 2021)। विश्वविद्यालय द्वारा वीएमओयूऑनलाइन पर अपलोड यूट्यूब व्याख्यान देश-विदेश में काफी सराहे जा रहे हैं (वीएमओयू, 2021)।
- **उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय (यूओयू) :** उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय में एमजेएमसी पाठ्यक्रम के अलावा एमए में पार्श्व प्रवेश की सुविधा भी दी गई है। स्नातक स्तर पर मीडिया का पाठ्यक्रम संचालित नहीं हो रहा है। यूओयू का ईएमपीसी केंद्र काफी अच्छा कार्य कर रहा है। सामुदायिक रेडियो हैलो हल्द्वानी की अपनी पहचान बन चुकी है। विश्वविद्यालय को मीडिया में कुछ प्रमाण पत्र कार्यक्रम संचालित करने चाहिए जिससे पहाड़ के युवाओं को कम अवधि में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा मिल सके और नौकरी में उनके काम आ सके। विश्वविद्यालय द्वारा यूओयूलाइव पर अपलोड यूट्यूब व्याख्यान काफी सराहे जा रहे हैं। विभाग के सह-आचार्य डॉ. राकेश रयाल बताते हैं कि एमजेएमसी पाठ्यक्रम के अलावा डिप्लोमा कार्यक्रमों को भी राज्य के युवा काफी पसंद कर रहे हैं। सामुदायिक रेडियो के जरिये आपसी वार्तालाप के माध्यम से कार्यक्रमों को काफी सराहना मिल रही है। भविष्य में कुछ पीजी डिप्लोमा कार्यक्रमों को भी विश्वविद्यालय नई शिक्षा नीति के हिसाब से संचालित कर सकता है (यूओयू, 20 21) ।
- **एमपी भोज मुक्त विश्वविद्यालय :** एमपी भोज मुक्त विश्वविद्यालय में पत्रकारिता के दो पाठ्यक्रम संचालित किए जा रहे हैं। इनमें बीजेएमसी और एमजेएमसी शामिल हैं। यहाँ भी कुछ नए कोर्सेज की दरकार है। छोटी अवधि के प्रोग्राम रोजगारपरक होते हैं उन्हें चलाने से राज्य के युवाओं को पत्रकारिता में और अवसर मिल सकते हैं। भोपाल के वरिष्ठ पत्रकार सतीश एलिया मानते हैं कि मध्य प्रदेश की धरा पत्रकारिता के लिए काफी उर्वर है और यहाँ सस्ते सुलभ पाठ्यक्रमों की दरकार है। वे कहते हैं कि मुक्त विश्वविद्यालय ही छोटे-छोटे पाठ्यक्रमों के जरिये जमीनी लोगों तक पहुँच बना सकते हैं, जिससे पत्रकारिता को नया आयाम मिल सकेगा। यहाँ भी ब्रॉडकास्ट मीडिया और न्यू मीडिया के कार्यक्रमों पर फोकस करना होगा, जिसमें नौकरी के काफी अवसर मिल रहे हैं (एमपीबीओयू, 2021)।

- **यूपी राजर्षि टंडन मुक्त विश्वविद्यालय :** विश्वविद्यालय में पत्रकारिता के बड़े-छोटे छह पाठ्यक्रम संचालित किए जा रहे हैं। इनमें दो साल का एमए पत्रकारिता एवं जनसंचार प्रमुख है। विभाग में सहायक आचार्य डॉ. साधना श्रीवास्तव ने बताया कि यहाँ पत्रकारिता एवं जनसंचार में पीजी डिप्लोमा कार्यक्रम भी संचालित हो रहा है। इसके अलावा ग्रामीण पत्रकारिता में पीजी डिप्लोमा और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया तथा फिल्म प्रोडक्शन में भी पीजी डिप्लोमा संचालित किया जा रहा है। साथ ही फोटोग्राफी में डिप्लोमा कार्यक्रम भी पत्रकारिता विभाग की शान है। उर्दू पत्रकारिता को बढ़ावा देने में भी विश्वविद्यालय पीछे नहीं है। इसमें दो डिप्लोमा कार्यक्रम संचालित किए जा रहे हैं। पहला, उर्दू पत्रकारिता एवं जनसंचार तथा दूसरा, उर्दू समाचार वाचन और प्रस्तोता। कुल मिलाकर विश्वविद्यालय ने छोटे-छोटे कार्यक्रम चलाकर मीडिया में युवाओं को रोजगार के लिए तैयार करने का सक्षम प्रयास किया है (यूपीआरटीओयू, 2021)।
- **नालंदा मुक्त विश्वविद्यालय :** बिहार के नालंदा मुक्त विश्वविद्यालय में भी पत्रकारिता के तीन पाठ्यक्रम संचालित किए जा रहे हैं। इनमें बीजेएमसी, एमजेएमसी तथा पत्रकारिता एवं जनसंचार में पीजी डिप्लोमा कार्यक्रम शामिल हैं। यहाँ कुछ छोटे-छोटे कैप्स्यूल कोर्सेज संचालित किए जा सकते हैं, जो रोजगारपरक हों। पत्रकारिता के विशेषज्ञ मानते हैं कि बिहार राज्य की पत्रकारिता का देश में बोलबाला है और इस लिहाज से यहाँ के मुक्त विश्वविद्यालय को और नए पाठ्यक्रमों के संचालन पर जोर देना चाहिए साथ ही न्यू मीडिया और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के पाठ्यक्रमों की माँग देखते हुए नालंदा मुक्त विश्वविद्यालय को अपने क्षेत्रीय केंद्रों पर पत्रकारिता से जुड़े मुलभूत ढाँचे में भी बदलाव करना चाहिए, जिससे बिहार के दूरदराज इलाकों से भी पत्रकारिता की प्रतिभाएँ निकल सकेंगी (एनओयू, 2021)।

बदलाव का दौर

वीएमओयू के पत्रकारिता विभाग में बदलाव की बयार तब शुरू हुई जब प्रो. विनय कुमार पाठक वर्ष 2013 में वीएमओयू के कुलपति बने। वर्ष 2002 से पत्रकारिता विभाग में रिक्त पड़ी सह-आचार्य की सीट भरी गई। जुलाई 2013 से ही केके हांडिक ओपन युनिवर्सिटी असम से एक एमओयू हुआ, जिसमें पत्रकारिता में डिप्लोमा और कुछ पीजी डिप्लोमा आरंभ किए गए। जुलाई 2014 में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने स्नातक और परास्नातक स्तर के कार्यक्रमों के नाम और उनकी समयावधि में संशोधन किया। इसके आधार पर स्नातक के बाद एक साल की अवधि का बीजे और उसके बाद एक साल की अवधि का एमजे कार्यक्रम किया गया। वीएमओयू ने बीजे तथा एमजे पाठ्यक्रमों में आठ-आठ प्रश्नपत्रों को शामिल किया। एमजे के कार्यक्रम में न्यू मीडिया और सोशल मीडिया से जुड़े प्रश्नपत्रों को जगह दी गई। बीए के ऐसे विद्यार्थी, जो पत्रकारिता विषय के साथ स्नातक हुए, उनके लिए पार्श्व प्रवेश की सुविधा भी दी गई। विभाग ने पूर्व में संचालित किए गए डिप्लोमा और पीजी डिप्लोमा के स्थान पर अपनी तैयार की गई पाठ्य सामग्री के आधार पर एक वर्षीय डीएमसी यानी डिप्लोमा इन मॉस कम्यूनिकेशन तथा पीजी डिप्लोमा इन न्यू मीडिया कार्यक्रम लांच किए। ये दोनों कार्यक्रम संचालित होते ही मुक्त विश्वविद्यालय की मीडिया शिक्षा में क्रांतिकारी बदलाव दिखने शुरू हो गए। डिप्लोमा कार्यक्रम में पांच प्रश्नपत्र रखे गए। दूसरी ओर, पीजी डिप्लोमा इन न्यू मीडिया का कार्यक्रम वास्तव में अपने आप में एक नायाब कार्यक्रम है और देश के चुनिंदा पाठ्क्रमों में शामिल है। इसमें जनसंचार के विविध पक्षों की जानकारी के अलावा मीडिया कानून पर फोकस रखा गया है। इसके अलावा डिजिटल मीडिया प्रोडक्शन और वेब पत्रकारिता तथा न्यू मीडिया के अनेक पहलुओं की जानकारी देने का प्रयास किया गया है। इसके अलावा विद्यार्थियों को समय-समय पर कैंप लगाकर ईएमपीसी के माध्यम से शूटिंग और प्रोडक्शन से जुड़ी जानकारियाँ मुहैया कराई जाती हैं। इग्नू, नई दिल्ली ने विकास पत्रकारिता में जून 2021 में नया पाठ्यक्रम संचालित किया है, जो वास्तव में मीडिया शिक्षा में मील का पत्थर साबित होगा और अन्य विश्वविद्यालयों में भी ऐसे कार्यक्रम की शुरुआत की जानी चाहिए।

मीडिया में शोध कार्यक्रम

कोटा खुला विश्वविद्यालय के पत्रकारिता विभाग द्वारा वर्ष 1994 में पीएचडी कार्यक्रम की शुरुआत की गई। प्रोफेसर रमेश जैन के दिशा-निर्देशन में कई शोधार्थियों ने अपने शोध प्रबंध जमा किए। वर्ष 2013 में दो विद्यार्थियों आयुष श्रीवास्तव और विजेश सैनी ने शोध में प्रवेश लिया। आयुष ने युवाओं द्वारा न्यू मीडिया के प्रयोग और विजेश ने राजस्थान के प्रमुख अखबारों द्वारा पीत पत्रकारिता करने के क्षेत्र में काम किया तथा शोध उपाधियाँ प्राप्त कीं। वर्ष 2014 में दिल्ली के वरिष्ठ पत्रकार प्रमोद कुमार ने न्यूजरूम में हो रहे बदलावों पर अध्ययन करते यह दर्शाया कि आने वाले दौर में मीडिया में क्रांतिकारी बदलाव होंगे, लिहाजा प्रमोद कुमार को शोध उपाधि प्राप्त होने के दो साल बाद ही उनके शोध का निचोड़ पूरी दुनिया के सामने आ गया जब कोविड महामारी के दौर में अखबार और चैनलों के न्यूजरूम गायब हो गए तथा 'वर्क फ्रॉम होम' की थ्योरी सच साबित हुई। वर्ष 2015 में प्रभात दीक्षित ने राजस्थान के अखबारों में विज्ञान समाचारों की व्याप्ति को लेकर एक अध्ययन किया। वर्ष 2019 से आशाराम खटीक और चंद्रशेखर वर्तमान में पत्रकारिता विभाग में शोधरत हैं। आशाराम महात्मा गांधी की पत्रकारिता की आज के दौर में सार्थकता को लेकर एक खोजी अध्ययन कर रहे हैं और चंद्रशेखर देश के आम चुनावों में न्यू मीडिया की भूमिका को लेकर शोधरत हैं। इग्नू में भी पीएचडी और एमफिल कार्यक्रम संचालित किए जा रहे हैं। इसे 3 साल से 6 साल की अवधि के दौरान पूरा किया जा सकता है। यहाँ पीएचडी की फीस 16,800 रुपये तथा एमफिल की फीस 12,600 रुपये रखी गई है। उम्र की कोई सीमा नहीं है। उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय और यूपी राजर्षि टंडन मुक्त विश्वविद्यालय भी वर्तमान में पत्रकारिता एवं जनसंचार में शोध कार्यक्रम संचालित कर रहे हैं।

निष्कर्ष

कुल मिलाकर देखा जाए तो मुक्त विश्वविद्यालय आज की मीडिया इंडस्ट्री की डिमांड के अनुसार मीडिया शिक्षा में काफी कुछ योगदान दे

रहे हैं। प्रशिक्षण के मामले में अभी ऐसे संस्थानों को एक बड़ा दरिया पार करना है। वैसे भी मीडिया कार्यक्रम इस ढंग से संचालित किए जा रहे हैं कि कोई भी कम कीमत के सस्ते सुलभ कार्यक्रमों में प्रवेश लेकर भविष्य के अपने रास्तों का निर्माण कर सकता है। वीएमओयू के अलावा यूओयू और इग्नू में ऐसे अनेक प्रवेशार्थी हैं, जो मीडिया के क्षेत्र में अच्छा कार्य कर रहे हैं, पर उनके पास एक अदद डिग्री नहीं है, ऐसे में खुला विश्वविद्यालय उनके जीवन में आशा की नई किरण लेकर आया है। बड़े शहरों में मीडिया शिक्षा और शिक्षण के नाम पर लूट मची है। साल भर पढ़ाई के बाद विद्यार्थियों का पैसा भी खर्च हुआ और उन्हें इंडस्ट्री का ज्ञान भी हासिल नहीं हो सका, वहीं मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा पद्धति ने कम-से-कम विद्यार्थियों के हितों का ध्यान रखा और उन्हें सस्ता सर्वसुलभ ज्ञान अर्जित कराने में महती भूमिका अदा की। मुक्त विश्वविद्यालयों में पत्रकारिता की पढ़ाई करने वाले विद्यार्थियों की संख्या में निरंतर वृद्धि हो रही है। इससे पता चलता है कि मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा व्यवस्था में विद्यार्थियों का विश्वास बढ़ रहा है। ऐसे में इन विश्वविद्यालयों की जिम्मेदारी है कि बदलते परिवेश में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के हिसाब से अपने-अपने पाठ्यक्रमों को पुनःपरिभाषित करते हुए समयानुकूल विवेचन करते हुए बदलाव करें, जिससे युवाओं को रोजगार पाने में दुर्लभ परिस्थितियों का सामना न करना पड़े। मीडिया शोध की दिशा में अभी मुक्त विश्वविद्यालयों को काफी कार्य करना होगा।

संदर्भ

इग्नू. (2021). इंदिरा गांधी नेशनल ओपन युनिवर्सिटी. *प्रोस्पेक्टस*. दिनांक 3 जुलाई, 2021 को http://ignou.ac.in से पुन:प्राप्त.

एनओयू. (2021). नालंदा ओपन यूनिवर्सिटी. *प्रोस्पेक्टस*. दिनांक 2 जुलाई, 2021 को https://www.nou.ac.in से पुन:प्राप्त.

एमपीबीओयू (2021). एमपी भोज ओपन यूनिवर्सिटी. *प्रोस्पेक्टस*. दिनांक 6 जुलाई, 2021को https://mpbou.edu.in से पुन:प्राप्त.

जैन, रमेश. (2021). प्रोफेसर. *वीएमओयू*. शोधकर्ता से साक्षात्कार.

नंदवाना, एच. बी. (2021). प्रोफेसर. *वीएमओयू*. शोधकर्ता से साक्षात्कार.

यूओयू. (20 21) उत्तराखंड ओपन यूनिवर्सिटी. *अनाउंसमेंट*. दिनांक 3, 2021 को https://www.uou.ac.in से पुन:प्राप्त.

यूपीआरटीओयू (2021) उत्तर प्रदेश राजर्षि टंडन ओपन यूनिवर्सिटी. *प्रोस्पेक्टस*. http://www.uprtou.ac.in से पुन:प्राप्त.

वीएमओयू. (2021). वर्धमान महावीर ओपन यूनिवर्सिटी. *प्रोस्पेक्टस*. https://www.vmou.ac.in से पुन:प्राप्त.

संचार माध्यम | खंड 34(1) : 74-78, जनवरी-जून 2022
आईएसएसएन: 2321-2608

संचार पारिस्थितिकी के अनुकूलन की आतंकी रणनीति : जम्मू-कश्मीर में पत्रकारों की हत्याओं के विशेष संदर्भ में एक अध्ययन

डॉ. जयप्रकाश सिंह[1]

सारांश

आतंकवाद को वैश्विक स्तर पर परिभाषित किया जाना अभी शेष है, लेकिन इस बात को लेकर सर्वसम्मति है कि यह एक असममित और मनोवैज्ञानिक युद्ध है और इस युद्ध की मुख्य रणनीति भयादोहन है। आतंकवाद की यह प्रकृति उसे संचार-पारिस्थितिकी को अपने अनुकूल बनाने के लिए प्रेरित करती है। संचार-पारिस्थितिकी में किसी भी व्यक्ति अथवा व्यवस्था की वृहत्तर वैचारिक-भावनात्मक पारिस्थितिकी को निर्णायक ढंग से प्रभावित करने की क्षमता होती है। इसलिए, भयादोहन के मनोविज्ञान पर आधारित आतंकवाद के युद्ध में संचार-पारिस्थितिकी की भूमिका भी बहुत निर्णायक बन जाती है। संचार-केंद्रीयता आतंकवाद की मुख्य विशेषता है और आतंकी घटनाओं का विश्लेषण उसकी इस मुख्य विशेषता को आसानी से स्पष्ट भी कर देता है। आतंकी घटनाओं से अधिकतम मनोवैज्ञानिक प्रभाव पैदा करने के लिए आतंकवादी संचार-प्रवाह को प्रभावित करने की कोशिश करते हैं और संचार-पारिस्थितिकी को अपने अनुकूल बनाने की प्रयास करते हैं। इसी तरह, सामूहिक-भय का वातावरण पैदा करके वे आतंकी एक ऐसा जनमत बनाने की कोशिश करते हैं, जिससे दबाव में आकर विपक्षी नीति-निर्णयन की प्रक्रिया उनकी माँगों को मानने के लिए विवश हो जाए। अधिकतम मनोवैज्ञानिक प्रभाव और व्यापक जनमत बनाने हेतु आतंकवादी गतिविधियों के लिए ऐसे समय और स्थान का उपयोग किया जाता है, जो व्यापक मीडिया-कवरेज को सुनिश्चित करते हों। यह तथ्य आतंकवाद में संचार-केंद्रीयता की स्वीकृति के समान है। आतंकी रणनीति में संचार-परिस्थिति का महत्त्व कई अन्य कारणों से भी है। अपने अमानवीय कार्यों और उसके कारणों को वैधता प्रदान के लिए भी आतंकी समूह संचार-पारिस्थितिकी को अपने अनुकूल बनाने की कोशिश करते हैं। संचार की प्रक्रिया में वैधता के निर्धारण की एक हद तक क्षमता होती है, इसलिए भी आतंकवादी संचार-पारिस्थितिकी को अपने अनुकूल बनाने की कोशिश करते हैं। आतंकवाद को पनपने के लिए पीड़ित होने और प्रतिकार करने की भावदशा भी खाद-पानी का काम करती है। उत्पीड़न की मनोदशा और भावदशा आतंकवाद का सबसे बड़ा हथियार है। उत्पीड़ित होने की मनःस्थिति (विक्टिमहुड) तैयार करने के लिए भी आतंकवादी संचार पारिस्थितिकी को अपनी दिशा में मोड़ने का प्रयास करते हैं। श्रेष्ठता की सामूहिक उद्घोषणा, किसी दूसरे समूह को हीन मानने वाली अन्यीकरण की प्रक्रिया को बढ़ावा देने के लिए भी मीडिया और संचार-प्रवाह एक महत्त्वपूर्ण उपकरण साबित होता है। अन्यीकरण में स्वयं को नैतिक रूप से श्रेष्ठ मानते हुए अपनी समस्त समस्याओं के लिए किसी अन्य को उत्तरदायी ठहरा दिया जाता है। यह अन्यीकरण का सिद्धांत आज भी 'प्रोपेगैंडा' का आधारभूत सिद्धांत बना हुआ है। दुनियाभर में आतंकवाद का कई परिप्रेक्ष्यों में अध्ययन किया जाता है। यदि अन्यीकरण के सिद्धांत को ध्यान में रखकर आतंकवाद का अध्ययन किया जाए तो बहुत रोचक तथ्य निकल सकते है। क्योंकि आंतकवाद और आत्मघात का सबसे बड़ा आधार स्वयं की श्रेष्ठता और अपनी सारी समस्याओं के लिए किसी दूसरे को जिम्मेदार ठहराने की प्रवृत्ति ही है। संचार माध्यमों अथवा अन्य पांथिक संस्थागत संदेशों के जरिये निरंतर स्वयं की श्रेष्ठता और अपनी समस्याओं के लिए दूसरों को जिम्मेवार ठहराने की प्रवृत्ति ही आतंकवाद का मूल कारण है। इसके अतिरिक्त मरणोत्तर जीवन की काल्पनिक दुनिया भी आतंकवाद को एक उर्वर भूमि उपलब्ध कराती है। काल्पनिक स्वर्गों की आकर्षक तस्वीर बनाने और उसकी रंगीन झलक दिखाने के लिए भी आतंकी संगठन संचार-संसाधनों का उयपोग करते हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि आतंकवादियों को अपनी रणनीति में प्रत्येक स्तर पर संचार-संसाधनों की आवश्यकता होती है। पाकिस्तान ने अपनी हजार-घाव देने की रणनीति के अंतर्गत जब जम्मू-कश्मीर में आतंकवाद को बढ़ावा देना प्रारंभ किया तो इसी के साथ जम्मू-कश्मीर की संचार-पारिस्थितिकी को अपने अनुकूल बनाने के लिए भी प्रयास प्रारंभ किए गए। इसके लिए कुछ समाचार-पत्रों में धमकी भरे विज्ञापन, विस्थापन को प्रेरित करने वाली मीडिया कवरेज की बढ़ोतरी, आतंकी गतिविधियों को वैधता प्रदान करने वाले संपादकीय, आतंकवादियों के प्रति सख्ती से निपटने की नीतियों को मानवाधिकार के हनन के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास जैसी कई रणनीतियों का उपयोग किया गया। जम्मू-कश्मीर में संचार-पारिस्थितिकी को अपने अनुकूल बनाने और उस पर नियंत्रण स्थापित करने के लिए आतंकियों ने पत्रकार-हत्याओं को भी एक रणनीति के रूप में प्रयोग किया। प्रस्तुत शोध आलेख जम्मू-कश्मीर में मीडिया-पारिस्थितिकी को अनुकूल बनाने के लिए पत्रकार-हत्याओं की रणनीति और उसके महत्त्व को समझने का एक प्रयास है।

संकेत शब्द : संचार-पारिस्थितिकी, संचार-अनुकूलन, उत्पीड़न की मनोदशा, अन्यीकरण की रणनीति, जन्नत का चित्रण, पत्रकारीय हत्या

प्रस्तावना

वर्ष 1965 और 1971 के युद्ध में निर्णायक पराजय के बाद पाकिस्तान को यह अहसास हो गया कि वह परंपरागत युद्ध में भारत को पराजित नहीं कर सकता। इन युद्धों में पाकिस्तान की सैन्य क्षमता की सीमाएँ वैश्विक स्तर पर तो उजागर हुई हीं। घरेलू मोर्चे पर अपने नागरिकों को संबोधित करने और संतुष्ट रखने के लिए जिन आख्यानों का उपयोग पाकिस्तान के द्वारा किया जाता था, वे भी पूरी तरह ध्वस्त हो गए। उदाहरण के लिए अस्तित्व में आने के बाद से ही पाकिस्तान अपने नागरिकों को

[1]सहायक आचार्य, कश्मीर अध्ययन केंद्र, हिमाचल प्रदेश केंद्रीय विश्वविद्यालय, धर्मशाला, हिमाचल प्रदेश, ईमेल : jpsh.pol@gmail.com

यह कहकर आश्वस्त करता था कि हिंदू युद्ध लड़ना नहीं जानते और पाकिस्तानी सैनिक भारत के हिंदू सैनिकों को आसानी से पराजित कर देंगे। इस पाकिस्तानी मानसिकता की तरफ संकेत करते हुए पाकिस्तान में भारत के पूर्व उच्चायुक्त शंकर वाजपेयी कहते हैं—"अयूब ने सोचना शुरू कर दिया था कि हिंदुस्तान कमजोर है। एक तो लड़ना नहीं जानते हैं और दूसरे राजनीतिक नेतृत्व बहुत कमजोर है। वे दिल्ली आने वाले थे, लेकिन नेहरू के निधन के बाद उन्होंने यह कहकर अपनी दिल्ली यात्रा रद्द कर दी कि अब किससे बात करें। शास्त्री ने कहा आप मत आइए हम आ जाएँगे। वे काहिरा गए हुए थे, लौटते वक्त वे एक दिन के लिए कराची रुके। मैं प्रत्यक्षदर्शी था जब शास्त्री जी को हवाई अड्डे पर छोड़ने आए थे राष्ट्रपति अयूब। मैंने सुना उन्हें अपने साथियों को इशारा करते कि इसके साथ बात करने में तो कोई फायदा ही नहीं है" (फजल, 21 सितंबर, 2015)।

26 सितंबर, 1965 को भारत के प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री ने जब दिल्ली के रामलीला मैदान पर हजारों लोगों को संबोधित किया तो उन्होंने पाकिस्तानी शासकों की इस मानसिकता पर गहरा कटाक्ष किया था। शास्त्री ने कहा था—"सदर अयूब ने ऐलान किया था कि वे दिल्ली तक चहलकदमी करते हुए पहुँच जाएँगे। वे इतने बड़े आदमी हैं, लहीम शहीम हैं। मैंने सोचा कि उनको दिल्ली तक पैदल चलने की तकलीफ क्यों दी जाए। हम ही लाहौर की तरफ बढ़कर उनका इस्तेकबाल करें" (फजल, 21 सितंबर, 2015)। यह उल्लेखनीय है कि 1965 के युद्ध में लाल बहादुर शास्त्री ने जिस तरह से साहसी निर्णय लिए, पाकिस्तान उनके लिए बिलकुल भी तैयार नहीं था। पश्चिमी कमान के प्रमुख जनरल हरबख्श सिंह ने तब यह कहकर लाल बहादुर शास्त्री की निर्णय कौशल की प्रशंसा की थी कि 'युद्ध का सबसे बड़ा फैसला (लाहौर की तरफ बढ़ना), सबसे छोटे कद के शख्स ने लिया' (फजल, 21 सितंबर, 2015)। सत्तर के दशक में पाकिस्तान के विदेश सचिव रहे सुल्तान मोहम्मद खान ने अपनी आत्मकथा 'मेमोरीज एंड रेफ्लेक्शंस ऑफ अ पाकिस्तानी डिप्लोमैट' में तत्कालीन परिस्थितियों का बारीकी से विश्लेषण किया है। इसमें वह तत्कालीन शासक याहया खान के व्यक्तित्व की सीमाओं की चर्चा तो करते ही हैं, उस परंपरागत पाकिस्तानी आख्यान की तरफ भी संकेत करते हैं कि हिंदू युद्ध नहीं लड़ सकते।' याहया यह विश्वास करने के लिए कतई तैयार नहीं थे कि भारत पूर्वी पाकिस्तान में हस्तक्षेप भी कर सकता है। उस समय पाकिस्तानी सेना के जनरलों को यह गुमान था कि वे गैर लड़ाकू बंगालियों को महज एक छर्रे के बल पर झुका देंगे। इतिहास ने बाद में सिद्ध किया कि वे कितने गलत थे। इस लड़ाई के बाद पाकिस्तान का आकार आधा रह गया। उन्हें बहुत शर्मिंदगी उठानी पड़ी और उस मानसिक आघात से उबरने में उन्हें बहुत समय लगा। एक राष्ट्रपति के रूप में एक बिखरी हुई आबादी का नेतृत्व करने की काबलियत उनमें नहीं थी। अनैतिक राजनीतिज्ञों से निपटने और विश्व राजनीति के दाँवपेचों को समझने की उनकी क्षमता भी बहुत सीमित थी।

इस पाकिस्तानी मानसिकता का उल्लेख हेनरी किसिंजर ने अपनी आत्मकथा 'द वाइट हाउस इयर्स' में भी किया है। वे लिखते हैं—"मैंने निक्सन को बताया कि याहया और उनकी टीम को ऊँचे 'आई क्यू' के लिए कोई पुरस्कार नहीं दिया जा सकता। वे हमारे लिए वफादार हैं, स्पष्टवादी भी हैं, लेकिन उनमें यह समझने की बौद्धिक क्षमता ही नहीं है कि क्यों पूर्वी पाकिस्तान को पश्चिमी पाकिस्तान का हिस्सा नहीं होना चाहिए। उन्हें इस बात का अंदाजा ही नहीं था कि भारत युद्ध की तैयारी कर रहा है और अगर इसका थोड़ा बहुत अंदाजा उनको था भी तो उन्हें ये खुशफहमी थी कि जीत उनकी ही होगी। मैंने दबी जुबान से उनसे पूछने की कोशिश भी की कि आप भारत के संख्या में अधिक सैनिकों और हथियारों का सामना कैसे करेंगे? उनका जवाब था कि मुस्लिम सैनिक भारतीय सैनिकों से बेहतर लड़ाका हैं" (फजल, 21 अक्टूबर, 2018)। पहले 1965 के युद्ध में बेहतर योद्धा के पाकिस्तानी भ्रम को गहरा झटका लगा, लेकिन पाकिस्तानी शासक भारतीयों से पराजित होने के सच को स्वीकार नहीं कर पा रहे थे। इसीलिए 1965 में संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में भाषण देते हुए तत्कालीन पाकिस्तानी विदेश मंत्री जुल्फिकार अली भुट्टो ने भारत से हजार सालों तक युद्ध लड़ने की घोषणा की थी। 1971 के युद्ध में पाकिस्तान और भी अधिक निर्णायक और लज्जाजनक ढंग से पराजित हुआ। उसके लगभग एक लाख सैनिकों को समर्पण करना पड़ा। इस युद्ध में पाकिस्तानी सैन्य के साथ मनोवैज्ञानिक आख्यानों के मोर्चे बुरी तरह से पराजित हुए। इसलिए पाकिस्तान ने अपने लड़ाकू और विजेता होने के अभिमान को बचाने के लिए नया झूठ बोला। पूर्व कैबिनेट सचिव तिलक देवेसर पाकिस्तानी मानसिकता की व्याख्या करने के लिए लिखते हैं—"पाकिस्तान का प्रोपेगैंडा हमेशा झूठ पर आधारित था। 1965 में भी और 1971 में भी लोगों को बताया गया था कि पाकिस्तानी सेनाएँ जमीन, आसमान और समंदर में हर जगह फतह पर फतह पा रही हैं। 15 दिसंबर तक यही कहानी चली, लेकिन जब वे सरेंडर करने लगे तो उनके सामने समस्या आई कि लोगों को क्या बताया जाए। पहले तो उन्होंने अपने लोगों को बताया ही नहीं। फिर याहया ने देश को संबोधित किया और कहा कि हम लड़ना जारी रखेंगे...." (फजल, 21 अक्टूबर, 2018)।

1971 के युद्ध के बाद सैन्य तानाशाह जियाउल हक ने हजार साल तक युद्ध लड़ने की मानसिकता को नीतिगत रूप देते हुए भारत को हजार घाव देने की नीति को मूर्त रूप दिया। इसके अंतर्गत आतंक के जरिये छद्म युद्ध छेड़ने तथा भारत को अस्थिर करने वाली अन्य भावनाओं और उपकरणों को सहयोग देने को एक नीति के रूप में स्वीकार किया गया। पाकिस्तान की भारत को 'हजार घाव देने की नीति' स्टाफ कॉलेज, क्वेटा में बनाई गई थी। घरेलू मोर्चे पर भी उसका यह परंपरागत आख्यान पूरी तरह ध्वस्त हो चुका था कि पाकिस्तानी मुस्लिम योद्धाओं के सामने भारतीय हिंदू सैनिक कहीं नहीं टिक सकते। अपनी नीतियों को उसने राज्येतर तत्त्वों, स्थानीय विद्रोहियों के समर्थन और प्रोपेगैंडा केंद्रित कर दिया। इसी के तहत भारत को हजार घाव देकर रक्तरंजित करने की नीति को अपनाया। पाकिस्तानी राजनयिक हुसैन हक्कानी का मानना है कि पाकिस्तान जिहाद को भारत को नुकसान पहुँचाने वाला सस्ता विकल्प मानता है। पाकिस्तान को लगता है कि यही सैन्य समानता प्राप्त करने का एकमात्र तरीका है (आईएएनएस, 2016)। परंपरागत युद्ध में मिली लगातार पराजय और युद्धक अभिमान को बचाए रखने की मानसिकता ने पाकिस्तान को निरंतर और अप्रत्यक्ष युद्ध छेड़ने के लिए प्रेरित किया और इसी से जम्मू-कश्मीर में आतंकवाद की शुरुआत हुई।

शोध-प्रविधि

प्रस्तुत शोध आलेख में जम्मू-कश्मीर की संचार-पारिस्थितिकी को प्रभावित करने के लिए पत्रकार-हत्याओं से संबंधित सामग्री को एकत्र कर उनके प्रभाव के आकलन की कोशिश की गई है। इस शोध-आलेख

में ऐतिहासिक सामग्री का विशेष संदर्भ में विश्लेषण करने की कोशिश की गई है। इस हेतु इसमें विषयगय-विश्लेषण पद्धति का उपयोग किया गया है।

जम्मू-कश्मीर की संचार पारिस्थितिकी और पत्रकार हत्याओं का इतिहास

लक्षित हिंसा और लक्षित हत्याएँ आतंकवाद युद्ध की रीढ़ हैं, इसलिए जम्मू-कश्मीर में जब पाकिस्तान प्रेरित आंतकवाद प्रारंभ हुआ तो उसमें लक्षित हिंसाओं का सहारा लिया गया। एक तरफ व्यापक स्तर पर लक्षित हिंसा के निशाने पर कश्मीरी पंडित थे, तो आतंकवाद से सहमति न रखने वाले पत्रकारों को भी लक्षित हिंसा का शिकार बनाया गया। कश्मीरी पंडित संघर्ष समिति के आँकड़ों के अनुसार 1990 में कश्मीर में रह रहे 75 हजार 343 कश्मीरी परिवारों में से 70 हजार से अधिक कश्मीरी परिवार 1990 से 1992 के बीच घाटी से पलायन कर गए। कश्मीरी पंडित संघर्ष समिति के अनुसार 1990 से 2011 के बीच 399 कश्मीरी पंडितों की हत्या की गई। इनमें से अधिकांश की हत्या 1989-1990 के बीच की गई। अब कश्मीरी पंडितों के लगभग 800 परिवार घाटी में रहते हैं (सुब्रमण्यन, 2020)। कश्मीरी पंडितों की हत्या के जरिये आतंकवादी जनसांख्यिकी में बदलाव लाना चाहते थे। कश्मीर के मुस्लिम युवाओं में अन्य धर्मों के प्रति घृणा भरने चाहते थे। इस लक्ष्य को प्राप्त करने में आतंकियों को एक हद तक सफलता भी मिली। दूसरी तरफ पत्रकार हत्याओं के जरिये वे एक बौद्धिक एवं भावनात्मक परिवेश बनाना चाहते थे, जिसमें उनके अमानवीय कृत्यों पर प्रश्न न उठाया जा सके और जो उनके हितों को आगे बढ़ाने में सहयोगी साबित हो।

पत्रकार हत्याओं की शुरुआत

जम्मू-कश्मीर में पत्रकार हत्याओं की शुरुआत और आतंकवाद का उभार एक समकालीन घटना है। आतंकवाद के उभार के दौर में आतंकी-समूह कई तरीकों से संचार-पारिस्थितिकी के अनुकूलन की कोशिश कर रहे थे। इसमें मीडिया-संस्थानों पर हमले करने, पत्रकारों को कश्मीर घाटी छोड़ने के लिए बाध्य करने, समाचार-पत्रों की कॉपियों को कश्मीर घाटी में प्रवेश से रोकने, विज्ञापन को प्रभावित करने जैसी कई रणनीतियाँ अपनाई गईं। इन सबमें पत्रकारों की हत्या सबसे बर्बर और अमानवीय रणनीति थी। अब तक जिन महत्त्वपूर्ण पत्रकारों की हत्या आतंकवादियों द्वारा की गई है, उनका विवरण निम्नवत है। इसमें उन पत्रकारों की हत्याओं का विवरण छोड़ दिया गया है, जिनकी हत्या दुर्घटनावश, क्रास फायरिंग में फँसने या कवरेज करते समय किसी अन्य कारण से हुई है।

प्रेमनाथ भट्ट (27 दिसंबर, 1987) : जम्मू-कश्मीर में पत्रकार-हत्या का पहला बड़ा मामला तब सामने आया, जब आतंकवादियों ने प्रसिद्ध पत्रकार और वकील प्रेमनाथ भट्ट की अनंतनाग में नजदीक से गोली मारकर हत्या कर दी। प्रेमनाथ साहस के साथ कश्मीर में बढ़ रहे अलगाववाद और आतंकवाद के बारे में लिख रहे थे। उनका यह साहस आतंकवादियों को पसंद नहीं आया। प्रेमनाथ भट्ट का जम्मू-कश्मीर में कितना प्रभाव था, इसका अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि उनकी स्मृति में कश्मीरी पंडित प्रतिवर्ष 27 दिसंबर को चेतना दिवस मनाते हैं (अजित, 2018)।

लास्सा कौल (19 फरवरी, 1990) : कश्मीर दूरदर्शन केंद्र के निदेशक लास्सा कौल की हत्या आंतकवादियों ने उनके घर के सामने ही गोली मारकर कर दी थी। वे श्रीनगर के बेमिना इलाके में अपने बूढ़े माँ-बाप को देखने आए थे। इसके कारण कश्मीर में दूरदर्शन का प्रसारण तीन सालों तक बंद रहा। बाद में दूरदर्शन ने उनके नाम से राष्ट्रीय एकीकरण के लिए लास्सा कौल पुरस्कार की शुरुआत की (शर्मा, 15 जून 2018)।

पुष्कर नाथ हंडू (01 मार्च, 1990) : जम्मू-कश्मीर सरकार में सहायक निदेशक, सूचना पी.एन. हंडू की आतंकवादियों ने उस समय हत्या कर दी थी, जब वे अपने घर से कार्यालय जाने की तैयारी कर रहे थे। हंडू बढ़ते हुए आतंकवाद को भारतीय लोकतंत्र के लिए गंभीर खतरा मानते थे और उनका यह विचार आतंकवादियों को असहज कर रहा था। सहायक निदेशक, सूचना के अतिरिक्त पुष्कर नाथ हंडू दैनिक 'अल-सफा' के संपादकों में से एक थे।

मोहम्मद सबा वकील (23 अप्रैल, 1991) : स्थानीय समाचार-पत्र 'अल-सफा' के संपादक मोहम्मद सबा वकील की हत्या आतंकवादियों ने श्रीनगर स्थित उनके कार्यालय में अंधाधुंध गोलियाँ चलाकर कर दी थी। सबा वकील की हत्या स्थानीय अखबारों को आतंकी संगठनों की आलोचना करने से रोकने के लिए की गई थी। सबा वकील की हत्या से स्थानीय मीडिया बुरी तरह आतंकियों के पक्ष में झुक गया।

सैयद गुलाम नबी (16 अक्तूबर, 1992) : जम्मू-कश्मीर सरकार में संयुक्त निदेशक, सूचना सैयद गुलाम नबी का अपहरण कर आतंकवादियों ने हत्या कर दी थी। उनका अपहरण 16 अक्टूबर को किया गया था और बाद में उनका क्षत-विक्षत शरीर 20 अक्टूबर को मिला था। उनके अपहरण और हत्या का आरोप पाक समर्थित जमीयत-उल-मुजाहिदीन के आतंकिवादियों पर लगा।

मुहम्मद शफी (3 अक्तूबर, 1993) : रेडियो कश्मीर के समाचार वाचक मुहम्मद शफी की हत्या आतंकवादियों ने गोली मारकर की थी। शफी की हत्या के बाद रेडियो कश्मीर के पत्रकारों और कर्मचारियों में अफरा-तफरी का माहौल बन गया और इस्तीफों की श्रृंखला आरंभ हो गई। उनकी हत्या से रेडियो कश्मीर की कार्यसंस्कृति बुरी तरह प्रभावित हुई।

गुलाम मोहम्मद लोन (29 अगस्त, 1994) : फ्रीलांस पत्रकार गुलाम मोहम्मद लोन की हत्या आतंकवादियों ने कंगन स्थित उनके घर में कर दी थी। आतंकवादियों ने उनके 7 साल के बच्चे की भी गोली मारकर हत्या कर दी थी। लोन की हत्या का घाटी के आसपास कार्य कर रहे विभिन्न समाचार पत्रों के स्ट्रिंगरों पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा। इसके कारण घाटी की जमीनी सच्चाई का समाचार-पत्रों में प्रकाशन कम हो गया।

मुश्ताक अली (10 सितंबर, 1995) : एएनआई और एएफपी के फोटो-जर्नलिस्ट मुश्ताक अली की हत्या आतंकवादियों ने बम विस्फोट के जरिये कर दी थी। उनकी हत्या मैसेंजर बम के जरिये की गई थी। माना जाता है कि यह मैसेंजर बम 'बीबीसी' और 'रायटर' के संवाददाता युसुफ जमील की हत्या के लिए भेजा गया था, लेकिन हमले में मुश्ताक अली को अपनी जान गँवानी पड़ी। युसुफ जमील के किसी फोन पर व्यस्त होने के कारण वे पैकेट मुश्ताक अली ने अपने हाथ में ले लिए और उस पैकेट में विस्फोट होने से उनकी मौत हो गई।

अल्ताफ अहमद फक्तू (01 जनवरी, 1997) : दूरदर्शन में समाचार-वाचक अल्ताफ अहमद फक्तू की हत्या आतंकवादियों द्वारा कर दी गई थी। फक्तू को उनकी निष्पक्ष पत्रकारिता के लिए काफी समय से आतंकियों की तरफ से धमकी दी जा रही थी। 1994 में भी उनका अपहरण किया गया था, लेकिन वे किसी तरह बचकर निकलने में कामयाब रहे। हत्या के ठीक पहले कश्मीर संबंधी उनके एक कार्यक्रम का प्रसारण दूरदर्शन पर किया गया था।

शैदान शैफी (16 मार्च, 1997) : दूरदर्शन के लिए कार्य करने वाले पत्रकार शैदान शफी की हत्या आतंकवादियों द्वारा कर दी गई थी। गोलीबारी में उनके अंगरक्षक की भी मौत हो गई थी। शैफी दूरदर्शन के रिपोर्टर थे। उनके कश्मीर से संबंधित दो कार्यक्रम 'कश्मीर फाइल' और 'आई विटनेस' अपनी धारदार प्रस्तुति और कंटेंट के कारण बहुत लोकप्रिय थे।

तारिक अहमद (8 अप्रैल, 1997) : एक निजी टेलीविजन चैनल प्रोड्यूसर तारिक अहमद की आतंकवादियों ने हत्या कर दी थी।

परवेज मुहम्मद सुल्तान (31 जनवरी, 2003) : परवेज मोहम्मद सुल्तान एक स्वतंत्र न्यूज एजेंसी 'न्यूज एंड फीचर अलायंस' के संपादक थे। उनकी श्रीनगर के प्रेस इनक्लेव में आतंकवादियों ने हत्या कर दी थी। स्थानीय अखबारों के समाचार कवरेज में उनकी एजेंसी के कंटेंट का बहुत प्रभाव था।

शुजात बुखारी (14 जून, 2018) : शुजात बुखारी की हत्या सच को अवरुद्ध करने की आतंकी संगठनों के प्रयासों का सबसे नया उदाहरण है। वरिष्ठ पत्रकार और 'राइजिंग कश्मीर' के संपादक शुजात बुखारी की तीन-चार आतंकवादियों ने श्रीनगर के प्रेस इनक्लेव में गोली मारकर हत्या कर दी। उनकी हत्या ईद के एक दिन पहले की गई थी। आतंकी हमले में उनके दो अंगरक्षकों की भी हत्या कर दी गई। शुजात बुखारी घाटी के दूसरे सबसे बड़े अखबार 'राइजिंग कश्मीर' के संस्थापक थे।

आतंकवादियों को संभवतः यह आशंका थी कि शासकीय मीडिया तंत्र उनके हितों और कदमों को स्वीकृति नहीं प्रदान करेगा, इसलिए पत्रकारों की हत्या के शुरुआती चरण में सरकारी मीडिया संस्थानों से संबंधित पत्रकारों को निशाना बनाया गया। प्रारंभिक चरण में शासकीय मीडिया संस्थानों से संबंधित पत्रकारों की हत्या और बाद में स्वतंत्र मीडिया संस्थानों से संबंधित पत्रकारों की चरणबद्ध ढंग से की गई हत्याएँ यह स्पष्ट करती हैं कि आतंकी संचार-पारस्थितिकी को प्रभावित करने की एक रणनीति के तहत ये हत्याएँ कर रहे थे। प्रेस का गला घोंटना कश्मीर घाटी के वैमनस्यपूर्ण सत्य को सामने आने से रोकने का एक सुविधाजनक और प्रभावी तरीका था। इसके कारण ही, घाटी में आतंकियों द्वारा किए गए अत्याचार और कुकृत्य सही तरीके से उजागर नहीं हो सके (शर्मा, 16 जून 2018) । इस तरह की हत्याओं के कारण जम्मू-कश्मीर में आतंकवाद के शुरुआती दिनों में आतंकियों के खिलाफ कुछ भी लिखने का साहस किसी को भी नहीं होता था। केवल आतंकियों के अनुकूल तैयार की गई खबरें और आतंकियों के बयान ही समाचार पत्रों में प्रकाशित होते थे। खबरों का प्रकाशन कम ही होता था और समाचार पत्र 150 से अधिक आतंकी संगठनों के हैंडआउट्स से अटे पड़े रहते थे (शर्मा, 16 जून 2018)।

निष्कर्ष

संभवतः यह पत्रकार-हत्याओं का प्रारंभिक दबाव था, जिसके कारण जम्मू-कश्मीर की संचार पारिस्थितिकी आतंकवादियों के दबाव में आ गई। इस दबाव के कारण ही पहली बार आतंकियों की एक ऐसी प्रेस विज्ञप्ति प्रकाशित हुई, जिसके कारण पत्रकारीय पेशे पर सदियों तक प्रश्न उठते रहेंगे। 4 जनवरी, 1990 को 'आफताब' और 'अल-सफा' नामक दो स्थानीय समाचार पत्रों ने हिजबुल मुजाहिद्दीन की वह प्रेस विज्ञप्ति प्रकाशित की, जिसमें कश्मीरी पंडितों से कश्मीर घाटी छोड़ने के लिए कहा गया था (परमेश्वरन, 2021)। इस बात को लेकर कोई संदेह नहीं है कि आतंकवाद के उभार के बाद कश्मीर में मीडिया गंभीर संकटों का सामना कर रहा है, लेकिन स्थापित विश्वास के उलट संकट सुरक्षा बल नहीं, बल्कि अज्ञात हमलावर ही प्रेस का गला घोंट रहे हैं। कश्मीर में अज्ञात हमलावर शब्द का उपयोग करना पत्रकारों को सुरक्षा का भाव देता है (कुँवर, 2021)। इससे यह स्पष्ट होता है कि पत्रकार-हत्याओं ने जम्मू-कश्मीर की संचार-पारिस्थितिकी को किस तरह प्रभावित किया है। पत्रकार हत्याओं ने भय का एक ऐसा माहौल बना दिया है कि वहाँ पेशेवर नैतिकता और दायित्वों का निर्वहन असंभव हो गया है। भय संचार पारिस्थितिकी में इस कदर घुस चुका है कि अधिकांश समाचार-पत्र और समाचार-चैनल आतंकवादियों द्वारा की गई पत्रकार हत्याओं को अज्ञात हमलावरों द्वारा की गई हत्या कहकर अपना पल्ला झाड़ लेते हैं।

आतंकवादियों द्वारा पत्रकार-हत्याओं से जम्मू-कश्मीर की संचार-पारिस्थितिकी की निष्पक्षता न केवल बुरी तरह प्रभावित हुई है, बल्कि धीरे-धीरे यह आतंकवादियों के पक्ष में कार्य करने लगी है। जम्मू-कश्मीर में भी 1889-90 के बाद आतंकवाद का जो दौर प्रारंभ हुआ, तो लगभग उसी समय से पत्रकार-हत्याओं का दौर भी प्रारंभ होता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि आतंकवादियों ने जम्मू-कश्मीर की संचार-पारिस्थितिकी को अपने पक्ष में करने के लिए पत्रकार-हत्याओं का उपयोग एक रणनीति के रूप में किया था। उनकी यह रणनीति सफल भी रही, क्योंकि कश्मीरी हिंदुओं के व्यापक आंतरिक विस्थापन के बाद यह स्थानीय, राष्ट्रीय या अंतरराष्ट्रीय स्तर पर मानवाधिकार या जातीय संहार के मुद्दे के रूप में विमर्श के केंद्र में नहीं आ सका, जबकि जम्मू-कश्मीर में आतंकवादियों से मुठभेड़ के अभियानों को मानवाधिकार और सांप्रदायिक दृष्टि से प्रस्तुत करने का नया चलन प्रारंभ हुआ। पत्रकार आतंकवादियों के लिए एक आसान लक्ष्य होते हैं, लेकिन सूचना-पारिस्थितिकी का महत्त्वपूर्ण घटक होने के कारण पत्रकारों की भूमिका सुरक्षा की दृष्टि से भी बहुत महत्त्वपूर्ण हो जाती है। ऐसे में यह आवश्यक हो जाता है कि व्यवस्थागत स्तर पर एक ऐसे परिवेश का निर्माण किया जाए, जिसमें पत्रकार अपने जीवन और पेशेगत जिम्मेदारियों के बारे में अधिक आश्वस्त हों। पत्रकार तथा उनके परिवारों को जीवन-बीमा का सुरक्षा कवर प्रदान करना एक ऐसा ही कदम हो सकता है। इसके साथ यह भी आवश्यक है पत्रकार-हत्या में सम्मिलित लोगों को न्याय के कठघरे में खड़ा कर उनकी सजा सुनिश्चित की जाए। भारत में पत्रकार-हत्याओं में हत्यारों को सजा सुनाने का रिकॉर्ड बहुत उत्साहजनक नहीं है। 1992 के बाद जिन 35 पत्रकारों की हत्या भारत में की गई है, उन हत्याओं में केवल दो अपराधियों को सजा सुनाई गई है (इफ्तिखार, 2019)। ऐसे में फास्ट ट्रैक कोर्ट में पत्रकार-हत्याओं की सुनवाई पत्रकारों में अपने पेशेगत जिम्मेदारी के लिए

नई आशा जगा सकती है, ताकि वे कुछ हद तक निर्भीक होकर अपनी पेशेगत नैतिकताओं और दायित्वों का निर्वहन कर सकें।

संदर्भ

अजित, ए. (27 दिसंबर, 2018). प्रेमनाथ भट्ट-अ विजनरी. *डेली एक्सेल्सियर*. https://www.dailyexcelsior.com/prem-nath-bhat-a-visionary/ से पुन:प्राप्त.

आईएएनएस. (17 मई, 2016). पाकिस्तानी सी जिहादी एज लो कॉस्ट ऑप्शन टू ब्लीड इंडिया-हक्कानी. *बिजनेस स्टैंडर्ड*. https://www.business-standard.com/article/news-ians/pakistan-sees-jihad-as-low-cost-option-to-bleed-india-haqqani-ians-interview-116051700577_1.html से पुन:प्राप्त.

इफ्तिखार, ए. (8 अप्रैल, 2019). द अनसाल्वड असैसिनेशन ऑफ जर्नलिस्ट्स, *कोलंबिया जर्नलिज्म रिव्यू*. https://www.cjr.org/special_report/shujaat-bukhari-kashmir-journalist.php से पुन:प्राप्त.

कुँवर, एन. (4 फरवरी, 2021). फेक न्यूज एंड कश्मीर मीडिया, *ब्राइटर कश्मीर*. http://brighterkashmir.com/news/fake-news-and-kashmir-media on से पुन:प्राप्त.

परमेश्वरन, एम. (9 अप्रैल, 2021). कश्मीर: एन ओवरव्यू ऑफ दे सेवेन एक्जोडस ऑफ कश्मीरी हिंदूज (भाग.3). *प्रज्ञता*. https://pragyata.com/kashmir-an-overview-of-the-seven-exoduses-of-hindus-part-3/ से पुन:प्राप्त.

फजल, आर. (31 अगस्त, 2015). 1965 युद्ध के पचास सालः वे 22 दिन. *बीबीसी हिंदी*. https://www.bbc.com/hindi/india/2015/08/150830_1965_indo_pak_war_teaser_pk से पुन:प्राप्त.

फजल, आर. (21 सितंबर, 2015). 1965 युद्ध : अयूब की गलती पर शास्त्री भारी. *बीबीसी हिंदी*. https://www.bbc.com/hindi/india/2015/09/150921_1965_indo_pak_war_21_leadership_pk से पुन:प्राप्त.

फजल, आर. (21 अक्टूबर, 2018). विवेचना : याहया की अय्याशी की वजह से पाकिस्तान हारा था 1971 का युद्ध? *बीबीसी हिंदी*. https://www.bbc.com/hindi/magazine-45917790 से पुन:प्राप्त.

शर्मा, पी. (15 जून, 2018). शुजात बुखारी इज लेटेस्ट एडिशन टू लॉंग लिस्ट ऑफ जर्नलिस्ट्स किल्ड ब्रूटली इन जम्मू एंड कश्मीर. *न्यूज 18*. https://www.news18.com/news/india/shujaat-bukhari-latest-addition-to-long-list-of-journalists-killed-brutally-in-jammu-kashmir-1779089.html से पुन:प्राप्त.

शर्मा, वी. (16 जून, 2018). कश्मीर प्रेस इन पेरिल, द *ट्रिब्यून*. https://www.tribuneindia.com/news/archive/comment/kashmir-press-in-peril-605799 से पुन:प्राप्त.

सुब्रमण्यन, एन. (24 जनवरी, 2020). एक्सप्लेंड : द कश्मीरी पंडित ट्रेजेडी. द *इंडियन एक्सप्रेस*. https://indianexpress.com/article/explained/exodus-of-kashmiri-pandits-from-valley-6232410/ से पुन:प्राप्त.

संचार माध्यम | खंड 34(1) : 79-85, जनवरी-जून 2022
आईएसएसएन: 2321-2608

जम्मू-कश्मीर के सामाजिक यथार्थ और मीडिया कवरेज के द्वंद्व का अध्ययन

सूर्यप्रकाश[1] और डॉ. जयप्रकाश सिंह[2]

सारांश

भारत में जाति व्यवस्था और समाज पर उसके प्रभाव का प्रश्न हमेशा हिंदू समाज को लेकर उठता रहा है। इसे लेकर अकादमिक जगत् में भी व्यापक चिंतन रहा है और इस पर विस्तृत लेखन और अध्ययन भी हुआ है, परंतु भारत का मुस्लिम समाज भी जाति व्यवस्था और समाज पर इसके प्रभाव से अछूता नहीं है और इससे जुड़ी तमाम चीजें उसमें भी समाहित हुई हैं। कालांतर में बड़े पैमाने पर हिंदुओं के इस्लाम में मतांतरण के बाद भी सदियों से उनके जीवन का हिस्सा रही चीजें जस-की-तस उनके साथ बनी रही हैं। इनमें से एक जाति व्यवस्था भी है। शेष भारत की तरह जम्मू-कश्मीर के मुस्लिम समाज में भी ऐसा ही देखने को मिलता है। यही नहीं, भारतीय और विदेशी मूल का प्रश्न भी जम्मू-कश्मीर के मुस्लिम समुदाय में रहा है। राज्य में व्याप्त समस्याओं को लेकर जब भी बात होती है तो राष्ट्रीय और प्रादेशिक मीडिया अक्सर इसे हिंदू और मुस्लिम के प्रश्न के तौर पर ही देखता रहा है। हालाँकि यह विचार सतही रहा है और पूरे परिदृश्य को स्पष्ट नहीं करता है। कश्मीर के मुस्लिम समाज में भी विदेशी और भारतीय मूल, आदिवासी गुज्जर बकरवाल और शहरी मुस्लिम, अशरफ, अजलाफ और अरजाल मुस्लिम का वर्गीकरण देखने को मिलता है। ऐसे में कश्मीर के मुस्लिम समुदाय को समरूप या सजातीय तौर पर देखना उचित नहीं होगा। कश्मीर के मुस्लिम समाज के वास्तविक स्वरूप को समझने के लिए उसके भीतर मौजूद विविधता को भी गहराई से समझने की आवश्यकता है। जम्मू-कश्मीर के वास्तविक प्रश्नों के हल के लिए वहाँ के समाज से संवाद की आवश्यकता है। सामाजिक और राजनीतिक एकीकरण के लिए यह अहम है, लेकिन इसके लिए सभी वर्गों की आकांक्षाओं, इतिहास, विचार और उनकी स्थिति के बारे में समझना होगा। इस स्थिति में जम्मू-कश्मीर के मुस्लिम समाज की विविधताओं को समझना जरूरी हो जाता है। प्रस्तुत शोध आलेख के माध्यम से जम्मू-कश्मीर के मुस्लिम समाज की विविधताओं, वर्ग भेद, मूल और जीवनशैली में अंतर और इस संबंध में मीडिया कवरेज के द्वंद्व को समझने का प्रयास किया गया है।

संकेत शब्द : जम्मू-कश्मीर, मुस्लिम समाज, कश्मीरी मुस्लिम समाज, गुज्जर बकरवाल, मीडिया कवरेज

प्रस्तावना

संचार माध्यम मानव जीवन का अहम हिस्सा है और किसी भी सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक मामले में लोग उनके जरिये उपलब्ध सूचनाओं के आधार पर ही विमर्श करते हैं और किसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं। स्पष्ट है कि संचार माध्यम हमारी दृष्टि को प्रभावित करने की क्षमता रखते हैं और यदि उनकी रिपोर्टिंग में अनवरत कोई तथ्य आए तो हम उसे ही सत्य मान लेते हैं, भले ही वह अर्धसत्य हो या फिर आभासी सत्य हो। जम्मू-कश्मीर का विषय भी ऐसा ही रहा है, जहाँ भारत की स्वतंत्रता के बाद से ही पूरा विमर्श हिंदू बनाम मुस्लिम का बनाने की कोशिश की गई है। मीडिया की रिपोर्टिंग में भी जम्मू-कश्मीर में व्याप्त समस्याओं को हिंदू और मुस्लिम का प्रश्न बताते हुए ही विषय को रखा गया है, किंतु संचार माध्यमों की रिपोर्टिंग की इस एकरूपता में जम्मू-कश्मीर के समाज की विविधता और उसके अंतर्निहित प्रश्न नेपथ्य में जाते रहे हैं। ऐसा ही एक विषय जम्मू-कश्मीर के मुस्लिम समाज में व्याप्त विविधता, वर्ग भेद, मूल और नस्ल के अंतर का भी है। समाचार पत्र, टेलीविजन, पत्रिकाओं और अन्य माध्यमों की रिपोर्टिंग पर दृष्टि डालें तो ऐसा प्रतीत होता है कि जम्मू-कश्मीर का मुस्लिम समाज समरूप है और उसकी सीधी प्रतिस्पर्धा हिंदू बहुल भारत के केंद्रीय सत्ता प्रतिष्ठान से रही है, किंतु यह अर्धसत्य है, क्योंकि मुस्लिम समाज उस प्रकार से समरूप और एकरूप नहीं है, जैसा मीडिया की रिपोर्टिंग में हमें दिखता है।

जम्मू-कश्मीर को लेकर भारतीय मीडिया में जब भी बात होती है तो अक्सर उसका प्रतिनिधित्व एक मुस्लिम बहुल राज्य (वर्तमान में केंद्र शासित प्रदेश) के तौर पर रहा है, किंतु जम्मू-कश्मीर भी देश के अन्य हिस्सों की तरह ही बहुलतावादी संस्कृति का क्षेत्र रहा है। यहाँ शैव, वैष्णव, इस्लाम, बौद्ध और सिख गुरु परंपरा को मानने वाले लोग सदियों से हैं। यही नहीं, शेष भारत की तरह ही हिंदू परंपराओं का असर जम्मू -कश्मीर में भी गहराई से व्याप्त है। इनमें से ही एक बिंदु जम्मू-कश्मीर के मुस्लिम समाज की जाति व्यवस्था भी है। भले ही मुस्लिम समाज के नेता अपने मजहब में समानतावादी विचार को मानने की बात करते हैं, लेकिन जाति के आधार पर उनके वर्गों, कार्य और स्तर का निर्धारण देखने को मिलता है। भारत की मुस्लिम आबादी में से करीब 90 फीसदी हिस्सा वही है, जो एक दौर में मतांतरण के चलते हिंदू से मुसलमान बना था। भारत का यही ट्रेंड जम्मू-कश्मीर में भी देखने को मिलता है। यहाँ आज हम जो वानी, भट, पंडित, लोन, काचरू, मट्टू, डार जैसे अनेक उपनाम देखते हैं, वे कश्मीरी हिंदुओं से ही मिलते-जुलते हैं और एक दौर में मतांतरण के बाद भी उन्होंने इसे अपनाए रखा है। जम्मू-कश्मीर का मुस्लिम समाज भी कई विविधताओं से भरपूर है और वर्ग एवं जातिभेद जैसी समस्याएँ भी उसमें व्याप्त हैं, लेकिन जम्मू-कश्मीर और समस्त देश के मीडिया में जब भी राज्य की समस्याओं को लेकर बात होती है तो इसे अक्सर हिंदू-मुस्लिम के प्रश्न के तौर पर पेश किया जाता है। मीडिया की यह रिपोर्टिंग सतही और

[1]पीएचडी शोधार्थी, कश्मीर अध्ययन केंद्र, हिमाचल प्रदेश केंद्रीय विश्वविद्यालय, धर्मशाला. ईमेल:suryaprakash013@gmail.com
[2]असिस्टेंट प्रोफेसर, कश्मीर अध्ययन केंद्र, हिमाचल प्रदेश केंद्रीय विश्वविद्यालय, धर्मशाला. ईमेल : jpsh.pol@gmail.com

एकतरफा-सी मालूम पड़ती है। इसमें समस्त मुस्लिम समाज को सजातीय दिखाते हुए उनके हिंदू बहुल भारत से असंतोष की बात की जाती है। भले ही यह बात कुछ हद तक सही है, लेकिन यह पूरा सच नहीं है। जम्मू-कश्मीर के मुस्लिम समाज के बारे में बात करते हुए मीडिया में आंतरिक संरचना की समझ का अभाव दिखता है। जम्मू-कश्मीर के मुस्लिम समाज में जातिगत संरचना भी है। इसके अलावा नस्लीय अंतर भी देखने को मिलता है। एक तरफ जम्मू-कश्मीर में पश्चिम एशिया से आए लोगों के वंशज रहते हैं तो वहीं बड़ा वर्ग मतांतरित हुए मूल कश्मीरी मुसलमानों का भी है। ऐसे में किसी भी मसले पर रिपोर्टिंग करते हुए मुस्लिम समाज की विविधताओं का भी ध्यान रखा जाना चाहिए। इससे कश्मीर के मुस्लिम समाज की आकांक्षाओं, परेशानियों और विचारों के बारे में जानने में मदद मिलेगी।

शोध प्रविधि

कश्मीरी मुस्लिम समाज ऊपरी तौर पर समरूप दिखता है, लेकिन आतंरिक रूप से देखें तो उसमें भी तमाम वर्ग, जाति एवं मूल के भेद हैं, किंतु मीडिया कवरेज में समाज की वास्तविकता नहीं झलकती है। प्रस्तुत शोध आलेख में समाज की आंतरिक संरचना और उस पर मीडिया कवरेज की विषमता पर प्रकाश डाला गया है। समाज के यथार्थ से परे मीडिया रिपोर्टिंग के द्वंद्व को समझने के लिए कुछ केस स्टडी की गई हैं। इन केस स्टडीज में ऐसी विषमताओं को उकेरा गया है, जहाँ मीडिया कवरेज अलग दिखती है, जबकि समाज का यथार्थ अलग है। कश्मीरी मुस्लिम समाज की आतंरिक संरचना को समझते हुए समस्याओं के हल के लिए संवाद की उपयोगिता को इसमें बताया गया है।

कश्मीरी मुस्लिम समाज

जम्मू-कश्मीर के मुस्लिम समाज की व्यापक समझ के लिए हमें उसके मूल, नस्ल, जातीय और भाषाई भेद को समझना होगा। शेष भारत समेत दक्षिण एशिया के अन्य हिस्सों की तरह ही जम्मू-कश्मीर में भी मुस्लिमों में हमें जातीय, नस्लीय, विदेशी और भारतीय मूल के आधार पर वर्गीकरण देखने को मिलते हैं। जम्मू-कश्मीर के संदर्भ में देखें तो एक बड़ा वर्ग कालांतर में हिंदू धर्म से धर्मांतरित हुए कश्मीरी मुस्लिमों का है, जो वर्तमान में भी अपनी परंपराओं, जातिगत पेशे अथवा प्रतीकों को अपनाए हुए हैं। इसके अलावा एक वर्ग वह है, जो एक दौर में ईरान, अफगानिस्तान, मंगोलिया और तुर्की से आए शासकों, धर्म प्रचारकों और सैनिकों के वंशजों का है। आज भी इनके नाम ईरान, अफगानिस्तान और तुर्की जैसे देशों के शहरों से मिलते-जुलते हैं। कश्मीरी समाज की गहरी समझ रखने वाले केंद्रीय विश्वविद्यालय हिमाचल प्रदेश के पूर्व कुलपति प्रोफेसर कुलदीप चंद अग्निहोत्री कहते हैं कि अंद्राबी, हमदानी, गिलानी, बगदादी, बदख्शनी, शिराजी जैसे उपनाम वाले मुस्लिम कालांतर में पश्चिम एशिया से आए लोगों के वंशज हैं। यही नहीं वे इस वर्ग के लिए एक टर्म 'एटीएम' का भी इस्तेमाल करते हैं, जिसका अर्थ अरब-सैयद, तुर्क और मंगोल से है। वे कहते हैं कि कश्मीरी मुस्लिम समाज का एटीएम वर्ग विदेशी मूल का है और अन्य मुस्लिम समुदाय के लोग कश्मीरी मूल हैं। प्रोफेसर अग्निहोत्री कहते हैं कि कश्मीर को मुस्लिम प्रश्न बताते हुए हम एक तरह का सरलीकरण करते हैं, जो पूरे मसले को समझने में मदद नहीं करता है। इससे सही तस्वीर नहीं उभरती है और एक भ्रम का निर्माण होता है। मीडिया रिपोर्टिंग में यदि मुस्लिम समाज की इन विविधताओं का ध्यान रखा जाए तो देश को जम्मू-कश्मीर की वास्तविक तस्वीर को देखने में मदद मिलेगी। अशरफ, अजलाफ और अरजाल मुस्लिमों के बीच बँटे वर्गों के अलग-अलग मुद्दे और परेशानियाँ हैं (अग्निहोत्री, 2021)।

कश्मीरी मुस्लिम समाज का वर्गीकरण

कश्मीर विश्वविद्यालय में समाजशास्त्र विभाग के हेड रहे और जम्मू-कश्मीर के शीर्ष समाजशास्त्री डॉ. बशीर अहमद डाबला ने भी मुस्लिम समाज में वर्ग भिन्नता, मूल भिन्नता और पेशेवर अंतर की बात पर प्रकाश डाला है। वे कहते हैं कि भले ही कश्मीरी मुस्लिम समाज ऊपरी तौर पर एक समान दिखता है, लेकिन उसमें भी हिंदू समाज की तरह जातीयता दिखती है। इसकी वजह यह है कि बड़ा वर्ग कालांतर में हिंदू से ही मतांतरित होकर मुस्लिम बना है। वे इस वर्ग को स्थानीय मुस्लिम करार देते हैं, जबकि पश्चिम एशिया के देशों से आए लोगों के वंशजों का वे विदेशी मुस्लिम के तौर पर वर्गीकरण करते हैं। कश्मीरी मुस्लिम समुदाय में भी देश के अन्य हिस्सों की तरह ही अशरफ, अजलाफ और अरजाल की परिभाषा देखने को मिलती है (डाबला, 2012)।

अशरफ मुस्लिम : इन मुसलमानों को विदेशी मूल के लोगों में शुमार किया जाता है, जो दूसरे देशों से आए शासकों या मजहब का प्रचार करने आए लोगों का वंशज माना जाता है। इनमें मुख्य तौर पर मुस्लिमों की चार बिरादरियाँ सैयद, शेख, पठान और मुगल शामिल हैं। इनमें भी सैयद खुद को पैगंबर मोहम्मद का वंशज मानते हैं। इसके अलावा शेखजादेह यानी शेखों को सऊदी अरब के ही कुरैश कबीले का वंशज माना जाता है। कहा जाता है कि इस कबीले का ही एक दौर में मक्का और मदीने पर नियंत्रण था। इस कबीले की ही एक शाखा बनू हाशिम में पैगंबर मोहम्मद का जन्म माना जाता है। अब पठानों की बात करें तो मुस्लिम समुदाय के इस वर्ग का ताल्लुक अफगानिस्तान के बड़े हिस्से से है। इसके अलावा चौथा वर्ग मुगलों का है, जो खुद को मुगल शासक बाबर से जोड़कर देखता है।

अजलाफ मुस्लिम : जम्मू-कश्मीर में मुस्लिम समुदाय की तीन श्रेणियों में दूसरी अजलाफ मुस्लिमों की है। इनमें वे मुस्लिम आते हैं, जो हिंदुओं से ही मतांतरित माने जाते हैं, लेकिन इनका ताल्लुक किसी पेशे से रहा है। इनमें दर्जी, धोबी, बढ़ई, फकीर, नाई, जुलाहा, कुम्हार, कंजर, मनिहार, तेली आदि शामिल हैं।

अरजाल मुस्लिम : हिंदू धर्म से इस्लाम में जाने वाले दलित बिरादरी के लोगों को अरजाल मुस्लिम कहा जाता है। कश्मीर में आज भी यह समुदाय उपेक्षित है और उन्हें सर्विस कम्युनिटी माना जाता है। इन्हें भंगी, गधारी, लाल बेगी आदि नामों से जाना जाता है। इस प्रकार देखें तो कश्मीर में भी शेष भारत की तरह मूल के मामले में मुस्लिमों के दो वर्ग मौजूद हैं। एक कश्मीरी मूल के मुस्लिम हैं, जो आमतौर पर अजलाफ और अरजाल मुस्लिम कहलाते हैं और दूसरा वर्ग अशरफों का है, जिनमें सैयद, पठान, मुगल आदि आते हैं और खुद को इस्लाम की उच्च जातियों में शुमार करते हैं। सुप्रसिद्ध समाजशास्त्री डॉ. बशीर अहमद डाबला ने अपने अध्ययन में जम्मू-कश्मीर के मुस्लिम समाज में व्याप्त अंतर पर प्रकाश

डाला है। अपनी पुस्तक 'डायरेक्टरी ऑफ कास्ट्स इन कश्मीर' में डॉ. डाबला लिखते हैं—"हमारे सामाजिक अध्ययन के मुताबिक कश्मीरी मुस्लिम समाज में जातीय या फिर वर्ग देखने को मिलते हैं। ये वर्ग इस प्रकार हैं :

(1) सैयद समुदाय
(2) खान समुदाय
(3) पेशेवर समुदाय
(4) सेवा समुदाय अथवा सर्विस कम्युनिटी।

ये सभी वर्ग जातीय आधार पर अंतर रखते हैं, लेकिन इनमें मुख्य अंतर मूल का भी है। सैयद और खान बताने वाले अधिकतर लोग कश्मीर में विदेशी मूल के हैं, जबकि पेशेवर और सर्विस कम्युनिटी के मुस्लिम कश्मीरी मूल के ही हैं। उल्लेखनीय है कि विदेशी मूल के सैयद और खान समुदायों के लोग ही कश्मीर में शिक्षा, रोजगार, सरकार और प्रशासन में प्रतिनिधित्व के मामले में आगे रहे हैं। यही नहीं, सामाजिक कार्यक्रमों, रिश्तों, वैवाहिक संबंधों आदि में भी यह चीज देखने को मिलती है" (डाबला, 2012)।

कश्मीरी मुस्लिम समाज और प्रतिनिधित्व का प्रश्न

भारत की आजादी से पहले और उसके बाद कई दशकों तक कश्मीर घाटी में पंडित एक बड़ा शिक्षित समुदाय रहा है। इस समुदाय के लगभग सभी लोग साक्षर ही नहीं, बल्कि शिक्षित थे। इसके बाद मुस्लिम समुदाय की बात करें तो उनमें शिक्षा के मामले में सबसे अग्रणी सैयद थे। यही नहीं, 1990 के दशक में जब कश्मीरी पंडितों का पलायन हुआ तो सैयद ही बचे, जो शिक्षा, रोजगार, प्रशासन और सत्ता में अग्रणी थे। डॉ. डाबला अपने अध्ययन में लिखते हैं कि आज के दौर में भी सैयद अन्य बिरादरियों की तुलना में शिक्षा के क्षेत्र में आगे हैं। यहाँ तक कि इस समुदाय की महिलाएँ भी अन्य वर्गों की तुलना में शिक्षा की दिशा में आगे बढ़ी हैं, जबकि अन्य वर्ग पर्दा प्रथा जैसी बुराइयों से आज भी संघर्ष कर रहे हैं। डॉ. डाबला कहते हैं कि शिक्षा की तरह ही रोजगार के मामले में भी सामुदायिक प्रतिनिधित्व की बात करते हैं तो सैयद अन्यों की तुलना में आगे दिखते हैं। वे कहते हैं कि सैयद और पठान यानी खान सरकारी नौकरियों में आजादी के बाद अग्रणी रहे हैं। एक तरफ शिक्षा के क्षेत्र की नौकरियों में सैयद आगे रहे हैं तो वहीं प्रशासनिक नौकरियों में पठानों की बहुलता रही है। डॉ. डाबला लिखते हैं कि सदियों से पठान शासकों के करीब रहे हैं और उनके राज्यों में ओहदों पर रहे हैं। ऐसे में उन्हें प्रशासन का अनुभव रहा है और उनका फोकस ऐसी ही नौकरियों पर देखने को मिला है, हालाँकि 1960 और 1970 के दशक के बाद पेशेवर मुस्लिम बिरादरियों के लोग भी नौकरियों में आगे आए हैं।

डॉ. डाबला लिखते हैं कि भले ही कश्मीरी मुस्लिम समाज वैचारिक तौर पर समानता के व्यवहार की बात करता है, किंतु भीतरी तौर पर उसमें भी कई वर्ग हैं और उनमें आपस में भेद भी मौजूद हैं। वे कई समुदायों का उदाहरण देते हुए बताते हैं कि कैसे सैयद मुस्लिमों के किचन में वे प्रवेश नहीं कर सकते हैं और उनके बर्तन भी अलग होते हैं। सैयद समुदाय खुद को पैगंबर मोहम्मद का वंशज मानता रहा है और अब स्थिति यह है कि मूल कश्मीरी समुदायों में भी सैयद उपनाम अपनाने की होड़ देखने को मिलती है। इस समुदाय का शिक्षा, मस्जिद, मदरसों, धार्मिक कार्यक्रमों में वर्चस्व रहा है। आमतौर पर कश्मीर की मस्जिदों में मौलवी इसी समुदाय के पाए जाते रहे हैं।

कश्मीरी मुस्लिम के अंतर्द्वंद्व को 'द वायर' में प्रकाशित अदनान भट की एक रिपोर्ट भी सामने लाती है। वे एक परिवार का उदाहरण देते हुए कहते हैं—"उनका बेटा एक लड़की से अफेयर में था, जो कथित तौर पर निचली बिरादरी की थी और वह जीलानी की माँ को स्वीकार नहीं था।" युवक के हवाले से वे लिखते हैं—"मैंने कई महीनों तक माँ को समझाया, लेकिन वे कुछ भी समझने को तैयार ही नहीं थीं। उनके लिए उसकी जाति से महत्त्वपूर्ण कुछ नहीं था। वे कहती थीं कि मैं अपने रिश्तेदारों को क्या बताऊँगी" (भट, 2017)? यह रिपोर्ट बताती है कि कश्मीर के समाज में किस तरह का अंतर्द्वंद्व है और रिश्ते तक में मुस्लिम समाज के भीतर इसे लेकर काफी मतभेद हैं।

मुस्लिम समाज में कश्मीरी और विदेशी मुस्लिम मूलों के मूल का अंतर नामों से भी स्पष्ट होता है। अलगावादी संगठन हुर्रियत कॉन्फ्रेंस के नेता सैयद अली शाह गिलानी और उसी की महिला विंग की नेता आसिया अंद्राबी के नामों से यह उजागर होता है कि वे पश्चिम एशिया के देशों से आए लोगों के वंशज हैं। डॉ. बशीर अहमद डाबला ने अपने अध्ययन में कश्मीरी समाज में प्रयोग होने वाले 700 उपनामों का जिक्र किया है और उनके मूल, सामाजिक वर्ग, जाति, पेशे जैसी चीजों पर प्रकाश डाला है। वे अपने अध्ययन में बताते हैं कि विदेशी मूल के मुस्लिमों के नाम उनके शहरों के अलावा अन्य कई चीजों पर भी हैं, जैसे किसी शासन, वंश अथवा नस्ल के नाम पर हैं। उदाहरण देते हुए वे बताते हैं कि अब्बास उपनाम विदेशी मूल का है और इसका ताल्लुक अब्बास वंश से है। इसी प्रकार अफ्फांदी एक सैयद उपनाम है और विदेशी मूल का है। मुफ्ती उपनाम भी सैयद समुदाय का प्रतिनिधित्व करता है। इसी प्रकार अंसार, अंसारी, अनवरी, अशरफ, अशरफी और अशराफी भी विदेशी मूल के ही उपनाम हैं। बाबरी, बख्तियार, बख्तावर आदि भी विदेशी मूल के ही उपनाम हैं, जो एक दौर के शासकों अथवा आक्रांताओं के नाम पर आधारित हैं। क्षेत्र के आधार पर जम्मू-कश्मीर में मुस्लिमों के कुछ और उपनाम हैं, जैसे बलखी, बुखारी। बलखी से अभिप्राय बलख से आए लोगों और बुखारी से बुखारा से आए लोगों से है। उपर्युक्त उदाहरणों से आसानी से समझा जा सकता है कि जम्मू-कश्मीर में बड़ी संख्या में कश्मीरी मुस्लिम हैं, लेकिन ऐसे लोगों की भी संख्या कम नहीं है, जो कालांतर में विदेशों से आए शासकों के वंशज हैं या फिर मजहब के प्रचार के लिए आए लोगों के वंशज हैं। इसके अलावा उपनाम लिखने के तरीके के आधार पर भी कुछ अंतर व्याप्त हैं। जैसे नाम के पहले मीर उपनाम लिखने वाले विदेशी मूल के मुस्लिम हैं, जबकि नाम के बाद में मीर लिखने वाले भारतीय मूल के मुस्लिम हैं।

कश्मीर में विदेशी मूल के मुस्लिम

डॉ. डाबला अपने अध्ययन में लिखते हैं—"गिलानी, हमदानी, मुगल, काशानी, काबुली, बुखारी, शिराजी, पश्तूनी, बगदादी और बदशख्न उपनाम उन मुस्लिमों के हैं, जो विदेश से आए लोगों के वंशज हैं।" 'कंवर्जंस टू इस्लाम इन द वैली ऑफ कश्मीर' शीर्षक से लिखे अपने

शोध पत्र में अजीज अहमद कहते हैं—"घाटी में इस्लाम मध्य एशिया और खुरासान (आज के दौर का ईरान एवं अफगानिस्तान का कुछ हिस्सा) से आया था। ड्रेस, लाइफ स्टाइल और कुछ हद तक आर्किटेक्ट में आज भी वहाँ का असर देखने को मिलता है" (अहमद, 1979)।

कश्मीरी पेशेवर मुस्लिम समुदाय

डॉ. डाबला लिखते हैं कि करीब 600 साल पहले हिंदू समुदाय से ही इस्लाम में मतांतरित हुए कुछ समुदाय पेशेवर माने जाते हैं। भारत में इस्लाम में प्रचलित जातियों के आधार पर देखें तो इन्हें अजलाफ में शामिल किया जा सकता है। इनके प्रचलित उपनाम हैं वानी, जरगर, नजर, भुरू, दलाल, किताब, भट, नक्श, लोन, काचरू, डार, खांदे, पारे, वागे, कोजगर, पीर और मौलवी।

कश्मीर में अरजाल मुस्लिम

यों तो देशभर में शेख उपनाम को उच्च वर्ग में शामिल किया जाता है, लेकिन कश्मीर में थोड़ा अंतर है। नाम से पहले शेख उपनाम लिखने वाले लोगों को तो वर्गीकरण में ऊपर माना जाता है, लेकिन नाम के बाद लिखने वाले अरजाल श्रेणी में आते हैं। इसके अलावा वाटाल, वाजा, सोफी, धोबी, दांदरू, बिसाती, गिलकार, हजाम, मूची, बंगी, मिस्त्री, सिराज, नानवई आदि को निम्न श्रेणी के मुस्लिमों में शुमार किया जाता है। 'द क्विंट' में प्रकाशित अपनी एक रिपोर्ट में नंदिनी सेन बताती हैं—"कश्मीरी मुस्लिमों में एक समुदाय शेख (वाटाल) भी है। ये वे लोग हैं, जो पीढ़ियों से नालों की सफाई, झाड़ू आदि लगाने का काम करते हैं। लंबे समय से वे गरीबी, भेदभाव के शिकार हैं। शेष भारत में जैसे दलित हैं, वैसे ही ये भी अलग-थलग नजर आते हैं। इनका काम मरे हुए जानवरों की खाल निकालना, सीवर आदि की सफाई करना और झाड़ू आदि लगाना है। वाटाल बिरादरी में ही शेख एक उपसमुदाय है, हालाँकि सभी वाटाल शेख नहीं होते" (सेन, 2020)।

पंडितों और मुस्लिमों के उपनामों में समानता

कश्मीरी मुस्लिमों का प्रचलित उपनाम डार कश्मीरी पंडितों के धर से निकला है। इसके अलावा भट, हांदू, कौल, मट्टू, काचरू, खेर, काक, जलाली, जू, वली, पंडित, मुंशी, मल्ला, बजाज, मांडू, महाजन, रामशू, रैना, साहू, जाडू, मलिक, नाथ और काटजू जैसे उपनाम भी पंडित और मुस्लिम दोनों ही समुदायों के लोग साझा करते हैं। इसे और विस्तार देते हुए चिदानंद राजघट्टा 'इकॉनामिक टाइम्स' में प्रकाशित अपने लेख में कहते हैं—"पाकिस्तान के मौजूदा सेनाध्यक्ष कमर जावेद बाजवा का सरनेम बाजवा भी एक जाट सरनेम है। उनका भले ही मतांतरण हो गया है, किंतु विरासत में उपनाम को वह अब भी लगाते हैं। इसी तरह पीसीबी के चेयरमैन नजम सेठी के नाम में लगा सरनेम सेठी भी खत्रियों का उपनाम है। यही नहीं 'टाइम्स ऑफ इंडिया' के लिए रिपोर्टिंग करने वाले सलीम पंडित भले ही आज मुस्लिम हैं, लेकिन पंडित सरनेम कश्मीरी पंडितों की विरासत से चला आ रहा है" (राजघट्टा, 2019)। हालाँकि इन नामों को साझा करने वाले ज्यादातर मुस्लिम पेशेवर या फिर अजलाफ मुस्लिम वर्ग के हैं।

मुस्लिम समाज का विभेदीकरण और मीडिया कवरेज की एकरूपता

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि जम्मू-कश्मीर के मुस्लिम समाज में भी संघर्ष रहे हैं, किंतु मीडिया कवरेज में इस विभेदीकरण पर विमर्श नहीं दिखता है और पूरे प्रश्न को हिंदू एवं मुस्लिमों के संघर्ष पर ही केंद्रित रखा जाता रहा है। इसे 2017 में प्रकाशित 'इंडियन एक्सप्रेस' की एक रिपोर्ट के माध्यम से समझा जा सकता है। कश्मीरी और विदेशी मूल के मुस्लिमों की भारत के प्रति मूलभूत सोच में भी व्यापक अंतर देखने को मिलता है। उपर्युक्त उदाहरणों से हम देखते हैं कि हुर्रियत जैसे अलगाववादी संगठनों की लीडरशिप में विदेशी मूल के उपनामों वाले मुस्लिमों की संख्या अधिक रही है, लेकिन भारतीय अथवा कश्मीरी मूल के मुस्लिमों के साथ बहुतायत में ऐसा देखने को नहीं मिलता है। इसे हम 2017 में 'इंडियन एक्सप्रेस' की एक रिपोर्ट से समझ सकते हैं। आतंकवादी हमलों में मारे गए जम्मू-कश्मीर पुलिस के जवानों की एक सूची में 'इंडियन एक्सप्रेस' ने जो नाम प्रकाशित किए हैं, उनमें बड़ी संख्या कश्मीरी मूल के मुस्लिमों की ही अधिक देखने को मिलती है। रिपोर्ट के मुताबिक आतंकवाद से जंग में बलिदान देने वाले नामों में सब-इंसपेक्टर इमरान टाक, एसपीओ हलीम गुज्जर, पुलिस हेड कॉन्स्टेबल आशिक हुसैन, पलपोरा के इम्तियाज अहमद, एएसआई अब्दुल राशिद, फीरोज अहमद डार, शबीर अहमद डार, सज्जाद अहमद जैसे अफसरों के नाम शामिल हैं। इन नामों में ज्यादातर ऐसे नाम हैं, जो कश्मीरी मूल के ही हैं (एक्सप्रेस वेब डेस्क, 2017)।

पुलिसकर्मियों की ऐसी ही टारगेटेड किलिंग के बारे में आकिब जाविद 'मनी कंट्रोल' में प्रकाशित अपनी एक रिपोर्ट में लिखते हैं—"ऐसे हजारों परिवार हैं, जिन्हें हर वक्त अपने प्रियजनों के खोने का डर सताता रहता है। उनके परिवारों का कहना है कि आतंकवाद के खिलाफ लड़ने के चलते उन्हें टारगेट किया जाता है। बुरहान वानी के एनकाउंटर में मारे जाने के बाद डिपार्टमेंट ने एक एडवायजरी कर कहा था कि फील्ड में काम करने वाले पुलिसकर्मी अपने घरों को न जाएँ" (जाविद, 2021)।

'इंडियन एक्सप्रेस' की रिपोर्ट में भले ही जम्मू-कश्मीर पुलिस के शहीद जवानों की सूची दी गई है, किंतु इसमें उनके सामाजिक वर्गों के बारे में जानकारी का अभाव मिलता है। उपर्युक्त नामों से हम समझ सकते हैं कि शहीद होने वाले जवानों में बड़ी संख्या पसमांदा मुस्लिमों की है, जिनका राजनीतिक नेतृत्व में प्रतिनिधित्व कम देखने को मिलता है। इस प्रकार जम्मू-कश्मीर के समाज का यथार्थ अलग है, जबकि मीडिया में उसे लेकर जो समझ है, वह उसे समरूप समाज ही मानती है।

गुज्जर बकरवाल : भिन्न बोली, जीवनशैली और परंपराओं वाला समुदाय

इसी प्रकार गुज्जर बकरवाल समुदाय भी मुस्लिम वर्ग का एक बड़ा हिस्सा है, लेकिन इस समुदाय के रहन-सहन, जीवन शैली, पहनावे, बोली और अन्य चीजों में बड़ा अंतर देखने को मिलता है। गुज्जर बकरवाल समुदाय के मुस्लिम भी पूरी तरह से भारतीय मूल के ही लोग हैं। जम्मू-कश्मीर में कश्मीरी, उर्दू, डोगरी, पहाड़ी जैसी भाषाएँ प्रमुखता से बोली जाती हैं, लेकिन गुज्जर बकरवाल समुदाय के लोग गूजरी ही बोलते हैं।

इनकी बड़ी आबादी मुस्लिम संप्रदाय से ही ताल्लुक रखती है। इसके बाद भी गुज्जर बकरवाल आज भी अपने मूल से जुड़े हुए हैं, जो हिमाचल, पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, राजस्थान में पाए जाने वाले गुर्जरों से ही खुद को निकला हुआ मानते हैं। बलराज पुरी लिखते हैं—"गुज्जर समुदाय के लोग खुद को कुशाण और हूण राजाओं से जोड़कर देखते हैं, जिनका उत्तर भारत के बड़े राज्य में शासन रहा है। इसके अलावा द्वापर में नंद और यशोदा से भी वे अपना ताल्लुक मानते हैं, जिन्होंने भगवान कृष्ण का लालन-पालन किया था" (पुरी, 2001)। गुज्जर बकरवाल जम्मू-कश्मीर में सबसे पहले आकर बसे समुदाय में से एक है और इनका बड़ा हिस्सा आज भी घूमंतू आदिवासी जीवन जी रहा है।

अनुच्छेद 370 की समाप्ति पर शिया समुदाय और गुज्जर बकरवालों की अलग राय

जम्मू-कश्मीर के मुस्लिम समुदाय के अलग-अलग वर्गों की विचारधारा में भी पर्याप्त भिन्नता दिखती है। अनुच्छेद 370 को हटाए जाने का शिया और गुज्जर बकरवाल समुदाय ने स्वागत किया था। शिया समुदाय के लोगों का कहना था कि इससे उनके साथ बीते 70 सालों से चला आ रहा भेदभाव समाप्त हो सकेगा। इसके अलावा गुज्जर बकरवाल समुदाय के लोगों का कहना था कि इससे विकास हो सकेगा। राजौरी के निवासी गुज्जर बकरवाल समुदाय के हुसैन ने 'इंडिया टुडे' से बातचीत में कहा—"हम अनुच्छेद 370 हटाने के केंद्र सरकार के फैसले के साथ खड़े हैं, क्योंकि इससे विकास होगा, किंतु हम चाहते हैं कि नेता यहाँ शांति बनाए रखें। इसके अलावा हम फोन आदि में ढील चाहते हैं, ताकि परिवार से बात कर सकें।" गुज्जर बकरवाल समुदाय घूमंतू समाज रहा है और इसी का प्रभाव है कि उनकी राजनीतिक, सामाजिक स्थिति अन्य वर्गों के सापेक्ष कमजोर रही है। गुज्जर बकरवाल समुदाय के लोगों की लंबे समय से राजनीतिक आरक्षण की माँग रही है। उन्हें उम्मीद है कि अब इस दिशा में भी कुछ प्रयत्न होंगे (शाली, 2019)। 5 अगस्त, 2019 को जम्मू-कश्मीर के पुनर्गठन, आर्टिकल 370 और 35-ए के फैसले के बाद कई भारतीय और विदेशी मीडिया रिपोर्टों में इन फैसलों को लेकर कहा गया था कि सत्ता प्रतिष्ठान ने घाटी को खुली जेल में तब्दील कर दिया है, किंतु ऐसी तमाम मीडिया रिपोर्टों में समाज के विभिन्न वर्गों की राय नदारद थी, जिनमें से एक गुज्जर बकरवाल भी शामिल हैं, जिन्होंने खुले मन से इन फैसलों का स्वागत किया और प्रदेश के अनुकूल बताया।

तीन दशक बाद शिया समुदाय को मिली ताजिया निकालने की अनुमति

लद्दाख के कारगिल और कश्मीर के बडगाम, अनंतनाग और श्रीनगर में शिया समुदाय के लोगों की काफी बड़ी संख्या है, किंतु सुन्नी मुस्लिमों और शिया समुदाय के बीच गहरी मतभिन्नता है। इसे हम एक उदाहरण के माध्यम से आसानी से समझ सकते हैं कि अगस्त 2021 में राज्य सरकार ने तीन दशकों के बाद कश्मीर में मुहर्रम पर निकलने वाले ताजिया जुलूस को मंजूरी दी थी (पीटीआई, 2021)। शिया समुदाय को 1989-90 में कश्मीर घाटी में शुरू हुई टारगेट किलिंग के बाद से ही ताजिया निकालने की अनुमति नहीं थी। इसके पीछे कारण यही था कि मुस्लिम कट्टरपंथी अल्पसंख्यक शिया समुदाय के प्रति भी सहिष्णु नहीं थे। ऐसे में उन्हें अपनी मान्यताओं को लेकर प्रतिबंध झेलने पड़ रहे थे, किंतु हम जब मीडिया कवरेज की बात करते हैं तो फिर जम्मू-कश्मीर के समाज के इस यथार्थ पर विमर्श नहीं दिखता। धारा 370 हटने के बाद से घाटी के मुस्लिमों को लेकर चिंता जताने वाली मीडिया रिपोर्टों में यह विमर्श नेपथ्य में दिखता है, जबकि उसी कश्मीर के एक समुदाय को धारा 370 हटने के बाद की स्थितियों में अपनी धार्मिक मान्यता को मानने की तीन दशक बाद आजादी मिली है। मीडिया रिपोर्टों में इस पर चर्चा के विपरीत विमर्श की धुरी हिंदू बनाम मुस्लिम ही दिखती है, जिसमें कश्मीर घाटी को मुस्लिम आकांक्षाओं का प्रतीक बताया जा रहा है, जबकि जम्मू क्षेत्र को हिंदू बहुल आकांक्षाओं का प्रतिनिधि माना गया। यह काफी सतही विश्लेषण रहा है, क्योंकि इसमें कश्मीर के भीतर के सामाजिक यथार्थ पर कोई विमर्श ही नहीं किया गया और विभिन्नताओं वाले एक समाज को समरूप मान लिया गया। हालाँकि कुछ रिपोर्टें ऐसी भी हैं, जिनमें कश्मीरी समाज में व्याप्त आंतरिक द्वंद्व पर भी प्रकाश डाला है। ऐसी ही एक रिपोर्ट 'डेली एक्सेलसियर' अखबार की है। 'डज कश्मीर हैव अ हिंदू प्रॉब्लम' शीर्षक से 6 मार्च, 2021 को प्रकाशित जावेद बेग के लेख में इस बात का भी उल्लेख है कि किस तरह से कश्मीर में शिया, गुज्जर बकरवाल और अहमदिया समुदाय के लोगों को भी भेदभाव का सामना करना पड़ा है। पंजाबी हिंदू युवक आकाश मेहरा की हत्या के संदर्भ में बात करते हुए इस लेख में आंतरिक द्वंद्व पर भी प्रकाश डाला गया है। इस लेख में जावेद बेग लिखते हैं—"मुस्लिम होने के बाद भी कारगिल के शियाओं और गुज्जर बकरवाल लोगों को भेदभाव का सामना करना पड़ता है।" हालाँकि वे यह भी स्वीकारते हैं कि यह उतना नहीं होता, जितना कि कश्मीरी या फिर बाहरी मूल के किसी हिंदू के साथ होता है (बेग, 2021)।

ऐसी ही एक रिपोर्ट में अभिजीत अय्यर मित्रा 'द प्रिंट' में लिखते हैं—"शिया समुदाय के लोग आर्टिकल 370 हटने को अपने लिए एक अवसर के तौर पर देख रहे हैं कि वे अपने धर्म का आजादी से पालन कर सकेंगे। एक स्ट्रीट वेंडर कहता है कि मैंने अपने परिजनों से सुना था कि कैसे वे ताजिया निकाला करते थे और अब एक बार फिर यह उम्मीद है कि दोबारा ऐसा हो सकेगा" (मित्रा, 2019)।

अपने एक शोध पत्र 'मेजर आइडेंटिटीज ऑफ जम्मू एंड कश्मीर स्टेट' में बलराज पुरी भी थोड़े अलग ढंग से ऐसी ही बात करते हैं। वे कहते हैं—"जब 1586 में जम्मू-कश्मीर में अकबर का शासन हुआ तो लोगों ने माना कि यह उनके ऊपर अब तक का पहला सफल हमला है, जिसके चलते कश्मीर की स्वायत्तता और स्वतंत्रता छिनी है। कश्मीर की समस्या को सिर्फ हिंदू बहुल देश के एक मुस्लिम बहुल क्षेत्र की भावनाओं के तौर पर देखने वालों के लिए यह समझना बहुत जरूरी है" (पुरी, 2001)। बलराज पुरी लिखते हैं—"भले ही घाटी में आज लगभग पूरी आबादी मुस्लिमों की ही है, लेकिन वे अपने 5,000 सालों के इतिहास के बारे में पूरी तरह से सजग हैं, जो निरंतर चला आया है। उपमहाद्वीप में कश्मीरियों के अलावा किसी और क्षेत्र के लोग ऐसा दावा नहीं कर सकते हैं।" बलराज पुरी आगे लिखते हैं—"कश्मीरी विद्वानों के मुताबिक कश्मीर ने पहली बार अपनी स्वतंत्रता 1586 में अकबर के हमले से खोई थी। कश्मीर पर मुस्लिम शासकों ने 200 वर्ष तक ही शासन किया था, लेकिन मूल रूप से कश्मीरी मुस्लिम भी अपने 4,000 साल के इतिहास का इसे

एक हिस्सा भर मानते हैं।" वहीं अकबर के हमले को वे दासता के तौर पर देखते थे और उसके बाद से ही उन्होंने खुद को गुलामी के काल में जोड़ना शुरू किया था। इससे पता चलता है कि जम्मू-कश्मीर के समाज में किस प्रकार भिन्नता है और इस्लाम का अनुयायी होना ही वहाँ के मुस्लिम समुदाय की एकमात्र पहचान नहीं है। इसी क्रम में बलराज पुरी लिखते हैं—"10 से 18 हजार फुट तक की ऊँचाई पर बसे जम्मू-कश्मीर की एक अलग संस्कृति रही है, जिस पर सदियों तक किसी और का असर देखने को नहीं मिला है। यहाँ तक कि कश्मीरियत पर भी जब इस्लामीकरण का असर देखने को मिला तो जितना इस्लाम का असर कश्मीरियत पर पड़ा है, उतना ही असर इस्लाम पर कश्मीरियत का भी देखने को मिला है।" बलराज पुरी कहते हैं कि यही वजहें थीं कि कश्मीरी मुस्लिम कभी शेष भारत की मुख्याधारा की मुस्लिम पॉलिटिक्स का हिस्सा नहीं बने। यहाँ तक कि 1947 में भी महाराजा के जम्मू कश्मीर को भारत में विलय करने के फैसले पर समाज भी साथ था। बलराज पुरी लिखते हैं—"कश्मीरी समाज को अहसास था कि उनकी पहचान भारत में कायम बनी रहेगी। उनकी पहचान को इस्लामिक रिपब्लिक बने पाकिस्तान से ज्यादा भारत में सुरक्षा मिल पाएगी" (पुरी, 2001)।

निष्कर्ष

स्पष्ट है कि जम्मू-कश्मीर की किसी भी समस्या को सिर्फ हिंदू और मुस्लिम का प्रश्न मान लेना एक सतही आकलन होगा। उपर्युक्त अध्ययन से निष्कर्ष निकलता है कि जम्मू-कश्मीर में समस्या समाधान के लिए सभी वर्गों का गहन सामाजिक अध्ययन जरूरी है। खासतौर पर मीडिया रिपोर्टिंग में समाज के यथार्थ से परे एकरूपता भरी रिपोर्टिंग विमर्श को गलत दिशा में ले जाती है। मुस्लिम समुदाय के भीतर व्याप्त समस्याओं, मतभेदों, नस्लीय, भाषाई, मूल आदि के अंतर को जाने बिना कश्मीर के लोगों की आकांक्षाओं के बारे में नहीं समझा जा सकता। जम्मू-कश्मीर के मुस्लिम समाज में व्याप्त अंतर को लेकर राष्ट्रीय स्तर पर सूचना और समझ का अभाव देखने को मिलता रहा है। यही वजह है कि जम्मू-कश्मीर में व्याप्त समस्याओं को देखने का नजरिया भी इससे अछूता नहीं रहा है। जैसे, जम्मू-कश्मीर में व्याप्त समस्याओं को मुस्लिम समाज की अलग महत्त्वाकांक्षाओं के तौर पर देखना या फिर आतंकवाद जैसे मसले को भी सामाजिक समस्या बताने का प्रयास करना। इसकी वजह जम्मू-कश्मीर के मुस्लिम समाज का राष्ट्रीय और प्रादेशिक स्तर पर मीडिया कवरेज में गलत ढंग से प्रस्तुतीकरण भी रहा है। उपर्युक्त उदाहरणों से पता चलता है कि गिलानी, अंद्राबी, बाबरी जैसे उपनामों वाले लोग विदेशी मूल के लोगों के वंशज हैं। इसी प्रकार मुफ्ती, मीर आदि उपनाम सैयदों का प्रतिनिधित्व करते हैं। ऐसे में इन समुदायों के कुछ लोगों से बात करना कश्मीर के समस्त मुस्लिम समुदाय से संवाद नहीं माना जा सकता है। इसके अलावा इनमें से किसी एक या फिर दो नेताओं की राय को पूरे समाज की अभिव्यक्ति भी नहीं कहा जा सकता। इसके लिए जरूरी यह है कि मूल रूप से कश्मीरी मुस्लिम समाज से संवाद किया जाए। इस क्रम में मीडिया कवरेज में भी समाज का यथार्थ प्रदर्शित होना चाहिए। इससे मुस्लिम समाज के विभिन्न वर्गों की राय सामने आ सकेगी और उनकी आकांक्षाओं के अनुसार हल निकल सकेंगे। 5 अगस्त, 2019 के पश्चात जम्मू-कश्मीर के राजनीतिक एककीकरण के बड़े प्रयास हुए हैं, किंतु सामाजिक एकीकरण के लिए हर वर्ग की आकांक्षाओं को समझते हुए संवाद करना होगा। इसमें मीडिया कवरेज की अहम भूमिका है, जो पूरे विमर्श को अकसर हिंदू-मुस्लिम के प्रश्न के तौर पर ही देखता रहा है। ऐसे में मीडिया रिपोर्टिंग में समाज के यथार्थ को भी समझना होगा। इससे ही शेष भारत भी घाटी की स्थितियों का समग्र अवलोकन कर सकेगा।

संदर्भ

अग्निहोत्री, के. सी. (2021). पूर्व कुलपति, हिमाचल प्रदेश केंद्रीय विश्वविद्यालय, धर्मशाला. *शोधार्थी से धर्मशाला में बातचीत*.

अहमद, ए. (1979). कंवर्जंस टु इस्लाम इन द वैली ऑफ कश्मीर. *सेंट्रल एशिया जर्नल. वॉल्यूम. 23, नं. 1/2*, हर्रास्सोवित्ज वेर्लाग, 1979, पृ. 3–18.http://www.jstor.org/stable/41927246 से पुन:प्राप्त.

एक्सप्रेस वेब डेस्क. (27 दिसंबर, 2017). हियर इज अ लिस्ट ऑफ सिक्यूरिटी पर्सनल मार्टिर्ड इन जे एंड के. *इंडियन एक्सप्रेस*. https://indianexpress.com/article/india/list-of-security-personnel-martyred-in-jk-ceasefire-violation-pakistan-terrorists-5001566/से दिनांक 16 नवंबर, 2021 को पुन:प्राप्त.

डाबला, बी. ए. (2012). *डायरेक्टरी ऑफ कास्ट्स इन कश्मीर*. श्रीनगर: जे के बुक्स.

जाविद, ए. (18 सितंबर, 2021). डेथ ऑफ अ पुलिसमैन : ए कश्मीरी ट्रेजेडी. *मनी कंट्रोल*. https://www.moneycontrol.com/news/trends/current-affairs-trends/death-of-a-policeman-a-kashmiri-tragedy-7477881.html से पुन:प्राप्त.

पुरी, बी. (2001). मेजर आइडेंटिटीज ऑफ जम्मू एंड कश्मीर स्टेट. *इंडिया इंटरनेशनल सेंटर क्वार्टरली, वॉल्यूम. 28, नं. 3*, इंडिया इंटरनेशनल सेंटर, पृष्ठ 69–79.

पीटीआई. (1 अगस्त, 2021). *जम्मू एंड कश्मीर गवर्नमेंट लिफ्ट्स बन ऑन मुहरम्म प्रोसेशन आफ्टर 3 डिकेड्स, शिया मुस्लिम्स स्प्लिट ओवर डिसिजन*.https://www.firstpost.com/india/jammu-and-kashmir-govt-lifts-ban-on-muharram-procession-after-3-decades-shia-muslims-split-over-decision-9856461.html से पुन:प्राप्त.

पुंछी, एच. एस. (20 मार्च, 2021). *डिस्क्रिमिनेशन विद गुज्जर्स बक्कर्वाल्स ऑफ जे एंड के.डेली एक्सेलसियर*. https://www.dailyexcelsior.com/discrimination-with-gujjars-bakarwals-of-jk/ से दिनांक 18 नवंबर, 2021 को पुन:प्राप्त.

बेग, जे. (9 जून, 2021). कैन पसमांदा कास्ट मुस्लिम्स एवर मेक अ पैरेलल राइज एंड रूल जम्मू & कश्मीर?. *न्यूज 18*. https://www.news18.com/news/opinion/can-pasmanda-caste-muslims-ever-make-a-parallel-rise-and-rule-jammu-kashmir-3828455.html से पुन:प्राप्त.

बेग, जी. (6 मार्च, 2021). *डज कश्मीर हैव अ हिंदी प्रॉब्लम?* https://www.dailyexcelsior.com/does-kashmir-have-a-hindu-problem/से पुन:प्राप्त.

भट, ए. (10 दिसंबर, 2017). कास्ट अवे फॉर लव : हाउ कास्ट बायस वर्क्स इन कश्मीर. *द वायर*. https://thewire.in/caste/caste-away-love-caste-bias-works-kashmir से पुन:प्राप्त.

मित्रा, ए. (27 सितंबर, 2019). आफ्टर स्क्रेप्पिंग ऑफ आर्टिकल 370, शिआज इन कश्मीर आर इन अ स्टेट ऑफ रिलीफ एंड कौशन. *द प्रिंट*. https://theprint.in/opinion/after-scrapping-of-article-370-shias-in-kashmir-are-in-a-state-of-relief-and-caution/297510/से पुन:प्राप्त.

राजघट्टा, सी. (28 अगस्त, 2019), व्यू : मोस्ट पाकिस्तानिज आर एक्चुअली इंडियंस. *इकोनॉमिक टाइम्स*. https://economictimes.indiatimes.com/news/politics-and-nation/view-most-pakistanis-are-actually-indians/articleshow/70811241.cms से पुन:प्राप्त.

सेन, एन. (22 नवंबर, 2020). कास्ट इन कश्मीर : हु आर वताल्स? व्हाई इस दियर फ्यूचर 'डूम्ड'?. *द क्विंट*. https://www.thequint.com/voices/opinion/caste-discrimination-kashmir-conflict-watal-sheikh-community-ghettoes-endogamy-manual-scavenging-poverty से पुन:प्राप्त.

शाली, पी. (12 अगस्त, 2019). मुस्लिम्स इन जम्मू स्टैंड बाय गवर्नमेंट इन स्क्रेप्पिंग ऑफ आर्टिकल 370. गुज्जर बक्कर्वाल्स सेलिब्रेट मूव. *इंडिया टुडे*. https://www.indiatoday.in/india/story/muslims-in-jammu-stand-by-govt-in-scrapping-of-article-370-gujjar-bakarwals-celebrate-move-1580171-2019-08-12 से पुन:प्राप्त.

संचार माध्यम | खंड 34(1) : 86-94, जनवरी-जून 2022
आईएसएसएन: 2321-2608

टेलीविजन पत्रकारों की कार्यप्रणाली एवं मानसिक स्वास्थ्य पर कोविड लॉकडाउन का असर : नोएडा में कार्यरत पत्रकारों पर एक अध्ययन

रविंद्र कुमार[1]

सारांश

कोविड-19 महामारी का दंश पूरी दुनिया सहित भारत ने भी झेला। विश्व के दूसरे देशों में हुई तबाही से सबक लेते हुए भारत सरकार ने प्रथम लहर के समय ही अपने देशवासियों की सुरक्षा हेतु बड़ा कदम उठाते हुए देशव्यापी लॉकडाउन का निर्णय लिया, परंतु देशव्यापी लॉकडाउन के दौरान जरूरी सेवाओं के साथ-साथ समाचार चैनलों का संचालन भी जारी रहा। समाचार चैनलों में कार्यरत पत्रकार पहले की तरह रात-दिन लोगों तक ताजा सूचनाएँ पहुँचाने में जुटे रहे। लेकिन महामारी और लॉकडाउन के दौर में समाचार चैनलों का संचालन बेहद चुनौतीपूर्ण हो गया था, क्योंकि समाचार चैनलों और उनमें कार्यरत पत्रकारों ने ऐसी स्थिति का सामना पहली बार किया। प्रस्तुत शोध में यह जानने की कोशिश की गई है कि कोविड-19 महामारी और लॉकडाउन का टेलीविजन समाचार जगत् पर क्या असर हुआ? उस दौरान समाचार चैनलों की कार्यप्रणाली में किस तरह के बदलाव आए? शोध में कोविड महामारी और लॉकडाउन के दौरान पत्रकारों के मानसिक स्वास्थ्य पर पड़ने वाले असर को भी जानने की कोशिश की गई। शोध से पता चला है कि एक ओर जहाँ 24 घंटे के समाचार चैनलों के कामकाज के तरीकों में व्यापक बदलाव देखने को मिला, साथ ही महामारी और लॉकडाउन का टेलीविजन पत्रकारों के मानसिक स्वास्थ्य पर भी नकारात्मक असर पड़ा। हालाँकि समाचार चैनलों में कार्य स्थल पर कोरोना से बचाव और पत्रकारों के स्वास्थ्य की सुरक्षा के लिए नियम-कायदे भी बनाए गए, लेकिन उनका मिला-जुला असर देखने को मिला। उन नियमों के पालन में भी अनियमित्ताएँ बरती गईं, जिसके परिणामस्वरूप उत्तर प्रदेश के नोएडा से संचालित होने वाले कई बड़े मीडिया हाउस में कार्य करने वाले पत्रकार और उनके परिवारजन बड़ी संख्या में महामारी की चपेट में आ गए, जिसे देखते हुए प्रशासन को समाचार चैनलों के दफ्तरों को सील तक करना पड़ा। इतना ही नहीं, शोध में पाया गया कि चैनल प्रबंधन की ओर से पत्रकारों की सुरक्षा हेतु जो उपाय किए गए थे, पत्रकार उनसे भी पूर्ण तौर पर संतुष्ट नहीं थे। साथ ही लॉकडाउन के दौरान टेलीविजन पत्रकारों में अपने स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता भी देखने को मिली। पत्रकारों ने खुद को स्वस्थ रखने के लिए योग और व्यायाम आदि का सहारा लिया।

संकेत शब्द : कोविड, लॉकडाउन, न्यूज चैनल, पत्रकार, मानसिक स्वास्थ्य

प्रस्तावना

कोविड-19 के संक्रमण का पहला मामला चीन के वुहान प्रांत में सितंबर 2019 में सामने आया। भारत तक कोविड-19 वायरस के पहुँचने में करीब तीन महीने का वक्त लगा। भारत में कोविड-19 संक्रमण का पहला मामला 30 जनवरी, 2020 को उस समय सामने आया जब विदेश से आए एक शख्स में कोविड-19 वायरस के लक्ष्ण पाए गए। लेकिन शुरुआती दौर में भारत में कोरोना का विस्तार बेहद धीमा था। मार्च के महीने में कोरोना ने भारत में अपने पैर पसारने शुरु किए तो देखते ही देखते करीब-करीब पूरे देश को इस महामारी ने अपनी चपेट में ले लिया। भारत सरकार के नेशनल डिजास्टर मैनेजमेंट अथॉरिटी की रिपोर्ट 'कोविड-19 इंपैक्ट एंड रेस्पोंसेस : द इंडिया एक्सपीरियंस' के अनुसार 31 मई, 2020 तक कोरोना वायरस दुनिया के दो सौ देशों में पैर पसार चुका था और करीब 6 मिलियन कोरोना संक्रमण के मामले सामने आ चुके थे, जिसमें से 3,67,255 लोगों की मौत हो गई (एनडीएमए, 2020)। भारत में कोरोना को 30 जनवरी, 2020 को महामारी घोषित कर दिया गया और उसी दिन भारत में कोरोना का पहला मामला केरल के त्रिशुर जिले में सामने आया। संक्रमित शख्स चीन के वुहान से लौटा था। भारत में कोरोना से पहली मौत 10 मार्च, 2020 को कर्नाटक में एक 76 वर्षीय बुजुर्ग की हुई जो सउदी अरब की यात्रा कर लौटा था। हालाँकि 11 मार्च को इसे नियंत्रित महामारी घोषित किया गया। लेकिन अगले कुछ दिनों में ही कोरोना ने जिस रफ्तार से पैर फैलाने शुरू किए, उसे देखते हुए देश में 25 मार्च, 2020 को प्रथम संपूर्ण लॉकडाउन की घोषणा की गई। पहला लॉकडाउन 25 मार्च, 2020 से 14 अप्रैल 2020 तक चला। इसके बाद लॉकडाउन का दूसरा चरण 15 अप्रैल से 3 मई, 2020 तक रहा। लॉकडाउन फेज-तीन 4 मई, 2020 से 17 मई, 2020 तक रहा, जबकि लॉकडाउन फेज-चार 18 मई से 31 मई, 2020 तक चला। इसके बाद लॉकडाउन फेज-5 1 जून, 2020 से 30 जून, 2020 तक रहा। इसके बाद देश में 'अनलॉक' की प्रक्रिया भी चरणबद्ध तरीके से अपनाई गई।

22 मार्च, 2020 को प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की अपील पर 'जनता कर्फ्यू' लगा तो 25 मार्च से देश में संपूर्ण लॉकडाउन लगाया गया। लॉकडाउन के दौरान सभी दफ्तर, बाजार, मॉल, सिनेमाघर बंद कर दिए गए। साथ ही निजी और सार्वजनिक यातायात पर भी रोक लगा दी गई, हालाँकि जरूरी सेवाओं के लिए कुछ छूट दी गई। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने 24 मार्च, 2020 को देश में पूर्ण लॉकडाउन का ऐलान करते हुए मीडियाकर्मियों को भी कोरोना योद्धा का दर्जा दिया। इसके साथ ही उन्होंने साफ कर दिया था कि सब्जी, दूध, राशन और दवा की दुकानों के साथ-

[1]शोधार्थी, स्कूल ऑफ जर्नलिज्म एंड न्यू मीडिया स्टडीज, इंदिरा गांधी नेशनल ओपन यूनिवर्सिटी, नई दिल्ली. ईमेल : k.ravinder79@gmail.com

साथ पुलिस और मीडिया भी आवश्यक सेवा के दायरे में आते हैं, ऐसे में मीडियाकर्मियों को लॉकडाउन के दौरान भी अपनी जिम्मेदारियों का निर्वहन करना पड़ा। आधुनिक इतिहास में कोविड जैसी भयावह महामारी पूरी दुनिया समेत भारत ने पहली बार देखी। ऐसे में इस महामारी से जुड़ी एक-एक खबर और पल-पल का 'अपडेट' पहुँचाने में मीडियाकर्मियों की भूमिका बेहद अहम रही। कोरोना फैलने के डर से जब लोग अखबार लेने से भी डरने लगे थे तो इस स्थिति में समाचार चैनलों की भूमिका अहम हो गई थी। लॉकडाउन के दौरान जब पूरा भारत घरों की चारदीवारी में कैद था तब टेलीविजन के पत्रकार हाथ में माइक लेकर उन जगहों से ग्राउंड रिपोर्टिंग कर रहे थे, जहाँ कोरोना वायरस से संक्रमित मरीज पाए जा रहे थे। लेकिन यह चुनौतीभरा काम मीडियाकर्मियों के लिए आसान नहीं था। सावधानियाँ बरतने के बावजूद उत्तर प्रदेश के नोएडा में स्थित कई बड़े हिंदी समाचार चैनलों के दफ्तर भी महामारी की गिरफ्त में आ गए। सिर्फ दिल्ली-नोएडा में ही नहीं, बल्कि दक्षिण भारत में स्थित स्थानीय भाषाओं के चैनलों के दफ्तर भी कोरोना की चपेट में आ गए। एक ओर जहाँ कोरोना पत्रकारों को अपनी गिरफ्त में ले रहा था, वहीं समाचार चैनलों का काम भी बिना रुके चलता रहा। हालात को देखते हुए समाचार चैनलों में 'वर्क फ्रॉम हॉम' के फॉर्मूले को अपनाया गया, लेकिन न्यूज चैनल्स की कार्यप्रणाली के हिसाब से 'वर्क फ्रॉम होम' का सिद्धांत ज्यादा कारगर साबित होता नजर नहीं आया। ऐसे में एक ओर जहाँ मीडियाकर्मियों को कोविड महामारी से बचाने के लिए न्यूज चैनलों में कामकाज के तरीके में बदलाव किया गया, वहीं इसका सीधा असर टेलीविजन पत्रकारों के कामकाज और उनके जीवन पर भी पड़ा।

इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का केंद्र नोएडा

राजधानी दिल्ली से सटे उत्तर प्रदेश के गौतमबुद्ध जिले का नोएडा शहर भारत में समाचार चैनलों का अहम केंद्र है। नोएडा फिल्मसिटी में देश के प्रमुख समाचार समूहों के दफ्तर हैं। टीवी टूडे, जी मीडिया, टीवी-18, टीवी-9, रिपब्लिक भारत, न्यूज 24 सहित कई राष्ट्रीय समाचार चैनलों के दफ्तर नोएडा सेक्टर 16-ए फिल्म सिटी में स्थित हैं। इसके अलावा एबीपी न्यूज, इंडिया टीवी, सहारा समय, साधना न्यूज और टोटल टीवी जैसे अन्य प्रमख समाचार चैनलों के दफ्तर भी नोएडा में अलग-अलग जगहों पर स्थित हैं। यही वजह है कि भारत में जब भी इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की बात होती है तो नोएडा देश के नक्शे पर सबसे अहम बिंदु के तौर पर नजर आता है। समाचार चैनलों पर 24 घंटे खबरों का प्रसारण होता है। समाचार चैनलों में सुबह, दोपहर, शाम और रात की अलग-अलग पालियों में काम होता है। हालाँकि आमतौर पर देर रात के बाद ज्यादातर चैनलों पर खबरों का 'रिपीट टेलीकास्ट' होता है, लेकिन इसके बावजूद समाचार चैनलों में रात की पाली में भी पत्रकार कार्य करते हैं। ऐसे में यह कहना गलत नहीं होगा कि नोएडा स्थित समाचार चैनलों के दफ्तरों में हजारों पत्रकार रात-दिन काम करते हैं। ऐसे में समाचार चैनलों में कोविड महामारी के संक्रमण का खतरा काफी ज्यादा रहा, क्योंकि एक पाली के पत्रकारों का अगली पाली के पत्रकारों के साथ संपर्क होता ही है। इतना ही नहीं, आमतौर पर न्यूजरूम में एडिटोरियल टेबल पर लगा कंप्यूटर हो या फिर एडिटिंग टेबल पर लगा कंप्यूटर, एक ही कंप्यूटर को एक दिन में कई-कई लोग इस्तेमाल करते हैं, जिससे कोरोना संक्रमण का खतरा भी बढ़ जाता है। कोविड महामारी के दौर में समाचार चैनलों के रिपोर्टर ग्राउंड से रिपोर्टिंग करते हुए नजर आए। कोरोना हॉटस्पॉट रहा हो या फिर कोरोना के इलाज के लिए बनाए गए विशेष अस्पताल, रिपोर्टर हर जगह से रिपोर्ट देते हुए नजर आए। इसके साथ ही सरकार की ओर से प्रेस कॉंफ्रेंस का भी चैनलों पर सीधा प्रसारण किया गया, लेकिन रिपोर्टर और कैमरामैन के लगातार ग्राउंड से रिपोर्टिंग करने से कोरोना संक्रमण का खतरा भी काफी बढ़ गया। यही वजह रही कि ज्यादातर बड़े मीडिया हाउसों ने रिपोर्टर और कैमरामैन के दफ्तर आने पर ही रोक लगा दी।

कोविड के कारण कई समाचार चैनलों के दफ्तर सील

कोविड महामारी का दंश समाचार चैनलों ने बेहद करीब से झेला। कोरोना का सबसे ज्यादा प्रकोप नोएडा फिल्मसिटी में स्थित जी मीडिया ग्रुप के दफ्तर में देखने को मिला, जहाँ कई दर्जन पत्रकार कोरोना की चपेट में आ गए। 'जी न्यूज' में कोरोना संक्रमण का पहला मामला 15 मई, 2020 को सामने आया। रात की पाली में कार्यरत एक पत्रकार कोरोना संक्रमित पाया गया। इसके बाद उसके सीधे संपर्क में आए रात और सुबह की पाली के 51 पत्रकारों के टेस्ट कराए गए, जिसमें 28 पत्रकार कोरोना संक्रमित पाए गए। इसके बाद नोएडा प्रशासन ने जी मीडिया कॉम्पलेक्स में चौथी मंजिल पर स्थित 'जी न्यूज' के दफ्तर को सील कर दिया। इसके बाद 'जी न्यूज' का संचालन जी मीडिया कॉम्पलेक्स में स्थित दूसरी इमारत से किया गया। लेकिन इसके बाद अन्य मंजिलों पर स्थित जी मीडिया के दूसरे समाचार चैनलों में कार्यरत पत्रकार भी कोरोना की चपेट में आते चले गए। 'जी हिंदुस्तान' सहित अन्य चैनलों के पत्रकार कोरोना संक्रमित हुए तो फिर नोएडा प्रशासन ने 25 मई को 'जी न्यूज' की पूरी इमारत को ही सील कर दिया। ऐसा नहीं कि सिर्फ 'जी न्यूज' का दफ्तर ही कोरोना के कारण सील किया गया, बल्कि नोएडा में स्थित 'साधना न्यूज' और 'टोटल टीवी' के दफ्तर भी पत्रकारों के कोरोना संक्रमित होने पर सील किए गए।

समाचार चैनलों में डर का माहौल

कोरोना महामारी के दौर में भले ही किसी भी समाचार चैनल का प्रसारण नहीं थमा, लेकिन इस बात को नकारा नहीं जा सकता है कि इस दौरान समाचार चैनलों में डर का माहौल जरूर था। इस बात की पुष्टि 'न्यूजलाउंड्री' नाम के पोर्टल में छपी एक खबर से भी होती है। यह खबर एक चैनल के अधिकारिक व्हाट्स एप चैट पर आधारित थी। इस व्हाट्स एप चैट से साफ होता है कि कोरोना महामारी के दौर में पत्रकार किस तरह डर के बीच काम करने को मजबूर थे। 'न्यूजलाउंड्री' में छपी व्हाट्स एप चैट में एक पत्रकार कह रहा है—"कोरोना सार्वजनिक जगहों पर किसी व्यक्ति तक सीमित रह जाने वाला वायरस नहीं है, यह हम सभी बेहतर जानते हैं। ऐसे में इससे संबंधित किसी तरह की कोई जानकारी दबे पाँव आए तो वह उस बीमारी के प्रसार की तरह ही खतरनाक है। इसकी जगह ऑफिस में कोई अफवाह हो तो सार्वजनिक तौर पर उसका खंडन कर सहकर्मियों की चिंता दूर करने में क्या बुराई है? और अगर सच हो तो उसे सार्वजनिक कर उससे संबंधित अति आवश्यक सावधानी बरती जाए। ऐसे में ग्रुप में सवाल पूछने को गलत ठहराना, सही नहीं है। हम सभी जो इन

हालात में ऑफिस आ रहे हैं सभी कोरोना वॉरियर्स हैं, वे भला अफवाहों से कैसे प्रभावित होंगे? पर साथ ही वे सच जानने के अधिकारी हैं। कोरोना जैसे मामलों में सिर्फ ग्रुप में बातें डालने से 'सिचुएशन पैनिक' नहीं होती, बल्कि सूचनाओं को रोकने से हालात और बिगड़ सकते हैं" (न्यूजलाउंड्री, 2020)। 'न्यूजलाउंड्री' में छपी खबर के मुताबिक इसी व्हाट्स एप चैट में आगे जी-मीडिया की एक महिला पत्रकार लिखती है—"मैं सर की बात का समर्थन करती हूँ। अफवाहों को सुलझाया जाए। पर्सनल मैसेज करके हमारी बात को दबाया नहीं जा सकता। हम सभी अपनी जान की बाजी लगाकर ऑफिस आ रहे हैं और अगर 'पैनिक' की बात है तो इस समय दुनिया 'पैनिक' में है" (न्यूजलाउंड्री, 2020)। इस व्हाट्सएप चैट से स्पष्ट है कि कोरोना महामारी के दौर में पत्रकार किस तरह तनाव भरे माहौल में काम करने को मजबूर थे।

शोध के उद्देश्य

1. पत्रकारों के व्यावसायिक जीवन पर कोरोना महामारी के असर को ज्ञात करना।
2. कोरोना महामारी का टेलीविजन पत्रकारों के कामकाज के तरीकों में बदलाव का विश्लेषण करना।
3. चैनल प्रबंधन की ओर से पत्रकारों की सुरक्षा हेतु किए गए उपायों का विश्लेषण करना।
4. कोरोना लॉकडाउन के दौरान समाचार चैनलों के पत्रकारों की मनोदशा को ज्ञात करना।
5. लॉकडाउन के दौरान पत्रकारों की स्वास्थ्य के प्रति सतर्कता का विश्लेषण करना।

शोध प्रश्न

1. लॉकडाउन के दौरान पत्रकारों की व्यावसायिक जिंदगी पर क्या असर पड़ा?
2. क्या लॉकडाउन के दौरान पत्रकार डर के बीच काम करने को बाध्य थे?
3. सुरक्षा हेतु चैनल प्रबंधन द्वारा उठाए गए कदमों से क्या पत्रकार पूरी तरह संतुष्ट हैं?
4. क्या 'वर्क फ्रॉम होम' का पत्रकारों की उत्पादन क्षमता पर असर पड़ा?
5. लॉकडाउन के दौरान पत्रकारों ने खुद को स्वस्थ रखने के लिए क्या कदम उठाए?

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध के उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु मात्रात्मक शोध प्रविधि का प्रयोग किया गया। शोध हेतु उत्तर प्रदेश के सेक्टर 16-ए में स्थित नोएडा फिल्मसिटी में कार्यरत हिंदी, अँग्रेजी एवं अन्य भाषाओं के समाचार चैनलों में कार्यरत पत्रकारों को शोध के 'युनिवर्स' के तौर पर निश्चित किया गया। उल्लेखनीय है कि नोएडा फिल्मसिटी में देश के कई बड़े न्यूज नेटवर्क के मुख्यालय हैं। ऐसे में नोएडा फिल्मसिटी को भारत में पत्रकारिता का 'एपिसेंटर' कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी। प्रस्तुत शोध हेतु नोएडा फिल्मसिटी में कार्यरत अलग-अलग मीडिया कंपनियों के करीब 200 पत्रकारों को ईमेल और व्हाट्स एप के जरिये सर्वेक्षण की प्रश्नावली भेजी गई। पहले चरण में सिर्फ 10 पत्रकारों को सर्वेक्षण प्रश्नावली भेजी गई। इस सर्वेक्षण प्रश्नावली में पत्रकारों की बैकग्राउंड, उनके संस्थान का नाम और शोध अध्ययन से जुड़े कुल 16 प्रश्न शामिल किए गए। लेकिन ज्यादातर पत्रकारों का कहना था कि वे ऐसे किसी भी सर्वे में हिस्सा नहीं ले सकते, जिससे उनकी कंपनी का नाम उजागर हो। इस स्थिति में फाइनल प्रश्नावली तैयार करते समय समाचार चैनल के नाम के सवाल को हटा दिया गया। इस तरह अंतिम प्रश्नावली में कुल 15 वस्तुनिष्ठ प्रश्न शामिल किए गए। पत्रकारों के ईमेल और उनके मोबाइल नंबर चैनलों में व्यक्तिगत संपर्क के जरिये हासिल किए गए। जिन पत्रकारों को सर्वेक्षण हेतु प्रश्नावली भेजी गई उनसे टेलीफोन के जरिये भी प्रश्नावली का जवाब देने का अनुरोध किया गया, जिस पर 80 पत्रकारों ने वापस जवाब भेजा। पत्रकारों के मध्य सर्वेक्षण का कार्य 30 जुलाई, 2020 से 15 अगस्त, 2020 के बीच में किया गया। सर्वेक्षण से प्राप्त डाटा का विश्लेषण टेबल और ग्राफिक्स के जरिये किया गया। यह शोध सिर्फ नोएडा फिल्मसिटी में कार्यरत पत्रकारों पर किया गया। इसके साथ ही शोधकर्ता सिर्फ 200 पत्रकारों तक ही पहुँच पाया। जबकि नोएडा फिल्मसिटी से बाहर भी कई समाचार चैनल एवं मीडिया हाउस हैं।

डाटा विश्लेषण

शोध टेलीविजन पत्रकारों पर आधारित है इसलिए कुछ मूल प्रश्न पत्रकारों की पृष्ठभूमि से जुड़े तैयार किए गए। जैसे मीडिया इंडस्ट्री में आपको कितने साल का अनुभव है? समाचार चैनल में आपकी भूमिका/पद क्या है? लिंग के आधार पर सर्वे में शामिल उत्तरदाताओं का वर्गीकरण आदि।

प्रश्न–1 : लिंग के आधार पर उत्तरदाताओं का वर्गीकरण?

तालिका-1

क्रम	लिंग	प्रतिभागी संख्या
1	पुरुष	56
2	महिला	24
	कुल संख्या	80

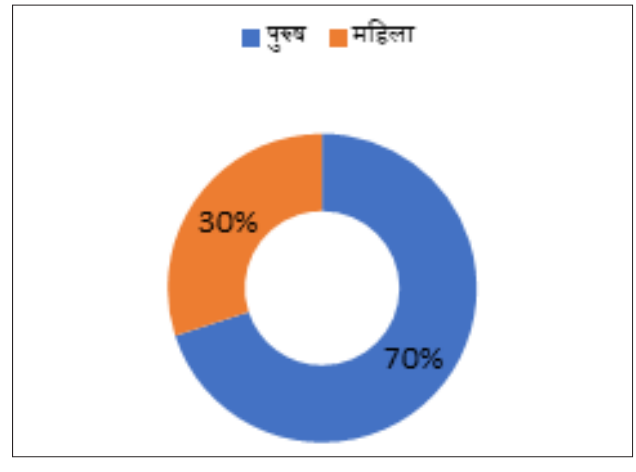

ग्राफ-1

टेलीविजन पत्रकारों पर आधारित इस सर्वे में उत्तर प्रदेश के नोएडा में अलग-अलग संस्थाओं में कार्यरत कुल 80 पत्रकारों ने हिस्सा लिया, जिसमें 56 पुरुष और 24 महिलाएँ शामिल थीं। इस प्रकार सर्वे में पुरुष पत्रकारों का प्रतिनिधित्व 70 प्रतिशत रहा, जबकि महिला पत्रकारों का प्रतिनिधित्व 30 प्रतिशत रहा।

प्रश्न–2 : मीडिया इंडस्ट्री में आपको कितने साल का अनुभव है?

तालिका-2

क्रम संख्या	मीडिया में अनुभव	प्रतिभागियों की संख्या
1	0-5 वर्ष	10
2	6-10 वर्ष	09
3	11-15 वर्ष	28
4	16-20 वर्ष	21
5	20 वर्ष से अधिक	12
कुल संख्या		80

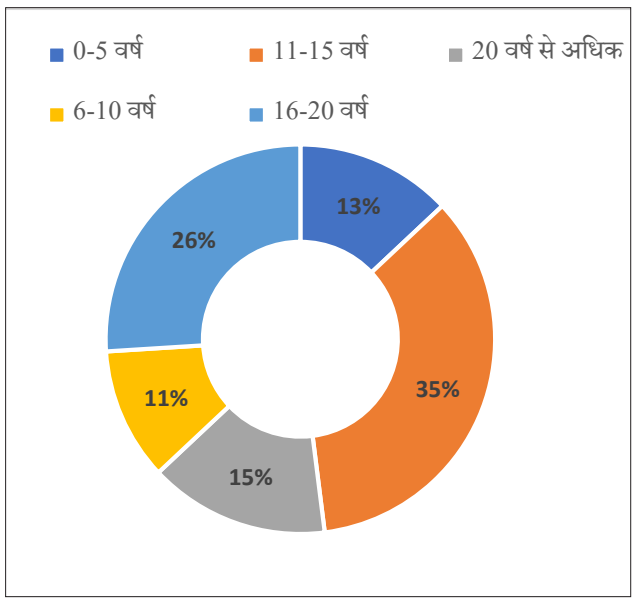

ग्राफ-2

सर्वे में शामिल टेलीविजन पत्रकारों का उनके अनुभव के आधार पर भी वर्गीकरण किया गया। सर्वे में शून्य से पाँच साल तक के अनुभव वाले 13 प्रतिशत पत्रकार थे, जबकि छह वर्ष से 10 वर्ष के अनुभव वाले 11 प्रतिशत। अगर 11 वर्ष से 20 वर्ष के अनुभवी पत्रकारों की बात करें तो सर्वे में 49 प्रतिशत पत्रकार इसी श्रेणी के रहे। इसके अलावा 20 वर्ष से ज्यादा अनुभव के 15 प्रतिशत पत्रकारों ने हिस्सा लिया। इस तरह अनुभव के लिहाज से देखा जाएगा तो मध्यम श्रेणी के पत्रकारों का सर्वे में दबदबा रहा। आम तौर पर 11 से 20 वर्ष के अनुभवी पत्रकार ही न्यूज चैनल की कार्यकारी टीम में अहम भूमिका निभाते हैं। चैनल की विषयवस्तु तय करने से लेकर 'प्रॉडक्शन' और 'ऑन एयर' तक की सारी जिम्मेदारी इसी स्तर के पत्रकारों के कंधों पर होती है।

प्रश्न–3 : सर्वे में शामिल पत्रकारों की समाचार चैनलों में भूमिका एवं पद की स्थिति क्या है?

तालिका-3

क्रम	चैनल में पद	संख्या
1	प्रॉडक्शन एग्जिक्यूटिव/ एसिस्टेंट प्रोड्यूसर/ एसोसिएट प्रोड्यूसर	18
2	प्रोड्यूसर/सीनियर प्रोड्यूसर/डिप्टी एग्जिक्यूटिव प्रोड्यूसर/एग्जिक्यूटिव प्रोड्यूसर	28
3	संवाददाता/वरिष्ठ संवाददाता	09
4	एंकर/ सीनियर एंकर	08
5	एडिटर/एग्जिक्यूटिव एडिटर/ इनपुट-आउटपुट एडिटर/ चैनल हेड	12
6	अन्य	05
कुल		80

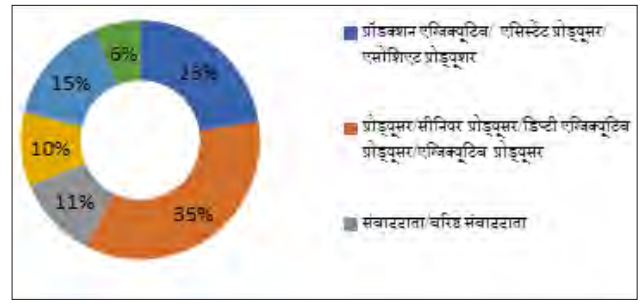

ग्राफ-3

सर्वे में शामिल सभी पत्रकारों का समाचार चैनल में उनके दायित्व एवं पद के अनुसार भी वर्गीकरण किया गया। जूनियर स्तर के पत्रकारों की पहली श्रेणी बनाई गई, जिसमें प्रोडक्शन एग्जिक्यूटिव, एसिस्टेंट प्रोड्यूसर और एसोसिएट प्रोड्यूसर को शामिल किया गया। समाचार चैनल में इस श्रेणी के पत्रकारों की जिम्मेदारी वरिष्ठ पत्रकारों के निर्णयों को लागू करने की होती है, इस श्रेणी के पत्रकार खुद से कोई बड़े फैसले नहीं लेते है। सर्वे में इस श्रेणी का प्रतिनिधित्व 23 प्रतिशत रहा। दूसरी श्रेणी में प्रोड्यूसर, सीनियर प्रोड्यूसर, डिप्टी एग्जिक्यूटिव प्रोड्यूसर और एग्जिक्यूटिव प्रोड्यूसर रखे गए। इस श्रेणी में शामिल पत्रकार किसी भी समाचार चैनल की रीढ़ होते हैं। 'स्टोरी आइडिया' से लेकर कार्यक्रम की रूपरेखा तय करने और दिनभर की कार्य योजना बनाने और इसे कार्यरूप देने में इस श्रेणी की सबसे अहम भूमिका होती है। नोएडा में पत्रकारों के बीच किए गए सर्वे में इस श्रेणी के पत्रकारों का प्रतिनिधित्व 35 प्रतिशत रहा। तीसरी श्रेणी में ग्राउंड से खबरें एकत्रित करने वाले संवाददाताओं को रखा गया। इस श्रेणी में सभी स्तर के संवाददाता शामिल हैं। संवाददाता चैनल में सूचनाओं के सबसे भरोसेमंद स्रोत होते हैं, जबकि कोरोना काल में लॉकडाउन के दौरान संवाददाताओं की ग्राउंड रिपोर्टिंग किसी सैनिक की तरह सीमा पर काम करने से कम नहीं था। इस सर्वे में 11 प्रतिशत प्रतिनिधित्व संवाददाता श्रेणी का रहा। चौथी श्रेणी समाचार चैनल पर खबरों को प्रस्तुत करने वाले एंकर और वरिष्ठ एंकर की बनाई गई। सर्वे में इस श्रेणी का प्रतिनिधित्व 10 प्रतिशत रहा। समाचार चैनल के नीति-निर्धारक की भूमिका में संपादक/ कार्यकारी संपादक/इनपुट-आउटपुट संपादक/चैनल हेड होते हैं। इसी तरह समाचार चैनल की रणनीति तय होती है और फिर उसी रणनीति के

तरह चैनल में कार्यरत सभी पत्रकार कार्य करते हैं। सर्वे में इस श्रेणी की हिस्सेदारी 15 प्रतिशत रही। इसके साथ ही सातवीं श्रेणी में समाचार चैनल में कार्यरत अन्य पदों पर शामिल पत्रकारों को रखा गया, जिसमें स्क्रिप्ट राइटर, वीडियो एडिटर, गेस्ट कोऑर्डिनेटर आदि शामिल हैं। सर्वे में इस श्रेणी की हिस्सेदारी 6 प्रतिशत रही।

प्रश्न–4 : क्या आप मानते हैं कि समाचार इंडस्ट्री पर कोविड महामारी का असर पड़ा?

तालिका-4

क्रम	कोरोना महामारी का असर	संख्या
1	हाँ	61
2	नहीं	10
3	पता नहीं	09
कुल		80

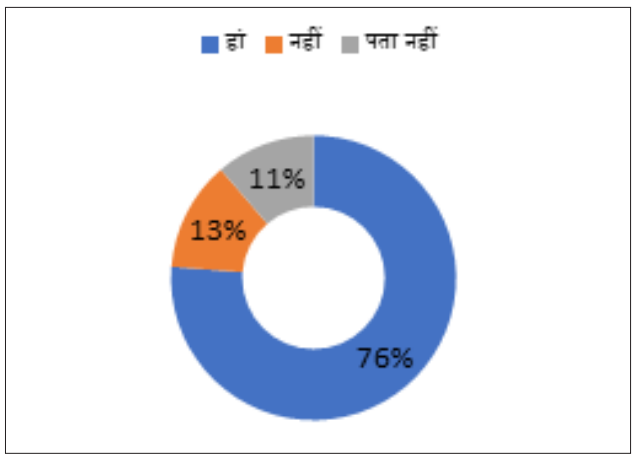

ग्राफ-4

प्रस्तुत शोध का मूल प्रश्न यह जानना है कि क्या अन्य उद्योग-धंधों की तरह समाचार इंडस्ट्री पर भी कोरोना महामारी का असर पड़ा। इस प्रश्न के जवाब में 76 प्रतिशत पत्रकारों ने माना कि कोरोना महामारी के असर से समाचार इंडस्ट्री बच नहीं सकी, जबकि 13 प्रतिशत टेलीविजन पत्रकारों ने इस बात को नकार दिया कि कोविड महामारी का समाचार इंडस्ट्री पर कोई असर पड़ा। इसके साथ ही 11 प्रतिशत पत्रकार ऐसे थे, जो इस सवाल का जवाब देने में असमर्थ रहे।

प्रश्न–5 : कोविड महामारी और लॉकडाउन का पत्रकारों की व्यावसायिक जिंदगी पर कैसा असर पड़ा?

तालिका-5

क्रम	कोरोना का असर	संख्या
1	नकारात्मक असर	44
2	सकारात्मक असर	03
3	नकारात्मक-सकारात्मक दोनों	28
4	पता नहीं	05
कुल		80

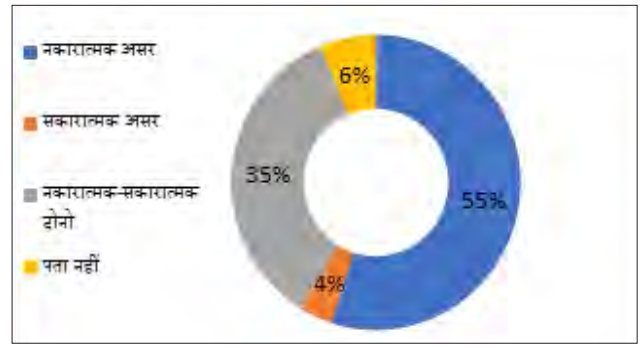

ग्राफ-5

इस शोध का एक मूल सवाल यह भी था कि कोविड महामारी और लॉकडाउन का पत्रकारों की व्यावसायिक जिंदगी पर कैसा असर पड़ा? इस सवाल के जवाब में 55 प्रतिशत टेलीविजन पत्रकारों ने माना कि कोविड महामारी और लॉकडाउन का उनकी व्यावसायिक जिंदगी पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा, जबकि इसका सकारात्मक प्रभाव मानने वाले पत्रकार सिर्फ 6 फीसदी ही थे। हालाँकि इसके साथ 35 प्रतिशत पत्रकार ऐसे भी रहे, जिनका यह मत था कि कोविड महामारी का उनके जीवन पर नकारात्मक और सकारात्मक दोनों तरह के प्रभाव पड़े, जबकि 4 प्रतिशत पत्रकार ऐसे भी थे जिनका मानना था कि उन्हें पता ही नहीं है कि कोविड महामारी का उनके व्यावसायिक जीवन पर नकारात्मक या सकारात्मक प्रभाव पड़ा।

प्रश्न–6 : क्या कोविड महामारी के दौरान न्यूज चैनल की कार्यप्रणाली एवं कामकाज के तरीके में बदलाव आया?

तालिका-6

क्रम	क्या चैनल की कार्यप्रणाली में बदलाव आया?	संख्या
1	बदलाव आया	35
2	बहुत ज्यादा बदलाव आया	20
3	कम बदलाव आया	10
4	बहुत कम बदलाव आया	10
5	बिलकुल बदलाव नहीं आया	05
कुल		80

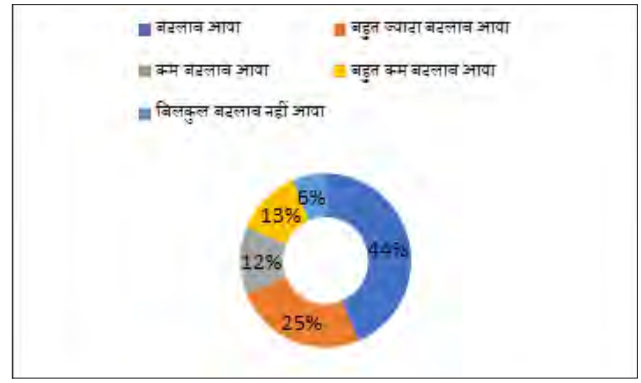

ग्राफ-6

सर्वे में समाचार चैनलों में कार्यरत पत्रकारों से यह पूछा गया कि क्या कोविड महामारी के दौरान न्यूज चैनल की कार्यप्रणाली एवं कामकाज के तरीके में बदलाव आया? जिस पर 69 प्रतिशत पत्रकारों ने माना कि

कोविड महामारी के दौरान समाचार चैनल की कार्यप्रणाली में बदलाव आया है, जबकि 25 प्रतिशत पत्रकारों ने माना कि कोरोना के कारण चैनल की कार्यप्रणाली में बेहद मामूली बदलाव आया। हालाँकि 6 प्रतिशत पत्रकार ऐसे भी रहे, जो मानते हैं कि इस दौरान चैनल की कार्यप्रणाली और कामकाज के तरीके में कोई बदलाव नहीं आया।

प्रश्न–7 : क्या कोविड महामारी के दौरान न्यूजरूम या फील्ड रिपोर्टिंग के दौरान कोविड प्रोटोकॉल (सोशल डिस्टेंशिंग और मास्क पहनना) का पालन किया गया?

तालिका-7

क्रम	चैनल में कोविड प्रोटोकॉल का पालन हुआ?	संख्या
1	नियमों का पालन हुआ	28
2	पूरी तरह नियमों का पालन हुआ	20
3	कभी हुआ, कभी नहीं हुआ	07
4	नियमों का पालन नहीं हुआ	15
5	पूरी तरह नियमों को नजरअंदाज किया गया	10
कुल		80

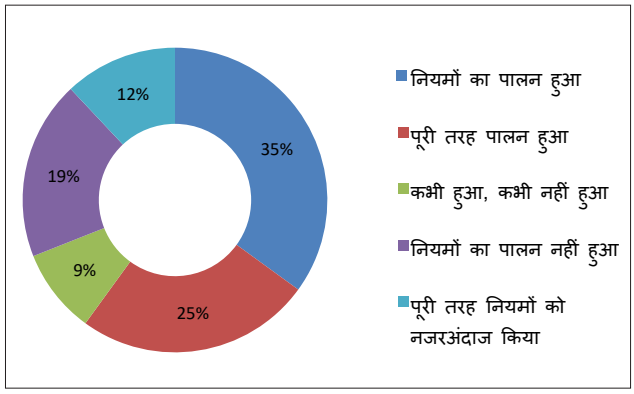

ग्राफ-7

लॉकडाउन के दौरान सरकार की ओर से कोरोना वायरस से बचाव हेतु कई तरह के नियम तय किए गए, जिनमें सोशल डिस्टेंसिंग और मास्क पहनना सबसे अहम था। इसलिए सर्वे में शामिल पत्रकारों से पूछा गया कि क्या कोरोना महामारी के दौरान न्यूजरूम या फील्ड रिपोर्टिंग के दौरान कोविड प्रोटोकॉल के नियमों का पालन किया गया। इस सवाल के जवाब में 55 प्रतिशत पत्रकारों ने माना कि न्यूजरूम और फील्ड रिपोर्टिंग में कोविड प्रोटॉकॉल का पालन किया गया, जबकि 9 प्रतिशत पत्रकारों का कहना था कि नियमों का कभी पालन किया गया और कभी नहीं किया गया। इसके विपरित 31 प्रतिशत पत्रकारों ने कहा कि चाहे समाचार चैनल का न्यूजरूम हो या फिर फिल्ड, रिपोर्टिंग कोविड प्रोटोकॉल हेतु निर्धारित नियमों का पालन नहीं किया गया।

प्रश्न–8: क्या कोविड महामारी के दौरान कार्य स्थल पर कर्मचारियों की सुरक्षा हेतु आवश्यक उपाय (जैसे सोशल डिस्टेंसिंग, सेनेटाइजेशन, तापमान जाँच) आदि किए गए?

तालिका-8

क्रम	कार्यस्थल पर कोरोना हेतु सुरक्षा बरती गई?	संख्या
1	हाँ	55
2	नहीं	24
3	पता नहीं	01
कुल		80

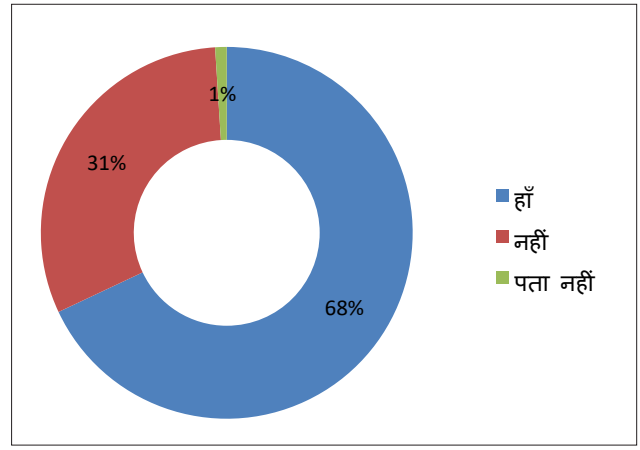

ग्राफ-8

कोविड प्रोटोकॉल के तहत कंपनियों, फैक्ट्रियों और दफ्तरों में कार्य स्थल पर कर्मचारियों की सुरक्षा के लिए भी नियम तय किए गए थे जैसे काम करते वक्त कर्मचारियों के बीच 6 फीट की दूरी, एक वक्त में आधे या एक तिहाई कर्मचारियों को ही काम पर बुलाना, ऑफिस की कैब में सिर्फ दो या तीन कर्मचारियों को ही बैठाना, कर्मचारियों के तामपान की जाँच और कार्य स्थल पर समय-समय पर सैनेटाइजेशन करना आदि-आदि। ये सारे नियम सभी दफ्तरों और कंपनियों पर लागू किए गए थे। ऐसे में सवाल यह था कि क्या कर्माचारियों की सुरक्षा हेतु निर्धारित इन नियमों का पालन समाचार चैनलों के दफ्तरों में भी किया गया। इस सवाल के जवाब में 68 प्रतिशत पत्रकारों ने माना कि उनके दफ्तरों में कोरोना वायरस से सुरक्षा के लिए तय नियमों का पालन किया गया और उचित कदम उठाए गए, जबकि 31 प्रतिशत पत्रकारों का यह मत सामने आया कि उनके दफ्तरों में कंपनी की ओर से कोरोना से बचाव हेतु आवश्यक कदम नहीं उठाए गए। इन सबके बीच एक प्रतिशत पत्रकारों का कहना था कि उन्हें पता ही नहीं है कि उनकी कंपनी ने कोरोना से बचाव के लिए कोई कदम उठाए या नहीं।

प्रश्न–9 : क्या कोविड महामारी के दौरान कर्मचारियों की सुरक्षा हेतु कंपनी प्रंबधन की ओर से उठाए गए कदमों से आप संतुष्ट हैं?

तालिका-9

क्रम	कंपनी के इंतजाम से कितने संतुष्ट?	संख्या
1	संतुष्ट	34
2	पूरी तरह संतुष्ट	10
3	असंतुष्ट	23
4	पूरी तरह असंतुष्ट	11
5	पता नहीं	02
कुल		80

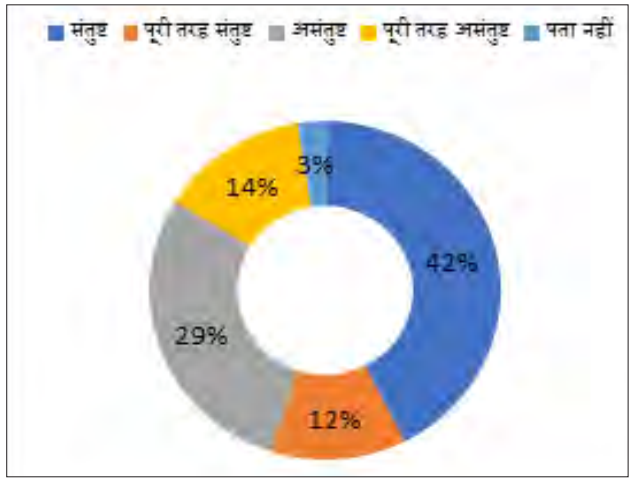

ग्राफ-9

सर्वे में कोरोना महामारी के दौरान कर्मचारियों की सुरक्षा हेतु कंपनी प्रबंधन की ओर से उठाए गए कदमों से 42 प्रतिशत पत्रकार संतुष्ट और 12 प्रतिशत पत्रकार पूरी तरह संतुष्ट नजर आए, जबकि 43 प्रतिशत पत्रकार कंपनी प्रबंधन की ओर से उठाए गए कदमों से असंतुष्ट थे। इसके साथ ही 3 प्रतिशत पत्रकार ऐसे भी थे, जिन्हे कंपनी द्वारा उठाए गए कदमों की जानकारी ही नहीं थी।

प्रश्न–10 : क्या लॉकडाउन और कोविड महामारी के दौरान आपने कभी डर या असुरक्षा की भावना महसूस की?

तालिका-10

क्रम	डर या असुरक्षा महसूस की?	संख्या
1	असुरक्षित महसूस किया	44
2	बहुत ज्यादा असुरक्षित महसूस किया	20
3	सुरक्षित महसूस किया	10
4	बहुत ज्यादा सुरक्षित महसूस किया	04
5	न सुरक्षित, न असुरक्षित	02
कुल		80

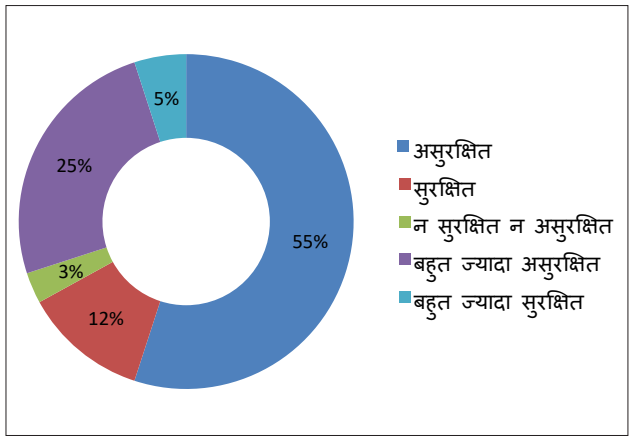

ग्राफ-10

यह कोरोना वायरस का डर ही था कि देश के इतिहास में पहली बार संपूर्ण लॉकडाउन लगा। महीनों तक लोग घरों में कैद हो गए, लेकिन मीडिया से जुड़े लोग इस दौरान भी अपने कामकाज में जुटे हुए थे। ऐसे में इस शोध के दौरान सर्वे में पत्रकारों से यह सवाल पूछा गया कि क्या लॉकडाउन और कोविड महामारी के दौरान आपने कभी डर या असुरक्षा की भावना महसूस की? इस सवाल के जवाब में 80 प्रतिशत पत्रकारों ने स्वीकार किया कि लॉकडाउन के दौरान काम के लिए निकलते वक्त उन्होंने खुद को असुरक्षित और बहुत ज्यादा असुरक्षित महसूस किया। हालाँकि सर्वे में शामिल 17 प्रतिशत पत्रकार ऐसे भी थे, जिन्होंने इस दौरान खुद को सुरक्षित और बहुत ज्यादा सुरक्षित महसूस किया, जबकि 3 प्रतिशत पत्रकार ऐसे भी थे जिन्होंने कोरोना काल में दफ्तर जाते वक्त खुद को न सुरक्षित महसूस किया न असुरक्षित महसूस किया।

प्रश्न–11 : क्या महामारी के दौरान चैनल की ओर से 'वर्क फ्रॉम होम' की सुविधा दी गई?

तालिका-11

क्रम	क्या वर्क फ्रॉम होम की सुविधा मिली?	संख्या
1	हाँ	40
2	नहीं	30
3	कभी-कभी	10
कुल		80

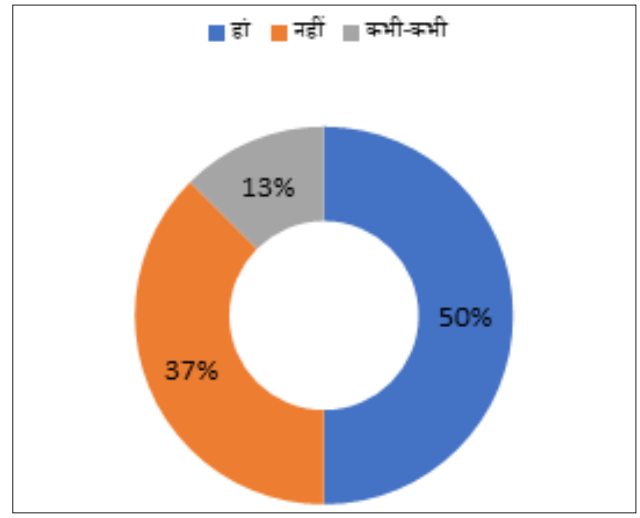

ग्राफ-11

कोविड महामारी के दौरान भारत सहित पूरी दुनिया में वर्क फ्रॉम होम यानी घर पर ही रहकर दफ्तर का काम करने की संस्कृति को काफी बढ़ावा मिला। लॉकडाउन के दौरान कई क्षेत्रों में वर्क फ्रॉम होम की संस्कृति को अपनाया गया। ऐसे में शोध सर्वे में पत्रकारों से यह सवाल पूछा गया कि क्या अन्य दफ्तरों और कंपनियों की तरह न्यूज चैनलों में भी वर्क फ्रॉम होम की सुविधा दी गई। इस सवाल के जवाब में 50 प्रतिशत पत्रकारों ने स्वीकार किया कि उनके चैनल में उन्हें घर से काम की सुविधा दी गई, जबकि 37 प्रतिशत टेलीविजन पत्रकारों को लॉकडाउन के दौरान वर्क फ्रॉम होम की सुविधा नहीं मिली। इसके साथ ही 13 प्रतिशत पत्रकार ऐसे थे, जिन्हें रेग्यूलर नहीं बल्कि कभी-कभी वर्क फ्रॉम होम की सुविधा दी गई।

प्रश्न–12 : क्या वर्क फ्रॉम होम संस्कृति न्यूज इंडस्ट्री में उत्पादन क्षमता बढ़ाने के लिए प्रभावकारी पद्धति है?

तालिका-12

क्रम	वर्क फ्रॉम होम उत्पादन क्षमता बढ़ाने में प्रभावकारी ?	संख्या
1	प्रभावकारी	24
2	बहुत ज्यादा प्रभावकारी	11
3	अप्रभावकारी	22
4	बहुत ज्यादा अप्रभावकारी	12
5	कोई असर नहीं	11
कुल		80

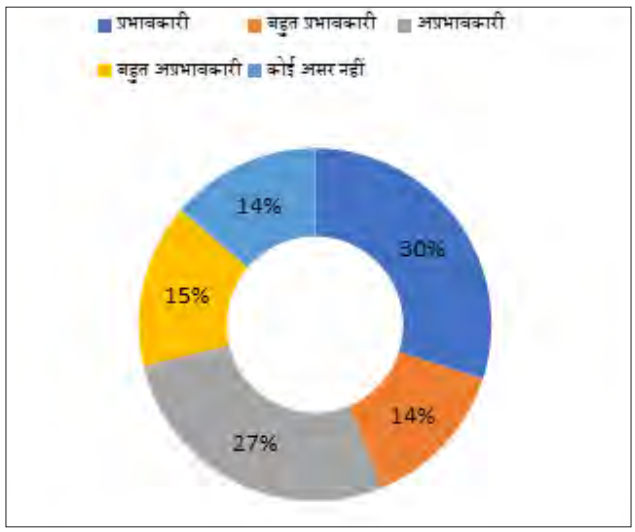

ग्राफ-12

सर्वे में शामिल पत्रकारों से यह सवाल भी पूछा गया कि क्या वर्क फ्रॉम होम संस्कृति न्यूज इंडस्ट्री में उत्पादन क्षमता बढ़ाने के लिए प्रभावकारी पद्धति है? इस सवाल के जवाब में 44 प्रतिशत पत्रकारों ने माना कि वर्क फ्रॉम होम की संस्कृति से उत्पादन क्षमता बढ़ती है, जबकि 42 प्रतिशत पत्रकारों ने माना कि इससे उत्पादन क्षमता घटती है। इसके साथ ही 14 प्रतिशत पत्रकारों का यह मत रहा कि वर्क फ्रॉम होम से उत्पादन क्षमता पर कोई असर नहीं पड़ता।

प्रश्न–13 : क्या महामारी के दौरान आपने अपने इम्यून सिस्टम को मजबूत करने लिए योग एवं व्यायाम का सहारा लिया?

तालिका-13

क्रम	इम्यून सिस्टम मजबूत करने के लिए योग/व्यायाम किया	संख्या
1	प्रतिदिन	45
2	कभी-कभी	12
3	कभी नहीं	23
कुल		80

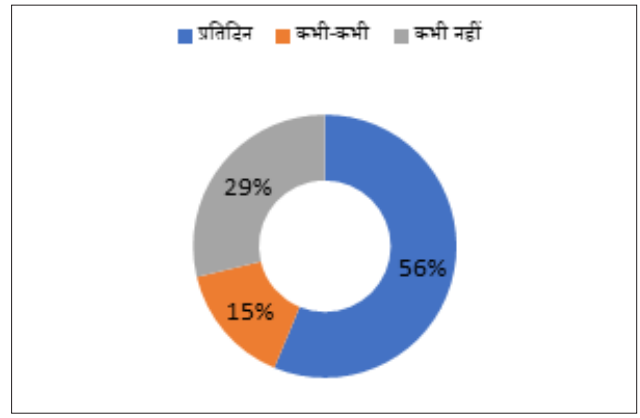

ग्राफ-13

सर्वे में टेलीविजन पत्रकारों के स्वास्थ्य को लेकर भी सवाल पूछा गया। पत्रकारों से पूछा गया कि क्या महामारी के दौरान आपने अपने इम्यून सिस्टम को मजबूत करने लिए योग एवं व्यायाम का सहारा लिया? इस सवाल के जवाब में 56 प्रतिशत पत्रकारों ने स्वीकार किया कि कोरोना महामारी और लॉकडाउन के दौरान उन्होंने अपने इम्यून सिस्टम को मजबूत करने के लिए प्रतिदिन योग और व्यायाम का सहारा लिया, जबकि 15 प्रतिशत पत्रकारों ने कभी-कभी योग और व्यायाम किया। इसके साथ ही 29 प्रतिशत पत्रकार ऐसे भी थे, जिन्होंने इस दौरान कभी भी योग और व्यायाम नहीं किया।

निष्कर्ष

शोध में पाया गया कि कोरोना महामारी और लॉकडाउन ने अन्य उद्योग-धंधों की तरह न्यूज इंडस्ट्री को भी काफी गहराई तक प्रभावित किया। कोरोना महामारी के कारण समाचार चैनलों के कामकाज की प्रणाली में भी बदलाव आया है। टेलीविजन पत्रकारों की व्यावसायिक जिंदगी और उनके मानसिक स्वास्थ्य पर कोविड महामारी और लॉकडाउन का नकारात्मक असर पड़ा है। शोध से साफ है कि कोविड महामारी के दौरान भले ही समाचार चैनलों में पहले की तरह काम चलता रहा, लेकिन इस दौरान चैनल में काम करने वाले पत्रकार काफी डरे हुए थे और खुद को असुरक्षित महसूस कर रहे थे। शोध से एक ओर जहाँ यह साफ हो गया कि आधे पत्रकारों को ही वर्क फ्रॉम होम की सुविधा मिली, जबकि बाकी आधे पत्रकारों को या तो इस सुविधा का लाभ नहीं मिला या फिर उन्हें यदा-कदा ही इस सुविधा का लाभ मिला। शोध में इस बात पर कोई आम राय बनती नजर नहीं आई कि 'वर्क फ्रॉम होम' से उत्पादन क्षमता बढ़ती है या घटती है। पत्रकारों की राय इस पर काफी बँटी हुई है। इसके पक्ष और विपक्ष में करीब बराबर-बराबर मत दिखे तो काफी पत्रकार ऐसे भी हैं जो मानते हैं कि वर्क फ्रॉम होम का उत्पादन क्षमता पर कोई असर नहीं पड़ता। इस शोध से एक बात यह भी स्पष्ट हो गई कि कोरोना महामारी और लॉकडाउन के दौरान समाचार चैनलों में सरकार द्वारा बनाए गए नियमों का सौ फीसदी पालन नहीं हुआ। करीब एक-तिहाई पत्रकारों ने यह कह कर चौंका दिया कि रिपोर्टिंग और न्यूजरूम में कोरोना प्रोटोकॉल का पालन नहीं किया गया। शोध में करीब एक तिहाई पत्रकारों ने माना कि लॉकडाउन के दौरान कर्मचारियों की सुरक्षा हेतु किए जाने वाले उपायों में

भी लापरवाही बरती गई। हालाँकि शोध में शामिल हुए पत्रकारों का बड़ा वर्ग इससे इत्तेफाक नहीं रखता। इस शोध से यह निष्कर्ष भी निकला कि कोरोना लॉकडाउन के दौरान पत्रकारों की सुरक्षा हेतु उठाए गए कदमों से पत्रकार पूर्ण रूप से संतुष्ट नहीं थे। शोध में करीब 54 प्रतिशत पत्रकार भले ही कंपनी द्वारा उठाए गए कदमों से संतुष्ट नजर आए, लेकिन 43 प्रतिशत पत्रकार इससे असंतुष्ट नजर आए। इससे स्पष्ट है कि इस महामारी के दौरान पत्रकारों की सुरक्षा के लिए चैनल प्रबंधन द्वारा उठाए गए कदम पर्याप्त नहीं थे। इस शोध में पत्रकारों की दिनचर्या को लेकर भी यह साफ हो गया कि जहाँ आधे से ज्यादा पत्रकारों ने योग और व्यायाम को अपनी दिनचर्या का हिस्सा बना लिया तो वहीं काफी बड़ी संख्या में पत्रकार इससे दूर ही रहे।

आवश्यकता इस बात की है कि डॉक्टर, पुलिस और अन्य कोरोना योद्धाओं की तर्ज पर मीडियाकर्मियों के लिए भी सामाजिक सुरक्षा योजना का ऐलान किया जाना चाहिए। भविष्य में कोरोना जैसी महामारी से मीडियाकर्मियों के बचाव के लिए सरकार या न्यूज ब्रॉडकास्टर संस्थाओं की ओर से सभी समाचार चैनलों के लिए समान गाइडलाइन बनाने की जरूरत है। समाचार चैनलों में पत्रकारों के मानसिक स्वास्थ्य हेतु मनोवैज्ञानिक सलाहकार भी नियुक्त करने चाहिए, जिनसे पत्रकार बेहिचक सलाह मशविरा कर सकें। इतना ही नहीं, कोविड जैसी महामारी के वक्त न्यूजरूम में पत्रकारों की भीड़ एकत्रित कर उनके जीवन से खिलवाड़ करने के बजाय चैनल प्रबंधन को 'वर्क फ्रॉम होम' जैसी व्यवस्था को बेहिचक अपनाना चाहिए। टेलीविजन पत्रकार अक्सर काम के दबाव में अपने स्वास्थ्य पर ध्यान नहीं दे पाते, ऐसे में उनके लिए कंपनी को योग एवं व्यायाम के उचित बंदोबस्त करने चाहिए। प्रस्तुत शोध का दायरा बेहद सीमित था, ऐसे में कोविड महामारी के दौरान पत्रकारों की निजी जिंदगी और व्यावसायिक जिंदगी पर असर को लेकर व्यापक शोध की आवश्यकता है। मीडिया में वर्क फ्रॉम होम की संस्कृति को लेकर भी विस्तृत शोध की संभावनाएँ हैं।

संदर्भ

आईएएनएस. (2020). *कोविड-19 हिट्स जी मीडिया, बिल्डिंग सील्ड*. दिनांक 25 मई, 2020 को https://www.tribuneindia.com/news/nation/covid-19-hits-zee-media-building-sealed-89791 से पुन:प्राप्त.

चौरसिया, ए. (2020). *द इनसाइड स्टोरी ऑफ़ जी न्यूज बिकमिंग ए कोविड-19 हॉटस्पॉट*. https://www.newslaundry.com/2020/05/20/the-inside-story-of-zee-news-becoming-a-covid-19-hotspot से पुन:प्राप्त.

चौरसिया, ए. एवं कुमार, बी. (2020). *जीज कोविड-19 केसेस: ऑफिस व्हाट्सएप ग्रुप शोज नेग्लिजेंस टुवर्ड्स सोशल डिसटेन्सिंग, एम्प्लो_यी* सेफ्टी. https://www.newslaundry.com/2020/05/23/zees-covid-19-cases-office-whatsapp-group-shows-negligence-towards-social-distancing-employee-safety से पुन:प्राप्त.

जेकेआर स्टाफ. (2020). 'कर्मा इज बिच': *जी न्यूज बिल्डिंग सील्ड आफ्टर 10 मोर एम्प्लाइज टेस्ट पॉजिटिव फॉर कोविड-19*. http://www.jantakareporter.com/entertainment/karma-is-bitch-zee-news-building-sealed-after-10-more-employees-test-positive-for-covid-19/291726/ से पुन:प्राप्त.

झा, एस. के. (2020). *जी न्यूज चैनल्स ऑफिस सील्ड इन नॉएडा, 14 न्यू केसेस रिपोर्टेड*. https://www.hindustantimes.com/noida/zee-news-channel-s-office-sealed-in-noida-14-new-cases-reported/story-XiiXvREeNF3950yQA5nwyK.html से पुन:प्राप्त.

टीम एन. एल. (2020). *जी न्यूज ऑफिस सील्ड आफ्टर 7 मोर स्टाफर्स टेस्ट पॉजिटिव फोर कोरोनावायरस*. https://www.newslaundry.com/2020/05/25/zee-news-office-sealed-after-7-more-staffers-test-positive-for-coronavirus से पुन:प्राप्त.

नेशनल डिजास्टर मैनेजमेंट अथॉरिटी. (2020). *कोविड-19 इम्पैक्ट एंड रेस्पोंस : द इंडियन एक्सपीरियंस*. https://ndma.gov.in/sites/default/files/PDF/covid/COVID-19-Indian-Experience.pdf से पुन:प्राप्त.

संचार माध्यम | खंड 34(1) : 95-98, जनवरी-जून 2022
आईएसएसएन: 2321-2608

कोविड महामारी के दौरान मीडिया विद्यार्थियों में उत्पन्न अवसाद, चिंता और तनाव का अध्ययन

विनीत कुमार झा 'उत्पल'[1] और मुक्ता मर्तोलिया[2]

सारांश

कोविड महामारी के कारण पूरी दुनिया तनाव, चिंता और अवसादग्रस्त हुई। महामारी के कारण न केवल लाखों लोगों की जान गई, बल्कि लोगों को मानसिक तनाव से भी गुजरने के लिए मजबूर होना पड़ा। भारत सहित तमाम देश इस दौर में लॉकडाउन से जूझते रहे, वहीं कोरोना वायरस ने जनसामान्य को मानसिक तौर पर अंदर से तोड़ दिया। महामारी के दौरान भारत सरकार ने वैक्सीन लगाने की योजना को अमलीजामा पहनाना शुरू कर दिया था, बावजूद इसके दूसरी लहर में लोग कोरोना से प्रभावित हुए। प्रस्तुत अध्ययन में कोविड महामारी की दूसरी लहर के दौरान मीडिया विद्यार्थियों के मनोवैज्ञानिक तनाव का अध्ययन किया गया है। इस अध्ययन के लिए लोवीबांड और लोवीबांड (1995) के डिप्रेशन, एंजायटी और स्ट्रेस स्केल (डीएएसएस) यानी अवसाद, चिंता और तनाव मापक का प्रयोग किया गया। गौरतलब है कि डिप्रेशन, एंजायटी और स्ट्रेस को मापने वाले स्केल (डीएएसएस) यानी अवसाद, चिंता और तनाव मापक का प्रयोग भारत सहित पूरी दुनिया में मनोवैज्ञानिक करते हैं। यह मापक अवसाद, चिंता और तनाव पर अधिक आश्रित है और इसकी विश्वसनीयता और मान्यता अधिक है। अध्ययन के लिए मीडिया के कुल 487 विद्यार्थियों के बीच सर्वे किया गया और उनके बीच अवसाद, चिंता, तनाव और पारिवारिक सुख को लेकर प्रश्न किए गए और पाया गया कि हर कोई तनाव, चिंता और अवसाद में है, लेकिन महामारी से लड़ने की दिशा में भारत सरकार द्वारा किए गए प्रयासों को देखते हुए उन्हें उम्मीद थी कि ऐसा समय अधिक दिन नहीं रहने वाला है और भारत ऐसी विपरीत स्थिति से जल्द निजात पा जाएगा।

संकेत शब्द : अवसाद, चिंता, तनाव, कोविड, डीएएसएस मापक, मीडिया विद्यार्थी

प्रस्तावना

कोविड-19 को सामान्य तौर पर कोरोना के नाम से जाना जाता है और माना जाता है कि इसकी शुरुआत चीन के वुआन प्रांत से हुई। चीन से निकलकर यह पूरे विश्व में फैला और दुनिया के तमाम देशों की सरकारों ने इससे बचाव के लिए अपने देशों में लॉकडाउन लगाए। लेकिन यह बात साल 2020 की थी (रे, सुब्रह्मण्यम एवं वंदेवाले, 2021)। कोरोना महामारी की दूसरी लहर जब 2021 में आई तब तक लाखों लोगों को वैक्सीन लगाई जा चुकी थी। बावजूद इसके लोग कोरोना वायरस के शिकार हुए और स्वस्थ हुए। ऐसे समय में भारत में केंद्र और राज्य सरकारों के द्वारा शारीरिक व सामाजिक दूरी बनाने, मास्क पहनने, हाथों को सेनेटाइज करने की बात कही गई और भारत के लोगों ने इसका पालन भी किया। एक ओर जहाँ दुनिया के और देशों में लाखों की संख्या में लोग मर रहे थे, वहीं भारत में इसका अनुपात कम था। हालाँकि विदेशी मीडिया ने भारत की छवि खराब करने में कोई कसर नहीं छोड़ी, मगर कालांतर में लोगों ने माना कि पाश्चात्य मीडिया ने जानबूझकर भारत की छवि खराब करने की कोशिश की (आईआईएमसी सर्वे, 2021)।

कोरोना की पहली और दूसरी लहर के बीच लोगों में कोरोना वायरस को लेकर जबरदस्त डर, तनाव और अवसाद का माहौल था। सरकार के तमाम प्रयत्नों के बावजूद मीडिया ने जिस तरह का माहौल खड़ा किया, सोशल मीडिया में जिस तरह की खबरें वायरल हुईं, उससे लोगों में काफी डर व्याप्त हुआ (रंजन, शर्मा एवं वर्मा, 2021)। लोग 'डिप्रेशन' के शिकार हुए, चिंताएँ बढीं और भयंकर तनाव का माहौल रहा। कटियार (2020) के मुताबिक, सही सूचना कोविड-19 से लड़ने के लिए उपयोगी है, वहीं गलत सूचना व दुष्प्रचार लोगों के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। यह लोगों में डर का भाव पैदा करता है, साथ ही स्वास्थ्य सुधार की दिशा में किए जा रहे प्रयासों के लिए भी खतरा उत्पन्न करता है। जियांग और उनके साथी (2020) लिखते हैं कि कोविड-19 के दौरान मानसिक स्वास्थ्य को लेकर लोगों में जागरूकता लाने और सरकार को समयबद्ध कदम उठाने चाहिए थे। यह बात और है कि विश्व स्वास्थ्य संगठन ने लोगों में होने वाले मनोवैज्ञानिक तनाव को लेकर अपनी चिंताएँ जाहिर कीं। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने मई 2020 में कोविड-19 की प्रतिक्रिया के संबंध में डब्ल्यूएचए 73.1 प्रस्ताव पारित किया, जिसमें कोविड-19 महामारी पर नियंत्रण के लिए 'इनफोडेमिक' का प्रबंधन करना एक महत्त्वपूर्ण भाग माना गया (विश्व स्वास्थ्य संगठन, 2020; पृष्ठ. 1-3)।

कई शोधकर्ताओं ने पाया कि वैश्विक तौर पर लोगों में आत्महत्या करने जैसी प्रवृति भी पाई गई। जैसा कि भारत की राजधानी दिल्ली में 'दैनिक भास्कर' के पत्रकार ने की थी। वहीं, चीन में भी लोगों में विभिन्न प्रकार का मनोवैज्ञानिक तनाव देखा गया (वांग एवं उनके साथी, 2020)। चूँकि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, इसलिए उसे एक कमरे में बाँधकर रखने से उसमें अवसाद, तनाव और चिंता का स्तर बढ़ता है। भारत में भी लॉकडाउन ने अलग-अलग लिंग, आयु, पेशे, सामाजिक-आर्थिक स्तर के लोगों को प्रभावित किया। विद्यार्थी जहाँ स्कूल नहीं जा पा रहे थे, वहीं इंटरनेट और मोबाइल की सुविधा न होने के कारण उनकी पढ़ाई बाधित हो रही थे। हालाँकि काओ एवं उनके साथी (2020) ने पाया कि कोरोना काल में आर्थिक स्थिति ठीक न होने के कारण अधिकतर लोगों को तनाव

[1]सहायक प्राध्यापक, स्कूल ऑफ़ मीडिया, फिल्म एवं एंटरटेनमेंट, शारदा विश्वविद्यालय, ग्रेटर नोएडा, उत्तर प्रदेश. ईमेल : vinitutpal@gmail.com
[2]सहायक प्राध्यापक, स्कूल ऑफ़ मीडिया, फिल्म एवं एंटरटेनमेंट, शारदा विश्वविद्यालय, ग्रेटर नोएडा, उत्तर प्रदेश. ईमेल : martolia.mukta@gmail.com

की हद से गुजरना पड़ा। लॉकडाउन के पहले चरण में मजदूरों के पलायन से भी अफरा-तफरी का माहौल था और लोगों में तनाव अधिक था।

कटियार (2020) लिखते हैं—"वर्ष 2003 सार्स के प्रकोप के दौरान शोधार्थियों ने मानसिक स्वास्थ्य संबंधी चिंताओं का भी अध्ययन किया था, जिनमें अवसाद, तनाव, मनोविकृति तथा 'पैनिक अटैक' प्रमुख रूप से पाए गए। ये बीमारियाँ उत्पन्न होने का प्रमुख कारण महामारी के परिणाम की चिंता के साथ-साथ लोगों का सामाजिक एकांतवास में रहना, बीमारी होने से स्वयं के साथ भेदभाव हुआ मानना तथा दूसरों को भी संक्रमित करने का अपराधबोध शामिल है।" गौरतलब है कि तनाव को मापने को लेकर मनोवैज्ञानिकों ने कई मापक बनाए हैं, जिनमें डिप्रेशन, एंजायटी और स्ट्रेस स्केल (डीएएसएस) यानी अवसाद, चिंता और तनाव मापक अहम है। इसके मुताबिक चिंता और तनाव का अनूठा मामला है, जबकि अवसाद में सकारात्मक प्रभाव की कमी देखी जाती है। इस मापक से पहले मनोवैज्ञानिक मानते थे कि चिंता और अवसाद एक-दूसरे को जोड़ते और एक-दूसरे के साथ अत्यधिक सहसंबद्ध होते हैं (क्लार्क, 1989; मोरस एवं अन्य, 1992)। वहीं, स्टेट ट्रेट एंजायटी इंवेंट्री के अनुसार अवसाद और चिंता के लक्षण सामान ही होते हैं (स्पाइलबर्गेर, 1983)। बेक एंजायटी इन्वेंट्री ने पाया कि चिंता के लक्षण, अवसाद के लक्षण पर व्याप्त नहीं होता है (बेक एवं अन्य, 1990)।

चंद्राली मुखर्जी (2020) ने भी बच्चों पर किए गए अध्ययन में पाया कि "सभी आयु समूहों के बच्चों में 'क्लिनगिनेस', लापरवाही और चिड़चिड़ापन सबसे गंभीर मनोवैज्ञानिक स्थिति है। अत्यधिक महामारी वाले क्षेत्रों में रहने वाले बच्चों में भय, चिंता और अन्य भावनाओं की दर अधिक होती है। वे लिखती हैं—"कोरोना वायरस के विषय में पढ़ने और सुनने वाले बच्चे बाद में घबराना शुरू कर देते हैं, भले ही उन्हें मामूली खाँसी या जुकाम हो। बच्चे जब घर में फँस गए, दोस्तों और समाज से अलग हो गए तो बोरियत और घबराहट के लक्षण उनमें साधारण तौर पर दिखने लगे। कुछ अपनी चिड़चिड़ाहट की वजह से शारीरिक हिंसा के शिकार भी हुए। उसमा रहमान और उनके साथियों (2021) ने पाया कि पुरुष और महिलाएँ दोनों में तनाव, चिंता और अवसाद सामान रूप से मौजूद है। तनाव और अवसाद हालाँकि दोनों लिंगों में कम या अधिक होता है, लेकिन चिंता का स्तर सभी में सामान पाया गया। हालाँकि उन्होंने अपने अध्ययन में पाया कि विद्यार्थी, शिक्षक, शोधकर्ता और स्वास्थ्यकर्मियों में तनाव का स्तर अधिक था, जबकि मानसिक स्वास्थ्य से जुड़े उन पेशेवरों में, जो विभिन्न कॉर्पोरेट में कार्य करते हैं, सामान्य तनाव की स्थिति पाई गई। उन्होंने अपने अध्ययन में पाया कि शैक्षणिक संस्थानों के बंद होने, विद्यार्थियों और शिक्षकों के पास सीमित तकनीकी साधन होने के कारण उनमें अधिक तनाव था। भारत में अवसाद, चिंता और तनाव को लेकर कोविड-19 के संदर्भ में कई शोध हुए हैं, लेकिन कोविड-19 की दोनों लहरों को लेकर समग्रता में कोई अध्ययन हुआ हो, इसकी जानकारी नहीं है। ऐसे में प्रस्तुत अध्ययन इस खालीपन को भरने का प्रयास है और यह जानने की कोशिश है कि कैसे स्वास्थ्य प्रबंधन हो और लोग महामारी के दौरान कैसी अनुभूति से गुजरते हैं।

शोध प्रविधि

प्रस्तुत अध्ययन 10 अप्रैल, 2021 से लेकर 10 मई, 2021 के बीच किया गया। इसके लिए एक गूगल फॉर्म बनाया गया, जिसमें अवसाद, चिंता, तनाव मापक (DASS) से जुड़े कुल 21 प्रश्न पूछे गए। इस गूगल फॉर्म को विभिन्न व्हाट्सएप समूहों में मीडिया के विद्यार्थियों के बीच शेयर किया गया। प्राप्त आँकड़ों का एसपीएसएस के माध्यम से विश्लेषण किया गया। इस सर्वे में मीडिया के कुल 487 विद्यार्थियों ने भाग लिया, जिसमें कुल 319 छात्र थे तथा 168 छात्राएँ थीं। मीडिया के इन विद्यार्थियों की औसत आयु 24.66 पाई गई। कुल विद्यार्थियों में 272 उत्तरदाता स्नातक के थे, 110 स्नातकोत्तर के विद्यार्थी थे और 105 पीएच.डी. के विद्यार्थी थे। पूरे नमूने में क्रोनबैक अल्फा 0.94 पाया गया, जबकि स्ट्रेस सबस्केल के लिए क्रोनबैक अल्फा 0.65, एंजायटी सबस्केल के लिए 0.69 और डिप्रेशन सबस्केल के लिए 0.81 पाया गया।

गौरतलब है कि अवसाद, चिंता, तनाव मापक (DASS) के 4-बिंदु रेटिंग का उपयोग कोरोना महामारी के दौरान मीडिया छात्रों में अवसाद, चिंता और तनाव का आकलन करने के लिए किया गया। इसमें शून्य (0) का अर्थ है कि यह मुझ पर लागू नहीं होता है और तीन (3) का अर्थ है कि यह मुझ पर सबसे अधिक या अधिकतर समय लागू होता है। यह मापक अवसाद, चिंता और तनाव जैसी भावनाओं के मूल्यांकन के लिए एक मान्य उपकरण है, जो मनोवैज्ञानिक स्थिति का आकलन करने में पूर्ण रूप से सक्षम है। इस पैमाने में अवसाद का मूल्यांकन करने वाले कुल सात पद होते हैं, जिसमें 0–9 के स्कोर, 10-13, 14-20, और 21-27 को सामान्य, हल्का, मध्यम, और गंभीर, क्रमशः माना जाता है। यदि स्कोर 27 से ऊपर जाता है तो इसे अवसाद की अत्यंत गंभीर स्थिति होने के रूप में माना जाता है। वहीं, इस पैमाने पर चिंता घटक के मूल्यांकन करने वाले सात प्रश्नों में यदि 0–7, 8–9, 10–14 और 15–19 का मूल्य आए तो वह क्रमशः सामान्य, हल्का, मध्यम और गंभीर माना जाता है तथा 20 से ऊपर के स्कोर को बेहद गंभीर माना जाता है। इस पैमाने पर तनाव घटक के मूल्यांकन करने वाले सात प्रश्नों में 0-14, 15-18, 19-25 या 26-33 के स्कोर को सामान्य, हल्का, मध्यम और गंभीर माना जाता है, जबकि 34 से ऊपर के स्कोर को बेहद गंभीर माना जाता है।

व्याख्या करने के लिए उपयोग की जाने वाली गंभीरता रेटिंग (लोवीबांड और लोवीबांड 1995) नीचे तालिका-1 में दिखाई गई है :

तीव्रता	अवसाद	चिंता	तनाव
सामान्य	0–9	0–7	0–14
हल्का	10–13	8–9	15–18
मध्यम	14–20	10–14	19–25
गंभीर	21–27	15–19	26–33
बेहद गंभीर	28 +	20 +	34 +

तालिका 1 : लोवीबांड और लोवीबांड के डिप्रेशन एंजायटी स्ट्रेस स्केल की गंभीरता रेटिंग

परिणाम और विश्लेषण

आँकड़ों की प्रारंभिक जाँच में कोई अनुपस्थित मान नहीं पाया गया। आँकड़ों में मीडिया की 168 छात्राएँ और 319 छात्रों सहित 487 विद्यार्थियों को शामिल किया गया। मीडिया विद्यार्थियों में अवसाद, चिंता और तनाव तक पहुँचने के लिए 21-पद डिप्रेशन, चिंता, तनाव स्केल (DASS) का उपयोग किया गया। तालिका-2, मीडिया के छात्रों और

छात्राओं के बीच औसत अंतर को दर्शाती है। मीडिया के छात्रों के लिए तनाव, चिंता और अवसाद का औसत मान क्रमशः 9.46, 8.01 और 8.89 पाया गया, जबकि मीडिया के छात्राओं के लिए तनाव, चिंता और अवसाद का औसत मान 9.14, 7.78 और 8.32 पाया गया। मीडिया के छात्रों का माध्य मान, मीडिया की छात्राओं की तुलना में अधिक पाया गया। हालाँकि, कोई महत्त्वपूर्ण अंतर नहीं देखा गया। छात्रों और छात्राओं दोनों में सामान्य तनाव, हल्की चिंता और सामान्य अवसाद पाया गया।

चर	लिंग	कुल संख्या	औसत	स्तर
तनाव	छात्र	319	9।46	सामान्य
	छात्राएँ	168	9।14	सामान्य
चिंता	छात्र	319	8।01	हल्का
	छात्राएँ	168	7।78	हल्का
अवसाद	छात्र	319	8।89	सामान्य
	छात्राएँ	168	8।32	सामान्य

तालिका-2 : मीडिया के छात्रों और छात्राओं के बीच औसत

अवसाद का स्तर

मीडिया के विद्यार्थियों से लोवीबांड और लोवीबांड के निम्नलिखित सात प्रश्न पूछे गए, जो अवसाद के स्तर का भान करवाते हैं :

1. मैं कोई सकारात्मक भाव का अनुभव नहीं कर सका।
2. मुझे चीजों को करने के लिए पहल करने में कठिनाई हुई।
3. मुझे लगता था कि मेरे पास देखने के लिए कुछ नहीं है।
4. मैं खुद को उदास और नीला महसूस कर रहा था।
5. मैं किसी बात को लेकर उत्साहित नहीं हो पा रहा था।
6. मुझे लगता था कि मैं एक व्यक्ति के रूप में ज्यादा लायक नहीं हूँ।
7. मुझे लगा कि जीवन व्यर्थ है।

सवाल पूछने पर मीडिया के लगभग 40% विद्यार्थियों का मानना था कि ये सात प्रश्न उन पर बिलकुल लागू नहीं होते, जबकि 25% विद्यार्थियों का कहना था कि उनके लिए ये प्रश्न कभी-कभी और कुछ हद तक लागू होते हैं। वहीं, मीडिया के 20% विद्यार्थियों ने माना कि ये प्रश्न उनके लिए काफी हद तक लागू होते हैं और 15% विद्यार्थी ऐसे थे, जिन्होंने ये माना कि ये प्रश्न उन पर बहुत अधिक या अधिकतर समय लागू होते हैं। इसका अर्थ है कि मीडिया के लगभग 15% विद्यार्थी अवसाद के दौर से गुजरे।

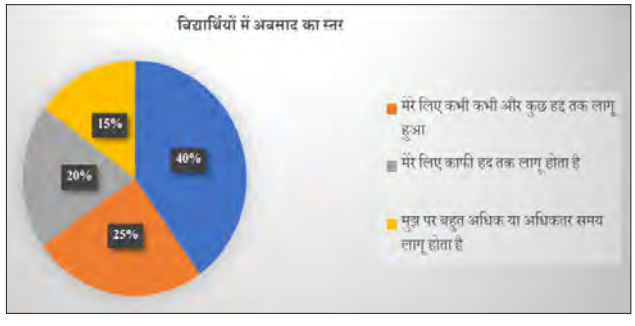

चार्ट 1 : मीडिया के विद्यार्थियों में अवसाद का स्तर

चिंता का स्तर

मीडिया के विद्यार्थियों से लोवीबांड और लोवीबांड के निम्नलिखित सात प्रश्न पूछे गए, जो चिंता के स्तर का भान करवाते हैं :

1. मैं तुच्छ बातों से परेशान हो जाता था।
2. मुझे पता है कि मेरा मुँह सूख जाता था।
3. मैंने साँस लेने में तकलीफ महसूस की (जैसे कि सामान्य से तेज साँस लेना, शारीरिक श्रम के बिना भी साँस का फूलना महसूस किया।)
4. मैंने काँपने का अनुभव किया (खासकर हाथों से)
5. मैं उन परिस्थितियों को लेकर काफी चिंतित था, जिसमें मैं घबरा सकता था और खुद को मूर्ख बना सकता था।
6. मुझे लगता था कि मैं दहशत के करीब हूँ।
7. मैं शारीरिक परिश्रम के अभाव में अपने हृदय की क्रिया से अवगत था (उदाहरण के लिए हृदय गति में वृद्धि की भावना, हृदय की धड़कन का गायब होना)।

सवाल पूछने पर मीडिया के लगभग 39% विद्यार्थियों का मानना था कि ये सात प्रश्न उन पर बिलकुल लागू नहीं होते, जबकि 29% विद्यार्थियों का कहना था कि उनके लिए ये प्रश्न कभी-कभी और कुछ हद तक लागू होते हैं। वहीं, 21% विद्यार्थियों ने माना कि ये प्रश्न उनके लिए काफी हद तक लागू होते हैं और 11% विद्यार्थी ऐसे थे, जिन्होंने ये माना कि ये प्रश्न उन पर बहुत अधिक या अधिकतर समय लागू होते हैं, जो यह स्पष्ट करता है कि लगभग 11% विद्यार्थी चिंता के दौर से गुजरे।

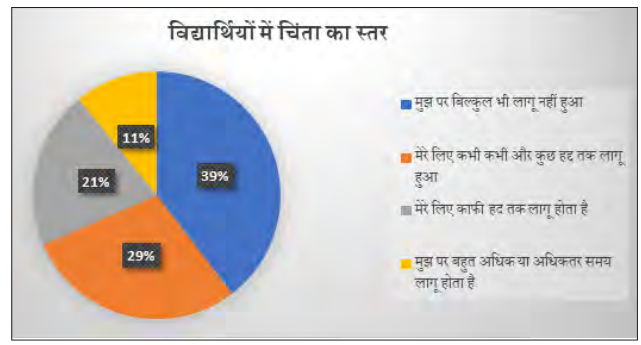

चार्ट 2 : मीडिया के विद्यार्थियों में चिंता का स्तर

तनाव का स्तर

विद्यार्थियों से लोवीबांड और लोवीबांड के निम्नलिखित सात प्रश्न पूछे गए, जो तनाव के स्तर का भान करवाते हैं :

1. मैंने परिस्थिति को जरूरत से ज्यादा प्रतिक्रिया दी।
2. मैंने महसूस किया कि मेरे भीतर काफी घबराहट से भरी ऊर्जा है।
3. मैंने खुद को उत्तेजित पाया।
4. मुझे आराम करना मुश्किल लगा।
5. मैं उन चीजों के प्रति असहिष्णु था जो मुझे अपने काम में आगे बढ़ने से रोकती थी।
6. मुझे लगा कि मैं बहुत ज्यादा भावुक हूँ।
7. मुझे बिना किसी सही कारण के डर लग रहा था।

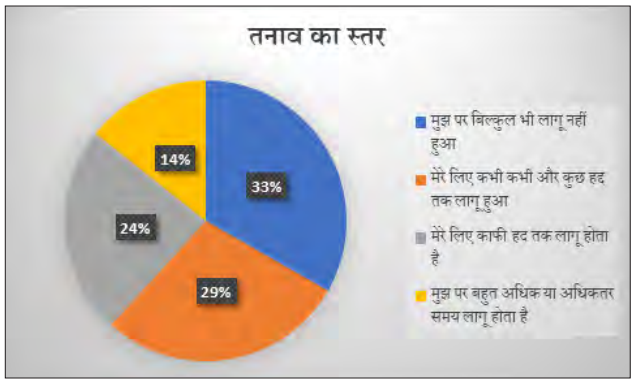

चार्ट 3 : मीडिया के विद्यार्थियों में तनाव का स्तर

तनाव पर सवाल पूछने पर मीडिया के लगभग 33% विद्यार्थियों का मानना था कि ये सात प्रश्न उन पर बिलकुल लागू नहीं होते, जबकि 29% विद्यार्थियों का कहना था कि उनके लिए ये प्रश्न कभी-कभी और कुछ हद तक लागू होते हैं। वहीं, मीडिया के 24% विद्यार्थियों ने माना कि ये प्रश्न उनके लिए काफी हद तक लागू होते हैं और 14% विद्यार्थी ऐसे थे, जिन्होंने यह माना कि ये प्रश्न उन पर बहुत अधिक या अधिकतर समय लागू होते हैं, जो स्पष्ट करता है कि लगभग 14% विद्यार्थी तनाव के दौर से गुजरे।

निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन में यह बात सामने आई कि कोविड काल में मीडिया के विद्यार्थी अवसाद, चिंता और तनाव से ग्रस्त थे और उन्हें अपने करियर को लेकर अधिक चिंता थी। भारत में डिजिटल डिवाइड होने के कारण उनकी परेशानी पढ़ाई और नौकरी को लेकर थी। हालाँकि मीडिया के विद्यार्थियों का यह भी कहना था कि भारत सरकार जिस तरह से वैक्सीन को लेकर कार्य कर रही है, ऐसे में कोरोना संकट अधिक दिनों तक नहीं रहने वाला है। बहरहाल, कोरोना जैसी महामारी को लेकर शोधकर्ताओं के सुझाव हैं कि इस तरह की विपदा में मीडियाकर्मियों, सामाजिक कार्यकर्ताओं के साथ-साथ सरकार को भी धैर्यपूर्वक कार्य करने की आवश्यकता है, जिससे लोगों में अवसाद, चिंता और तनाव न हो और वे संकट की घड़ी का सामना सही तरीके से कर सकें।

संदर्भ

आईआईएमसी सर्वे. (2021). https://hindustannewshublcom/india-news/partisanship-one-sided-reporting-by-western-media-during-second-wave-of-corona-in-india-revealed-in-iimc-survey/

उसमा रहमान, मोहम्मद जी. शाहनवाज, नेदा एच. खान, कोर्सी डी. खर्शींग, मसरत खुर्शीद, कावेरी गुप्ता, दृष्टि कश्यप, एवं रितिका उनियाल. (2021). डिप्रेशन एंजायटी एंड स्ट्रेस अमोंग इंडियंस इन टाइम्स ऑफ कोविड-19 लॉकडाउन, *कम्युनिटी मेंटल हेल्थ जर्नल, अंक-57,* पृष्ठ 42-48

क्लार्क, एल. ए. (1989). द एंजायटी एंड डिप्रेसिव डिसऑर्डर्स : डिस्क्रिप्टिव साइकोपैथोलॉजी एंड डिफरेंशियल डायग्नोसिस, इन पी.सी. केंडाल एवं डी. वाटसन (संपादन). *एंजायटी एंड डिप्रेशन : डिस्टिंकटिव एंड ओवरलेपिंग फीचर्स,* पृष्ठ 06 83-129, एकेडमिक प्रेस.

कटियार, एस. पी. (2020). कोविड महामारी और इनफोडेमिक : एक अध्ययन, *संचार माध्यम, जुलाई-दिसंबर, 2020, खंड-32,* अंक-2, पृष्ठ-1-6

काओ, डब्ल्यू, फंग जेड, होउ, जी. हान, एम. झू, एक्स, डांग, जे. एवं झेंग, जे. (2020). द साइकोलॉजिकल इंपैक्ट ऑफ द कोविड-19 एपिडेमिक ऑन कॉलेज स्टूडेंट्स इन चाइना, *साइकाइट्री रिसर्च, 287,* 112934.

जियांग, वाई., यंग, वाई., ली. डब्ल्यू., झांग, एल, झांग, क्यू, चेउंग, टी. और अन्य. (2020). टाइमली मेंटल हेल्थ केयर फॉर द 2019 नोवेल कोरोनावायरस आउटब्रेक इज अर्जेंटली नीडेड. द *लांसेट साइकाइट्री,* 7 (3), 228-229.

मुखर्जी, सी. (2020). बच्चों पर भारतीय मीडिया के कोविड19 कवरेज का प्रभाव, *संचार माध्यम, जनवरी-जून, 2020, खंड 32,* अंक-1, पृष्ठ 51-68.

मोरस, के., डी नारदो, पी. ए. एवं बार्लो, डी. एच. (1992). डिसटिंगुइशिंग एंजायटी एंड डिप्रेशन : री-एग्जामिनेशन ऑफ द री-कंसट्रक्टेड हैमिलटन स्केल्स. *साइकोलॉजिकल असेसमेंट. 4* (2). 224

रे, डी, सुब्रह्मण्यम, एस. एवं वंदेवाले, एल. (2021). इंडियाज लॉकडाउन. *इन द कोविड-19 पेंडेमिक, इंडिया एंड द वर्ल्ड* (पीपी 64-74), रूटलेज इंडिया.

रंजन, आर, शर्मा, ए. एवं वर्मा, एम. के. (2021). कैरेक्टराइजेशन ऑफ द सेकेंड वेव ऑफ कोविड-19 इन इंडिया, *मेडआरक्सिव*

लोवीबांड, पी.एफ. और लोवीबांड, एस.एच. (1995). द स्ट्रक्चर ऑफ नेगेटिव इमोशनल स्टेट्स : कंपेरिजन ऑफ द डिप्रेशन एंजायटी स्ट्रेस स्केल्स (डीएएसएस) विद द बेक डिप्रेशन एंड एंजायटी इन्वेंटरीज, *बिहेवियर रिसर्च एंड थेरेपी, 33* (3), 335-343.

वांग, सी., पान, आर., वान, एक्स, तान, वाई, झू, एल., हो, सी. एवं उनके साथी. (2020). इमीडियेट साइकोलोजिकल रिस्पांस एंड एसोसिएटेड फैक्टर्स ड्यूरिंग द इनिशियल स्टेज ऑफ द 2019 कोरोनावायरस डिजीज (कोविड-19) एपिडेमिक अमोंग द जनरल पापुलेशन इन चाइना. *इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एनवायरनमेंट रिसर्च एंड पब्लिक हेल्थ, 17* (5). 1729.

विश्व स्वास्थ्य संगठन. (2020, सितंबर, 23). मैनेजिंग द कोविड-19 इनफोडेमिक : प्रोमोटिंग हेल्थी बेहवियर्स एंड मिटिगातिंग द हरम फ्रॉम मिसइनफार्मेशन एंड डिस इनफार्मेशन, जॉइंट स्टेटमेंट डब्ल्यूएचओ, यूएन यूनीसेफ, यूएनडीपी, यूनेस्को, यूएनएड्स, आईटीयू, यूएन ग्लोबल पल्स और आईएफआरसी, पृष्ठ1-3.

स्पाइलबर्गेर, सी. डी. (1983). टेस्ट एंजायटी इन्वेंटरी. द *कोर्सिनी इनसाइक्लोपीडिया ऑफ साइकोलॉजी,* 1-1

संचार माध्यम | खंड 34(1) : 99-104, जनवरी-जून 2022
आईएसएसएन: 2321-2608

वधू-तस्करी में सोशल मीडिया की भूमिका : हरियाणा के संदर्भ में एक अध्ययन

गितेश[1]

सारांश

'यूनाइटेड नेशंस ऑफिस ऑफ ड्रग्स एंड क्राइम' अपनी रिपोर्ट में हर वर्ष मानव-तस्करी से संबंधित आँकड़े प्रकाशित करता है। दुनियाभर में इस जघन्य अपराध के संबंध में चिंता व्यक्त की जा रही है। मानव तस्करी के कई रूप हैं। युद्ध तक में तस्करी किए हुए मानवों का इस्तेमाल होता रहा है। राजनीतिक और आर्थिक कारणों से मानव-तस्करी ने दुनियाभर के समाज वैज्ञानिकों, सामाजिक कार्यकर्ताओं और विभिन्न एजेंसियों का ध्यान आकृष्ट किया है। मानव तस्करी का नया आयाम है वधू-तस्करी, जिसमें पीड़ित को लक्षित करने के लिए अनेक संचार माध्यमों का प्रयोग किया जाता है। प्रस्तुत शोध पत्र में इस संगठित अपराध के जाल को 'चैनलाइज्ड' करने में संप्रेषण माध्यमों, मुख्य रूप से सोशल मीडिया माध्यमों, के प्रयोग का अध्ययन किया गया है। शोध प्राथमिक आँकड़ों पर आधारित है। अभी तक मानव-तस्करी के अलग-अलग आयामों पर शोध किए गए हैं, लेकिन वधू-तस्करी जैसे विषय पर ऐसा कोई अध्ययन नहीं हुआ है, जो समग्रता से इस समस्या को उजागर करने के साथ इसके विभिन्न पक्षों की पड़ताल करता हो। भारत के अकेले हरियाणा राज्य में अब तक खरीदकर लाई गई वधुओं की संख्या एक लाख तीस हजार बताई गई है। वधू-तस्करी मानव-तस्करी के साथ-साथ एक लिंग आधारित हिंसा भी है, जिसके कारण और परिणाम सीधे तौर पर स्त्री के वस्तुकरण पर आधारित हैं और एक कठोर पितृसत्तात्मक व्यवस्था को उजागर करते हैं। नए संचार माध्यम एक तरफ जीवन को बेहतर करने में योगदान दे रहे हैं वहीं इनके जरिये बेहतर जीवन की पेशकश को एक लालच की तरह पेश किया जा रहा है, जो वधू-तस्करी में पीड़ित को लक्षित करने का जाल है। आपराधिक जगत् सोशल-मीडिया माध्यमों से ऐसा छद्म गढ़ता है कि आभासी दुनिया वास्तविकता का बोध कराने लगती है। मीडिया साक्षरता की कमी भारत के उत्तर-पूर्वी राज्यों और उत्तर-पश्चिमी राज्यों में मानव-तस्करी, विशेष रूप से वधू-तस्करी का एक अंतर्देशीय जाल बुनने में अपराधियों की मदद कर रहा है। इसलिए मीडिया साक्षरता को बढ़ावा देने के साथ-साथ समाज और सरकारों के संयुक्त प्रयासों से इस जघन्य अपराध को रोकने के प्रयास होने चाहिए।

संकेत शब्द : वधू-तस्करी, मानव तस्करी, सोशल-मीडिया, मीडिया साक्षरता, संगठित अपराध, लिंग आधारित हिंसा

प्रस्तावना

किसी भी समाज का ढाँचा उसके संप्रेषण अथवा संचार करने के तरीकों में आए बदलाव से बदल सकता है। ठीक इसके विपरीत समाज की बनावट भी संप्रेषण माध्यमों के इस्तेमाल व महत्त्व को कम या ज्यादा कर सकती है। संप्रेषण किसी भी सामाजिक व्यवस्था का आवश्यक अभिन्न अंग है। संप्रेषण जीवन को प्रफुल्लित और अनुरक्षित करता है (मैकब्राइड, 1980)। आज संप्रेषण के नवीन माध्यम के रूप में सोशल मीडिया के कई स्वरूप मौजूद हैं। मैकब्राइड की रिपोर्ट 'मैनी वॉइसेस वन वर्ल्ड' संप्रेषण के नए माध्यमों को वैश्विक स्तर पर जोड़कर नए कुशल और अधिक न्यायपूर्ण विश्व की संकल्पना के साथ विभिन्नताओं को एक मंच पर लाने का प्रयास था। संप्रेषण किसी समाज, सामाजिक गतिविधि और सभ्यता की अभिव्यंजना और संचालन करता है और व्यक्तियों तथा वैचारिक विभिन्नताओं को नेतृत्व प्रदान करना है। आधुनिक संचार तकनीक ने जहाँ तीव्र संप्रेषण को संभव बनाया है, वहीं यह तकनीक समाज के आकार व स्वरूप में परिवर्तन लाई है और असामाजिक तत्त्वों को भी इसने इकट्ठा किया है। इस तरह के प्रयासों से जहाँ संचार माध्यमों की एकरूपता की संकल्पना हमारे सामने है, वहीं इससे कई प्रश्न भी उठे हैं। क्या इस संकल्पना तथा चैनल का प्रयोग आपराधिक गतिविधियों में अथवा अपराधी समूहों द्वारा अपने विशेष उद्देश्यों की पूर्ति के लिए भी किया जा रहा है? मैकब्राइड रिपोर्ट में एक ओर जहाँ शैक्षिक क्षमता को बढ़ाने और संप्रेषण के स्तर पर वैश्विक एकरूपता का वादा था, वहीं आज यह देखने की आवश्यकता है कि क्या ठीक इसके बरक्स उन तमाम संचार माध्यमों को संगठित अपराध के क्षेत्र में भी अपना लिया गया है? क्या समकालीन समाज में सोशल मीडिया माध्यमों का प्रयोग मानव-तस्करी/वधू-तस्करी जैसे संगीन, क्रूर और अमानवीय अपराध को 'चैनलाइज' करने के लिए हो रहा है? मानव तस्करी संगठित अपराध की श्रेणी में आता है। इसका एक विशिष्ट स्वरूप वधू-तस्करी (महिलाओं में विवाह के नाम पर खरीद-फरोख्त, जिसके अंतर्गत मानव-तस्करी के सभी आयाम शामिल हैं) के रूप में उभरा है, जो पिछले कई दशकों से जारी है। मानव-तस्करी की रिपोर्ट के अनुसार महिलाओं में होने वाली तस्करी का 1.4 प्रतिशत विवाह के लिए होने वाली तस्करी से सीधे संबंधित है (यूएनओडीसी, 2016)। अकादमिक जगत् का इस तरह की परिघटनाओं के अध्ययन की तरफ अभी तक विशेष ध्यान नहीं है। मानव तस्करी वैसे भी अपने आप में एक ज्वलंत विषय है। प्रस्तुत शोध-पत्र के माध्यम से यह जानने का प्रयास किया गया है कि क्या समकालीन समाज में सोशल मीडिया माध्यमों का प्रयोग वधू-तस्करी जैसे संगीन, क्रूर और अमानवीय अपराध को 'चैनलाइज' करने के लिए हो रहा है? वधू-तस्करी सीधे लिंग के आधार पर स्त्रियों के वस्तुकरण, उनके प्रति समाज के भेदभावपूर्ण रवैये और उनके शोषण के प्रति सामाजिक रवैये पर भी प्रश्न खड़ा करती है।

सीईडीएडब्ल्यू (द कमेटी ऑन द एलिमिनेशन ऑफ डिस्क्रिमिनेशन

[1]शोधार्थी, स्त्री अध्ययन विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा. ईमेल : geetgitesh17@gmail.com

अगेंस्ट विमेन) की मोनिटरिंग कमेटी रिपोर्ट के अनुच्छेद 19 के अनुसार— "महिला के खिलाफ हिंसा जो यह समझ कर की जाती है कि वह औरत है और औरत को अनुपयुक्त ढंग से प्रभावित करती है, महिलाओं के खिलाफ भेदभाव के साथ-साथ लिंगाधारित हिंसा है जो निषिद्ध है।" वधू-तस्करी महिलाओं के प्रति हिंसा और अधिकारों के हनन के एक नए दायरे का निर्माण कर रही है। इस तरह के अमानवीय कृत्यों की बारीकी से छानबीन और पड़ताल होनी चाहिए, लेकिन यह समाचार पत्रों में महज एक छोटी-सी ख़बर के रूप में ही प्रकाशित होती है। वधू-तस्करी को समझने के लिए आपराधिक प्रावधानों को देखने और परिभाषाओं की पड़ताल करने की भी आवश्यकता है। साथ ही इस परिघटना में क्षेत्र के आधार पर दो स्थान बनते हैं। एक स्त्रोत क्षेत्र (रिसोर्स एरिया), दूसरा गंतव्य क्षेत्र (डेस्टिनेशन एरिया)। भारत के संदर्भ में स्त्रोत क्षेत्र के रूप में ज्यादातर मामले असम, प. बंगाल, झारखंड और बिहार से हैं। वहीं गंतव्य क्षेत्र में सबसे ऊपर हरियाणा, पंजाब, राजस्थान और पश्चिमी उत्तर प्रदेश आता है (खान, 2013)। इस समस्या को समाचार-पत्रों और शोध-आधारित कई टीवी धारावाहिकों में भी बार-बार दिखाया गया है, लेकिन समाज में इस अपराध के संबंध में कोई प्रतिक्रिया नहीं दिखाई दी। इसके प्रति एक मूक सहमति चली आ रही है। वधू-तस्करी के प्रति मास मीडिया में भी केवल एक प्रकार से चुप्पी है। फिल्मों के माध्यम से हरियाणा की एक प्रचलित इमेज बनती है। वे वहाँ की वास्तविक स्थिति के करीब नहीं होतीं। 'दंगल', 'तनु वेड्स मनु-2' या अन्य फिल्में किसी विशिष्ट चरित्र को लेकर एक सतही सामान्यीकरण करती हुई नजर आती हैं। दूसरी तरफ सोशल मीडिया छवि के पुनरुत्पादन के साथ-साथ इस पूरी प्रक्रिया में अपनी अहम भूमिका निभाता है। हरियाणा में ही कुछ लोगों से बातचीत के दौरान यह पाया गया। एक साक्षात्कार में कुछ लोगों ने कहा कि बिहार या अन्य किसी राज्य की तुलना में हरियाणा की आर्थिक स्थिति अच्छी है, जिससे इन महिलाओं का यहाँ अच्छा जीवन निर्वाह होता है। दूसरे, यदि यहाँ लड़कों का विवाह नहीं होगा तो हरियाणा की लड़कियों में भी असुरक्षा बढ़ जाएगी।

साहित्य पुनरावलोकन

मानव तस्करी से संबंधित रिपोर्टों में इससे जुड़े लगभग सभी आयामों, यानी महिलाओं और बच्चों की तस्करी के विषय में भी विस्तार से आँकड़े और प्रक्रिया का विवरण मिलता है। परंतु वधू-तस्करी या विवाह के नाम पर होने वाली महिलाओं की तस्करी के विषय में विस्तृत विवरण नहीं मिलता। वैश्विक स्तर पर कुछ दस्तावेजों और यूनाइटेड नेशन और 'ह्यूमन राइट वाच' की रिपोर्टों में वधू-तस्करी के मामलों का जिक्र है। वर्ष 2016 में आई यूएनओडीसी की रिपोर्ट में 'ट्रैफिकिंग इन मैरिज' शीर्षक से एक छोटे-से अनुभाग में विवाह के नाम पर होने वाली तस्करी का जिक्र है, जहाँ मानव-तस्करी के एक नए स्वरूप के अंतर्गत इसे वर्णित किया गया है (यूएनओडीसी, 2016)।

वधू-तस्करी के मामले विकसित देशों में भी पाए गए हैं। वाशिंगटन के सरकारी दस्तावेजों में वैसे तो ऐसे मामलों का जिक्र बहुत पहले से दर्ज नहीं था, परंतु वाशिंगटन में पहले मानव तस्करी विरोधी सम्मेलन की मेजबानी 2001 में 'यूएन विमेन सेंटर' द्वारा की गई। इसके माध्यम से वाशिंगटन में मानव तस्करी से जुड़े विभिन्न मुद्दों को सामने लाया गया। इनमें वधू-तस्करी के मामलों को भी उजागर किया गया (फर्ग्युसन, 2021)। किसी आपराधिक गतिविधि का राज्य द्वारा समस्या या परिघटना के प्रति स्वीकरण उसके निवारण के प्रति पहला कदम है। वधू-तस्करी न केवल यूरोपीय देशों में है, बल्कि चीन जैसे घोर वामपंथी देशों में भी 'वन चाइल्ड पॉलिसी' के चलते है। चीन में 1987 से लेकर अब तक लगातार महिलाओं की संख्या में गिरावट आई है। वर्ष 2019 आते-आते वहाँ महिलाओं की संख्या पुरुषों की तुलना में 30-40 मिलियन कम हो गई। इस गिरते लिंगानुपात के चलते संभावना है कि चीन में 2030 तक कुल जनसंख्या के 25 प्रतिशत पुरुष तीस वर्ष की आयु के बाद अविवाहित रहेंगे (स्किडमोर, 2021)। यह असुंतलन वधू-तस्करी जैसे अपराध को और बढ़ावा देगा। यही स्थिति भारत के संदर्भ में देखी जा सकती है, जहाँ लड़कियों का लिंगानुपात लगातार कम हुआ है।'हम दो हमारे दो' जैसे नारों और समाज की पितृसत्तात्मक विचारधारा के कारण कन्याभ्रूण हत्या को बढ़ावा मिला, जिससे अविवाहित पुरुषों की संख्या बढ़ी और दूसरे राज्यों से वधू लाने का प्रचलन बढ़ा (कौर, 2004)।

वधू-तस्करी के कारणों के अलावा उसके नेटवर्क पर बात करें तो 'ह्यूमन राइट्स वॉच' की रिपोर्ट के अनुसार चीन के लोगों द्वारा म्यांमार के सुदूर ग्रामीण क्षेत्रों की लड़कियों को पहले विभिन्न प्रलोभनों से फँसाया जाता है और बाद में उन्हें विवाह के नाम पर बेच दिया जाता है। इस तरह वधू-तस्करी के अंतरराष्ट्रीय चैनल काम करते हैं (ह्यूमन राइट्स वॉच, 2019)। भारत में यही नेटवर्क अंतरराष्ट्रीय और अंतर्देशीय स्तरों पर सक्रिय है। जहाँ कुछ राज्यों से वधू खरीदी जाती है, वहीं कुछ मामले बांग्लादेश (ब्लेंशेट, 2003) और नेपाल जैसे देशों से भी आते हैं। महिला तस्करी में विशेष रूप से वधू-तस्करी को अंजाम देने के लिए इंटरनेट जैसे आधुनिक संचार माध्यमों का प्रयोग बहुत तेजी से बढ़ा है। इजरायल में भी गरीब क्षेत्रों की महिलाओं को इंटरनेट के जरिये, पुरुषों की अमीर प्रोफाइल बनाकर फँसाया जाता है। इस तरह विवाह के नाम पर फँसाने के बाद उन्हें आजीवन दासता जैसा जीवन व्यतीत करना पड़ता है। उन्हें यौन शोषण और हिंसा के गंभीर रूप को झेलना पड़ता है (मिनिस्ट्री ऑफ जस्टिस, इजरायल, 2020)।

संचार के आधुनिक माध्यम इंटरनेट ने वधू-तस्करी के लिए एक अंतरराष्ट्रीय बाजार खड़ा कर दिया है, जहाँ दलालों के लिए माँग के अनुसार वधू मिलना आसान हो जाता है। ज्यादातर मामलों में कैनिडियन और अमेरिकन पुरुषों द्वारा मेल-ऑर्डर ब्राइड एजेंसी को एक अनुमान के अनुसार एक पत्नी के लिए 3,000 से 10,000 डॉलर तक का भुगतान किया जाता है। ऐसे मामलों में गरीब देशों की लड़कियाँ ज्यादा होती हैं और उन्हें 'फियांसी वीजा' द्वारा दूसरे देश में बुलाया जाता है, जहाँ दो-तीन महीने के अंदर विवाह करके अगले दो साल तक इन लड़कियों को उस पुरुष के अनुसार ही रहना पड़ता है। माँग से लेकर आपूर्ति और भुगतान तक की पूरी प्रक्रिया में इंटरनेट अहम भूमिका निभाता है (ब्रानगन, 2019)।

विवाह के लिए की जाने वाली वधू-तस्करी में भी विभिन्न प्रकार के हथकंडे बिलकुल वैसे ही हैं जैसे मानव-तस्करी के अन्य आयामों में अपनाए जाते हैं। यह विडंबना ही है कि विवाह जैसी संस्था के अंतर्गत तस्करी की प्रक्रिया में से एक औरत को गुजरना पड़ता है और घटना घटित

होने के बावजूद अंतरराष्ट्रीय और राष्ट्रीय स्तर पर इसकी स्वीकार्यता बहुत कम है (क्यूएक, 2018)। कुछ ऐसी ही स्थिति भारत में बढ़ रही वधू-तस्करी को लेकर भी है। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर ज्यादातर मामले 'इंटरनेशनल मैरिज ब्रोकर इंडस्ट्री' तय करवाती है। ज्यादातर मामलों में महिलाएँ प्रताड़ना, हिंसा और शोषण का शिकार होती हैं और अधिकतर विवाह के मामले झूठ और झूठे प्रलोभन पर तय होते हैं (ताहिरीह जस्टिस सेंटर, 2006)।

भारतीय संदर्भ में वधू-तस्करी से संबंधित तथ्यों पर गौर किया जाए तो यहाँ भी ज्यादातर मामलों में प्राकृतिक आपदाओं से ग्रसित और गरीब क्षेत्रों से लड़कियाँ हरियाणा, पंजाब, राजस्थान और पश्चिमी उत्तर प्रदेश के कई इलाकों में लाई जाती हैं (खान, 2013)। अकेले हरियाणा में अब तक ऐसे एक लाख तीस हजार मामले दर्ज किए गए हैं (जगलान, 2019)। हरियाणा में पितृसत्तात्मक समाज और एंड्रोसेंटरिक कल्चर के कारण कन्या-भ्रूण हत्या और कन्या शिशु हत्या जैसी हिंसा के चलते पिछले सौ वर्ष से इस राज्य का लिंगानुपात 870 से कम रहा है। पिछले पाँच-छह दशकों से वधू-तस्करी इस प्रदेश की प्रचलित परिघटना बनती जा रही है, जिसमें मुख्य नेटवर्क ट्रक चालक होते हैं। तस्करी के माध्यम से होने वाले विवाहों में महिला हरियाणा जैसे समाज में कभी परिवार के सदस्य का सम्मान प्राप्त नहीं कर पाती और उसे आजीवन खरीदी हुई औरत के लांछन के साथ जीना पड़ता है (खान, 2013)।

इसी क्रम में गंतव्य क्षेत्र के विषय में भी अध्ययन महत्त्वपूर्ण हो जाता है, क्योंकि वधू-तस्करी की आधार भूमि वहाँ होने वाली माँग पर ही टिकी हुई है। हरियाणा जैसे राज्य में क्या कारण हैं कि अन्य राज्यों से वधू खरीद कर लानी पड़ती है। प्रेम चौधरी अपने एक लेख में 'क्राइसिस ऑफ मस्कुलिनिटी की बात करती हैं, जो खासतौर से अविवाहित, बेरोजगार और उम्रदराज पुरुषों के संदर्भ में है। ये कहीं-न-कहीं विवाह के लिए वधू खरीदे जाने की घटना से सीधे संबन्धित हैं। ये हरियाणवी समाज में पुरुष की पौरुषीयता को अवर्गीकृत करते हैं और अपने ही समुदाय में विवाह के लिए लड़की मिलना मुश्किल हो जाता है (चौधरी, 2019)। यह पूरी परिघटना माँग और आपूर्ति के सिद्धांत पर टिकी है। माँग एक क्षेत्र का ही पक्ष है, स्त्रोत क्षेत्र में किस तरह से यह परिघटना 'चैनलाइज' हो रही है और लक्षित लड़की को चिह्नित करने के लिए किन-किन माध्यमों का प्रयोग किया जाता है, उन तथ्यों पर कोई बात नहीं है। हरियाणा के संदर्भ में स्थानीय सामाजिक-आर्थिक स्थिति और स्थानीय महिला और खरीद कर लाई गई महिला के जीवन और अधिकारों की पड़ताल और परिघटना से संबंधित जानकारी स्थानीय पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहती है। कहानी संग्रह 'बहत्तर हजार की बोढ़िया (वधू)' में वधू खरीदने के प्रचलन और हरियाणवी लोगों की मानसिकता और महिलाओं के हो रहे 'वस्तुकरण' का वर्णन है और इसमें उनकी खरीद-फरोख्त के प्रति एक मूक सहमति बनी है (नवरत्न, 2017)। इस कहानी संग्रह में हरियाणवी समाज में आने के बाद महिला के जीवन संघर्ष को उजागर किया गया है, लेकिन लड़की के पैतृक परिवार की स्थिति और वधू-तस्करी के नेटवर्क पर कोई चर्चा नहीं है।

शोध-प्रविधि

किसी सामाजिक परिघटना की व्यापकता और प्रकृति का गुणात्मकता शोध पद्धति से बेहतर अध्ययन किया जा सकता है। इसलिए प्रस्तुत शोध गुणात्मक शोध प्रविधि द्वारा किया गया है, जिसके अंतर्गत कार्य-कारण व्याख्या करते हुए प्रत्यक्ष साक्षात्कार तथा केस स्टडी और अवलोकन पद्धति को अपनाया गया है। इस शोध को नारीवादी दृष्टिकोण से किया गया है, जो समाज में व्याप्त समस्याओं की छानबीन करने का ही एक प्रकार है। नारीवादी शोध पुरुष-प्रधान और पितृसत्तात्मक और लिंगभेद करने वाले समाज में औरत की सामाजिक स्थिति (स्टेटस) का अध्ययन करता है (वाइज एस. & स्टेनली, लिज., 1983)। नारीवादी शोध प्रासंगिक, विस्तृत और अनुभवजन्य है, समाज से घनिष्ठ रूप से जुड़ा हुआ है। यह आवश्यक नहीं कि कोई प्रत्युत्तर दे, परंतु अनुभवी परिघटनाओं और अनुभवों के आधार पर सामाजिक वातावरण को उजागर करता है (रेन्हार्ज, 1992)। महिलाओं के अनुभवों के आधार पर ही उनकी विकृत स्थिति सामने आती है। उनके जीवन और अधिकारों को जानने के लिए केंद्र में 'जेंडर' को रखा जाता है। प्रस्तुत शोध पत्र में वधू-तस्करी के अंतर्गत स्त्रोत क्षेत्र (असम, प. बंगाल, झारखंड और बिहार) में क्षेत्र-भ्रमण और गंतव्य स्थल (हरियाणा में जींद और नूह (मेवात) जिला) से कुल पैंतीस मामलों का अध्ययन किया गया। शोध हेतु आँकड़ा संकलन के लिए 'स्नो-बॉल सैंपलिंग' को अपनाया गया। ज्यादातर मामले हरियाणा में वधू-तस्करी के बाद एक वैवाहिक परिवेश में जीवन निर्वाह कर रही महिलाओं के हैं। कुछ मामले स्त्रोत क्षेत्र से हैं, जो तस्करी के बाद पुलिस और एनजीओ की सहायता से मुक्त कराए गए। सभी मामलों के नेटवर्क और चैनल अलग-अलग हैं, लेकिन कुछ मामले ऐसे हैं, जिनमें लड़की को तस्करी के लिए सोशल-मीडिया के तहत 'टार्गेट' किया गया। इसलिए यह जानना जरूरी है कि वधू-तस्करी के अंतर्गत सोशल-मीडिया प्लेटफॉर्म का प्रयोग संगठित अपराध के लिए कैसे किया जा रहा है। प्रस्तुत शोध पत्र हेतु वधू तस्करी की परिघटना को उजागर करने के लिए तीन मुख्य मामलों का अध्ययन किया गया, जिनमें मीडिया और आधुनिक संप्रेषण माध्यमों के तहत वधू-तस्करी को 'चैनलाइज' किया गया। इन तीनों ही मामलों में पीड़ितों की पहचान उजागर न करने की दृष्टि से उनके नाम बदल दिए गए हैं।

सोशल मीडिया : वधू-तस्करी का माध्यम

मानव-तस्करी या किसी भी संगठित अपराध में पूरी परिघटना एक माध्यम के तहत घटित होती है। वधू-तस्करी के संदर्भ में भी 'स्त्रोत क्षेत्र-ट्रांजिट क्षेत्र-गंतव्य क्षेत्र' की एक शृंखला बनती है। इस अपराध के 'चैनलाइज' होने की बात करें तो इसकी शुरुआत 'माँग-आपूर्ति' सिद्धांत पर टिकी है। भारत में किसी भी स्त्रोत क्षेत्र में वधू-तस्करी के लिए लड़की को अनेक माध्यमों से चिह्नित किया जाता है, जो गंतव्य क्षेत्र की माँग पर आधारित है। आधुनिक संचार तकनीक के माध्यम से सोशल-मीडिया तक पहुँच की बात करें तो गरीबी रेखा से नीचे जीने वाली आबादी में भी बेहतर जीवन और तकनीक के इस्तेमाल तक पहुँच रखने की लालसा के चलते 'एंड्रायड' तक पहुँच बना ली जाती है। इस तरह की महत्त्वाकांक्षा किशोरों में ज्यादा है। तकनीक के माध्यम से आधुनिक फैशन और आधुनिक जीवन के प्रति लालसा का जन्म होता है। शिक्षा कम होने के कारण आधुनिक संप्रेषण माध्यम और सोशल नेटवर्क (फेसबुक, टिकटॉक, व्हाट्सएप जैसे माध्यम) निम्नवर्गीय लोगों और बाकी दुनिया के बीच एक संपर्क स्थापित

करने में मदद करते हैं। संपर्क स्थापित होना एक बात है, लेकिन शिक्षा और मीडिया शिक्षा की कमी के चलते यह आबादी अपराध जगत् के लिए आसानी से चिह्नित हो जाती है, जहाँ जरूरत के चलते गरीबी को जरिया बनाकर और बेहतर जीवन का लालच ऐसा आधार बनाता है कि किशोरों और वधू-तस्करी के संदर्भ में विशेषकर किशोर उम्र की लड़कियों को अपराधियों द्वारा चिह्नित कर लिया जाता है।

बेहतर जीवन की पेशकश

वधू-तस्करी के अंतर्गत मानव तस्कर पीड़ितों को वित्तीय लाभ से लुभाते हैं। वे आर्थिक रूप से अत्यधिक पिछड़े घरों के बच्चों, खासतौर पर लड़कियों को, बेहतर जीवन की संभावना दिखाकर घर से भागने की पेशकश करके लुभाते हैं। यहाँ मुख्य प्रश्न यह है कि इन बच्चों तक तस्कर अपनी पहुँच कैसे बना लेते हैं? असम की रहने वाली 22 वर्षीय रीना (केस स्टडी-1) को फेसबुक के जरिये एक लड़के का प्रेम प्रस्ताव आया, जिसमें बात दोस्ती से शुरू हुई और बाद में विवाह के प्रस्ताव तक पहुँच गई। इस पूरे मामले का आधार लड़के द्वारा बार-बार बेहतर जीवन का लालच रहा, जिसके चलते लड़की घर से भागने को तैयार हो गई। एक छोटे-से गाँव से निकलकर गुवाहाटी जैसे बड़े शहर में जीने की पेशकश और गरीबी तथा संघर्षपूर्ण जीवन से छुटकारे की चाह ने रीना को इस जाल में फँसाया। इस मामले में पहले कुछ अरसे तक बातचीत की गई, जिसमें लड़की के अपराधी पर भरोसा करने की क्षमता को जाँचा गया। पारिवारिक स्थिति के अंतर्गत लड़की के सामाजिक और आर्थिक पक्ष को ठीक से जाँच-परख कर ही बात आगे बढ़ाई गई। पीड़िता के भावनात्मक पक्ष पर लगातार बात करते हुए उसे बेहतर जीवन के संजाल की ओर आकर्षित किया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि लड़की अपने घर से भागने के लिए तैयार हो गई। इस तरह के मामलों में लड़की इस बात से बिलकुल अनभिज्ञ रहती है कि उसके साथ कुछ गलत हो सकता है। रीना बताती है—"मुझे कभी नहीं लगा था कि वह लरका (लड़का) मुझे दस-बारह हजार रुपये में बेच देगी (देगा)। उसके लिए मैं अपने माँ-बाप से झूठ बोली। उसने मुझे कहा कि कोलकाता जाएँगे और वहाँ मैं नौकरी करूँगा और तुम फ्लैट में रहना। मुझे लगा, अब तक तो मेरे माँ-बाप के साथ एक कमरे के घर में रहती आई हूँ उसके साथ जाकर अच्छी जिंदगी होगी। घर वाले तो लरका भी मजदूर ही ढूँढ़ेंगे। सबसे पहले वह मुझे कोलकाता लेकर गया, फिर वहाँ से दिल्ली जाने की बात की। जब भी वह मुझसे बात करता था तो कभी घर का अच्छा फोटो मुझे भेजता था, कभी अच्छे कपड़े, पर जब कोलकाता गए तो उसने मुझे किसी फ्लैट में नहीं रखा। वह एक भीड़ वाली जगह थी और मेरे अलावा वहाँ और भी कई लड़कियाँ थीं। मुझसे खाना लाने का बहाना करके वह चला गया और दोबारा वहाँ नहीं आया। अगर पुलिस अचानक से वहाँ नहीं पहुँचती तो मैं दो दिन बाद दिल्ली भेज दी जाती।"

ऐसे मामले में अपराधी भी अशिक्षित, बेरोजगार और गरीबी से संघर्षरत है। उसके लिए रीना कोई पहली लड़की नहीं रही होगी। फेसबुक या अन्य नकली पहचान का प्रयोग करते हुए वह लगातार इस अपराध में लिप्त है। जो महत्त्वाकांक्षा पीड़िता को प्रभावित कर रही है, वही अपराधी को भी कर रही है। इस तरह से वधू-तस्करी/मानव तस्करी एक 'चैनलाइज्ड' अपराध है। अपराधी से पीड़िता तक पहुँच और गाँव से छोटे शहर तक आने के घटनाक्रम, वहाँ से महानगर तक पलायन, पीड़िता का लगातार एक अपराधी से दूसरे अपराधी के हाथों में हस्तांतरित होने और गंतव्य-स्थल तक जाते-जाते पीड़िता वास्तविक अपराधी तक को पहचानने में भ्रमित हो जाती है। सोशल-मीडिया या संप्रेषण के आधुनिक माध्यम अपराधी को छिपने के लिए एक ढाल प्रदान करते हैं, जहाँ अपराधी अपनी पहचान को बहुत बार बदलता है और पीड़िता को आसानी से परिचालित कर सकता है। इसी संदर्भ में एक अन्य मामले को देखें तो झारखंड की रहने वाली सविता (केस स्टडी-2) को 'कस्टमर काल' के जरिये बातचीत से 'टार्गेट' किया गया। असम पुलिस में मानव तस्करी रोधी ईकाई के सदस्य उपनिरीक्षक होरीराम बताते हैं—"फेसबुक और टिकटॉक तो फिर भी एडवांस हैं, यहाँ लोकल लेवल पर बढ़ रहे तस्करी के मामलों की छानबीन के दौरान यह सामने आया है कि मोबाइल रिचार्ज दुकानों पर सिम कार्ड इश्यू करने के लिए जो फोटो आईडी होती है वह भी माध्यम बनती है। इस मामले की शुरुआत मोबाइल रिचार्ज दुकान से हुई। दुकानदार द्वारा टॉप-अप रिचार्ज करते वक्त ग्राहक की जानकारी ली जाती है, जिसमें मोबाइल नंबर दर्ज कर लिया जाता है। इसके अतिरिक्त सिम कार्ड खरीदते वक्त पहचान पत्र और फोटो भी ली जाती है, जिससे 'टार्गेट' कर लिया जाता है कि लड़की देखने में कैसी है। दुकान पर आने वाले अन्य पुरुष ग्राहक भी दुकान वाले से यह माँग करते हैं कि अमुक लड़की से 'सेटिंग' करवाई जाए। इस प्रकार लड़की को शक्ल-सूरत के आधार पर भी चिह्नित कर लिया जाता है। इससे ज्यादातर मामले प्रेम-प्रसंग के जरिये बनाए जाते हैं। लड़की को बेहतर जीवन की संभावना दिखाकर बड़े शहरों में ले जाया जाता है। इस तरह के मामलों में माता-पिता से भी बच्ची दूरी बनाने लगती है और अपराधी द्वारा की जाने वाली बातें उसे इस तरह प्रलोभित करती हैं कि अपने पियर-ग्रुप में भी लड़की कुछ शेयर नहीं करती है। कुछ मामलों में एक लड़की, जो आसानी से भ्रम में आ जाती है, अपने साथ की अन्य लड़कियों को भी जाल में फँसाने का काम करती है" (होरीराम, 2018)।

सविता असम के चार एरिया (ब्रह्मपुत्र नदी के बीच एक बाढ़ ग्रसित क्षेत्र) की रहने वाली है। मोबाइल से एक अनजान लड़के से हुई बातचीत से उसका प्रेम-प्रसंग शुरू हुआ, जिसमें बेहतर जीवन, गाँव के संघर्षपूर्ण जीवन से दूर ले जाने के वादे और विवाह जैसे प्रलोभन शामिल थे। लड़के ने बात करने की शुरुआत मोबाइल रिचार्ज करवाने से लेकर की। उसके बाद उसी लड़के ने एक सेकंड-हैंड एंड्रायड फोन दिया। इस एक छोटे-से प्रलोभन से इस मामले की शुरुआत हुई। लड़के ने सविता और उसकी दो बहनों को एक साथ गुवाहाटी घुमाने की पेशकश भी की। इतनी गरीबी होने पर मोबाइल के माध्यम से एक आकर्षक दुनिया उसके सामने थी। तीनों बहनें इसी स्वप्न और खूबसूरत दुनिया के जाल में फँसकर एक साथ घूमने निकली। गुवाहाटी पहुँचने पर एक और लड़का उनका इंतजार कर रहा था। फिर दोनों लड़के मिलकर तीनों बहनों को दिल्ली ले आए। दिल्ली पहुँचने पर सविता अपनी दो बहनों से अलग कर दी गई। पाँच-छह दिन बाद उसका सौदा हरियाणा के करनाल जिले में कर दिया गया। हरियाणा वाले आदमी ने भी उसे एक बड़े से गोदाम में बंद रखा और इस दौरान चार-पाँच बार कई लोग उसे देखने आए। सविता एक दिन गोदाम खुला पाकर भागने की कोशिश में थी कि उस व्यक्ति ने उसे पकड़ लिया और इस पूरी घटना को खेतों में घूम रहे एक बूढ़े आदमी ने देखा (एनजीओ कार्यकर्ता से

बातचीत के दौरान यह बात उजागर हुई) और पुलिस को सूचित किया गया। उसके बाद हरियाणा पुलिस ने असम पुलिस को फोन के जरिये यह सूचना दी। असम से एनजीओ और पुलिस की सहायता से केवल दो लड़कियों को ही बचाया जा सका। पुलिस से हुई बातचीत में यह सामने आया कि घर से भाग जाने के कारण लड़की के माता-पिता बच्चियों को दिल्ली से वापस लाने के लिए आने को तैयार नहीं थे। स्थानीय समूह में पितृसत्तात्मक मूल्यों के चलते इस तरह के मामलों में सम्मान, लड़की की सुरक्षा और भविष्य दोनों पर भारी पड़ता है। इस पूरे मामले पर सविता ने फिर भी कुछ बात की, लेकिन उसकी बहन अभी तक किसी से कोई ज्यादा बात नहीं करती है। इस हादसे से सविता की छोटी बहन को बहुत बड़ा मानसिक आघात पहुँचा, जिससे वह किसी से भी न कोई बात करती है न ही अकेले रह पाती है। इस प्रकार सविता के प्रेम-संबंध ने ही उसे जोखिम में डाल दिया। जिस लड़के से वह छह महीने से बात कर रही थी, उसी ने उसे जाल में फँसाया। सोशल-मीडिया प्रपंच रचने में अपराधी का साथ देता है। शिक्षा और तकनीकी शिक्षा की कमी, जागरूकता की कमी और गरीबी ने इस संजाल को और सुदृढ़ किया। सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म की आभासी दुनिया सामान्य दुनिया की तुलना में व्यक्ति को ज्यादा आकर्षित करने लगती है। वर्तमान स्थिति से यह आभासी दुनिया ऐसा छद्म गढ़ती है कि वह व्यक्ति को वास्तविक लगने लगता है। बहुत बार ऐसा होता है कि आप जिस व्यक्ति से बात कर रहे होते हैं उसकी जगह कोई और होता है। वास्तविक रूप से संपर्क में आए बिना किसी को सच मान लेना कई बार बड़े जोखिम में डाल देता है।

रोजगार एजेंसी और तस्करी का संपर्क जाल

कविता (केस स्टडी-3) को जसविंदर ने दिल्ली से 40,000 रुपये में खरीदा। कविता को उसके साथ रहते हुए सात वर्ष हो चुके हैं। कविता मुख्य रूप से असम के बोंगोएगाँव से है। उसकी शिक्षा केवल दसवीं तक हुई है। घर में बहुत गरीबी और परिवार बड़ा होने के कारण घर में खानपान और बाकी आधारभूत आवश्यकताओं की पूर्ति तक हो पाना बहुत बार मुश्किल होता था। अकेले पिता पर घर का आर्थिक बोझ होने और घर में सबसे बड़ी बेटी होने के कारण कविता के मन में अपने पिता का हाथ बँटाने की चाह के चलते रोजगार की तलाश का ख्याल आया। रोजगार की तलाश में कविता ने साइबर कैफे से ऑनलाइन रोजगार तलाश किया। उसे उस वेबसाइट के जरिये गुवाहाटी में एक व्यक्ति के पास जाना पड़ा। उस व्यक्ति तक पहुँचने में साइबर कैफे वाले लड़के ने संपर्क स्थापित करवाया। इस दौरान कविता सबसे पहले अपने गाँव से गुवाहाटी गई। वहाँ उसे बेहतर नौकरी का लालच देकर दिल्ली ले जाने की पेशकश की गई। रोजगार और बेहतर जीवन की तलाश के चलते कविता ने गुवाहाटी वाले व्यक्ति पर भरोसा करके उस व्यक्ति के साथ दिल्ली जाने का जोखिम उठाया। पुरानी दिल्ली में एक जगह पर उसे दस दिन रखा गया। जहाँ उसके साथ सात-आठ लड़कियाँ और भी थीं। उस जगह पर कविता को देखने कई लोग आते थे। जो उससे ज्यादा बात नहीं करते थे केवल उसे देखते और चले जाते। जो व्यक्ति कविता को गुवाहाटी से लेकर आया था वह ज्यादा सवाल करने पर कविता पर गुस्सा करता था। चार-पाँच दिन बाद ही वह कविता को वहीं छोड़कर चला गया। जब एक दिन कविता ने वहाँ से भाग जाने की धमकी दी तो दिल्ली वाले व्यक्ति ने घर के बाहर ताला लगाना शुरू कर दिया। कविता से उसका मोबाइल छीन लिया और कहीं भी निकलने पर पाबंदी लगा दी। इस तरह करीब दस दिन बीते थे कि जसविंदर से 40,000 रुपये लेकर कविता को उसके साथ भेज दिया गया। उसके बाद से कविता पिछले सात वर्षों से जसविंदर के साथ ही रह रही है। वह इतना समय बीत जाने के बाद भी अपने घर नहीं जा पाई है। ज्यादातर अपराधी लड़कियों तक अपनी पहुँच बनाने के लिए फेसबूक, इंस्टाग्राम, स्नैपचैट, टिकटॉक, टिंडर और डेटिंग साइट का प्रयोग करते हैं। इसमें सबसे ज्यादा किशोर बच्चों को लक्षित किया जाता है और इनमें लड़कियों की संख्या ज्यादा होती है (नेपाली, 2018)। इसमें बेहतर जीवन के प्रति आकांक्षा मुख्य होती है। इन सभी चैनलों के माध्यम से लड़कियों को मुंबई, दिल्ली जैसे बड़े शहरों में मॉडलिंग और एक्टिंग के प्रलोभन दिए जाते हैं। उनके शोषण की शुरुआत फर्स्ट-हैंड बात कर रहे लड़के से ही होती है। उसके बाद उसे पास के बड़े शहर में दूसरे व्यक्ति के संपर्क में आना पड़ता है। इस तरह राज्य से बाहर कोई तीसरा व्यक्ति उसको लेकर जाता है। वहाँ जाकर उसे शादी, घरेलू कामगार या वेश्यावृत्ति के लिए बेच दिया जाता है। इस तरह पूरे जाल में फँसने के बाद लड़की के पास वापसी का कोई रास्ता नहीं बचता है। थोड़े-से धन की पेशकश और बेहतर जीवन का लालच व्यक्ति को लक्षित करने का सबसे पहला कदम है।

निष्कर्ष

वधू-तस्करी समाज के कठोर पितृसत्तातमक रवैये को उजागर करती है। इसमें लिंग आधारित हिंसा के साथ स्त्री के मानवाधिकारों और सामाजिक अधिकारों के हनन का भी पर्यवेक्षण आवश्यक है। वधू-तस्करी न केवल समाजशास्त्रीय अपितु मानवशास्त्र, अपराध शास्त्र, मानवाधिकार, कानून और जन संचार के अंतर्गत भी किया जाने वाला शोध विषय है, ताकि इसकी परिसीमाओं का बारीकी से अध्ययन किया जा सके। वधू-तस्करी जैसी आपराधिक गतिविधि का मीडिया माध्यमों से संबंध इस बात को उजागर करता है कि नए संचार माध्यमों को अपराध के संजाल में प्रयोग किया जा रहा है। ये माध्यम वैश्विक स्तर की घटनाओं को एक मंच पर इकठ्ठा कर लाभप्रद सूचना प्रदान करते हैं। इस मंच का प्रयोग अपराध को संगठित या संगठित अपराध को कार्यान्वित करने के लिए भी किया जा रहा है। जहाँ एक तरफ संप्रेषण माध्यम जीवन को बेहतर करने में योगदान दे रहे हैं, वहीं इन माध्यमों के जरिये बेहतर जीवन की पेशकश को एक लालच की तरह पेश किया जा रहा है, जो पीड़ित को लक्षित करने का जाल है। आपराधिक जगत् सोशल-मीडिया माध्यमों से ऐसा छद्म गढ़ता है कि वह आभासी दुनिया वास्तविकता का बोध कराने लगती है। वधू-तस्करी लिंग आधारित अपराध है, जिस पर अकादमिक जगत् में गहन शोध होना महत्त्वपूर्ण है। मानव-तस्करी के विभिन्न स्वरूपों के बारे में अनेक अध्ययन हुए हैं, लेकिन वधू-तस्करी पर कोई विस्तृत शोध या इस विषय पर दस्तावेजों के संकलन और लेखन का कार्य नहीं हुआ है। वधू-तस्करी के अंतर्गत न केवल स्त्री की विवाह के लिए खरीद-फरोख्त होती है, बल्कि सामाजिक कलंक, इज्जत, वैवाहिक बलात्कार और घरेलू हिंसा जैसे अनेक मुद्दे भी इसमें शामिल हैं। इस परिघटना के संदर्भ में नेटवर्क की बात करें तो इसके अनेक माध्यम हैं, जिनमें संप्रेषण के माध्यमों को भी पीड़िता को चिह्नित करने के लिए प्रयोग में लाया जा रहा है। इस प्रकार के माध्यमों का प्रयोग सुरक्षित और विश्वसनीय करना आवश्यक है।

भारत में मीडिया साक्षरता की कमी उत्तर-पूर्वी राज्यों और उत्तर-पश्चिमी राज्यों में मानव-तस्करी, विशेष रूप से वधू-तस्करी, का एक अंतर्देशीय जाल बुनने में अपराधियों की मदद कर रही है। अतः इस संबंध में मीडिया की भूमिका पर एक विस्तृत अध्ययन की आवश्यकता है।

संदर्भ

आईएलओ. (2017). *ग्लोबल एस्टिमेट्स ऑफ मॉडर्न स्लेवरी : फोर्स्ड लेबर एंड फोर्स्ड मैरिज*. जेनेवा: इंटरनेशनल लेबर ओर्गनाइजेशन एंड द वॉक फ्री फाउंडेशन.

क्यूएक, के. (2018). *मैरिज ट्रैफिकिंग विमेन इन फोर्स्ड वेडलॉक*. न्यूयॉर्क : रुट्लेड्ज.

कौर, आर. (2004). एक्रोस-रीजन मैरिज : पोवर्टी, फीमेल माइग्रेशन एंड सेक्स रेशो. *इकोनोमिक एंड पोलिटिकल वीकली*, 2595-2603.

खान, एस. आर. (2013). नेटवर्क ऑफ ब्राइड ट्रैफिकिंग इन इंडिया. *जर्नल ऑफ डेवलपमेंट मेनेजमेंट*, 37-46.

खान, एस. आर. (30 मार्च, 2018). नेटवर्क ऑफ ब्राइड ट्रैफिकिंग इन इंडिया विषय पर काम करने वाले एनजीओ 'एंपॉवर पीपुल' के संस्थापक. *नई दिल्ली में शोधकर्ता से साक्षात्कार*.

चौधरी, पी. (2019). *क्राइसिस ऑफ मस्कुलिनिटी इन हरियाणा : जेंडर, पॉवर एंड आइडेंटिटी अससे ऑन मस्कुलिनिटी इन रूरल इंडिया*. नई दिल्ली : ओरिएंट ब्लैकस्वान.

जगलान, एस. (12 दिसंबर, 2019). हरियाणा में 'बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ' एनजीओ के संस्थापक. *गुरुग्राम में शोधकर्ता से साक्षात्कार*.

ताहिरीह जस्टिस सेंटर. (2006). *फ्रेक्युएंटली आस्क्ड क्वेश्चंस : इंटेरनेशनल मैरिज ब्रोकर रेगुलेशन एक्ट ऑफ 2005*. विर्जीनिया : ताहिरीह जस्टिस सेंटर.

नवरत्न. (2017). *बहत्तर हजार की बोढिया*. जयपुर : बोधि.

नेपाली, आर. (5 अप्रैल, 2018). डूयूरेक्स एनजीओ के संस्थापक. *बंगाल के जलपाईगुड़ी में शोधकर्ता से साक्षात्कार*.

फर्ग्युसन, बी. (12 मार्च, 2021). *एटॉर्नी जनरल ऑफ वाशिंगटन*. https://www.atg.wa.gov से पुन:प्राप्त.

ब्लेंशेट, टी. (2003). *बांग्लादेशी गर्लस् सोल्ड एज वाइव्ज इन नॉर्दन इंडिया*. ढाका : दृष्टि रिसर्च सेंटर.

ब्रानगन, एम. (1 नवंबर, 2019). *एंटी-ट्रैफिकिंग इंटेरनेशनल*. https://www.preventht.org/editorial/mail-order-brides-a-form-of-human-trafficking से पुन:प्राप्त.

मिनिस्ट्री ऑफ जस्टिस, इजरायल. (2020, फरवरी 17). https://www.gov.il/en/Departments/Guides/trafficking_for_other_purposes_info?chapterIndex=4 से पुनःप्राप्त.

मैकब्राइड. (1980). *मैनी वॉइसेस वन वर्ल्ड*. न्यूयॉर्क : युनेस्को.

यूएनओडीसी. (2016). *ग्लोबल रिपोर्ट ऑन ट्रैफिकिंग इन पर्सन्स*. वियना : यूनाइटेड नेशंस पब्लिकेशन.

रेन्हार्ज़, एस. (1992). *फेमिनिस्ट मेथड्स इन सोशल रिसर्च*. न्यूयॉर्क : ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रैस.

वाइज, एस. एवं स्टेनली, लिज. (1983). *ब्रेकिंग आउट अगेन फ़ेमिनिस्ट ऑण्टोलॉजी एंड एपिस्टोमोलोजी*. लंदन : रुट्लेड्ज.

स्किडमोर, जे. (5 अप्रैल, 2021). पीस फॉर एशिया. https://peaceforasia.org/bride-trafficking-and-the-chinese-gender-gap से पुनःप्राप्त.

होरीराम. (6 अप्रैल, 2018,). असम में पुलिस उप निरीक्षक. उत्तर-पूर्वी राज्यों में लड़कियों की तस्करी. *गुवाहाटी में शोधकर्ता से साक्षात्कार*.

ह्यूमन राइट्स वॉच. (2019). *गिव अस ए बेबी एंड वी विल लेट यू गो*. यूनाइटेड स्टेट्स ऑफ अमेरिका : ह्यूमन राइट्स वॉच.

संचार माध्यम | खंड 34(1) : 105-111, जनवरी-जून 2022
आईएसएसएन: 2321-2608

सोशल मीडिया के संदर्भ में साइबर अपराध का विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ. लोकनाथ[1]

सारांश

सोशल मीडिया अभिव्यक्ति का एक ऐसा मंच है, जहाँ सामान्य व्यक्ति को भी अपनी बात रखने का पूरा अवसर मिलता है। आज सोशल मीडिया ने लोगों के जीवन को सुगम बनाया है, परंतु इसी के साथ साइबर अपराध एक बड़ी चुनौती के रूप में उभरा है। इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों की कम लागत जैसे कुछ कारकों ने भी साइबर अपराध को बढ़ाने में मदद की है। साइबर जगत् में हैकिंग, आइडेंटिटी थैफ्ट अर्थात् पहचान चोरी, वायरस फैलाना, डाटा चोरी, साइबर पॉर्नोग्राफी, साइबर आतंकवाद, साइबर मानहानि, ईमेल जालसाजी, डाटा बदलना अथवा डाटा डिडलिंग, सर्विस से वंचित करने वाले हमले, साइबर पाइरेसी, वेब हैकिंग अर्थात् हैकर द्वारा जबरदस्ती किसी वेबसाइट पर कब्जा कर लेना, स्पैमिंग अर्थात् थोक में अनचाही ईमेल का आना आदि साइबर अपराध की श्रेणी में आते हैं। आज पूरे विश्व में सोशल मीडिया के माध्यम से आतंकवाद से संबंधित साहित्य, फोटोग्राफ, वीडियो आदि का खुलेआम प्रचार-प्रसार किया जा रहा है। इसे रोकने के लिए विश्वभर में साइबर कानून हैं और कड़ी से कड़ी सजा का भी प्रावधान है। भारत में भी साइबर कानून है और इस कानून के अंतर्गत साइबर आतंकवाद फैलाने वालों के लिए आजीवन सजा तक का प्रावधान है, परंतु फिर भी साइबर अपराध में संलिप्त अधिकतर अपराधी बिना दंडित हुए बच निकलते हैं। भारत में इंटरनेट प्रयोग करने वालों की संख्या में गत कुछ वर्षों से तेजी से वृद्धि हो रही है। मौजूदा समय में इंटरनेट का प्रयोग जीवन के सभी क्षेत्रों—सोशल मीडिया, ईमेल, बैंकिंग, शिक्षा, सूचना, आरक्षण, ऑनलाइन शॉपिंग, अंतरिक्ष प्रौद्योगिकी, बीमा, घर बैठे बिल जमा करने और अन्य सेवाओं के लिए किया जा रहा है। ऐसे में अपराधी भी तकनीक के सहारे 'हाईटेक' हो रहे हैं तथा साइबर अपराध करने के लिए कंप्यूटर, इंटरनेट, डिजिटल उपकरण आदि का इस्तेमाल कर रहे हैं। ऐसी स्थिति में मीडिया साक्षरता और सामाजिक जागरूकता को बढ़ाने की आवश्यकता है।

संकेत शब्द : इंटरनेट, सोशल मीडिया, साइबर स्पेस, साइबर अपराध, सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम, सूचना तकनीक

प्रस्तावना

वर्तमान युग ज्ञान और सूचना का युग है। सूचना सोशल मीडिया पर उपलब्ध है। 'सोशल मीडिया' मानवीय संबंध स्थापित करने का सबसे सशक्त माध्यम है। यह एक ऐसी आधुनिक तकनीक है, जिसने विश्व को एक गाँव में बदल दिया है। आज सोशल मीडिया ने सामाजिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित किया है। यह व्यक्ति के जीवन का अभिन्न अंग बन गया है। कहावत है कि जहाँ अच्छाई होती है, वहाँ बुराई भी जन्म लेती है। इसलिए सोशल मीडिया एवं इंटरनेट की दुनिया भी इससे अलग नहीं है। जैसे-जैसे सोशल मीडिया का विस्तार हो रहा है, वैसे-वैसे इससे जुड़ी समस्याएँ भी बढ़ रही हैं। इन्हीं समस्याओं में साइबर अपराध विश्व के सामने सबसे बड़ी चुनौती के रूप में मौजूद है। इंटरनेट की विकास यात्रा के कई पड़ाव रहे हैं। इन पड़ावों में सबसे प्रमुख सोशल मीडिया है। एक समय था जब व्यक्ति मास मीडिया से सूचना पाकर उस पर तत्काल प्रतिक्रिया नहीं भेज सकता था, लेकिन वर्तमान में सोशल मीडिया के कारण प्रतिक्रिया भेजना आसान और तीव्र हो गया है। सोशल मीडिया का स्वरूप संवादात्मक है। अतः समाज का कोई भी व्यक्ति अपनी बात अपने सहयोगियों, अनुयायियों और मतदाताओं तक पहुँचाने के लिए सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म यानी फेसबुक, यूट्यूब, ट्विटर, लिंक्डइन, माईस्पेस, ऑर्कुट, ब्लॉग इत्यादि का प्रयोग करते हुए परस्पर संवाद स्थापित कर सकता है। ये सब बहुविकल्प उपलब्ध कराते हैं, जिसमें पाठक, श्रोता और दर्शक त्वरित गति से संवाद प्रक्रिया में सहभागी बन जाते हैं। ये टिप्पणियाँ परिचर्चा में परिवर्तित हो जाती हैं।

सोशल मीडिया के माध्यम से लेख, फीचर, कहानियाँ, चित्र, गीत-संगीत, विडियो, ऑडियो आदि एक दूसरे से साझा किए जा सकते हैं। सोशल मीडिया के अलग-अलग प्लेटफॉर्म से लोग एक सामान्य ई-मेल के जरिये जुड़ जाते हैं और अपने संदेश को अनगिनत मित्रों तक पहुँचाते हैं। 'फेसबुक' निःशुल्क सोशल नेटवर्किंग सेवा है, जिसके माध्यम से इसके सदस्य अपने मित्रों, परिवार और परिचितों के साथ संपर्क रख सकते हैं। यह 'फेसबुक' कंपनी द्वारा संचालित है। 'ट्विटर' माइक्रोब्लॉगिंग श्रेणी की वेबसाइट है। 'लिंक्डइन' प्रोफेशनल नेटवर्किंग साइट है, इसमें व्यक्तिगत संपर्कों के स्थान पर व्यापारिक संपर्कों पर ध्यान दिया जाता है। 'यूट्यूब' एक साझा वेबसाइट है जहाँ यूजर वीडियो देख सकता है और वीडियो को अपलोड भी कर सकता है। 'माईस्पेस' भी एक सोशल नेटवर्किंग साइट है। इसका मुख्यालय कैलिफोर्निया में है। 'क्योरा' एक प्रश्न-उत्तर की वेबसाइट है, जिस पर उच्च कोटि की बहस होती है। 'टंबलर' न्यूयार्क स्थित ब्लॉगिंग सर्विस है। 'वर्डप्रेस' एक ब्लॉगिंग साइट है, जहाँ यूजर सरल टेंपलेट के जरिये अपनी वेबसाइट बना सकता है। हजारों भारतीय अपने ब्लॉग और वेबसाइट के संचालन के लिए 'वर्डप्रेस' का इस्तेमाल करते हैं। ऑनलाइन बुकमार्क वेबसाइट 'प्रिंटरेस्ट' महिलाओं के बीच खासी लोकप्रिय है। इसमें अच्छे चित्र को प्रिंट कर सकते हैं। इंस्टाग्राम एक लोकप्रिय सोशल नेटवर्क एप्लिकेशन है जो किसी भी व्यक्ति को फोटो अपलोड या एडिट करने की सुविधा प्रदान करता है। रेडिट सोशल नेटवर्किंग और न्यूज साइट है। 'ब्लॉग' मूलतः वेब पर उपलब्ध एक पत्रिका है। इस पर जानकारी देने को 'ब्लॉगिंग' और देने वालों को 'ब्लॉगर' कहा जाता है। 'वाट्सएप्प'

[1]सहायक आचार्य, जनसंचार एवं पत्रकारिता विभाग, बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय (केंद्रीय विश्वविद्यालय), लखनऊ, उत्तर प्रदेश.
ईमेल: loknath.vns@gmail.com

भी एक सोशल नेटवर्किंग साइट है। आज 'वाट्सएप' हर वर्ग की पसंद और जरूरत बन चुका है। इसके जरिये बातचीत, वीडियो और अनेक जानकारियों का आदान-प्रदान होता है।

आज प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया भी अनेक मुद्दों पर नागरिकों का अभिमत जानने के लिए सोशल मीडिया की सहायता ले रहे हैं। विभिन्न क्षेत्र के प्रसिद्ध व्यक्तियों के फेसबुक, ट्विटर, ब्लॉग आदि पर व्यक्त किए गए विचार व संदेश मुख्यधारा के मीडिया के लिए समाचार बन जाते हैं। वहीं मुख्यधारा के मीडिया में प्रकाशित-प्रसारित समाचार और वक्तव्य सोशल मीडिया में बहस-चर्चा का केंद्र बन जाते हैं। जब कोई संवेदनशील सूचना इंटरनेट पर सार्वजनिक हो जाती है, तो मुख्यधारा के मीडिया को भी उसे उठाना पड़ता है, क्योंकि वह लंबे वक्त तक उसे नजरअंदाज नहीं कर सकता। उत्साही युवाओं द्वारा सोशल मीडिया का इस्तेमाल लगातार बढ़ता जा रहा है। युवा विभिन्न मुद्दों, जैसे शिक्षा के गिरते स्तर, रोजगार की कमी, स्थानीय प्रशासन की कमजोरी, सरकारी नीतियों से असहमति और न्याय-व्यवस्था की गंभीर खामियों पर अपनी चिंताएँ जाहिर करने के लिए सोशल मीडिया साइट पर टिप्पणियाँ कर रहे हैं। इस प्रवृत्ति ने दुनियाभर के अनगिनत नागरिक समूहों को प्रेरित किया है, जो अपने-अपने क्षेत्र में सामाजिक एजेंडा तय करने की बात करते हैं।

इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों की कम लागत जैसे कुछ कारकों ने भी साइबर अपराध को बढ़ाने में योगदान किया है। साइबर जगत् में आमतौर पर इस्तेमाल होने वाले कुछ प्रमुख शब्द हैं—हैकिंग, आइडेंटिटी थैफ्ट अर्थात् पहचान चोरी, वायरस फैलाना, डाटा चोरी, साइबर पॉर्नोग्राफी, साइबर आतंकवाद, साइबर मानहानि, ईमेल जालसाजी, डाटा बदलना, सर्विस से वंचित करने वाले हमले, साइबर पाइरेसी, वेब हैकिंग अर्थात् हैकर द्वारा जबरदस्ती किसी वेबसाइट पर कब्जा कर लेना, स्पैमिंग अर्थात् थोक में अनचाही ईमेल का आना आदि शब्द साइबर अपराध की श्रेणी में आते हैं। स्पैम ईमेल भेजकर या फेक वेबसाइट के माध्यम से उपयोगकर्ता की व्यक्तिगत जानकारी प्राप्त करना 'फिशिंग' है। साइबर अपराधी क्रेडिट या डेबिट कार्ड के बारे में जानकारी प्राप्त करने के बाद धन आसानी से निकाल लेते हैं। एटीएम मशीन को पूरी तरह से 'हैक' कर लिया जाता है। 'मालवेयर' एक अवैध सॉफ्टवेयर है, इसके माध्यम से भी अपराध किया जाता है। अपराधी ऑनलाइन मैलवेयर भेजकर, सिस्टम को नुकसान पहुँचाते हैं और सटीक जानकारी प्राप्त करने में समर्थ होते हैं। 'पायरेसी' गोपनीय जानकारी तक पहुँचने का एक अनधिकृत तरीका होता है। अनेक बार वेबसाइटों को 'हैक' कर फाइलों के महत्त्वपूर्ण डेटा की पायरेटेड कॉपी बना ली जाती है।

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध का उद्देश्य सोशल मीडिया के संदर्भ में साइबर अपराध का विश्लेषणात्मक अध्ययन और इससे बचने के सुझाव प्रस्तुत करना है। शोध पत्र द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है, जिसमें मीडिया शिक्षकों एवं पत्रकारों द्वारा लिखित पुस्तकें और शोध पत्रों का अध्ययन एवं विश्लेषण किया गया है। आँकड़ों के संग्रहण हेतु विभिन्न स्रोतों जैसे—समाचार पत्रों, वेबसाइटों एवं साहित्य का उपयोग किया गया है।

इंटरनेट युग में हाईटेक होते अपराधी

इंटरनेट नेटवर्कों का नेटवर्क है और हम आज इंटरनेट युग में जी रहे हैं। सन् 1969 में जब इंटरनेट की बुनियाद रखी गई थी, तब किसी को भी इस बात का अहसास नहीं था कि इंटरनेट समाज को इतना अधिक प्रभावित कर देगा। ''भारत में इंटरनेट 1994 के दौरान ही प्रचलन में आया। पहले कुछ समय तक एजुकेशन एंड रिसर्च नेटवर्क (अरनेट) ने शैक्षिक मकसद से यह सुविधा उपलब्ध करवाई'' (अनुराधा, 2012, पृ. 23)। बाद में ''सामान्य उपयोग के लिए 15 अगस्त, 1995 को विदेश संचार निगम लिमिटेड ने गेटवे इंटरनेट एसेस सर्विस की स्थापना वाणिज्यिक तौर पर की। भारत में इंटरनेट प्रयोग करने वालों की संख्या में तेजी से वृद्धि हो रही है। मौजूदा समय में इंटरनेट का प्रयोग जीवन के सभी क्षेत्रों जैसे सोशल मीडिया, ईमेल, बैंकिंग, शिक्षा, सूचना, आरक्षण, ऑनलाइन शॉपिंग, अंतरिक्ष प्रोद्योगिकी, बीमा, विभिन्न बिल घर बैठे जमा करने और अन्य सेवाओं के लिए भी किया जा रहा है। आज इंटरनेट की सहायता के बिना किसी बड़े काम की कल्पना करना भी मुश्किल है। ऐसे में अपराधी भी तकनीक के सहारे हाईटेक हो रहे हैं। वे साइबर अपराध करने के लिए कंप्यूटर, इंटरनेट, डिजिटल उपकरण आदि का इस्तेमाल कर रहे हैं। ''इंटरनेट के आने के बाद जिन बदलावों ने पत्रकारिता को सबसे अधिक प्रभावित किया है, उसमें सोशल मीडिया का नाम अग्रणी है। गूगल जैसे सर्च इंजनों ने जहाँ डिजिटल पत्रकारिता को नये आयाम दिए, वहीं फेसबुक, ट्विटर, वाट्सएप और यूट्यूब जैसे माध्यमों ने पत्रकारिता के स्वरूप को तेजी से बदलना शुरू कर दिया है'' (मिश्र, 2015, पृ. 306)। आज सभी क्षेत्रों में सोशल मीडिया की अहम भूमिका है।

सोशल मीडिया दो शब्दों से मिलकर बना है—'सोशल' का अर्थ एक ऐसी स्थिति को इंगित करता है, जिसमें मनुष्य अपने आपको किसी समूह के साथ जोड़ने का प्रयास करता है जबकि 'मीडिया' का प्रयोग सामूहिक अर्थों में किया जाता है। अर्थात् 'सोशल मीडिया' मानवीय संबंधों को स्थापित करने का सशक्त माध्यम है। कविता भाटिया के अनुसार, ''सोशल मीडिया एक ऐसा माध्यम है जिसका उपयोग समाज के अन्य लोगों के साथ संपर्क बनाने के लिए किया जाता है। तकनीकी अर्थ में उपयोगकर्ता जिस मीडिया का उपयोग इंटरनेट आधारित विभिन्न माध्यमों जैसे कंप्यूटर, स्मार्टफोन, टैबलेट आदि के द्वारा विचारों की साझेदारी के लिए करते हैं, वह सोशल मीडिया कहलाता है'' (भाटिया, 2021, पृ. 14)। यदि तकनीकी रूप से सोशल मीडिया को परिभाषित किया जाए तो ''सोशल मीडिया वेब पर आधारित एक ऐसा माध्यम है, जिसमें वेब तकनीकों का प्रयोग करके एक कम्युनिटी बनाने और यूजर द्वारा निर्मित घटकों का आदान-प्रदान किया जाता है'' (पटेल, 2012, पृ. 10)। वर्ष 1995 के आंरभ में सोशल नेटवर्किंग साइट 'क्लासमेट्स डॉट काम' सामने आई, जिसने वर्षों पहले एक साथ पढ़ चुके स्कूली छात्रों को परस्पर वर्चुअल तौर पर जोड़ने में कामयाबी हासिल की। हालाँकि इसमें प्रोफाइल बनाने की सुविधा नहीं थी, किंतु स्कूली पढ़ाई और कालेज के वर्षों के आधार पर वे परस्पर एक-दूसरे को खोज सकते थे। कालांतर में अन्य फीचर जुड़ने से यह एक सफलतम सोशल मीडिया साबित हुआ। 'क्लासमेट्स डॉट कॉम' के उपरांत सन् 1997 में 'सिक्सडिग्रीज डॉटकाम' का प्रादुर्भाव हुआ। इस ऑनलाइन प्लेटफार्म पर यूजर अपना प्रोफाइल और दोस्त बना सकते थे। यह सोशल मीडिया का आरंभिक रूप था। सोशल नेटवर्किंग साइट 'फ्रेंडस्टर' वर्ष 2002 में आया और एक वर्ष बाद माईस्पेस, लिंक्डइन तथा बाद में 'बेबो' आया। सामाजिक नेटवर्किंग साइटों की लोकप्रियता में तीव्र वृद्धि का सत्यापन इसी बात से किया जा

सकता है कि 2005 तक 'माईस्पेस' के देखे जाने वाले पेजों की संख्या गूगल से भी अधिक थी। फेसबुक वर्ष 2004 में प्रारंभ होकर आज विश्व की सबसे लोकप्रिय साइट बन चुकी है। सोशल मीडिया आज परिपक्व सेक्टर का रूप ले चुका है। नवीनता और सृजनात्मकता इस मीडिया की स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ हैं। सोशल मीडिया के बढ़ते महत्त्व का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि विश्व प्रसिद्ध व्यक्तियों के सोशल मीडिया पर व्यक्त किए गए विचार मुख्यधारा के मीडिया के लिए समाचार बन जाते हैं। वही मुख्यधारा के मीडिया में प्रकाशित-प्रसारित समाचार और वक्तव्य सोशल मीडिया में बहस-चर्चा का केंद्र बन जाते हैं। जब कोई संवेदनशील सूचना सोशल मीडिया पर सार्वजनिक हो जाती है, तो मुख्यधारा के मीडिया को भी उसे उठाना पड़ता है।

वास्तविक दुनिया की आभासी दुनिया

वर्तमान में (10 दिसंबर, 2021) इंटरनेट लाइव स्टेट्स के अनुसार—''विश्व में लगभग 5 अरब 13 करोड़ 53 लाख 38 हजार से अधिक इंटरनेट यूजर हैं। कुल 01 अरब 91 करोड़ 13 लाख 4 हजार से अधिक वेबसाइट हैं। एक दिन में 01 खरब 47 अरब 15 करोड़ 8 लाख 20 हजार से अधिक ईमेल किए जाते हैं। गूगल सर्च इंजन एक दिन में 4 अरब से अधिक सर्च करता है। एक दिन में ब्लॉग पर 43 लाख से अधिक पोस्ट लिखी जाती हैं तथा 44 करोड़ से अधिक ट्वीट किए जाते हैं। यूट्यूब पर एक दिन में 4 अरब से अधिक वीडियो देखे जाते हैं। इंस्टाग्राम पर एक दिन में 5 करोड़ से अधिक फोटो अपलोड किए जाते हैं तथा टंबलर पोस्ट 9 करोड़ से अधिक हैं। फेसबुक पर 03 अरब 12 लाख 60 हजार से अधिक यूजर सक्रिय हैं। गूगल प्लस पर 01 अरब 4 करोड़ 82 लाख 42 हजार से अधिक सक्रिय यूजर हैं। ट्विटर पर 38 करोड़ 18 लाख 92 हजार से अधिक एवं पिंटरेस्ट पर 40 करोड़ 98 लाख 54 हजार से अधिक सक्रिय यूजर हैं। ठीक इसी प्रकार एक दिन में 01 लाख 18 हजार से अधिक वेबसाइटें हैक होती हैं''(इंटरनेट लाइव स्टैट्स, 2021, 10 दिसंबर)। इंटरनेट आधारित सोशल मीडिया ने आशातीत सफलता अर्जित की है। इसका हमारे जीवन के प्रत्येक पहलू पर गहरा प्रभाव हुआ है। साथ ही विभिन्न क्षेत्रों में सफलता के नए आयाम भी देखने को मिले हैं। शीर्ष 20 देशों में इंटरनेट उपयोगकर्ताओं की संख्या निम्नलिखित है :

सारणी संख्या-1

शीर्ष 20 देशों के इंटरनेट उपयोगकर्ताओं की संख्या (2021)

क्रमांक	देशों के नाम	जनसंख्या (2021)	इंटरनेट उपभोक्ता (2021)	वृद्धि (2000-2021)
1	चीन	1,439,062,022	854,000,000	3,796%
2	भारत	1,368,737,513	560,000,000	11,200%
3	यूनाइटेड स्टेट्स ऑफ अमेरिका	331,002,651	313,322,868	328%
4	इंडोनेशिया	273,523,615	171,260,000	8,560%
5	ब्राजील	212,392,717	149,057,635	2,980%
6	नाइजीरिया	206,139,589	126,078,999	63,000%
7	जापान	126,854,745	118,626,672	252%
8	रूस	145,934,462	116,353,942	3,751%
9	बंगलादेश	164,689,383	94,199,000	94,199%
10	मैक्सिको	132,328,035	88,000,000	3,144%
11	जर्मनी	83,783,942	79,127,551	329%
12	फिलिपींस	109,581,078	79,000,000	3,950%
13	टर्की	84,339,067	69,107,183	3,455%
14	वियतनाम	68,541,344	68,541,344	34,250%
15	यूनाइटेड किंगडम	67,886,011	63,544,106	413%
16	ईरान	83,992,949	67,602,731	27,040%
17	फ्रांस	65,273,511	60,421,689	710%
18	थाईलैंड	69,799,978	57,000,000	2,478%
19	इटली	60,461,826	54,798,299	415%
20	इजिप्ट	102,334,404	49,231,493	10,940%
टॉप 20 देश		5,233,377,837	3,241,273,512	1,289%
बाकी दुनिया		2,563,237,873	1,332,876,622	1,216%
कुल विश्व में उपयोगकर्ता		7,796,615,710	4,574,150,134	1,267%

(इंटरनेट वर्ल्ड स्टैट्स, 2021, 10 दिसंबर)

सारणी संख्या-1 के अवलोकन से स्पष्ट है कि शीर्ष 20 देशों में इंटरनेट उपयोगकर्ताओं की संख्या 2000 से 2021 के बीच बढ़ने का प्रतिनिधित्व करता है। चीन की कुल जनसंख्या 1,439,062,022 है तथा चीन में इंटरनेट उपयोगकर्ताओं की संख्या 854,000,000 है। इसी प्रकार भारत की कुल जनसंख्या 1,368,737,513 है तथा भारत में इंटरनेट उपयोगकर्ताओं की संख्या 560,000,000 है। इजिप्ट की कुल जनसंख्या 102,334,404 है, जिसमें से इंटरनेट उपयोगकर्ताओं की संख्या 49,231,493 है। इस विवेचन से स्पष्ट है कि शीर्ष स्तर पर 20 देशों में सबसे अधिक इंटरनेट उपयोगकर्ताओं की संख्या चीन की है तथा भारत दूसरे स्थान पर है। शीर्ष स्तर के 20 देशों में सबसे कम इंटरनेट उपयोगकर्ताओं की संख्या इजिप्ट की है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि जिस देश में इंटरनेट उपयोगकर्ताओं की संख्या बढ़ेगी, उसी अनुपात में साइबर अपराध एवं सोशल मीडिया उपयोगकर्ताओं की संख्या भी बढ़ेगी। "सोशल मीडिया का उपयोग करने वाले लोग साइबर अपराध के खतरों से अनजान हैं। विभिन्न सोशल नेटवर्किंग साइट्स के सर्वर अन्य देशों में केंद्रित हैं, जिससे यह डर रहता है कि कहीं ये देश लोगों की व्यक्तिगत जानकारी का दुरुपयोग न करें। विभिन्न सोशल नेटवर्किंग साइटों पर लोग अपनी व्यक्तिगत जानकारियाँ साझा करते हैं, जिससे हैकर इन सोशल नेटवर्किंग एकाउंट्स को आसानी से हैक कर लेते हैं और फिर प्राप्त सूचना का दुरुपयोग करते हैं। लोगों को सोशल नेटवर्किंग साइटों पर हैकर ऑनलाइन ठगी का शिकार बनाते हैं। सुरक्षा एजेंसियों द्वारा यह भी पता लगाया गया है कि ऑनलाइन मुद्रा स्थानांतरित करने वाले विभिन्न एप के माध्यम से आतंकवादियों और देशविरोधी तत्त्वों को फंडिंग की जाती है। साइबर अपराधी विभिन्न ऑनलाइन गेम के माध्यम से बच्चों को अपराध करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं" (दृष्टि वेबसाइट, 2020)।

साइबर क्राइम की दुनिया

आईएनसीए इंडिया इंफ्लूएंसर रिपोर्ट के अनुसार—''सोशल मीडिया प्रभावकारी बाजार में कारोबार हर वर्ष 25 प्रतिशत बढ़ने की

उम्मीद है और वर्ष 2025 तक इस क्षेत्र में कारोबार 2200 करोड़ रुपये तक पहुँच सकता है। रिपोर्ट में यह देखा गया कि इंटरनेट के बढ़ते दायरे और प्रभाव के साथ सोशल मीडिया मंचों पर लोगों की पहुँच में वृद्धि हुई है। इसे देखते हुए कंपनियों ने अपने उत्पादों को बेचने के लिए सोशल मीडिया पर प्रभावशाली व्यक्तियों के साथ गठजोड़ करना शुरू किया है'' (नवभारत टाइम्स, 2021)। डिजिटल मार्केटिंग कंपनी 'रिबूट ऑनलाइन' के एक रिसर्च के अनुसार—''लोग सोशल मीडिया कैसे छोड़ें, फेसबुक कैसे छोड़ें और इंस्टाग्राम कैसे छोड़ें, जैसे टॉपिक पर सर्च कर रहे हैं। फेसबुक और यूट्यूब के इस्तेमाल में भारतीय दुनिया में पहले नंबर पर हैं, यहाँ इंटरनेट तक पहुँच रखने वाले 86 फीसदी लोग यूट्यूब का इस्तेमाल करते हैं, जबकि 76 फीसदी फेसबुक और 75 फीसदी यूजर वॉट्सएप चलाते हैं। लेकिन अब यहाँ लोगों का मन सोशल मीडिया से ऊब रहा है और वे इसे छोड़ने की कोशिश कर रहे हैं। भारत के कुल 75 करोड़ से ज्यादा एक्टिव इंटरनेट यूजर में से करीब 5 लाख लोग हर महीने सोशल मीडिया छोड़ना चाहते हैं। ऐसे लोगों के मामले में भारत दूसरे नंबर पर है। सिर्फ अमेरिका में भारत से ज्यादा लोग इन प्लेटफॉर्म को छोड़ना चाह रहे हैं'' (द्विवेदी, 2021)।

'साइबर' शब्द यूनानी भाषा के शब्द 'साइबरनेटिक' से बना है। ''साइबरनेटिक का अर्थ यंत्रों से नियंत्रण करना है। इंटरनेट की दुनिया इस साइबर लोक में ही है'' (मलिक, 2002, पृ. 64)। साइबर स्पेस कंप्यूटर के संचार नेटवर्क का समुच्चय है। जहाँ ऑनलाइन संचार तथा सूचनाओं का तीव्र गति से आदान-प्रदान संभव होता है। साइबर स्पेस शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग कल्पना विज्ञान के लेखक विलियम गिब्सन ने अपनी पुस्तक 'साइबर पंक' में किया था। ''साइबर स्पेस में तीन कार्यों का समावेश होता है—कंप्यूटर, कंप्यूटर प्रणाली और नेटवर्क। विलियम गिब्सन ने अपने उपन्यास में पहली बार साइबर स्पेस का नामोल्लेख किया था, जिसका शाब्दिक अर्थ 'आनलाइन' है'' (कुलश्रेष्ठ, 2012, पृ. 177)। साइबर स्पेस में किया गया कोई भी अपराध जिसमें कंप्यूटर या संचार नेटवर्क या दोनों का प्रयोग किया गया हो, 'साइबर क्राइम' कहलाता है। ''इंटरनेट के जरिये किए गए अपराध को नेटक्राइम कहा जाता है'' (ओझा, 2012, पृ. 108)। ऑनलाइन चोरी करना या सिस्टम से डेटा चुराना साइबर अपराध है। ''गोपनीय सूचनाओं को हैक करना, उनके पासवर्ड जान लेना, क्रेडिट कार्ड नंबर और पिन कोड, इंटरनेट बैंकिंग के पासवर्ड का हैकिंग हो जाना साइबर अपराध की श्रेणी में आता है'' (कुलश्रेष्ठ, 2012, पृ. 176)। अभी तक इंटरनेट पर तीन तरह के अपराध सबसे अधिक प्रचलित हैं। ''पहला, सोची समझी योजना के अनुसार इंटरनेट को वायरस से संक्रमित करना, दूसरा, कंप्यूटर से महत्त्वपूर्ण सूचनाओं व आँकड़ों की चोरी करना या उन्हें नष्ट करना और तीसरा, नैतिकता का उल्लंघन करने वाली वेबसाइटें बनाना और उन्हें प्रचारित करना साइबर अपराध है'' (मिश्र, 2008, पृ. 72)।

सोशल मीडिया अफवाहें व वैमनस्यता फैलाने का माध्यम भी बन रहा है। भारत में राजनीतिक दलों के साइबर वार रूम बने हुए हैं। जहाँ समर्थकों के माध्यम से सोशल मीडिया में ट्रेंड करवाया जाता है, जिसमें आहत करने वाले निजी हमले भी किए जाते हैं तथा अपने विरोधियों को भद्दी-भद्दी गलियाँ दी जाती हैं। इन सबके लिए फेक अकाउंट का सहारा लिया जाता है। अफवाहें फैलाने, गलत सूचना का प्रसारण एवं अपने किसी विशेष उद्देश्य के लिए लोगों को बहकाना, बरगलाना आदि साइबर अपराध है। सोशल मीडिया के माध्यम से सांप्रदायिक हिंसा, दंगों, अफवाह फैलाने के मामले भी समय-समय पर सामने आते-रहते हैं। दिल्ली में हुए दंगों के दौरान भड़काने वाले संदेश और वीडियो क्लिप अपलोड किए गए। कश्मीर, पंजाब सहित कुछ राज्यों में आतंकवाद फैलाने के लिए सोशल मीडिया का इस्तेमाल किया गया। संवेदनशील इलाकों में सोशल मीडिया के जरिये कुछ तत्त्वों की ओर से साइबर हमले की आशंका हमेशा बनी रहती है। शरारती तत्त्व इस माध्यम का इस्तेमाल समस्या पैदा करने के लिए करते हैं, जिसे रोकने की आवश्यकता है। सोशल मीडिया का उपयोग यदि स्वार्थी ताकतें अफवाहें फैलाकर शांति भंग करने के लिए करती हैं, तो वहीं सृजनात्मक शक्तियाँ शांति के लिए भी इसका जोरदार जवाब भी सोशल मीडिया से दे सकती हैं। इसीलिए सोशल मीडिया की अफवाहों को खबर समझकर उन पर त्वरित टिप्पणी करने या फॉरवर्ड या शेयर करने से बचना चाहिए। पूरे तथ्यों के सामने आने का इंतजार करना चाहिए।

सोशल मीडिया के अंतर्गत ''फेसबुक अफवाह एवं सांप्रदायिक दंगा भी करा सकता है। फेसबुक रीयल टाइम मीडियम है, यह धैर्य की माँग करता है। रीयल टाइम में अधीरता, गुस्सा आदि बेहद खतरनाक है, इससे उन्माद पैदा होता है। फेसबुक कम्युनिकेशन को सहज भाव से लेना चाहिए'' (चतुर्वेदी, 2014, पृ. 72-73)। हालाँकि सोशल मीडिया के बढ़ते इस्तेमाल के बाद साइबर अपराधों से संबंधित कई प्रकार के कानून लागू हुए हैं। साइबर अपराध एक अवैध कृत्य है। "साइबर अपराध में साइबर नियमों का उल्लंघन और साइबर अपराध दोनों शमिल हैं। दोनों के बीच आपराधिक गतिविधि की डिग्री और हद का अंतर है। यह अधिनियम राष्ट्रीयता के भेदभाव के बिना किसी व्यक्ति द्वारा भारत से बाहर किए गये अपराधों या उल्लंघनों पर भी लागू होता है'' (नारायणस्वामी, 2016, पृ. 358)। ''30 जनवरी, 1997 को संयुक्त राष्ट्र की जनरल एसेंबली में प्रस्ताव संख्या 51/162 द्वारा सूचना तकनीक की आदर्श नियमावली पेश किए जाने के बाद सूचना तकनीक कानून, 2000 को पेश करना अनिवार्य हो गया था। संयुक्त राष्ट्र की इस नियमावली में सभी देशों से इसे मानने की अपील की गई है" (कुमार, 2015, पृ 122)। सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम 2000 की धाराएँ 43, 43ए, 66, 66बी, 66सी, 66डी, 66ई, 66एफ, 67, 67ए, 67बी, 70, 72, 72ए और 74 हैकिंग और साइबर अपराधों से संबंधित हैं। आईटी अधिनियम 2000 भारत में साइबर कानून की बुनियाद है, जिसमें आईटी संशोधन अधिनियम 2008 के जरिये संशोधन किया गया। इसमें साइबर अपराधों के लिए दीवानी अदालतों में मुकदमा चलाने और दंड का प्रावधान है। साइबर क्राइम के कुछ मामलों में आईटी डिपार्टमेंट की तरफ से जारी किए गए आईटी नियम 2011 के तहत भी कार्रवाई की जाती है। साइबर अपराध के अंतर्गत कंप्यूटर में अनुचित रूप से छेड़छाड़ करने वाला व्यक्ति हैकर कहलाता है। "कंप्यूटर और नेटवर्क का प्रचलन बढ़ने के साथ ही आज 'हैकर' शब्द ऐसे व्यक्तियों के लिए प्रयोग किया जाता है, जो कंप्यूटर या नेटवर्क प्रणाली को अनुचित उद्देश्यों से नुकसान पहुँचाते हैं या जो नेटवर्क में अवैध तरीके से घुसकर वहाँ से सुरक्षा कवच को तोड़कर डाटा चुरा लेते हैं, सिस्टम में वायरस का प्रवेश करा देते हैं अथवा दूसरे गैर कानूनी काम करते हैं। ऐसे लोग कंप्यूटर और नेटवर्क की कार्य प्रणाली से भलीभाँति परिचित होते हैं" (हर्षदेव, 2015, पृ. 121)।

किसी कंप्यूटर, डिवाइस, इंफॉर्मेशन सिस्टम या नेटवर्क में अनधिकृत रूप से घुसपैठ करना और डेटा से छेड़छाड़ करना हैकिंग कहलाता है।

विगत वर्षो में ''दिल्ली, अहमदाबाद और मुंबई जैसे महानगरों में बम विस्फोटों की जो वारदातें हुईं, उनकी जाँच के बाद यह तथ्य सामने आया कि इन घटनाओं में शामिल आतंकवादियों ने कुछ लोगों के वाई-फाई सिस्टम को हैक करने के बाद आतंक से संबंधित ई-मेल भेजे थे'' (माथुर 2010, पृ. 109)। किसी व्यक्ति या संस्था आदि के कंप्यूटर से निजी या गोपनीय डाटा और सूचनाओं की चोरी करना साइबर अपराध की श्रेणी में आता है। ऐसे मामलों में आईटी (संशोधन) कानून 2008 की धारा 43 (बी), धारा 66 (ई), 67 (सी), आईपीसी की धारा 379, 405, 420 और कॉपीराइट कानून के तहत दोष साबित होने पर अपराध की गंभीरता के हिसाब से 3 वर्ष तक की जेल या 2 लाख रुपये तक जुर्माना हो सकता है।

साइबर क्राइम से कंपनियों को भारी नुकसान

किसी भी व्यक्ति के कंप्यूटर में वायरस भेजना साइबर अपराध है। ''कंप्यूटर वायरस एक छोटा द्वेषपूर्ण सॉफ्टवेयर प्रोग्राम है, जो किसी वैध प्रोग्राम के साथ जुड़कर या इंटरनेट द्वारा कंप्यूटर की मेमोरी में प्रवेश करता है तथा अपनी कॉपी स्वयं बनाकर उसे फैलने में मदद करता है। यह डाटा को मिटाने, उसे खराब करने या उसमें परिवर्तन करने का कार्य कर सकता है। पहला कंप्यूटर वायरस 1987 में विकसित एक बूट सेक्टर वायरस था, जिसे 'ब्रेन' नाम दिया गया'' (ओझा, 2012, पृ. 109)। कंप्यूटर वायरस जब सक्रिय होता है तो कंप्यूटर मेमोरी में स्थापित होकर फैलने लगता है। कंप्यूटर वायरस मुख्यतः ई-मेल, सीडी, डीवीडी, पेन ड्राइव आदि के सहारे एक कंप्यूटर से दूसरे कंप्यूटर में प्रवेश करता है। कुछ समय पहले इंटरनेट पर एक अत्यंत घातक वायरस का आक्रमण हुआ था, जिसका नाम 'आई लव यू' था। ''आई लव यू वायरस ने कंप्यूटर में संग्रहीत महत्त्वपूर्ण सूचनाओं को नष्ट करके करोड़ों-अरबों डालर का नुकसान किया था'' (मिश्र, 2008, पृ. 73)। कंप्यूटर विशेषज्ञों के अनुसार इस समय साइबर स्पेस में 60000 से अधिक वायरस हैं। ''वर्ष 2008 में 'कानफिकर' नामक वायरस ने वैश्विक स्तर पर समस्या उत्पन्न की थी। इसे 'डाउन एंड अप' नाम भी दिया गया और अक्टूबर महीने से यह कंप्यूटरों में फैलना शुरू हुआ था। छह माह के भीतर इसने दुनियाभर में करोड़ों कंप्यूटरों को प्रभावित किया। इस वायरस ने माइक्रोसॉफ्ट के कारोबार को बुरी तरह से प्रभावित किया'' (माथुर, 2010, पृ. 103)। इसी प्रकार साइबर अपराध पर सुरक्षा कंपनी साइमेंटक की वार्षिक रिपोर्ट के मुताबिक ''जुलाई, 2011 से जुलाई, 2012 तक भारत को 45 करोड़ रुपये का नुकसान हुआ था'' (कुमार, 2015, पृ. 121)।

कंप्यूटर को सुरक्षित रखने के लिए एंटीवायरस सॉफ्टवेयर का उपयोग कर सकते हैं। ''कंप्यूटर को वायरसों के आक्रमण से बचाने के लिए अनेक प्रकार के सुरक्षात्मक सॉफ्टवेयर बनाए गए हैं, जिन्हें एंटीवायरस सॉफ्टवेयर कहते हैं। फायर वॉल, मैक एफी और नार्टन यूटिलिटी आदि कुछ ऐसे ही सॉफ्टवेयर हैं'' (नागलक्ष्मी, 2012, पृ. 94)। कंप्यूटर में आए वायरस और स्पाईवेयर को हटाने पर लोग ध्यान नहीं देते हैं। उनके सिस्टम से होते हुए ये वायरस दूसरों तक पहुँच जाते हैं। अक्सर ई-मेल, सीडी तथा पेन ड्राइव के जरिये भी वायरस फैल जाते हैं। साइबर कानून के दायरे में कोई भी व्यक्ति आ सकता है। ''यदि उस व्यक्ति की लापरवाही से किसी के सिस्टम में कोई खतरनाक वायरस पहुँच जाए और बड़ा नुकसान कर दे। इस तरह के केस में आईटी (संशोधन) एक्ट 2008 की धारा 43 (सी), धारा 66, आईपीसी की धारा 268 और देश की सुरक्षा को खतरा पहुँचाने के लिए फैलाए गए वायरस पर साइबर आतंकवाद से जुड़ी धारा 66 (एफ) भी लगाई जाती है। दोष सिद्ध होने पर साइबर-वॉर और साइबर आतंकवाद से जुड़े मामलों में उम्र कैद का प्रावधान है, जबकि अन्य मामलों में तीन साल तक की जेल या जुर्माना हो सकता है'' (सागर, 2016)। पहचान की चोरी भी साइबर अपराध है। इसके लिए आईटी संशोधन अधिनियम 2009 से जोड़ी गई धारा 66सी लागू होती है, जिसमें कहा गया है कि ''जो कोई व्यक्ति किसी और व्यक्ति के इलेक्ट्रॉनिक हस्ताक्षर, पासवर्ड का बेईमानी से उपयोग करता है तो उसे किसी भी रूप में तीन साल तक बढ़ाए जा सकने वाले कारावास की सजा हो सकती है। तथा एक लाख रुपये तक जुर्माना हो सकता है'' (नारायणस्वामी, 2016, पृ. 359)।

अक्सर ईमेल के इनबॉक्स में कई तरह के ईनाम देने वाले मेल आ जाते हैं। किसी दूसरे के ईमेल पते का इस्तेमाल करते हुए गलत मकसद से दूसरों को ईमेल भेजकर परेशान करना साइबर अपराध की श्रेणी में आता है। हैकिंग, फिशिंग, स्पैम और वायरस, स्पाईवेयर फैलाने के लिए इस तरह के फर्जी ईमेल का इस्तेमाल अधिक होता है। इस तरह के मामलों में आईटी कानून 2000 की धारा 77 बी, आईटी (संशोधन) कानून 2008 की धारा 66 डी, आईपीसी की धारा 417, 419, 420 और 465 लगाए जाने का प्रावधान है। दोष साबित होने पर तीन साल तक की जेल या जुर्माना हो सकता है। सोशल मीडिया के सामने पोर्नोग्राफी सबसे बड़ी चुनौती है। सोशल मीडिया बहुत उपयोगी है, लेकिन उसका अनुशासनरहित उपयोग साइबर अपराध को बढ़ावा दे रहा है। इसके चलते युवा पथभ्रष्ट हो रहे हैं और यौन-अपराधों में बढ़ोत्तरी हो रही है। इंटरनेट पर लाखों अश्लील वेबसाइटें हैं और इन वेबसाइटों की अश्लील सामग्री सोशल मीडिया के जरिये घर-घर पहुँच रही हैं। यह सब पश्चिमी संस्कृति में स्वीकार्य है, लेकिन भारतीय संस्कृति में वर्जित है। ''पोर्नोग्राफी प्रकाशित करना और इलेक्ट्रॉनिक जरियों से दूसरों तक पहुँचाना अवैध है। इसके तहत आने वाले मामलों में आईटी (संशोधन) कानून 2008 की धारा 67 (ए), आईपीसी की धारा 292, 293, 294, 500, 506 और 509 के तहत सजा का प्रावधान है। जुर्म की गंभीरता के लिहाज से पहली गलती पर पाँच साल तक की जेल या दस लाख रुपये तक जुर्माना हो सकता है लेकिन दूसरी बार गलती करने पर जेल की सजा सात साल तक बढ़ सकती है'' (सागर, 2016, 18 फरवरी)। सोशल मीडिया के समक्ष अश्लीलता एक बड़ी चुनौती है। ''वर्चुअल स्पेस में फेसबुक, ट्विटर, यूट्यूब ऐसे मंच हैं, जहाँ युवाओं को समाज से जुड़ने और अपनी बात कहने का मंच मिलता है। लेकिन साथ ही यह उनके लिए नई चुनौतियाँ भी खड़ी कर रहा है और ये चुनौतियाँ आसान नहीं हैं, कड़े संघर्षों से भरी हुई हैं। किशोरों और युवाओं के सामने सबसे बड़ी चुनौती, अश्लील चित्रों की सहज उपलब्धता है'' (नागलक्ष्मी, 2012, पृ. 94)।

साइबर बुलिंग के मामलों में भारत तीसरे स्थान पर

भारत में फेसबुक या ट्विटर पर साइबर बुलिंग से जुड़े आधिकारिक आँकड़े तो नहीं है, लेकिन समय-समय पर ऐसी घटनाएँ सामने आती रहती हैं। माइक्रोसॉफ्ट के एक सर्वे के अनुसार ''ऑनलाइन या साइबर बुलिंग के मामलों में भारत का विश्व में तीसरा नंबर है। माइक्रोसॉफ्ट द्वारा जारी किए इस सर्वे में कहा गया है कि भारत में 53 फीसदी बच्चे ऑनलाइन बुलिंग का शिकार होते हैं। पवन दुग्गल जैसे कानूनी विशेषज्ञों का मानना है कि 'साइबर बुलिंग के शिकार व्यक्ति को सबसे पहले तो

फेसबुक या उस कंपनी को सूचित करें और फिर कानूनी सहारा लें लेकिन इससे घबराकर कोई गलत कदम उठाने की जरूरत नहीं है, जरूरत है तो इससे जुड़े भारतीय कानून को और कड़ा करने की'' (वंदना, 2012)। इन मीडिया रिपोर्ट से स्पस्ट है कि सोशल मीडिया जैसे फेसबुक और ट्विटर के माध्यम से निजी जीवन का हर पहलू दुनिया के सामने रहता है, अनजान लोगों से दोस्तियाँ बढ़ रही है। ऐसे में साइबर बुलिंग की आशंका भी बढ़ जाती है। आज जब सोशल मीडिया का प्रभाव बढ़ रहा है ऐसे में साइबर बुलिंग का खतरा हमेशा बना रहता है। ''राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो (एनसीआरबी) के आँकड़े बताते हैं कि 2019 में बच्चों के खिलाफ साइबर अपराधों के 164 मामले दर्ज किए गए थे, जबकि 2018 में बच्चों के खिलाफ साइबर अपराधों के 117 मामले सामने आए थे। इससे पहले 2017 में ऐसे 79 मामले दर्ज किए गए थे। बच्चों के खिलाफ साइबर अपराधों से संबंधित शीर्ष 5 राज्यों में उत्तर प्रदेश (170), कर्नाटक (144), महाराष्ट्र (137), केरल (107) और ओडिशा (71) शामिल हैं'' (दीक्षित, 2021)। ''साइबर अपराध भी अन्य अपराधों की तरह हर समय घटित होते हैं, लेकिन कोरोना कालखंड में, जब दुनियाभर में लोग घरों में ही कैद थे, तब वे सबसे ज्यादा साइबर अपराध का शिकार हुए। सामान्य अपराधों की तुलना में साइबर अपराध ज्यादा दर्ज हुए। इनमें बैंक ठगी से लेकर सोशल मीडिया पर महामारी के नाम से पैसा माँगने के मामले भी शामिल हैं'' (झाला, 2021)।

यदि हमें साइबर अपराध से बचना है तो किसी भी अनजान एसएमएस, ईमेल अटैचमेंट को डाउनलोड न करें। किसी से भी अपने बैंक खाते, एटीएम कार्ड की जानकारी साझा न करें। जागरूकता ही सबसे बड़ा उपाय है। सोशल मीडिया समाज परिवर्तन का बहुत बड़ साधन हैं, वही कुछ समस्याएँ भी हैं। सोशल मीडिया पर फेक न्यूज एक बड़ी समस्या है। इसे लोगों को समझना चाहिए। सरकार द्वारा 'राष्ट्रीय साइबर सुरक्षा नीति, 2013' जारी की गई, जिसके तहत सरकार ने अति-संवेदनशील सूचनाओं के संरक्षण के लिए 'राष्ट्रीय अतिसंवेदनशील सूचना अवसंरचना संरक्षण केंद्र का गठन किया। विभिन्न स्तरों पर सूचना सुरक्षा के क्षेत्र में मानव संसाधन विकसित करने के उद्देश्य से सरकार ने 'सूचना सुरक्षा शिक्षा और जागरूकता' परियोजना प्रारंभ की है। सरकार द्वारा 'कंप्यूटर इमरजेंसी रिस्पॉन्स टीम' की स्थापना की गई, जो कंप्यूटर सुरक्षा के लिए राष्ट्रीय स्तर की मॉडल एजेंसी है। देश में साइबर अपराधों से समन्वित और प्रभावी तरीके से निपटने के लिए 'साइबर स्वच्छता केंद्र' भी स्थापित किया गया है। भारत सूचना साझा करने और साइबर सुरक्षा के संदर्भ में सर्वोत्तम कार्य प्रणाली अपनाने के लिए अमेरिका, ब्रिटेन और चीन जैसे देशों के साथ समन्वय कर रहा है। अंतर-एजेंसी समन्वय के लिए 'भारतीय साइबर अपराध समन्वय केंद्र' की स्थापना की गई है। ''इलेक्ट्रॉनिक्स और सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय ने 25 फरवरी, 2021 को सूचना प्रौद्योगिकी नियम, 2021 अधिसूचित किया था'' (द्विवेदी, 2021)। भारत सरकार की ओर से कहा गया कि डिजिटल मीडिया की पारदर्शिता और जवाबदेही तय करने के लिए ये नियम लाए गए हैं। इस कानून के लिए जनता से परामर्श भी किया गया है। इसके अंतर्गत सोशल मीडिया और सभी मध्यस्थों को कानून का पालन करना होगा, ऐसा न करने पर उन्हें कानूनी सुरक्षा नहीं मिलेगी। नियम को लागू कराने की जिम्मेदारी सोशल मीडिया कंपनियों की होगी। नियम के अनुच्छेद 4(2) में कहा गया है कि किसी 'गलत' संदेश को सबसे पहले किसने भेजा, सरकार के पूछने पर उस व्यक्ति की पहचान बतानी होगी। गैर-कानूनी पोस्ट हटाने का काम भी कंपनियों की ओर से नियुक्त अधिकारी को ही करना होगा। सोशल मीडिया कंपनियाँ उपयोगकर्ता के लिए शिकायत निवारण प्रक्रिया का एक ढाँचा बनाना होगा। इसके लिए कंपनियाँ तीन अधिकारियों—चीफ कंप्लायंस ऑफिसर, नोडल कॉण्टैक्ट पर्सन और रेसिडेंट ग्रीवांस ऑफिसर की नियुक्ति करनी होगी। इनका नंबर सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म पर उपलब्ध कराना होगा, ताकि लोगों को शिकायत करने में आसानी हो सके। ये अधिकारी लोगों की शिकायत सुनेंगे और 15 दिन के अंदर समस्या का समाधान करेंगे। इन अधिकारियों को हर महीने की कार्रवाई की एक रिपोर्ट तैयार कर उसे पेश भी करनी होगी। सोशल मीडिया वास्तव में लोकतंत्र की शक्ति के रूप में उभरा है। इसकी सहायता से शिक्षा, संस्कृति के प्रसार के साथ-साथ सामाजिक एवं राजनीतिक बदलाव में भी सहायता मिल रही है, इसके अतिरिक्त यह दोस्ती, प्यार और भाईचारा बढाने में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दे रहा है। आज सोशल मीडिया खबरों का एक मुख्य स्रोत बन रहा है। स्मार्टफोन की बढ़ती माँग के कारण सोशल मीडिया के प्रचार-प्रसार में भी अप्रत्याशित वृद्धि हुई है और आने वाले समय में इसके प्रसार में और भी तेजी आने की संभावना है तथा साइबर अपराध में वृद्धि की भी संभावना है।

निष्कर्ष

भारत इंटरनेट का दूसरा सबसे बड़ा उपयोगकर्ता है और कोरोना काल में साइबर अपराध बढ़ा है। साइबर सुरक्षा उपलब्ध कराने के लिए सरकार की ओर से कई कदम उठाए गए हैं। साइबर सुरक्षा और सोशल मीडिया के दुरुपयोग का मुद्दा ऐसा है, जिसकी अब अनदेखी नहीं की जा सकती है। सोशल मीडिया पर अश्लीलता, धोखाधड़ी और ठगी के अनेक मामले आते रहते हैं। देश जैसे-जैसे डिजिटल युग की ओर बढ़ रहा है वैसे-वैसे नई चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। आज भारत में सोशल मीडिया का इस्तेमाल करने वाले लोगों की संख्या बढ़ रही है। इनमें अधिकांश लोग ऐसे स्मार्टफोन धारक हैं, जो इसकी संवेदनशीलता से अनजान हैं और सिर्फ दूसरों की देखादेखी सोशल मीडिया पर सक्रिय हैं। ऐसे लोगों को साइबर कानून के प्रति जागरूक करना होगा, ताकि वे साइबर कानून के डर से अपराध न करें। भारत के डिजिटल इंडिया मिशन की सफलता काफी हद तक साइबर सुरक्षा पर निर्भर करेगी। अतः भारत को इस क्षेत्र में तीव्र गति से कार्य करना होगा। साइबर कानून के उल्लंघन में जो कार्रवाई हो रही है, उसे लोगों को बताना होगा, ताकि साइबर अपराध कम हो सके। सोशल मीडिया का उपयोग करते समय कानून का ध्यान रखना जरूरी है। सोशल मीडिया का उपयोग पुलिसिंग को अपडेट करने में भी किया जा सकता है। इसके माध्यम से सबूत एकत्र करना, संभावित आरोपियों के संबंध में जानकारी और अपराधियों के नेटवर्क पर नजर रखी जा सकती है। सुझाव के तौर पर पुलिस विभाग को साइबर अपराध कम करने के लिए सोशल मीडिया का अधिक से अधिक उपयोग करना चाहिए। भारत में साइबर अपराध से निपटने के लिए साइबर सेना की आवश्यकता है। साइबर अपराध एक वास्तविकता है। साइबर अपराध से बचने के लिए कंप्यूटर में सदैव आधिकारिक सॉफ्टवेयर का उपयोग करना चाहिए। कंप्यूटर में पेन ड्राइव खोलने के पहले भलीभाँति परीक्षण करना चाहिए। अपने सिस्टम में पासवर्ड डालकर रखना चाहिए। पासवर्ड के रूप में अपने नाम तथा जन्मतिथि का प्रयोग नहीं करना चाहिए। पासवर्ड में अक्षरों और अंकों को मिलाकर करना चाहिए। आकर्षक वेबसाइटों के

लालच में नही पड़ना चाहिए। अपना क्रेडिट कार्ड नंबर गुप्त रखना चाहिए। अपने कंप्यूटर में एंटीवायरस सॉफ्टवेयर को अपडेट करते रहना चाहिए।

संदर्भ

अनुराधा, आर. (2012). *न्यू मीडिया : इंटरनेट की भाषायी चुनौतियाँ और संभावनाएँ*. नई दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड.

इंटरनेट लाइव स्टैट्स. (2021, 10 दिसंबर). https://www.internetlivestats.com//10/12/2021/12:50 PM से पुनःप्राप्त.

इंटरनेट वर्ल्ड स्टैट्स, (2021, 10 दिसंबर). http://www.internetworldstats.com/top20.htm

ओझा, वि. के. (2012). *परीक्षा मंथन, कंप्यूटर: एक परिचय*. इलाहाबाद : मंथन प्रकाशन.

कुलश्रेष्ठ, वि. (2012). *साइबर पत्रकारिता*. जयपुर : राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी प्रकाशन.

कुमार, एस. (2015). *ऑनलाइन मीडिया*. नोएडा : पियर्सन इंडिया एजुकेशन सर्विसिज प्राइवेट लिमिटेड.

चतुर्वेदी, जे. (2014). *डिजिटल कैपीटलिज्म फेसबुक संस्कृति और मानवाधिकार*. नई दिल्ली : अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स.

झाला, वी. एस. (2021, 14 दिसंबर). कोरोनावायरस काल में पूरी दुनिया में बढ़े साइबर अपराध. *वेब दुनिया डॉट काम*. https://hindi.webdunia.com/coronavirus/cyber-crime-expert-adgp-varun-kapoor-120070600057_1.html से पुनःप्राप्त.

दीक्षित, ए. (2021, 15 नवंबर). साइबर अपराध : वर्ष 2020 में बच्चों के खिलाफ 400 फीसदी से ज्यादा बढ़े मामले, इन पाँच राज्यों में सबसे अधिक मामले. *अमर उजाला वेबसाइट*. https://www.amarujala.com/india-news/cyber-crime-cases-against-children-increased-by-more-than-400-percent-in-the-year-2020-latest-news-update से पुनःप्राप्त.

दृष्टि. (2020, 7 अप्रैल). *साइबर अपराध और सोशल मीडिया की भूमिका*. https://www.drishtiias.com/hindi/daily-updates/daily-news-editorials/cyber-crime-and-role-of-social-media से पुनःप्राप्त.

द्विवेदी, ए. (2021, 26 जुलाई). अब सोशल मीडिया से ऊबने लगे हैं भारत के लोग. *डी.डब्लू. डाट काम*. https://www.dw.com/hi/a-research-suggests-that-indians-are-getting-bored-with-social-media/a-58644020 से पुनःप्राप्त.

नागलक्ष्मी, एस. (2012). *संचार, सूचना, कंप्यूटर और प्रयोजनमूलक हिंदी जगत्*. मथुरा : गोविंद पचौरी जवाहर पुस्तकालय.

नारायणस्वामी, आर. (2016). साइबर अपराध. *मनोरमा इयर बुक*. कोट्टयम : मलयाला मनोरमा.

नवभारत टाइम्स. (2021, 17 सितंबर). सोशल मीडिया प्रभावकारी बाजार 2025 तक 2,200 करोड़ रुपये का होने की उम्मीद. *एनबीटी वेबसाइट*. https://navbharattimes.indiatimes.com/business/business-news/social-media-influencer-market-expected-to-be-rs-2200-crore-by-2025/articleshow/86302457.cms से पुनःप्राप्त.

पटेल, वाई. (2012). सोशल मीडिया, नई दिल्ली : पुस्तक महल.

पंत, एन. सी. ;2015). *पत्रकारिता का इतिहास*. नई दिल्ली : तेज प्रकाशन.

भाटिया, के. (2021). *सोशल मीडिया वर्चुअल से वास्तविक*. दिल्ली : सेतु प्रकाशन.

मलिक, ए. (2002). *सूचना प्रौद्योगिकी एवं पत्रकारिता-कलम से कंप्यूटर तक*. पंचकूला : हरियाणा साहित्य अकादमी.

माथुर, एस. (2010). *वेब पत्रकारिता*. जयपुर : राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी.

मिश्र, एस. के. (2015). *पत्रकारिता एवं जनसंचार: आधुनिक विधाएँ*. नई दिल्ली : तेज प्रकाशन.

मिश्र, एस. (2008). *साइबर पत्रकारिता*. इलाहाबाद : साहित्य संगम.

वंदना, (2012, 16 अगस्त). खतरनाक हो सकती है सोशल मीडिया की मस्ती. *बीबीसी हिंदी डॉट काम*. http://www.bbc.com/hindi/india/2012/08/120816_cyber_bulling_va.shtml से पुन:प्राप्त.

सागर, पी. (2016, 18 फरवरी). साइबर क्राइम करने पर लगती है आईपीसी की ये धाराएँ. *आजतक*. http://aajtak.intoday.in/crime/story/these-ipc-sections-impose-on-cyber-criminals-1-855373.html से पुनःप्राप्त.

हर्ष देव. (2015). *ऑनलाइन पत्रकारिता*. नई दिल्ली : भारतीय पुस्तक परिषद्.

संचार माध्यम | खंड 34(1) : 112-114, जनवरी-जून 2022
आईएसएसएन: 2321-2608

पुस्तक समीक्षा

मीडिया में आ रही विसंगतियों पर एक सार्थक बहस

डॉ. रवींद्र अग्रवाल[1]

भारत की स्वतंत्रता के अमृत महोत्सव के निमित्त गत 75 वर्ष में देश के विभिन्न क्षेत्रों में हुए बदलाव पर चिंतन-मंथन हो रहा है। इस संदर्भ में मीडिया में हुए बदलाव पर भी चर्चा-परिचर्चा हो रही है। मीडिया की बात करें तो बदलाव अप्रत्याशित हैं। स्वतंत्रता आंदोलन में पत्रकारिता एक मिशन थी, परंतु आजादी के बाद यह एक 'प्रोफेशन' बन गई, जहाँ मुनाफा सर्वोपरि है। मुनाफा चाहिए तो उसके लिए जो भी हथकंडे अपनाए जा सकते हैं वे सभी खुलेआम अपनाए जा रहे हैं। इलेक्ट्रॉनिक और वेब मीडिया ने मीडिया के स्वरूप को पूरी तरह बदल दिया है। डिजिटल तकनीक के कारण अब समाचार पर मीडिया संस्थानों का एकाधिकार समाप्त हो गया है। स्मार्टफोनधारक एक सामान्य व्यक्ति किसी भी बड़े मीडिया संस्थान से पहले खबर 'ब्रेक' कर देता है। 'स्टिंग' के तरीके बदल गए हैं। सोशल मीडिया ने अलग तरह की चुनौती पेश की है। कुल मिलाकर 'मिशन' से 'प्रोफेशन' तक मीडिया यात्रा में अप्रत्याशित तकनीकी बदलाव के कारण समय के साथ कई प्रकार की विसंगतियाँ भी सामने आई हैं। पेड न्यूज, फेक न्यूज, हेट न्यूज और इंफोडेमिक के साथ नीरा राडिया टेप कांड, झूठे स्टिंग ऑपरेशन, मी-टू, आदि घटनाओं ने अनेक नामचीन पत्रकारों के दागदार चेहरों को बेनकाब किया है। इस कारण मीडिया की विश्वसनीयता पर गंभीर प्रश्न खड़े हुए हैं।

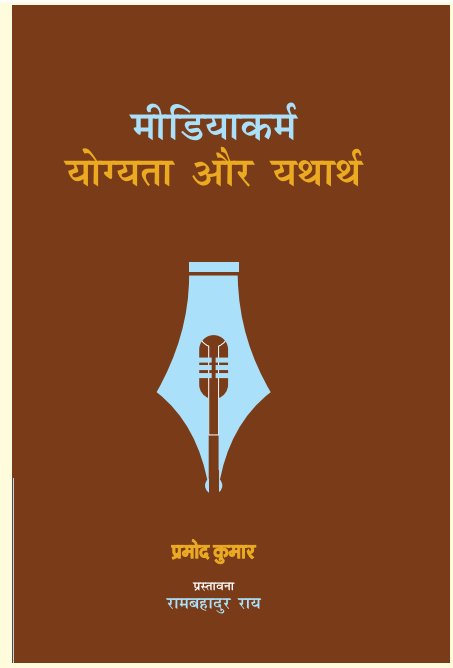

पुस्तक : मीडियाकर्म : योग्यता और यथार्थ
लेखक : प्रो. (डॉ.) प्रमोद कुमार
प्रकाशक : किताबवाले, 22/4735,
प्रकाश दीप बिल्डिंग, अंसारी रोड़,
नई दिल्ली-110 002
पृष्ठ : 252, मूल्य : 1000 रुपये

भारतीय प्रेस परिषद् सहित अनेक वरिष्ठ पत्रकार और बुद्धिजीवी मीडिया में आई इन विसंगतियों को लेकर बहुत चिंतित हैं। इसी चिंता को ध्यान में रखते हुए भारतीय प्रेस परिषद् ने पत्रकारों के लिए न्यूनतम शैक्षिक (प्रोफेशनल) योग्यता निर्धारित करने के लिए 12 मार्च, 2013 को तत्कालीन प्रेस परिषद् सदस्य श्री श्रवण गर्ग की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया था। उस समय कहा गया था कि यदि पत्रकारों के लिए उसी प्रकार शैक्षिक योग्यता निर्धारित कर दी जाए जैसे अध्यापकों, अधिवक्ताओं, अभियंताओं आदि के लिए निर्धारित है, तो मीडिया में आ रही विसंगतियों पर अंकुश लगाया जा सकता है। प्रेस परिषद् द्वारा गठित उस समिति के बाद मीडिया में इस विषय पर एक गंभीर बहस छिड़ी। उस दौरान इस विमर्श में पत्रकारों के साथ पाठकों तथा पत्रकारिता प्रशिक्षण संस्थानों में पढ़ाई करने वाले विद्यार्थियों व उन्हें पढ़ाने वाले शिक्षकों ने भी भाग लिया, परंतु धीरे-धीरे यह बहस बिना किसी ठोस नतीजे के समाप्त हो गई। इस विषय पर चिंतन-मंथन करने के लिए भारतीय प्रेस परिषद् ने भी जो समिति बनाई थी, वह भी अपनी इकलौती बैठक के बाद कोई रिपोर्ट प्रस्तुत नहीं कर पाई। रिपोर्ट प्रस्तुत न करने के कारण भले ही कुछ भी हों, परंतु इसने एक सार्थक बहस की भ्रूण हत्या कर दी। बाद में वर्तमान उपराष्ट्रपति श्री एम. वेंकैया नायडू ने वर्ष 2019 में इस विषय को एक बार फिर अनेक मंचों से उठाया। उन्होंने पत्रकारों के वेतन ढाँचे में भी सुधार पर जोर दिया और मीडिया के लिए एक व्यावहारिक और प्रभावी आचार संहिता बनाने का आग्रह किया।

पत्रकारों के लिए किसी प्रकार की व्यावसायिक योग्यता निर्धारित करने की जब बात चलती है तो सबसे अधिक सवाल देश के पत्रकारिता प्रशिक्षण संस्थानों के पाठ्यक्रम पर उठते हैं। पत्रकारिता प्रशिक्षण संस्थानों में पढ़ाने वाले अनेक प्राध्यापक भी यह महसूस करते हैं कि वहाँ भावी पत्रकारों को जो कुछ पढ़ाया जाता है उसका व्यावहारिक पत्रकारिता से दूर तक कोई संबंध नहीं है। इसलिए वहाँ से प्रशिक्षित पत्रकार जब किसी मीडिया संस्थान के 'न्यूजरूम' में काम शुरू करते हैं तो उन्हें समझ में नहीं आता है कि जो कुछ उन्होंने 'क्लासरूम' में सीखा उसका वहाँ क्या उपयोग है। उस समय न्यूजरूम में 'अनलर्न' की प्रक्रिया प्रांरभ होती है, यानी जो शिक्षा संस्थान में सीखा, उसे भूलकर 'न्यूजरूम' की जरूरतों

[1]वरिष्ठ पत्रकार, लेखक एवं पूर्व एसोसिएट एडिटर, दैनिक जागरण, नई दिल्ली. ईमेल : agravindra@gmail.com

के अनुसार नए सिरे से चीजें सीखी जाएँ। इस समस्या की जब गहराई में जाते हैं तो पता चलता है कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यूजीसी) ने पत्रकारिता प्रशिक्षण संस्थानों में पढ़ाने के लिए नियुक्त किए जाने वाले प्राध्यापकों हेतु जो मानदंड निर्धारित किए हैं उनमें पत्रकारिता के अनुभव हेतु कोई स्थान नहीं है। जिस अभ्यर्थी ने अपने जीवन में एक समाचार तक नहीं लिखा हो, वह यूजीसी नियमों के अनुसार मीडिया प्रोफेसर और विभागाध्यक्ष बन सकता है, परंतु जिसने अपने जीवन के कई दशक सक्रिय पत्रकारिता में बिताए, उसके लिए मीडिया प्रशिक्षण संस्थानों के दरवाजे बंद हैं। यही कारण है कि मीडिया प्रशिक्षण संस्थानों से निकलने वाले छात्र समाचार लेखन की कला और विज्ञान से अनभिज्ञ रहते हैं।

यदि पत्रकारिता प्रशिक्षण संस्थानों में पढ़ाने वाले शिक्षकों और वहाँ पढ़ने वाले छात्रों की शिक्षा और प्रशिक्षण की यह स्थिति है तो फिर सवाल उठता है कि पत्रकारों के लिए किसी प्रकार की व्यावसायिक योग्यता निर्धारित करने से समस्या का कैसे समाधान हो जाएगा? क्या छात्रों को केवल 'पत्रकारिता का इतिहास' पढ़ाकर उन्हें एक योग्य पत्रकार बनाया जा सकता है? क्या व्यावसायिक योग्यता निर्धारित कर देने से वे सभी विसंगतियाँ दूर हो जाएँगी, जो आज मीडिया में दिखाई देती हैं? क्या व्यावसायिक योग्यता निर्धारित कर देने मात्र से पत्रकारों के काम की स्वतंत्रता, उनकी सेवा शर्तें और उनकी वेतन विसंगतियाँ दूर हो जाएँगी? ऐसे ही तमाम सवालों का जवाब प्रस्तुत करती है भारतीय जन संचार संस्थान के अँग्रेजी पत्रकारिता विभाग में आचार्य प्रो. प्रमोद कुमार की नवीनतम पुस्तक 'मीडियाकर्म : योग्यता और यथार्थ'। यह पुस्तक इसलिए अहम है, क्योंकि प्रो. प्रमोद कुमार एक मीडिया प्रोफेसर से अधिक एक पत्रकार हैं। उन्होंने तीन दशक तक देश के प्रतिष्ठित मीडिया संस्थानों में काम किया है। वे गत तीन दशक में मीडिया में आए बदलाव के साक्षी हैं। भारतीय जन संचार संस्थान में आने से पहले वे हिमाचल प्रदेश केंद्रीय विश्वविद्यालय, धर्मशाला में भी अध्यापन एवं शोधकार्य कर चुके हैं। 252 पृष्ठों की यह पुस्तक नई दिल्ली के 'किताबवाले' प्रकाशक ने प्रकाशित की है। वरिष्ठ पत्रकार श्री रामबहादुर राय द्वारा लिखी अत्यंत सारगर्भित प्रस्तावना ने इस पुस्तक की अहमियत और भी बढ़ा दी है।

इस शोधपरक पुस्तक की एक और विशेषता यह है कि इसमें देश के दस वरिष्ठ पत्रकारों, मीडिया ट्रेड यूनियन के नेताओं तथा मीडिया शिक्षा से जुड़े विशेषज्ञों के साक्षात्कार भी हैं। इन विशेषज्ञों में शामिल हैं वरिष्ठ पत्रकार, भारतीय प्रेस परिषद के सदस्य और प्रेस एसोसिएशन के अध्यक्ष श्री जयशंकर गुप्त, नई दिल्ली स्थित एपीजे मीडिया इंस्टीट्यूट में 'प्रोफेसर एमेरिटस' रहे और संप्रति माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय, भोपाल के कुलपति प्रो. के.जी. सुरेश, जम्मू केंद्रीय विश्वविद्यालय में जनसंचार एवं न्यू मीडिया विभाग के अध्यक्ष तथा डीन रहे और अब नई दिल्ली स्थित भारतीय जन संचार संस्थान में डीन अकादमिक प्रो. गोविंद सिंह, पहले केंद्रीय विश्वविद्यालय हिमाचल प्रदेश, धर्मशाला के पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग के अध्यक्ष रहे परंतु अब कुशाभाऊ ठाकरे पत्रकारिता एवं जनसंचार विश्वविद्यालय, रायपुर, के कुलपति प्रो. बल्देव भाई शर्मा, भोपाल के वरिष्ठ पत्रकार श्री विजयदत्त श्रीधर, 'हिंदुस्तान डिजिटल' के संपादक श्री प्रभाष झा, पीटीआई-भाषा में पूर्व समाचार संपादक और इस समय यूएनआई न्यूज एजेंसी में डिप्टी एडिटर श्री मनोहर सिंह, आकाशवाणी में सलाहकार श्री उमेश चतुर्वेदी, 'कंफेडरेशन ऑफ न्यूजपेपर्स एंड न्यूज एजेंसी एंपलाइज आर्गनाइजेशंस' के महासचिव श्री एम.एस. यादव तथा कोलकाता से प्रकाशित हिंदी दैनिक 'सन्मार्ग' की डिप्टी एडिटर (न्यूज) सुश्री सर्जना शर्मा।

पुस्तक के लिए डाटा दो चरणों में संग्रहीत किया गया है। प्रथम चरण में गुणात्मक डाटा संग्रहण वर्ष 2013 में उस समय संग्रहित किया गया, जब पत्रकारों के लिए व्यावसायिक योग्यता संबंधी बहस चरम पर थी। दूसरे चरण में डाटा संग्रहण वर्ष 2019 में उस समय एकत्र किया गया, जब वर्तमान उपराष्ट्रपति श्री एम. वैंकेया नायडू ने इस बहस को फिर से जिंदा किया। गुणात्मक डाटा संग्रहण हेतु मीडिया से जुड़े विभिन्न वर्गों जैसे संपादक, पूर्व संपादक, समाचार संपादक, संवाददाता, उपसंपादक, अंशकालिक संवाददाता, स्ट्रिंगर, मीडिया घरानों के मालिक व पत्रकारिता विश्वविद्यालयों के कुलपति, पूर्व कुलपति, प्राध्यापकों, विद्यार्थियों, पत्रकार यूनियनों के पदाधिकारियों, पाठकों आदि की राय साक्षात्कार के माध्यम से ली गई। इनमें शहरी व ग्रामीण क्षेत्र के पत्रकारों के साथ ही महिला पत्रकार, प्रिंट, इलेक्ट्रॉनिक व वेब मीडिया के पत्रकार और देशी-विदेशी पाठक भी शामिल हैं। अधिसंख्य लोगों से प्रत्यक्ष मिलकर बातचीत की गई है। जो लोग दिल्ली से बाहर के हैं उनसे ईमेल अथवा दूरभाष से संपर्क किया गया। जिनसे दूरभाष से संपर्क किया गया, उनकी बातचीत उनकी अनुमति से रिकार्ड की गई। इसके अलावा विभिन्न समाचार पत्रों में लेखकों, स्तंभकारों, पत्रकारों आदि के जो बयान अथवा टिप्पणियाँ इस संबंध में प्रकाशित हुईं, उन्हें भी संकलित कर उनका विश्लेषण किया गया।

प्रस्तुत पुस्तक का सार यह है कि पत्रकारों के लिए पहले से अनेक आचार संहिताएँ बनी हुई हैं तथा और भी संहिताएँ बना लेने से चीजें ठीक हो जाएँगी, ऐसा मानना उचित नहीं है। ''जरूरत इस बात की है कि मीडिया में काम करने वाले पत्रकारों की कार्यदशाएँ और उनके वेतनक्रम को जितना जल्दी हो सके ठीक किया जाए। जब तक मीडिया में प्रत्येक स्तर पर काम करने वाले पत्रकारों हेतु कम-से-कम इतने वेतन की गारंटी नहीं मिलेगी, जिसमें वे अपने परिवार का सम्मानजनक तरीके से पालन-पोषण कर सकें, तब तक मीडिया में न तो कोई आचार संहिता कारगर साबित होगी और न ही किसी अन्य प्रकार का नियमन। मीडिया की तरफ प्रतिभाशाली लोग भी तभी आकर्षित होंगे, जब इस पेशे में सम्मानजनक वेतन की गारंटी होगी। आज मीडिया में बढ़ती ठेका प्रथा के कारण जिस प्रकार नौकरी की गारंटी समाप्त हो रही है और जो लोग काम कर रहे हैं, उन्हें सम्मानजनक वेतन नहीं मिलता, उससे आने वाले समय में प्रतिभाशाली लोग इस तरफ देखना भी पसंद नहीं करेंगे। मीडिया में यदि विसंगतियाँ बढ़ी हैं तो उनका एक प्रमुख कारण यह भी है कि यहाँ साफ-सुथरे और प्रतिभाशाली लोगों का आना कम हुआ है। जैसे ही अच्छे लोगों की संख्या इसमें बढ़ेगी, वैसे ही बेपटरी होती चीजें फिर से पटरी पर लौटने लगेंगी (पृष्ठ : 226)''।

पुस्तक में विशेषज्ञों के हवाले से सुझाव दिया गया है कि पत्रकारों के लिए किसी प्रकार की योग्यता निर्धारित करने से पूर्व इस विषय पर गंभीरतापूर्वक विचार किया जाना चाहिए कि क्या पत्रकारिता की प्रोफेशनल डिग्री प्राप्त कर लेने से पत्रकार विज्ञान, तकनीक, पर्यावरण व प्रदूषण, न्याय, रक्षा, उद्योग, व्यवसाय व वित्त आदि विषयों को गंभीरतापूर्वक प्रस्तुत करने में सक्षम होंगे या उसके लिए संबंधित विषय का जानकार होना भी आवश्यक है? चूँकि तेजी से बदलते परिदृश्य में

पत्रकारिता प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों की महत्ता दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है, इसलिए इस बात पर गंभीरतापूर्वक विचार किया जाना चाहिए कि ये पाठ्यक्रम और अधिक उपयोगी कैसे बनें और क्या इस उद्देश्य के लिए पत्रकारिता प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों को मीडिया व संबंधित क्षेत्रों से प्रत्यक्ष जोड़ा जाए? प्रायः देखा जाता है कि 12वीं कक्षा पास करते ही अधिकतर युवा मेडिकल, इंजीनियरिंग, वकालत, प्रबंधन आदि पेशों में जाने के बारे में सोचते हैं। कुछ सरकारी नौकरी के लिए भी प्रयास करते हैं। जिन्हें कहीं कोई मौका नहीं मिलता वे पत्रकार बनने के बारे में सोचते हैं। इसलिए आज अहम सवाल यह है कि मीडिया में प्रतिभा को आकर्षित कैसे किया जाए? जनसरोकारों को स्वर प्रदान करना मीडिया का प्रमुख दायित्व माना जाता है। इसलिए इस बात पर भी गंभीरतापूर्वक विचार किया जाना चाहिए कि क्या मीडिया वर्तमान दौर में भटकाव की स्थिति से गुजर रहा है? यदि हाँ, तो यह भटकाव कैसे दूर हो? समाज के प्रबुद्ध वर्ग से सदैव मार्गदर्शन करते रहने की अपेक्षा रहती है। इसलिए इस विषय पर गंभीरता से विचार किया जाना चाहिए कि क्या मीडिया वर्तमान समय में अपने इस दायित्व को पूरा कर रहा है? साथ ही इस बात पर भी चिंतन किया जाना चाहिए कि मीडिया समाज के लिए आदर्श मार्गदर्शक कैसे बना रहे? यदि इन बिंदुओं पर विधिवत अध्ययन और विश्लेषण किया जाए तो यह मीडिया और समाज दोनों के व्यापक हित में होगा।

आज मीडिया में विषय विशेषज्ञता का दौर है। मीडिया में कवरेज का दायरा भी बढ़ा है। कोर्ट रिपोर्टिंग, अपराध रिपोर्टिंग, विज्ञान एवं तकनीक रिपोर्टिंग, संसदीय रिपोर्टिंग, कला एवं संस्कृति रिपोर्टिंग, फिल्म रिपोर्टिंग, खेल रिपोर्टिंग, राजनीतिक रिपोर्टिंग, वित्तीय रिपोर्टिंग, आदि अलग-अलग आयाम भी तेजी से उभरे हैं। इन सभी विधाओं में पत्रकारों का सतत प्रशिक्षण अथवा 'स्किल डवलेपमेंट' उन्हें अपनी-अपनी बीट पर बेहतर ढंग से काम करने में काफी मददगार साबित होगा। वर्तमान समय में इस प्रकार के सतत प्रशिक्षण की क्या स्थिति है और इसे कैसे बेहतर किया जा सकता है, इस पर भी गहन अध्ययन की आवश्यकता है। मीडिया में दिखाई दे रही अधिकतर विसंगतियों का एक प्रमुख कारण संपादक संस्था में निरंतर होता ह्रास भी है। एक समय था जब अखबार की पहचान संपादक के नाम से होती थी, परंतु आज संपादक अपने संपादकीय दायित्व को छोड़कर यह सुनिश्चित करने में अपना अधिकतर समय लगाता हुआ प्रतीत होता है कि कैसे मालिक की अमुक मंत्री से भेंट हो सके, कैसे मालिक के लिए राज्यसभा सीट का प्रबंध किया जा सके, कैसे मालिक के दूसरे बिजनेस को संरक्षित करने में उसकी मदद की जाए, कैसे संस्थान के लिए पैसा एकत्र किया जाए? नीरा राडिया कांड में यहाँ तक उजागर हुआ कि देश के बड़े अखबारों के नामचीन संपादक इस डील में व्यस्त थे कि कौन-कौन नेता मंत्री बनें और किसे कौन-सा मंत्रालय मिले? पिछले एक दशक से मीडिया में महिलाओं की उपस्थिति काफी तेजी से बढ़ी है, परंतु इसी के साथ सामने आए 'मी-टू' जैसे अभियानों से यह पता चला कि मीडिया में किस प्रकार कुछ वरिष्ठ उनका शोषण करते रहे हैं। कुछ संपादकों को तो इन आरोपों में जेल की हवा खानी पड़ी है।

पुस्तक की प्रस्तावना में वरिष्ठ पत्रकार श्री रामबहादुर राय ने मीडिया के बदलते परिदृश्य का अध्ययन करने के लिए भारतीय संसद द्वारा गठित कई समितियों का जिक्र किया है, परंतु उन समितियों की रिपोर्ट पर आज तक कोई कार्रवाई नहीं होना दर्शाता है कि मीडिया में आ रही विसंगतियों को लेकर व्यवस्था भी कोई ठोस कदम उठाने से बच रही है। श्री राय लिखते हैं—''ढाई दशक पहले भारत की संसद ने कमेटी सिस्टम अपनाया। इसका अर्थ यह है कि किसी कमेटी की सिफारिश वास्तव में संसद का निर्णायक मत होता है। संसद के प्रति सरकार जवाबदेह है। कोई सांसद या पत्रकार अगर अपना ध्यान इस विषय पर दे तो राव इंद्रजीत सिंह कमेटी की सिफारिश पर अमल करने के लिए जनमत बनाया जा सकता है। यह भी एक कारण है कि ऐसी महत्वपूर्ण सिफारिशों की उपेक्षा हो रही है क्योंकि उसके लिए प्रबल जनमत नहीं बनाया जा सका है। इसके अलावा दूसरे बड़े कारण भी हैं। मीडिया को अपने रोग से मुक्ति के लिए रामबाण की प्रतीक्षा है। यह प्रश्न अपनी जगह ज्यों का त्यों बना ही हुआ है कि संसद का प्रतिनिधित्व करने वाली उस समिति की सिफारिशों का क्या हुआ? मुझे उम्मीद है कि इस पुस्तक से संसद की सिफारिश पर लोगों का पुनः ध्यान जाएगा। इस पुस्तक से मीडिया के बारे में एक चेतना पैदा होगी। पत्रकारों, मीडिया विद्यार्थियों, मीडिया शिक्षकों एवं नीति-निर्माताओं के लिए इस पुस्तक में बहुत उपयोगी सामग्री है (पृष्ठ : xvi)''।

पुस्तक सिर्फ मीडिया में आ रही विसंगतियों अथवा पत्रकारों के लिए व्यावसायिक योग्यता निर्धारित करने संबंधी बहस तक सीमित नहीं है। इसमें वे कड़वे प्रश्न भी हैं जिनसे मीडिया मालिक, वर्तमान संपादक तथा नीति-निर्माता कन्नी काटते नजर आते हैं। इसलिए यह पुस्तक सिर्फ मीडिया विद्यार्थियों ही नहीं, बल्कि मीडिया शिक्षकों एवं पत्रकारों को भी अवश्य पढ़नी चाहिए। पत्रकारों के लिए व्यावसायिक योग्यता संबंधी बहस पर यह संभवतः पहला दस्तावेज है, जिसमें इस बहस के साथ-साथ मीडिया से जुड़े अनेक ज्वलंत प्रश्नों पर प्रामाणिक चिंतन-मंथन किया गया है। तथ्यों की प्रामाणिकता इस पुस्तक को तमाम पुस्तकों से अलग करती है। अपने पत्रकार जीवन के पाँच दशक के अनुभव के आधार पर मैं कह सकता हूँ कि यह पुस्तक ठोस तथ्यों के आधार पर मीडिया की वर्तमान दशा का ईमानदारी से विश्लेषण करती है। इसलिए मेरा सुझाव है कि पुस्तक की सामग्री पर विभिन्न मीडिया शिक्षा संस्थानों में मीडिया विद्यार्थियों के बीच परिचर्चाएँ आयोजित की जानी चाहिए। साथ ही पुस्तक में जिन विषयों को सिर्फ स्पर्श करके छोड़ दिया गया है, उन पर भविष्य में शोध होना चाहिए।

संचार माध्यम | खंड 34(1) : 115-116, जनवरी-जून 2022
आईएसएसएन: 2321-2608

पुस्तक समीक्षा

बदलते दौर की पत्रकारिता के लिए मार्गदर्शक पुस्तक

रीता कपूर[1]

डिजिटल तकनीक पर सवार 'कन्वर्जेन्स' युग की आधुनिक पत्रकारिता की अपनी अलग ही चुनौतियाँ हैं और उन चुनौतियों का सामना परंपरागत पद्धति से नहीं हो सकता। इसलिए पत्रकारिता के विद्यार्थियों के समक्ष एक बड़ी चुनौती यह है कि वे जिन पाठ्य पुस्तकों को पढ़ रहे हैं वे उन्हें इस नए दौर की पत्रकारिता की चुनौतियों और उनसे निपटने के उपायों से परिचित नहीं करातीं। इस समस्या का समाधान कुछ हद तक सेज टेक्स्ट्स द्वारा हाल ही में प्रकाशित पाठ्य पुस्तक 'बीट रिपोर्टिंग एंड एडिटिंग : जर्नलिज्म इन द डिजिटल एज' ने किया है। अँग्रेजी में प्रकाशित इस पुस्तक की खासियत यह है कि इसमें जो जानकारी है वह न्यूजरूम और पत्रकारिता प्रशिक्षण संस्थानों के दिग्गजों द्वारा प्रदान की गई है। कुल 48 अध्यायों में विभक्त पुस्तक में रक्षा, राजनीति, न्यायालय, अपराध, खेल और मनोरंजन जैसी पारंपरिक बीट के अलावा ग्रामीण रिपोर्टिंग, कथा वाचन, फोटो पत्रकारिता और कार्टूनिंग, सोशल मीडिया रिपोर्टिंग, फेक न्यूज तथा समाधानमूलक पत्रकारिता जैसी नई बीट पर भी सामग्री है। पुस्तक का संपादन भारतीय जन संचार संस्थान में अँग्रेजी पत्रकारिता विभाग की पाठ्यक्रम निदेशक प्रो. सुरभि दहिया और विवेकानंद स्कूल ऑफ जर्नलिज्म एंड मास कम्युनिकेशन, विवेकानंद इंस्टीट्यूट ऑफ प्रोफेशनल स्टडीज, नई दिल्ली में सहायक प्राध्यापक शंभू साहू ने संयुक्त रूप से किया है।

पुस्तक : बीट रिपोर्टिंग एंड एडिटिंग : जर्नलिज्म इन द डिजिटल एज
संपादक : प्रो. सुरभि दहिया व शंभू साहू
प्रकाशक : सेज पब्लिकेशंस,
बी1/आई-1 मोहन,
कोऑपरेटिव इंडस्ट्रियल एरिया,
मथुरा रोड, नई दिल्ली-110 044
पृष्ठ : 550, मूल्य : 775 रुपये

पुस्तक की शुरुआत 'फंडामेंटल्स ऑफ रिपोर्टिंग' अध्याय से होती है, जिसमें रिपोर्टिंग के मूल सिद्धांतों का उल्लेख करते हुए समाचार की प्रकृति, महत्त्व और कार्यों, समाचारों की श्रेणियों, समाचार के घटकों को विस्तार से समझाया गया है। इसमें बताया गया है कि समाचार कैसे लिखा जाना चाहिए और एक रिपोर्टर में कौन-कौन से गुण होने चाहिए। इसमें प्रिंट, टीवी, रेडियो और डिजिटल मीडिया के लिए रिपोर्टिंग का तुलनात्मक वर्णन भी है। अध्याय में बताया गया है कि पत्रकारिता का प्रथम दायित्व 'सत्य' है और पत्रकार की प्रथम निष्ठा नागरिकों के प्रति है। 'टाइप्स ऑफ रिपोर्टिंग्स' अध्याय में खोजी, वर्णनात्मक, विश्लेषणात्मक और व्याख्यात्मक रिपोर्टिंग की जानकारी है। वहीं 'न्यूज: सोर्सेज एंड आर्ट ऑफ गेदरिंग' अध्याय में समाचार के स्रोतों और समाचार संकलन की बारीकियों को समझाया गया है। अध्याय 'अंडरस्टैंडिंग बीट्स रिपोर्टिंग' के अंतर्गत दुनियाभर के मीडिया संस्थानों में अपनाई जाने वाली बीट प्रणाली की जानकारी है। अध्याय 'क्राइम रिपोर्टिंग' में जुपिंदरजीत सिंह ने क्राइम रिपोर्टिंग की बारीकियाँ समझाते हुए समाचारों के स्रोत बनाने और स्टोरी के अंत तक उसका फॉलोअप करने के गुर समझाए हैं।

अध्याय 'गवर्नमेंट एंड पॉलिटिकल रिपोर्टिंग' राजनीतिक रिपोर्टिंग के सिद्धांतों की व्याख्या करते हुए नवोदित पत्रकारों को सरकारी कार्यालयों और राजनीतिक दलों के कामकाज और आधुनिक भारतीय राजनीति की महत्त्वपूर्ण घटनाओं की रिपोर्टिंग करने में सक्षम बनाता है। पुस्तक में संसद और विधानसभा की रिपोर्टिंग के बारे में अलग-अलग अध्यायों में जानकारी देते हुए बताया गया है कि किस तरह इनकी रिपोर्टिंग अन्य बीट के लिए की जाने वाली रिपोर्टिंग से भिन्न है। संसद की रिपोर्टिंग करते हुए संवाददाताओं को बिल्कुल सटीक जानकारी देनी चाहिए और कार्यवाही के बारे में अपनी तरफ से किसी तरह की व्याख्या नहीं करनी चाहिए। संवाददाता को पीठासीन अधिकारियों द्वारा निर्धारित नियमों का पूर्णत: पालन करना चाहिए। 'लीगल एंड कोर्ट रिपोर्टिंग' अध्याय न्यायिक पदानुक्रम के विभिन्न स्तरों अर्थात् मजिस्ट्रेट न्यायालय, सत्र न्यायालय, जिला न्यायालय, उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय से संबंधित रिपोर्टिंग के बारे में विस्तार से बताता है, वहीं 'डिफेंस रिपोर्टिंग' और 'रिपोर्टिंग इंटर्नल सिक्योरिटी' अध्यायों में रक्षा और आंतरिक सुरक्षा से संबंधित मामलों की रिपोर्टिंग के बारे में जानकारी दी गई है। 'रिपोर्टिंग इंटरनेशलन अफेयर्स' अध्याय सिखाता है कि विदेश नीति से जुड़े मामलों में रिपोर्टिंग कैसे की जाए। कॉन्फ्लिक्ट एंड वॉर रिपोर्टिंग' अध्याय समझाता है कि युद्ध या संघर्ष से जुड़ी घटनाओं की रिपोर्टिंग करते समय किस तरह

1 परामर्शदाता-राजभाषा, भारतीय जन संचार संस्थान, नई दिल्ली. ईमेल : ritakapoor1@gmail.com

की योजना और शोध करने की जरूरत पड़ती है।

'इकॉनोमी एंड फाइनेंस रिपोर्टिंग' अध्याय मोटे तौर पर भारतीय अर्थव्यवस्था की मौजूदा स्थिति, कोविड महामारी के बाद वित्त मंत्रालय द्वारा उठाए गए कदमों का उल्लेख करता है। यह वित्तीय मामलों की रिपोर्टिंग और संवाददाताओं की बदलती भूमिका के बारे में भी चर्चा करता है, तो 'बिजनेस रिपोर्टिंग' अध्याय ऐसे समाचारों की मूल अवधारणा को समझाने का प्रयास करता है। पुस्तक का 'हैल्थ रिपोर्टिंग' अध्याय मोटे तौर पर सार्वजनिक और निजी स्वास्थ्य सुविधाओं, प्रयोगशालाओं के नेटवर्क और सार्वजनिक और निजी स्वास्थ्य प्रणाली के बीच समीकरणों को रेखांकित करता है। वहीं 'एजुकेशन रिपोर्टिंग' अध्याय शिक्षा क्षेत्र में रिपोर्टिंग के नए अवसरों और आयामों पर चर्चा करता है, तो 'स्पोर्ट्स रिपोर्टिंग' खेल पत्रकारिता और समय के साथ इसमें आए बदलावों और खेल पत्रकार बनाने के लिए आवश्यक कौशलों के बारे में बताता है। इसी तरह 'सांइस एंड टेक्नोलॉजी रिपोर्टिंग' अध्याय भारत में विज्ञान और प्रौद्योगिकी रिपोर्टिंग में हाल के रुझानों का उल्लेख करते हुए इसके विविध संघटकों, वैज्ञानिक मूल पाठ को सर्वसाधारण के हित में आम बोलचाल की भाषा में प्रस्तुत करने के गुर बताता है, जबकि 'न्यूक्लियर एंड स्पेस रिपोर्टिंग' अध्याय यह सिखाता है कि अंतरिक्ष, रक्षा और परमाणु ऊर्जा जैसे क्षेत्रों की रिपोर्टिंग में लक्ष्मण रेखा का ध्यान रखने की जरूरत है। दरअसल अल्प जानकारी लोगों को रोमांचित नहीं करती और विस्तृत जानकारी शत्रु को जरूरत से ज्यादा जानकारी दे देती है। 'एनवायरमेंट रिपोर्टिंग' अध्याय पर्यावरण से जुड़े महत्त्वपूर्ण मामलों, उनकी जटिलताओं, अंतरराष्ट्रीय समझौतों से संबंधित रिपोर्टिंग के बारे में विस्तार से समझाता है।

'सिविल एडमिनिस्ट्रेशन, सिटी एंड मुफस्सिल रिपोर्टिंग' अध्याय बताता है कि पाठक, दर्शक और श्रोता अपने आसपास होने वाली घटनाओं और अपने जीवन पर उनके प्रभावों को लेकर बहुत सजग रहता है। इसलिए इनसे जुड़ी रिपोर्टिंग बहुत महत्त्वपूर्ण मानी जाती है। वहीं 'डेवलपमेंट रिपोर्टिंग' अध्याय विकास की अवधारणा, विकास सूचकांकों आदि का उल्लेख करते हुए विकास से जुड़े मामलों पर स्टोरी तैयार करने के बारे में मार्गदर्शन करता है। 'जेंडर, वूमन एंड चाइल्ड रिपोर्टिंग' अध्याय इन मामलों पर व्यापक दृष्टिकोण से रिपोर्टिंग करने और इस क्रम में संवाददाता के समक्ष आने वाली चुनौतियों का उल्लेख करता है। 'रूरल एंड एग्रीकल्चर रिपोर्टिंग' अध्याय कृषि और भारतीय अर्थव्यवस्था में इसकी भूमिका पर ध्यान केंद्रित करते हुए इसके बारे में विस्तार से जानकारी देता है, ताकि विद्यार्थी इसे बेहतर ढंग से समझ सकें और अच्छी रिपोर्टिंग कर सकें, जबकि 'डिज़ास्टर रिपोर्टिंग' अध्याय आपदा काल के दौरान रिपोर्टिंग की चुनौतियों पर चर्चा करता है।

'आर्ट एंड कल्चर रिपोर्टिंग' समीक्षा की लेखन शैली, लहजे और पद्धतियों के बारे में जानकारी देता है, वहीं 'फैशन, लाइफस्टाइल एंड एंटरटेनमेंट रिपोर्टिंग' अध्याय लाइफस्टाइल जर्नलिज्म के अंतर्गत कवर होने वाले विषयों की जानकारी देने के साथ-साथ भारत में फैशन और लाइफस्टाइल जर्नलिज्म की संभावनाओं का परिदृश्य भी प्रस्तुत करता है। 'रिपोर्टिंग ट्रैवल एंड फूड' अध्याय पत्रकारों को ट्रैवल और फूड से संबंधित गंभीर पत्रकारिता करने के बारे में उचित सुझाव देता है। 'रिपोर्टिंग रेलवे एंड रोडवेज' अध्याय ब्रिटिश काल में आरंभ से लेकर, उसके विकास, नवीन प्रौद्योगिकियों का उपयोग और वर्तमान में भारतीय रेल प्रणाली की व्यापकता को संवाददाता के नजरिये से प्रस्तुत करता है। इसी अध्याय का दूसरा भाग सड़क परिवहन और राजमार्ग से संबंधित पहलुओं को कवर करता है। रिपोर्टिंग सिविल एविएशन अध्याय वैश्विक नागर विमानन क्षेत्र और भारत में इस उद्योग की सामान्य जानकारी देने के साथ-ही-साथ नागर विमानन अवसंरचना, नागर विमानन मंत्रालय और इसके नियामक निकायों के बारे में जानकारी देता है, तो ऑटोमोबाइल रिपोर्टिंग अध्याय मोटरिंग जर्नलिज्म को मोटे तौर पर पांच उपश्रेणियों में विभक्त करते हुए बताता है कि किस तरह पत्रिकाओं के लिए की जाने वाली रिपोर्टिंग डिजिटल मीडिया से भिन्न हो सकती है।

इसी तरह एक अध्याय पृथक् बीट के रूप में उभर रहे 'डेटा जर्नलिज्म' को समर्पित किया गया है, जो बताता है कि दुनिया में 44 जेटाबाइट डेटा उपलब्ध है, जिसका स्रोत और साधन दोनों ही रूपों में उपयोग हो सकता है। वहीं डेटा विजुअलाइजेशन अध्याय बताता है कि डेटा को चार्ट, ग्राफ, मानचित्र, वीडियोग्राफिक्स, इंफोग्राफिक्स आदि के साथ विजुअलाइज करने से स्टोरी में सौंदर्य मूल्य (एस्थेटिक वैल्यू) शामिल हो जाता है। साथ ही 'इमर्जिंग टेक्नोलॉजीज' अध्याय मोबाइल जर्नलिज्म (मोजो), पॉडकास्ट जर्नलिज्म, कृत्रिम सूचना, रोबोटिक प्रॉसेस ऑटोमेशन, बॉट्स, ब्लॉकचैन जर्नलिज्म, एआर/वीआर आदि के बारे में ज्ञानवर्धन करता है। वहीं 'ड्रोन जर्नलिज्म' अध्याय एरियल फुटेज ग्रहण करने की क्षमता के कारण रिपोर्टिंग और खोजी पत्रकारिता में ड्रोन जर्नलिज्म की अपार सामर्थ्य के बारे में चर्चा करता है। इसमें सफल ड्रोन पत्रकार बनने के लिए 'डोजो' के महत्त्वपूर्ण पहलुओं का सारांश प्रस्तुत किया गया है। 'सोशल मीडिया रिपोर्टिंग' अध्याय में बताया गया है कि इसकी निरंतर बढ़ती महत्ता को देखते हुए कोई भी रिपोर्टर इसकी अनदेखी नहीं कर सकता। इसी तरह 'फोटो जर्नलिज्म, स्टोरी टेलिंग एंड कॉर्टूनिंग' नवोदित पत्रकारों और फोटो पत्रकारों को इन क्षेत्रों से जुड़ी बुनियादी बातों की जानकारी देता है। इसके अलावा सम्पादकीय लेखन, फीचर लेखन, वैचारिक लेखन, संपादक के नाम , विशेष लेख, समीक्षा लिखने आदि के बारे में भी अलग-अलग अध्यायों में विस्तार से जानकारी दी गई है। इसी तरह गलत सूचना, फेक न्यूज के प्रति आगाह किया गया है, तो रिपोर्टिंग में नैतिकता को भी परिभाषित किया गया है।

पुस्तक में वैश्विक पत्रकारिता में उभरती नई बीट यानी समाधानमूलक पत्रकरिता के संबंध में भी एक अध्याय है 'सॉल्यूशन बेस्ड जर्नलिज्म' नाम से यह अध्याय भारतीय जन संचार संस्थान में अँग्रेजी पत्रकारिता विभाग के प्रोफेसर डॉ. प्रमोद कुमार ने लिखा है। प्रो. कुमार समाधानमूलक पत्रकारिता पर गत एक दशक से काम कर रहे हैं। अध्याय में विस्तार से बताया गया कि रिपोर्टिंग में हमेशा नकारात्मक दृष्टिकोण के बजाय समाधान पर भी ध्यान देना चाहिए और समाज के रचनात्मक पक्ष को भी सामने लाना चाहिए। अध्याय में समाधानपरक पत्रकारिता को भविष्य की पत्रकारिता बताते हुए कहा गया है कि यह मीडिया स्वामियों, प्रबंधन, संपादकों, पत्रकारों और मीडिया संगठनों का सामूहिक एजेंडा होना चाहिए। 'एडिटिंग कॉन्सेप्ट्स एंड प्रॉसेसिज' अध्याय में संपादन के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए बताया गया है कि उचित संपादन किस प्रकार एक खराब कॉपी को भी बेहतरीन बना सकता है। कुल मिलकर पत्रकारिता के विद्यार्थियों ही नहीं श्रमजीवी पत्रकारों और मीडिया शिक्षकों को भी इस पुस्तक को अवश्य पढ़ना चाहिए।

संचार माध्यम

'संचार माध्यम' (ISSN 2321–2608) भारतीय जन संचार संस्थान (नई दिल्ली) की संचार, मीडिया, पत्रकारिता और उससे संबंधित मुद्दों पर केंद्रित हिंदी में प्रकाशित होने वाली अग्रणी 'पीयर रिव्यूड' और यूजीसी–केयर सूचीबद्ध शोध पत्रिका है। इसका प्रकाशन 1980 में प्रारंभ हुआ और आज यह हिंदी भाषा में संचार, मीडिया और पत्रकारिता से संबंधित विषयों पर विभिन्न प्रकार के विचारों, टिप्पणियों, पुस्तक समीक्षा और मौलिक शोध–पत्रों के प्रकाशन का प्रतिष्ठित मंच है। इसमें मीडिया से संबंधित सभी प्रकार के विषयों पर मौलिक अकादमिक शोध और विश्लेषण प्रकाशित किए जाते हैं। अकादमिक शोध के उच्चतर मूल्यों का पालन करते हुए 'संचार माध्यम' में प्रकाशन से पूर्व सभी शोध पत्रों/आलेखों की बहुस्तरीय निष्पक्ष समीक्षा (ब्लाइंड पीयर रिव्यू) कराई जाती है। भारतीय जन संचार संस्थान के प्रकाशन विभाग द्वारा इसका प्रकाशन किया जाता है। पत्रिका का प्रकाशन अभी छमाही हो रहा है, परंतु शीघ्र ही इसका प्रकाशन पुनः तिमाही करने की योजना है।

'संचार माध्यम' में निम्नलिखित श्रेणी के शोध–पत्र प्रकाशित किए जाते हैं :

1. **मौलिक शोध पर आधारित शोध–पत्र :** इस प्रकार के शोध–पत्र की शब्द सीमा 4000 से 5000 शब्द होनी चाहिए। जो डबल स्पेस में टाइप किया गया हो। साथ ही अधिकतम 250 शब्दों में शोध सारांश भी शामिल होना चाहिए। शोध–पत्र सिर्फ़ यूनिकोड फॉण्ट में ही टाइप होना चाहिए और उसमें संबंधित शोध की पूर्ण तसवीर दृष्टिगोचर होनी चाहिए। शोध–पत्र से जुड़े छायाचित्र/ग्राफ़/टेबल, यदि कोई हों, तो वे भी अपनी मूल प्रति के साथ (एक्सेल फाइल इत्यादि) संलग्न किए जाने चाहिए। इस बात का विशेष ध्यान रखा जाना चाहिए कि छायाचित्रों का रिजॉल्यूशन उच्च स्तर का हो, ताकि प्रिंटिंग के समय गुणवत्ता प्रभवित न हो। पीडीएफ़ फ़ाइल में शोध पत्र स्वीकार्य नहीं होंगे।
2. **लघु शोध आधारित शोध–पत्र :** लघु शोध आधारित आलेख लगभग 2000 शब्दों से अधिक नहीं होना चाहिए, यानी लगभग 4–5 पृष्ठ, डबल स्पेस में टाइप किया गया हो। यह भी यूनिकोड फॉण्ट में ही टंकित होना चाहिए। ऐसे शोध–पत्र भी पूर्ण हो चुके शोध/अध्ययनों पर ही आधारित होने चाहिए। इसमें ऐसे तथ्यपूर्ण शोध–पत्र भी शामिल हो सकते हैं, जिनका संबंध किसी नवीन तकनीक के विकास से है। ऐसे शोध–पत्रों का शोध सारांश 80 से 100 शब्दों से अधिक नहीं होना चाहिए।
3. **शोध समीक्षा :** इस श्रेणी के अंतर्गत आने वाले समीक्षात्मक आलेखों में प्रस्तावना, साहित्य समीक्षा, शोध परिणाम आदि के अलावा संबंधित शोध में मौजूद कमियों और उन कमियों के सुधार हेतु सुझावों का भी समावेश होना चाहिए, ताकि भविष्य में अन्य शोधकर्ता उन कमियों को दूर करने की दिशा में प्रयास कर सकें।
4. **पुस्तक समीक्षा :** 'संचार माध्यम' में पत्रकारिता और जनसंचार पर प्रकाशित पुस्तकों की समीक्षा (शब्द सीमा : 1500) भी प्रकाशित की जाती है। अन्य विषयों जैसे सामाजिक ज्ञान, सामाजिक कार्य, एंथ्रोपोलोजी, कला आदि पर प्रकाशित पुस्तकों की समीक्षा भी भेजी जा सकती है बशर्ते उनका शीर्षक मीडिया अध्ययन से जुड़ा हो या उनकी सामग्री में कम–से–कम 40 प्रतिशत अध्याय मीडिया, जनसंचार या पत्रकारिता से जुड़े हों। पुस्तक समीक्षाएँ उनके पूर्ण विवरण जैसे प्रकाशक, वर्ष, संस्करण, पृष्ठ संख्या, मूल्य व पुस्तक के छायाचित्र के साथ भेजी जानी चाहिए।

प्रकाशन नैतिकता और साहित्यिक चोरी

- संचार माध्यम के लिए जो शोध आलेख भेजे जाएँ उन्हें अन्य पत्रिकाओं को नहीं भेजना चाहिए और न ही शोध आलेखों को पूरी तरह से या आंशिक रूप से उसी सामग्री के साथ किसी अन्य पत्रिका में प्रकाशित किया जाना चाहिए। लेखकों को सुनिश्चित करना चाहिए कि 'संचार माध्यम' में प्रकाशन के लिए भेजे जाने वाले आलेख किसी भी रूप में या मिलती–जुलती सामग्री के रूप में पहले प्रकाशित न हुए हों।
- किसी भी तरह की साहित्यिक चोरी किसी भी परिस्थिति में स्वीकार्य नहीं है। आलेख के साथ मूल कार्य का घोषणापत्र प्रस्तुत किया जाना अनिवार्य है, जिसके बिना आलेखों पर कोई विचार नहीं किया जाएगा। लेखकों को आलेखों की प्रामाणिकता सुनिश्चित करनी चाहिए। कोई भी अनैतिक व्यवहार (साहित्यिक चोरी, गलत डेटा आदि) किसी भी स्तर पर (पियर रिव्यू या संपादन स्तर पर भी) आलेख की अस्वीकृति का कारण बन सकता है। किसी भी समय साहित्यिक चोरी और तथ्यों निष्कर्षों के स्वनिर्मित आदि पाए जाने पर प्रकाशित आलेख वापस लिए जा सकते हैं।

बहुस्तरीय समीक्षा (पियर रिव्यू) प्रक्रिया

'संचार माध्यम' में प्रकाशनार्थ प्राप्त सभी आलेख दोहरी या बहुस्तरीय निष्पक्ष समीक्षा (डबल ब्लाइंड पीयर रिव्यू) प्रक्रिया के अधीन हैं। शोध आलेखों को विशेषज्ञों के पास बिना उनके लेखक/लेखकों का नाम बताए समीक्षा के लिए भेजा जाता है। उनकी टिप्पणी, सुझावों और अनुशंसा के आधार पर ही शोध–पत्रों के प्रकाशन का निर्णय लिया जाता है। संपादन–परिषद् के संतुष्ट होने पर ही शोध–पत्र प्रकाशित किया जाता है। इस प्रक्रिया में आमतौर पर 4–6 सप्ताह लगते हैं। समीक्षा प्रक्रिया पाँच चरणों पर आधारित है:–

क. जस के तस स्वीकार करने लायक,

ख. मामूली सुधार की आवश्यकता,
ग. मध्यम सुधार की आवश्यकता,
घ. अधिक सुधार की आवश्यकता
ङ. अस्वीकृत। 'संचार माध्यम' तीव्र समीक्षा प्रक्रिया का पालन नहीं करता है।

लेखों का संपादन

यदि प्रकाशन के लिए लेख स्वीकार किया जाता है, तो उसे कम–से–कम दो संपादन चरणों से गुजरना पड़ता है। लेखकों को ध्यान रखना चाहिए कि सभी स्वीकृत लेख संपादन के किसी भी स्तर पर संपादकों द्वारा आवश्यक संशोधनों व परिवर्तनों के अधीन हैं।

जनवरी–जून 2022, खंड–34, अंक–1
आईएसएसएन : 2321–2608

टाइटल कोड : DELHIN28999
सदस्यता शुल्क ₹200 प्रति अंक
(वार्षिक सदस्यता शुल्क ₹400)

आईआईएमसी के संशोधित लोगो का लोकार्पण

भारतीय जन संचार संस्थान (आईआईएमसी) के संशोधित लोगो का लोकार्पण संस्थान के महानिदेशक प्रो. संजय द्विवेदी ने 14 जनवरी 2022 को किया। इस अवसर पर अपर महानिदेशक श्री आशीष गोयल, प्रकाशन विभाग के प्रमुख प्रो. (डॉ.) वीरेंद्र कुमार भारती, डीन (छात्र कल्याण) प्रो. (डॉ.) प्रमोद कुमार एवं पुस्तकालय प्रभारी डॉ. प्रतिभा शर्मा सहित अन्य अधिकारी एवं कर्मचारी उपस्थित थे।

संशोधित लोगो का अनावरण करते हुए प्रो. द्विवेदी ने कहा कि आईआईएमसी का लोगो वर्ष 1966 में डिजाइन किया गया था, लेकिन अभी तक उसमें टैगलाइन और संस्थान का नाम शामिल नहीं था। इस कारण आईआईएसमी के संशोधित लोगो को डिजाइन किया गया। संशोधित लोगो में आईआईएमसी के नाम के साथ 'आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतः' टैगलाइन को जोड़ा गया है, जिसका अर्थ है 'हमें सब ओर से कल्याणकारी विचार प्राप्त हों'। प्रो. द्विवेदी के अनुसार अच्छे विचारों को ग्रहण करना और समाज में उनका प्रसार करना किसी भी जन संचार शिक्षण संस्थान का मूल कार्य है। उन्होंने कहा कि सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय के सचिव एवं संस्थान के अध्यक्ष श्री अपूर्व चंद्रा की अध्यक्षता में आयोजित आईआईएमसी कार्यकारी परिषद की 145वीं बैठक में इस संशोधित लोगो को मंजूरी प्रदान की गई।

संशोधित लोगो सभी प्रकार के दृश्य संचार, जैसे पुस्तकों, पत्रिकाओं, रिपोर्टों, स्टेशनरी, वेबसाइटों, सोशल मीडिया, विज़िटिंग कार्डों आदि विज्ञापन और विपणन सामग्री पर प्रयुक्त और प्रयोग किया जाएगा। विभिन्न प्रकाशनों के लिए लोगो के आकार जैसे विभिन्न संघटकों के बारे में विस्तृत निर्देश देने वाली लोगो उपयोग दिशानिर्देश पुस्तिका तथा अन्य निर्देश भी तैयार किए गए हैं और ये सब आईआईएमसी की वेबसाइट पर उपलब्ध हैं।

मुद्रक और प्रकाशक प्रो. (डॉ.) वीरेन्द्र कुमार भारती, प्रमुख-प्रकाशन विभाग, द्वारा भारतीय जन संचार संस्थान के लिए चंदू प्रेस, 469, पटपड़गंज इंडस्ट्रियल एरिया, दिल्ली-110092 से मुद्रित तथा भारतीय जन संचार संस्थान, अरुणा आसफ अली मार्ग, नया जेएनयू परिसर, नई दिल्ली – 110 067 से प्रकाशित। संपादक : प्रो. (डॉ.) प्रमोद कुमार.